

प्रो० वेद प्रकाश शास्त्री,
पूर्व उपकुलपति
गुरूकुल कांगड़ी वि०वि०, हरिद्वार
प्रो० पुष्पा अवस्थी, संस्कृत विभाग
एस०एस०जे० परिसर, कुमौऊ विश्वविद्यालय,
अल्मोड़ा

प्रो० एच०पी० शुक्ल,
निदेशक, भाषा
विद्याशाखा उ०मु०वि०वि०, हल्द्वानी

डॉ० देवेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
उ०मु०वि०वि०, हल्द्वानी

डॉ० ब्रजेश पाण्डेय, एस०प्रो०
महिला डिग्री कालेज, हल्द्वानी

डॉ० संगीता बाजपेयी,
अका० एस०सिएट संस्कृत विभाग
उ०मु०वि०वि०, हल्द्वानी

डॉ० गोपाल दत्त त्रिपाठी,
संस्कृत महाविद्यालय हल्द्वानी

पाठ्यक्रम सम्पादन

डॉ० देवेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
उ०मु०वि०वि०, हल्द्वानी

डॉ० संगीता बाजपेयी,
अका० एस०सिएट संस्कृत विभाग
उ०मु०वि०वि०, हल्द्वानी

इकाई लेखन

खण्ड

इकाई संख्या

डा० राजेश शुक्ल
प्रवक्ता संस्कृत,
लाड देवी शर्मा पंचोली,
संस्कृत महाविद्यालय,
भीलवाड़ा, राजस्थान

खण्ड 1

इकाई 1 से 5

श्री पून चन्द्र पपनै
उ०मु०वि०वि०, हल्द्वानी

खण्ड 2

इकाई 2,3,4

डॉ० वन्दना द्विवेदी,
प्रवक्ता संस्कृत,
अग्रसेन महिला महाविद्यालय,
आजमगढ़, उत्तर प्रदेश

खण्ड 2

इकाई 1,5,6

डॉ० उमेश शुक्ल,
प्रवक्ता संस्कृत,
लाड देवी शर्मा पंचोली,
संस्कृत महाविद्यालय,
भीलवाड़ा, राजस्थान

खण्ड 3

इकाई 1 से 5 तक

डॉ० योगेन्द्र कुमर,
नेशनल पी०जी० कॉलेज,
बड़हल गंज, गोरखपुर

खण्ड 4, इकाई 1से 5 तक

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: 2014

ISBN NO. 978-93-84632-34-2

प्रकाशक: उ०मु०वि०वि०-263139

मुद्रक: उत्तरायण प्रकाशन हल्द्वानी नैनीताल

अनुक्रम

खण्ड एक - शिवराजविजय 01

इकाई 1 –अम्बिकादत्त व्यास का परिचय तथा संस्कृत गद्य साहित्य में शिवराजविजय	2-23
इकाई 2 – प्रथम निःश्वास –विष्णोर्माया..... उपाविशच्च तक । (मूल, अर्थ, व्याख्या)	23-32
इकाई 3 – तस्मिन् पूज्यमानैः तूष्णीमवतस्थे तक (मूल, अर्थ, व्याख्या)	33-46
इकाई 4 – अथ समुनि विरराम तक (मूल, अर्थ, व्याख्या)	47-56
इकाई 5- तदाकर्ण्य विविध स्वकुटीरं प्रविवेश तक (मूल, अर्थ, व्याख्या)	57-67

खण्ड दो-(श्रीमद्भगवद्गीता) द्वितीय एवं तृतीय अध्याय 68

इकाई 1 – श्रीमद्भगवद्गीता का परिचय एवं महत्व	69-110
इकाई 2 - श्लोक सं0 1 से 24 तक मूल अन्वय, अर्थ , व्याख्या	111-121
इकाई 3 – श्लोक सं0 25 से 49 तक मूल अन्वय, अर्थ , व्याख्या	122-132
इकाई 4 – श्लोक सं0 50 से 73 तक मूल अन्वय, अर्थ , व्याख्या	133-143
इकाई 5 – तृतीय अध्याय श्लोक सं0 1 से 20 तक मूल अन्वय, अर्थ , व्याख्या	144-171
इकाई 6- तृतीय अध्याय श्लोक सं0 21 से 43 तक मूल अन्वय, अर्थ , व्याख्या	172-19

खण्ड तीन –व्याकरण- हल् एवं विसर्ग सन्धि 200

इकाई 1 –सूत्र –स्तोःश्चुनाश्चुः से शश्छोऽटि तक व्याख्या एवं प्रक्रिया अंश	201-212
इकाई 2 – मोऽनुस्वारः सेनश्च तक व्याख्या एवं प्रक्रिया अंश	213-223
इकाई 3 – नश्च सूत्र से पदान्तद्वा तक व्याख्या एवं प्रक्रिया अंश	224-235

इकाई 4 – विसर्ग सन्धि सम्पूर्ण व्याख्या एवं प्रक्रिया अंश 236-252

इकाई 5- शब्द रूप एवं धातु रूप – लट् ,लोट , लिङ. ,लृट लड. लकारों में 253-268

खण्ड चार-तर्क संग्रह

269

इकाई 1 –न्याय दर्शन का संक्षिप्त परिचय अन्नंभट्ट एवं उनका कर्तृत्व 270-277

इकाई 2 – तर्कसंग्रह मंगलाचरण से शब्द लक्षण वर्णन तक 278-286

इकाई 3 – बुद्धिलक्षण से पक्षधर्मता लक्षण तक 287-292

इकाई 4 – अनुमानद्वैविध्य से..... बाधितलक्षण पर्यन्त 293-299

इकाई 5- उपमान खण्ड से लेकर अभाव वर्णन पर्यन्त 300-306

खण्ड – 1 शिवराजविजय

इकाई 1. पं० अम्बिकादत्त व्यास का परिचय तथा संस्कृत
गद्य साहित्य में शिवराजविजय

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 पं० अम्बिकादत्तव्यास का परिचय तथा संस्कृत गद्य साहित्य में
शिवराजविजय

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 उपयोगी पुस्तकें

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्य साहित्य शास्त्र से सम्बन्धित खण्ड एक की पहली इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि पं० अम्बिकादत्त व्यास का परिचय क्या है? पं० अम्बिकादत्त व्यास ने अपनी सुरभारती को एक सुन्दर रमणी की भाँति अलंकार से सजाया है। अनुकूल एवं समुचित अलंकार का संयोजन किया है। बाण की कृति अलंकार के भार से बोझिल हुई प्रतीत होती है किन्तु व्यास की कृति विरलालंकार विभूषिता लावण्यमयी तन्वंगी के समान है। उन्होंने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का सावसर प्रयोग किया है। शब्दालंकार तो पदे – पदे दृष्टिगोचर होता है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- अम्बिकादत्त व्यास के परिचय के विषय में बतायेंगे ।
- शिवराजविजय के ऐतिहासिकता के विषय में समझायेगें ।
- शिवराजविजय काव्य के विषय में बता सकेंगे ।
- शिवराजविजय के काव्य-अभिव्यंजना के विषय में अध्ययन करेंगे ।
- शिवराजविजय के भाषा शैली के विषय में अध्ययन करेंगे ।

1.3 पं० अम्बिकादत्तव्यास का परिचय तथा संस्कृत गद्य साहित्य में शिवराजविजय

पं० अम्बिकादत्त व्यास का परिचय

साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यास ने 'शिवराजविजय' नामक गद्य-काव्य की रचना की, जो काशी से 1901 ई० में प्रकाशित हुआ। व्यास जी का स्थितिकाल 1858-1900 ई० था। इनके पूर्वज जयपुर राज्य के निवासी थे परन्तु इनके पितामह काशी में आकर बस गये थे। वहीं उनका अध्ययन सम्पन्न हुआ। 'बिहार-विहार' में उन्होंने 'संक्षिप्त निज वृत्तान्त' स्वयं लिखा है। मृत्यु के समय वे गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज पटना में प्रोफेसर थे। बिहार में "संस्कृत संजीवनी समाज" स्थापित कर उन्होंने संस्कृत शिक्षा प्रणाली का सुधार किया। व्यास जी ने छोटी-बड़ी मिलाकर संस्कृत और हिन्दी में कुल 75 पुस्तकें लिखी हैं। संस्कृत वाङ्मय के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास का सौभाग्य 'शिवराजविजय' को प्राप्त है। जो अनुपम वाक्य-विन्यास, अलंकरण एवं शब्दश्लेष की दृष्टि से कादम्बरी से प्रभावित-रूप शिल्प की दृष्टि से बंग उपन्यासों के निकट है। पं० अम्बिकादत्त व्यास बाल्यकाल से ही प्रतिभाशाली थे। 10 वर्ष की अवस्था में ही काव्य-रचना प्रारम्भ कर दी थी। लगभग 12 वर्ष की अवस्था में व्यास जी ने धर्मसभा की परीक्षा में पुरस्कार प्राप्त किया और तैलंग अष्टावधान के 'सुकविरेषः' कहने पर भारतेन्दु जी ने "काशीकविता वर्द्धिनी सभा" की ओर से उन्हें 'सुकवि' की उपाधि प्रदान की। बाल विवाह की प्रथा के कारण तेरह वर्ष की अवस्था में व्यास जी का विवाह हो गया। इनके पिता दुर्गादत्त पौरुहित्य कर्म से जीविकोपार्जन करते थे, अतः आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त परिवार का भरण-पोषण साधारण रूप से ही हो पाता था। दूसरी ओर व्यास जी का पारिवारिक जीवन भी सुखमय नहीं था। असमय में माता-पिता का देहावसान हो गया। यौवन की चौखट पर पाँव रखते ही उनके छोटे भाई ने अपनी पत्नी के सिन्दूर साफ

कर दिये। इनकी छोटी बहन ने भी जीवन के वसन्तकाल में इनका साथ छोड़ दिया। इनके बड़े भाई इनसे द्वेष भाव रखते थे। इन अपार कष्टों, असीम वेदनाओं और अनेक मानसिक आघातों को भी अपने अन्तस् में समेट कर अपने कर्तव्य-पथ पर हिमाचल की तरह अडिग रहे। उन्होंने शिव के समान सारे अशिव आसव का पान करके भी समाज को 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का मिश्रित अमृत पिलाया। व्यास जी सं० 1937 में गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज से साहित्याचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण करके 1940 में एक संस्कृत पाठशाला के प्रधानाचार्य के पद पर कार्य करने लगे। कुछ दिन बाद वहाँ से त्याग-पत्र देकर मुजफ्फरपुर चले गये। जिला स्कूल के प्रधानपण्डित के पद पर कार्य करने लगे। व्यास जी अप्रतिम प्रतिभाशाली थे। वक्ता और साहित्य स्रष्टा के साथ ही चित्रकारिता, अश्वारोहिता, संगीत और शतरंज में भी विशेष रुचि रखते थे। सितार, हारमोनियम, जल तरंग और मृदंग इनके प्रिय वाद्य थे। व्यास जी हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला भाषा के ज्ञाता थे। न्याय, व्याकरण, वेदान्त और दर्शन में इनकी अच्छी गति थी। कविता कला में इतने प्रवीण थे कि एक घड़ी में सौ श्लोकों की रचना कर सकते थे। सौ प्रश्नों को एक साथ ही सुनकर उन सभी का उत्तर उसी क्रम में देने की अद्भुत क्षमता थी। इसीलिये इन्हें "शतावधान" तथा 'घटिका शतक' की उपाधि मिली थी। व्यास जी की लगभग 80 रचनाओं में 'शिवराजविजयम्' (उपन्यास), 'सामवतम्' (नाटक) गुप्ता-शुद्धि-प्रदर्शनम्, अबोधनिवारण तथा 'बिहारी विहार' (हिन्दी काव्य) प्रमुख थे। 22 वर्ष की अवस्था में लिखा गया व्यास जी का 'सामवतम्' नाटक भाष्य, भाव और वर्ण्य की दृष्टि से अधिक उत्तम है। उसके विषय में डॉ० भगवानदास ने लिखा है — "श्री अम्बिकादत्त व्यास जी का रचा 'सामवतम्' नामक नाटक दो बार पढ़ा। 'पुराणमित्येव हि साधु सर्वम्' ऐसा मानने वाले सज्जन प्रायः मेरे मत पर हँसेंगे तो भी मेरा मत यही है कि कालिदास रचित 'शकुन्तला' से किसी बात में कम नहीं है।"

"सामवतम्" नाटक को सं० 1945 में मिथिलेश्वर को समर्पित करने के बाद ही शिवराजविजय की रचना आरम्भ कर दी और सं० 1950 में उसे पूरा कर दिया। सं० 1952 में बिहारी के दोहों पर आधारित कुण्डलियों में रचित 'बिहारी विहार' की रचना के बाद हिन्दी जगत् के मूर्धन्य कवियों के चर्चा के विषय बन गये। अम्बिकादत्त व्यास की सर्वश्रेष्ठ कृति उनका शिवराजविजय है। शिवराजविजय संस्कृत-गद्य-साहित्य में अन्यतम स्थान रखता है। बाण, दण्डी और सुबन्धु के बाद व्यास जी का ही नाम आता है। यद्यपि अन्य बहुत से और भी गद्यकार हैं किन्तु साहित्यिक उत्कृष्टता, बौद्धिक प्रतिभा और सामाजिक आकलनों के वैशिष्ट्य के कारण व्यास जी प्रमुख गद्यकारों में परिगणित हैं। इस सबका अधिक श्रेय शिवराजविजय को है। दुःख का विषय है कि ऐसा प्रतिभाशाली व्यक्ति दीर्घायु नहीं हो सका। बयालीस वर्ष की अवस्था में ही महाकवि का सम्मान प्राप्त कर व्यासजी सोमवार, मार्ग शीर्ष त्रयोदशी, सं० 1957 को अपने पीछे एक नववर्षीय पुत्र, एक कन्या और विधवा पत्नी को असहाय छोड़कर पंचतत्त्व को प्राप्त हो गये। किन्तु उनका यशःशरीर अजर और अमर है।

संस्कृत गद्य साहित्य में शिवराजविजय

शिवराजविजय : शिवराजविजय एक ऐतिहासिक उपन्यास है इसमें वर्णित कथा ऐतिहासिक हैं, किन्तु व्यास जी ने अपनी प्रतिभा और कल्पना के सहारे उसे उच्च कोटि की साहित्यिकता प्रदान कर दी है। कथा अधिकांश रूप में मौलिक होते हुये भी उसमें साहित्यिक कल्पना का समावेश है। इसमें कथा-वस्तु की संघटना प्राच्य और पाश्चात्य शिल्प के समन्वय से की गई है। यद्यपि इसमें दो स्वतन्त्र धाराएँ समानान्तर रूप से प्रवाहित होती हैं— एक के नायक शिवाजी हैं तो दूसरी के नायक रघुवीरसिंह हैं, तथापि एक-दूसरे से पूर्ण स्वतन्त्र और निरपेक्ष नहीं। एक-दूसरे के पूरक हैं। एक का महत्त्व

दूसरे से उद्भासित होता है। अतः दोनों परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। कथा में इतना प्रवाह और सम्प्रेषणीयता है कि पाठक की आकांक्षा उत्तरोत्तर वृद्धिगत होती जाती है। शिवराजविजय की सम्पूर्ण कथा तीन निःश्वासों में समाहित है।

व्यास जी के शिवराजविजय में इतिहास और कल्पना, आदर्श और यथार्थ अनुभव और कल्पना का सुन्दर समन्वय है। उनके सभी पात्र अपने चरित्र निर्वाह में पूरी तरह से खरे उतरते हैं। वीर शिवाजी, गौरसिंह, रघुवीरसिंह, यशवन्तसिंह, अफजलखाँ, शाइस्तखाँ तथा ब्रह्मचारी आदि सदा अपनी स्वाभाविकता और यथार्थता का निर्वाह करते हैं। इसमें न कहीं अतिशयता है और न कहीं न्यूनता या अस्पष्टता। शिवराजविजय वीर रस प्रधान काव्य है तथापि उपकारी रूप में सभी रसों का चित्रण है। व्यास जी ने अलंकार-विधान में सदैव सजगता दिखाई है। यद्यपि इनका वर्णन कहीं पर अलंकृत नहीं है तथापि अनावश्यक अलंकारभार से बोझिल भी नहीं है। गद्यकारों में सर्वाधिक अलंकार-विधान बाण ने किया है। यदि इस क्षेत्र में उनके साथ व्यास जी को देखा जाय तो अन्तर यह दिखेगा कि इनकी कृति अनपेक्षित अलंकार-भार से बोझिल नहीं है। शिवराजविजय की शैली अत्यन्त सरल, सरस प्रवाहमयी है। भाषा की सरलता और भाव की उत्कृष्टता का समन्वय ही कवि की प्रमुख विशेषता होती है। कविकथ्य जितना ही सरल और सुन्दर ढंग से कहा जाय, काव्य उतना ही हृदयग्राही और 'सद्यः परिनिवृतये' की भावना को प्राप्त करने वाला होता है। अस्तु, 'शिवराजविजय' भाषा और भाव दोनों ही दृष्टि से एक उत्तम कोटि का काव्य कहा जा सकता है। इसमें प्रतिभा की प्रौढ़ता, कल्पना की सूक्ष्मता, अनुभव की गहनता, अभिव्यक्ति की स्पष्टता, भावों की यथार्थता और रमणीयता पदावलियों की मधुरता, कथानक की प्रवाहमयता, आदर्श की स्थापना, शिव की भावना और सुन्दर की सुन्दरता निहित है। उपन्यास की दृष्टि से भी कथानक, पात्र, घटना, संवाद, अन्तर्द्वन्द्व, आकांक्षा आदि तत्त्वों से पूर्ण है और 'गद्य कवीनां निकषं वदन्ति' की कसौटी पर खरा उतरता है।

शिवराजविजय का काव्य शिल्प

भाषा शैली — मनोगत भावों को परहृदय संवेद्य बनाने का प्रमुख साधन भाषा है और भाषा की क्रमबद्धता या रचना-विधान को ही सम्भवतः शैली भी कहा जाता है। अतः सामान्यतः 'भाषा-शैली' से ऐसा प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। इस आधार के साथ यह कहा जा सका है कि काव्य में मनोगत भावों को मूर्त रूप प्रदान करने का प्रमुख एवं सहज साधन 'शैली' है। 'शब्दार्थो सहितो काव्यम्' के परिप्रेक्ष्य में यदि अर्थ काव्य की आत्मा है तो शब्द अर्थात् शैली काव्य का शरीर। अतः भाव की मनोहरता, स्थिरता और सूक्ष्मता शैली पर ही निर्भर होती है। डॉ० श्यामसुन्दर दास के अनुसार किसी कवि या लेखक की शब्द-योजना, वाक्यांशों का प्रयोग, उसकी बनावट और ध्वनि आदि का नाम ही शैली है। दण्डी के काव्यादर्श में — 'अस्त्यनेको गिराममार्गः सूक्ष्मभेदपरस्परम्' कहा है। इन भावनाओं के अनुसार स्थूलतः शैली के दो भेद किये जाते हैं — (1) समास शैली (2) व्यास शैली। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक व्यक्तित्वों के आधार पर आजकल विद्वानों ने मार्ग (शैली) को चार प्रकार का माना है। किन्तु अनन्तर काल में इन्हें शैली न कहकर रीतियाँ कहा जाने लगा है। ये रीतियाँ चार हैं— (1) वैदर्भी, (2) गौणी, (3) पांचाली, और (4) लाटी।

- (1) कोमल वर्णों और असमानता अथवा अल्पसमासा, माधुर्यपूर्ण रचना वैदर्भी रीति है।
- (2) महाप्राण-घोषवर्णा, ओजगुणसम्पन्ना तथा समास बहुला रचना गौणी है।
- (3) वैदर्भी और गौणी का सम्मिश्रण पांचाली रीति है।
- (4) वैदर्भी और पांचाली का सम्मिश्रण लाटी रीति है।

शिवराजविजय की भाषा सरल, सुबोध एवं स्पष्ट है। पदावलियों के प्रयोग वर्ण्य-विषय के अनुसार होने चाहिये। एक ही विधा प्रत्येक वर्णन को प्रभावमय नहीं बना सकती और व्यास जी ने ऐसा ही किया है। अतः कहा जा सकता है कि शिवराजविजय में उचित शब्दावलियों का प्रयोग, अर्थपूर्ण वाक्यविन्यास तथा अवसर के अनुकूल कोमल तथा कठोर वर्णों का प्रयोग किया गया है। व्यास जी ने अवसर के अनुकूल एक ओर दीर्घ समास बहुला पदावली का प्रयोग किया है। तो दूसरी ओर सरल लघु पदावली का। पूर्वोक्त रीतियों सन्दर्भ में शिवराजविजय में व्यास जी ने पांचाली रीति का आश्रय लिया है। इनके साक्ष्य में तथ्य द्रष्टव्य हैं— अफजल खाँ के शिविर का वर्णन करते हुए व्यास जी समस्त (दीर्घ) पदावली में कहते हैं— “इतस्तु स्वतन्त्र यवनकुल-भुज्यमान-विजयपुराधीश-प्रेषितः पुण्यनगरस्य समीपे एव प्रक्षालित-गण्डशैल-मण्डलायाःनिर्झरवारिधारा-पूर-पूरित-प्रबलप्रबाह्यायाःपश्चिम-पारावार-प्रान्त-प्रसूत-गिरि-ग्राम-गुहा-गर्भ-निर्गताया अपि प्राच्य-पयोनिधि-चुम्बन-चंचुरायाः, रिंगत्-तरंग-भंगोद्भूतावर्त्तशत-भीमायाः

भीमायानद्याः, अनवरत-निपतद्-वकुलकुल-कुसुम-कदम्ब-सुरभीकृतमपिनीरंवगाहमान-मन-मतंगज-मद-धाराभिःकटूकुर्वन्; हय-हेषा-ध्वनि-प्रतिध्वनि-वधिरीकृत-गव्यूति-मध्यगाध्वनीनवर्गः, पटं-कुटीर-कूटविहिन-शारदाम्मोधर-विडम्बनः निरपराध

:- भारताभिजन-जन-पीडन-पातक-पटलैरिव समुद्भूयमाननोलध्वजैः रूपलक्षितः
। “दूसरी ओर व्यास जी की लघुसमास शैली भी अत्यन्त भावपूर्ण और मार्मिक है। उसमें अभिवक्त की स्पष्टता और सूक्ष्मता निहित है—“एष भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचरचक्रस्य, कुण्डलमाखण्डलदिशः, दीपको ब्रह्माण्डभागस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोकविमोकः कोकलोकस्य अवलम्बो रोलकदम्बस्य, सूत्रधारः सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य।”

व्यास जी की इस रचना में समासरहित सुन्दर पदावलियों का प्रयोग भी अत्यन्त हृद्य है—

“वटुरसौ आकृत्या सुन्दरः, वर्णन गौरः, जटाभिर्ब्रह्मचारी, वयसा षोडशवर्षवर्षीयः, कम्बुकण्ठः, आयतललाटः, सुबाहुविशाललोचनश्चासीत्।”

अम्बिकादत्त व्यास विद्वान् थे, भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था और भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता थी। भाव के अनुकूल भाषा का संयोजन करने का ध्यान सदैव रखते थे। जैसा कोमल या कठोर भाव का वर्णन करना होता था उसी के अनुसार भाषा संयोजन करते थे। शान्त, स्निग्ध एवं नीरव-निशा का वर्णन देखिये—

“धीरसमीरस्पर्शन मन्दमन्दमान्दोल्यमानासु व्रततिषु, समुदिते यामिनी-कामिनी चन्दनविन्दौ इव इन्दौ, कौमुदीकपटेन सुधाधारमिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्ता शुश्रूषु इव मौनमाकलयत्सु पतंगकुलेषु कैरवविकाशहर्षप्रकाशमुखरेषु चंचरीकेषु।”

भावों की सरल एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति के लिये उनकी भाषा द्रष्टव्य है—

“क्वचिद् हरिद्रा हरिद्रा, लशुनं लशुनम्, मरिचं मरिचम्, चुक्रम् चुक्रम्, वितुन्नकं वितुन्नकम्, श्रृंगवेरं श्रृंगवेरम्, रामहं रामहम्, मत्स्यण्डी, मत्स्यण्डी, मत्स्या मत्स्याः, कुक्कुटाण्डं कुक्कुटाण्डम् पललं पललमिति —”

अस्तु, इस कृति के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने भाषा और शैली का प्रयोग भाव के अनुसार ही किया है। यत्र-तत्र व्याकरणिक शब्दों का भी प्रयोग उनकी विद्वत्ता की ओर संकेत करता है। सन्नत, यदन्त यदलुडन्त शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। उनकी भाषा-शैली उनके काव्य को उत्कृष्टता प्रदान करने में पूर्णतः उपजीव्य है।

अलंकार योजना — कविताकामिनी का श्रृंगांर है, अलंकार योजना। जिस प्रकार

आभूषण से नारी का सौन्दर्य बढ़ जाता है उसी प्रकार अलंकार से काव्य का भी

चमत्कार एवं हृदय-संवेद्यता बढ़ जाती है। अनलंकृत भाषा एवं रमणी दोनों चित्ताकर्षक नहीं होते। कुछ अर्थालंकार तो इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि उनके विधान से काव्य के सर्वस्व वे ही प्रतीत होने लगते हैं। इसी कारण तो कुछ अलंकारवादियों ने अलंकार को ही काव्य की आत्मा मानना प्रारम्भ कर दिया। कुछ भी हो काव्य में अलंकार का स्थान महत्त्वपूर्ण है। अलंकार के अभाव में काव्य अपनी पूर्णता को प्राप्त करने में कभी भी समर्थ नहीं हो सकता। पं० अम्बिकादत्त व्यास ने अपनी सुरभारती को एक सुन्दर रमणी की भाँति अलंकार से सजाया है। अनुकूल एवं समुचित अलंकार का संयोजन किया है। बाण की कृति अलंकार के भार से बोझिल हुई प्रतीत होती है किन्तु व्यास की कृति विरलालंकार विभूषिता लावण्यमयी तन्वंगी के समान है। उन्होंने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का सावसर प्रयोग किया है। शब्दालंकार तो पदे-पदे दृष्टिगोचर होता है। अनुप्रास अलंकार का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

‘भामिनी-भ्रु भंगभूरिभाव प्रभाव-पराभूतवैभवेषु भटेषु’

“चंचन्द्रहास-चमत्कार-चाकचक्यचिल्लीभूत-चक्षुषका” ।

यत्र-तत्र यमक का भी प्रयोग किया है -

“सेयं वर्णेन सुवर्णम्, कलरवेणं पुंस्कोकिलान्, केशैरोलम्बकदम्बान्, ललाटेन कलाधरकलाम् लोचनाभ्याम् खंजनान्, अधरेण बन्धुजीवम्, हासेन ज्योत्स्नाम्” ।

व्यास जी ने परम्परा से हटकर नये उपमानों का भी प्रयोग किया है, “विलक्षणोऽयं भगवान् सकलकलाकलापकलनः सकलकालनः करालः कालः।”

कवि की कल्पना का बहुत बड़ा सम्बल है— उत्प्रेक्षा अलंकार। बाण की तरह व्यास जी ने भी उत्प्रेक्षा की पर्याप्त संयोजना की है। एक मालोत्प्रेक्षा का उदाहरण द्रष्टव्य है -

“गगनसागरमीने इव, मनोजमनोज्ञहंसे इव, विरहिनिवकृन्तेन रौप्यकुन्त प्रान्ते इव, पुण्डरीकाक्षपत्नीकरपुण्डरीकपत्रे इव, शारदाभ्रसारे इव सप्तसप्ति सप्तिपादच्युते राजतखुरत्रे इव मनोहरतामहिला ललाटे इव, कन्दर्पकीर्तिलतांकरे इव, प्रजाजननयनकपूरखण्डे इव, तमीतिभिरकर्तनशाणोल्लीढनिरिन्त्रिशे इव च समुदिते चेत्रखण्डे” ।

उपमा अलंकारों में प्रमुख माना जाता है क्योंकि उपमा एक प्रकार से वक्तव्य के कहने का ढंग है, जिसका व्यवहार सर्वाधिक होता है। साधर्म्य अलंकारों की माला में उपमा ‘सुमेरु’ है। उपमा का प्रयोग भी व्यास जी जैसा कि संस्कृत कवियों में प्रायः नहीं देखा जाता है। कवि ने नौका की उपमा एक कुम्भड़े की फांक से देते हुए लिखा है - “कुष्माण्डफक्किकारया नौकया”। विरोधाभास व्यास जी का प्रिय अलंकार है। विरोधाभास के चित्रण में कवि, बाण की समानता करता हुआ दिखाई पड़ता है। शिवाजी के वर्णन में विरोधाभास की छटा बरवश पाठकों को आकृष्ट करती है—

खर्वामप्यखर्वपरिक्रमाम् श्याममपि यशः समूहश्वेतीकृत त्रिभुवनाम्, कुशासनर्वश्रयामपि सुशासनाश्रयाम्, पठनपाठनादि परिश्रमानभिज्ञामपि नीतिनिष्णाताम् स्थूलदर्शनामपि सूक्ष्मदर्शनाम्, ध्वंकाण्ड व्यसनिनीमपि धर्मधौरेयीम्, कठिनामपि कोमलाम्, उग्रामपि शान्ताम् शोभितविग्रहामपि दृढसन्धिबन्धाम्, कलितगौरवामपि कलितलाघवाम्....।”

चित्तौडगढ़ की स्त्रियों के वर्णन में श्लेष गर्भित विरोधाभास द्वारा अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया गया है - ‘क्षत्रियकुलांगनाः कमला इव कमलाः, शारदा इव विशारदा, अनुसूयाइवानुसूयाः, यशोदा इव यशोदाः, सत्या इव सत्याः, रुक्मिण्ड इव रुक्मिण्यः सुवर्णा इव सुवर्णाः, सत्य इव सत्यः।’ इसके अतिरिक्त दीपक, श्लेष उदात्त, यथासंख्य आदि

अलंकारों की भी योजना की है। डॉ० भगवानदास कादम्बरी से तुलना करते हुए लिखते हैं – “जहाँ वासवदत्ता और कादम्बरी के शब्दों की अरण्यानी में बेचारा अर्थ पथिक सर्वथा मूल भटक कर खोजता है; उसका पता नहीं लगता, वहाँ शिवराजविजय के सुललित उद्यान में, उसकी सहज अलंकृत शैली में पाठक का मन खूब रमता है कादम्बरी के शब्दों की अरण्यानी में बेचारा अर्थपथिक सर्वथा भूल भटक कर खोजता है; उसका पता नहीं लगता, वह शिवराजविजय के सुललित उद्यान में, उसकी सहज अलंकृत शैली में पाठक का मन खूब रमता है कादम्बरी के शब्दों की विकट अरण्यानी की तरह शिवराजविजय के शब्दसंसार को देखकर उसका मन घबरा नहीं उठता अपितु उसमें प्रविष्ट होकर उसके आनन्द को लेने की उत्सुकता को जगाता है।” अस्तु, व्यास जी ने अलंकारों का प्रयोग मात्र कविताकामिनी को सजाने के लिये ही किया है।

रस—योजना – ‘वाक्यं रसात्मकं काव्यम्’ के अनुसार रस ही काव्य को आत्मा है। यह सच भी है कि ‘रसहीन’ काव्य नहीं हो सकता है। अतः काव्य में रसयोजना होती ही है। यद्यपि रसों में उच्चावचता या श्रेणी विभाग नहीं होता है तथापि वर्ण्य की दृष्टि से रस की मुख्यता या गौणता अवश्य होती है। शिवराजविजय का प्रधान रस है ‘वीर’। प्रायः अन्य अभी रस इसमें उपकारी रूप में निहित हैं। उद्देश्य के अनुसार इसमें वीर रस का विशेष रूप से चित्रण किया है। शिवाजी के शौर्य का जो अद्भुत वर्णन किया गया है वह अत्यन्त स्पृहणीय है। गौरसिंह अफजलखॉ से कहता है –

‘को नामापरः शिववीरात् ? स एव राजनीतौ निष्णातः, स एव सैन्धवारोहविद्यासिन्धुः, स एव चन्द्रहासंचालनेचतुरः, स एव मल्लाविद्यामर्मज्ञः, स एव वाणविद्यावारिधिः’ स एव वीरवारवरः पुरुषपौरुषपरीक्षकः, स एव दीनदुखदावदहनः, स एव स्वधर्मरक्षणसक्षणः।” आगत एष शिववीरः इति भ्रमेणापि सम्भाव्य अस्त विरोधिषु ‘केचन मूर्च्छिताः निपतन्ति, अन्ये विस्मृतशास्त्रास्त्राः पलायन्ते, इतरे महात्रासाकुचितोदरा विशिथिलवाससो नग्ना भवन्ति, अपरे च शुष्कमुखा दशनेषु तृणं सन्धाय साम्रेडं प्रणिपातपरम्परां रचयन्तो जीवन याचन्ते। व्यास जी ने यत्र—तत्र श्रृंगार रस का भी चित्रण किया है। इन्होंने श्रृंगार का वर्णन अत्यन्त शिष्ट और सात्त्विक रूप में किया है, उसमें मादकता या उच्छृंखलता लेशमात्र की नहीं है –

‘सा चावलोक्य तमेव पूर्ववलोकितं युवानम्, वीराभरमन्थरापि ताताज्ञया बलादिवप्रेरिता ग्रीवां नमयन्ती’ आत्मनाऽऽत्मन्येव निविशमाना स्वपादाग्रमेवा लोकयन्ती मोदकभाजनसमाजितं सव्यतरं करं तदग्रेप्रसारयत्। पुनश्च सा अंचलकोणं कटिकच्छप्रान्ते आयोज्य, हस्ताभ्यां मालिकां विस्तार्य नतकन्धरस्य रघुवीरसिंहस्य ग्रीवायां चिक्षेप इषत्कम्पितगात्रयष्टिश्च शनैर्यथा निववृते।

कहीं—कहीं करुण रस का अत्यन्त हृदयग्राही वर्णन किया गया है –

‘माता च तव ततोऽपि पूर्वमेव कथावशेषा संवृत्ता, यमलौ भ्रातरौ च तव द्वादशवर्षदेशीयावेव आखेट व्यसनिनौ महार्हभूषणभूषितौ तुरगावरुह्य वनं गतौ दस्युभिरपहृतौ इति न श्रूयते तयोर्वार्ताऽपि, त्वं तु मम यजमानतस्य पुत्रीति स्वपुत्रीवमयैव सह नीता वर्द्धयसे च। अहह! बारंबारम् बालैव सुन्दरकान्याविक्रय व्यसनिभिर्यवनवराकैरपह्नियसे।

व्यास जी ने एकत्र वात्सल्य रस का भी अत्यन्त हृदयग्राही वर्णन किया है। डाकुओं के चंगुल में फंसे हुए गौरसिंह और श्यामसिंह अपनी भगिनी के विषय में सोचते हैं –

‘हन्त ! हत भाग्या सा बालिका, या अस्मिन्नेय वयसि पितृभ्यां परित्यक्ता, आवयवोरपि अदर्शनेन क्रन्दनैः कण्ठं कदर्थयति। अहह! सततमस्मक्रोडैकक्रीडनिकाम्, सततमस्मन्मुखचन्द्रचकोरीम्, सततमस्मत् कण्ठरत्नमालाम् सततमस्मन्सह भोजीम्’ इस प्रकार पं० अम्बिकादत्त व्यास के द्वारा रसों की योजना अत्यन्त परिपक्व और साधिकार

है, मुख्यतः वीररस का चित्रण करते समय इसमें सभी रस वर्णन यत्किंचिद् रूप में उपलब्ध होते हैं।

काव्य – अभिव्यंजना

वस्तु एवं प्रकृति-चित्रण – काव्य में अभिव्यंजना का महत्त्व शिल्प की अपेक्षा अधिक होता है हृदयग्राही मार्मिक भावों की अभिव्यंजना ही काव्य की सफलता है। वस्तुघटना, भाव या दृश्य का यथातथ्येन वर्णन करना ही कवि की विशेषता है। इसमें अम्बिकादत्त व्यास अत्यन्त निपुण और बहुमुखी है। संस्कृत कवियों में प्रकृति-वर्णन की परम्परा रही है। जितनी सफलता के साथ प्रकृति का चित्रण जिस कवि ने किया है, वह उतना ही अधिक सफल हुआ है। व्यास जी ने भी शिवराजविजय में प्रकृति नटी का सुन्दर अंकन किया है। यह अवश्य है कि वे कठोर प्रकृति की अपेक्षा कोमल प्रकृति के चित्रण में अधिक समर्थ सिद्ध हुए हैं। प्रकृति के कठोर रूप का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

“सुन्दरमस्मात्थानात् कोङ्कण देशः। मध्ये च विकटा अटव्य शतशः शैलश्रेणयः
त्विरित धारा धुन्यः, पदे-पदे च भयानकभल्लुकानाम्बूकृत-संकलानाम्,
मुस्तमूलोत्खननघुर्घुषित-घोर-घोणानाम्, घोणिनाम्, पंकपरिवर्तान्मथितकासाराणां,
नरमांसं बुभुक्षूणां तरक्षणाम्, विकटकरटिकटविपाटन-पाटव-पूरितसहनानां सिंहानाम्,
नासाग्र-विषाणशोणनच्छलविहिन-गण्डरौल-खण्डाना खगिनाम् दोदुल्यमान-द्विरेफ-दल
पेपीयमान-दानधारा-धरन्धराणां-सिन्धुराणां।”

इस प्रकार व्यास जी प्रकृति के कठोर रूप के वर्णन में तो उतने सक्षम नहीं हो पाये हैं, किन्तु प्रकृति के मनोरम पक्ष के वर्णन में अत्यन्त सफल हुए हैं। सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, चन्द्रास्त एवम् रात्रि आदि के वर्णन में व्यास जी ने अत्यन्त कुशलता का परिचय दिया है। सूर्यास्त का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

जगत्: प्रभाजालमाकृष्य, कमलानि-सम्मुद्रय, कोकान् सशोकीकृत्य,
सकलचराचरचक्षुः संचारशक्तिं शिथिलीकृत्य, कुण्डलेनेव निज मण्डलेन पश्चिममाशां
भूषयन्, वारुणी सेवनेनेव माजिष्ठमाजिम रंजितः, अनवरत भ्रमणपरिश्रमश्रान्त इव सुषुप्सुः,
म्लेच्छगणदुराचारदुःखाऽऽक्रान्त-वसुमतीवेदनामिव समुद्रशायिनि निविवेदयिषुः,
वैदिक-धर्म-ध्वंस-दर्शन-संजात निर्वेदः इव गिरिगहनेषु प्रविश्य तपश्चिकीर्षुः,
धर्म-ताप-तप्त इव समुद्रजले सिस्नाषुः, सायं समयमवगत्य सन्ध्योपासनमिवविधित्सुः,
.....अन्धतमसे च जगत् पातयन्, चाक्षुषामगोचर एव संजात।”

आश्रम की शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

“कदलीदलकुंजायितस्य एतत्कुटीरस्य समन्तात् पुष्पवाटिका, पूर्वतः
परमपवित्रपानीयं परस्सहस्रपुण्डरीकपटलपरिलसितं पतत्रिकुलकूजितपूजितं पयः
पूरः-पूरितसर आसीत्। दक्षिणतश्चैको
निर्झरझर्झर-ध्वनि-ध्वनित-दिगन्तरःफलपटलाऽऽस्वादचपलित-चंचुपतंगकुलाऽऽक्रमणाधिकी
वनतशाखशाखिसमूहव्याप्तः सुन्दरकन्दरः पर्वतखण्ड आसीत्।।”

व्यास जी ने रात्रि की नीरवता का अत्यन्त सटीक और स्वाभाविक वर्णन किया है। नीरव निशा का चित्र खींचते हुए लिखते हैं —

“धीरसमीरस्पर्शन मन्दमन्दमान्दोल्पमानासु व्रततिषु, समुदिते
यामिनीकामिनीचन्दनविन्दौ इव इन्दौ, कौमुदीकपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने,
अस्मन्नीतिवार्ता शुश्रूषुषु इव मौनमाकालयत्सु पतंगकुलेषु,
कैरव-विकाश-हर्ष-प्रकाश-मुखरेषु चंचरीकेषु।”

झंझावात का भी चित्रण इतनी सफलता के साथ किया है कि उन्हें पढ़कर आँधी की वास्तविकता उसके नेत्रों के सामने उपस्थित हो उठती है। उसका भयानक दृश्य व्यास जी के शब्दों में देखिये —

तावदकस्मादुत्थितो महान् झञ्जावातः, एकः सायं समयप्रयुक्तः स्वभाववृत्तोऽन्धकारः, स च द्विगुणितो मेघमालाभिः झञ्जावातोद्धूतैः रेणुभिः शीर्णपत्रैः कुसुमपरागैः शुष्कपुष्पैश्च। पुनरेष द्वैगुण्यं प्राप्तः। इह पर्वतश्रेणीतः पर्वतश्रेणीः, वनाद् वनानि, शिखराच्छिखराणि, प्रपातात् प्रपाताः अधित्यकातोऽधित्यकाः, उपत्यकात् उपत्यकाः, न कोऽपि सरलोमार्गः, नानुद्वेदिनी भूमिः, पन्था अपि च नावलोक्यते।पदे-पदे दोधूयमाना वृक्षशाखाः सम्मुखमाध्नन्ति। परितः सहडहडाशब्दं दोधूयमानानां परस्सहस्रवृक्षाणां, वाताघात संजात पाषाण पातानां प्रपातानाम्, महान्ध तमसेन ग्रस्यमान इव सत्वानां क्रन्दनस्य च भयानकेन-स्वनेन कवली कृतमिव गगनतलम्।”

इस प्रकार व्यास जी प्रकृति-चित्रण के साथ अन्य वस्तुओं के वर्णन में सचेष्ट रहे हैं। छाया-चित्र उपस्थित करने में भी व्यास जी ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। आजकल के शिविर का वर्णन व्यास जी के शब्दों में इस प्रकार है-

“आत्मनः कुमारस्यापि च केशान् प्रसाधनिकया प्रसाध्य, मुखमार्द्रपटेन प्रोष्ठ ललाटे सिन्दूरबिन्दुतिलकं विरचय्य, उष्णीषिकामपहाय, शिरशि सूचिरयूतांसौवर्णकुसुमलतादिचित्रविचित्रतामुष्णीषिकां संधार्यशरीरे हरितकौशेयकंचुकिकामायोज्य, पादयोः शोणपट्टनिर्मितमधोवसनमाकलय्य, दिल्लीनिर्मितमहाहै उपानाहौ धारयित्वा, लघीयसीं तानपूरिकामेकां सहनेतुं सहचरहस्ते समर्प्य”

पूर्वी बंगाल के वर्णन को पढ़कर पाठक ऐसा अनुभव करता है, जैसे वह नदी के तट पर खड़ा हुआ सारा दृश्य अपनी आँखों से देख रहा है -

“पूर्ववंगमपि सम्यगवालुलोकदेष जनः। यत्र प्रान्तप्ररूढां पद्मावलीं परिमर्दयन्तीपद्मेव द्रवीभूता पयःपूरप्रवाहपरम्पराभिः पद्मा प्रवहति 'यत्र ब्रह्मपुत्र इव शत्रुसेनानाशनकुशलाः ब्रह्मदेशं विभजन् ब्रह्मपुत्रो नाम नदो भूभागं क्षालयति। यत्र साम्लसुमधुरसपूरितानि फूत्कारोद्धूतभूतिज्वलदंगारविजित्वरर्णानि जगत्प्रसिद्धानि नारांगाण्युदभवन्ति, यद्देशीयानां जम्बीराणां रसालानां तालनारिकेलानां खर्जूराणां च महिमा सर्वदेशरसज्ञानां साभ्रेडं कर्ण स्पृशति, यत्र भयंकराऽऽवर्त सहस्राऽऽकुलासुस्रोतस्वतीषु सहोहोकारं क्षेपणीः क्षिपन्तः अरित्रं चालयन्तः, वडिशं योजयन्तः कुवेणीस्थाग्निप्रमाणं मत्स्यपरीवर्तानालोकमालोकमानन्दतः,..... ..।”

सुन्दर सरोवर के किनारे दर्भासन पर बैठे सविधि पूजन करने वाले मुनिजनों का अतीव हृदयहारी चित्रण व्यास जी ने किया है -

“तत्र वरटाभिरनुगम्यमानानां राजहंसानां पक्षतिकण्डूतिकषणचंचलचुं पुटानां मल्लिकाक्षाणां, लक्ष्मणाकण्ठस्पर्शहर्षवर्षप्रफुल्लंगरुहाणां सारसानां, भ्रमद्भ्रमरझंकारभारविद्रावितवितनिद्राणां कारण्डवनां च तास्ताः शोभाः पश्यन्तौ, तडाग तट एव पम्फुल्यमानानां मकरन्दतुन्दिलानामिन्दीवराणां समीपत एवमसृणपाषाणपट्टिकासु कुशासनानिमृगचमसिनानि उर्णासनानि च विस्तीर्योपविष्टानां.....।”

इस प्रकार व्यास जी ने शिवराजविजय में जिसका वर्णन किया है उसका यथारूप में चित्र खींचकर पाठक को भावविभोर कर दिया है। वस्तु या दृश्य वर्णन की कुशलता व्यास जी में कूट-कूटकर भरी है। वस्तु वर्णन में व्यास जी अपने पूर्ववर्ती गद्य कवियों की पंक्ति में विराजमान होते हैं।

सामाजिक चित्रण - संस्कृत गद्य काव्य में गद्य की अनेक विधाएँ निहित हैं और विविध भावों के वर्णन का भी समन्वय है। किन्तु शिवराजविजय के पूर्व जिन आख्यानों या कथाओं का वर्णन मिलता है, वे या तो चरित्र प्रधान हैं या दृश्य (बिम्ब) प्रधान। शिवराजविजय एकमात्र ऐसा उपन्यास है जिसमें तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों और चरित्रों का समग्र रूप से वर्णन किया गया है। 'साहित्य समाज का दर्पण होता है'

शिवराजविजय इस कथन की कसौटी पर खरा उतरता है।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने शिवराजविजय में मुगलकालीन समाज का सुन्दर चित्रण किया है। उस समय राजा अकर्मण्य, विलासी और विद्वेषी थे। हिन्दु जाति मुसलमानों के अत्याचार से पीड़ित थी। दूसरी ओर मुसलमानों का साम्राज्य भारत में निरन्तर बढ़ता जा रहा था और उसके साथ-साथ ही मुसलमानों के द्वारा हिन्दु कन्याओं का अपहरण और मूर्तियों के विध्वंस, पवित्र धर्म-ग्रन्थों के विनाश और अनाथ हिन्दुओं के प्रपीडन को अपना कर्तव्य समझते थे। हिन्दु राजा मुसलमान शासकों की दासता स्वीकार कर उनकी प्रशंसा में रत थे और उनकी कृपा पर जीवित थे।

ऐसी विषय परिस्थिति में महाराष्ट्राधीश्वर वीर शिवाजी ने अपने शौर्य पराक्रम और सदाचरण द्वारा हिन्दु जनता और हिन्दुत्व की रक्षा की तथा हिन्दुओं के अस्तंगत शौर्य को बड़ी कुशलता और वीरता से पुनर्जागृत किया। उन्होंने देशभक्ति, राष्ट्रभक्ति आत्मविश्वास, स्वधर्मानुराग एवम् मातृभूमि की सेवा भाव का हिन्दु जनता में संचार किया।

अति अनीति की पराजय सर्वदा होती है। जिस विलासिता और व्यसन के कारण हिन्दु राजाओं का पतन हुआ उसी विलास और भोगप्राचुर्य को कारण मुस्लिम शासकों का भी पराभव हुआ। हिन्दुओं पर उनका अत्याचार अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। उनके अत्याचारों का वर्णन करते हुए व्यास जी कहते हैं –

“.....क्वचिददारा अपह्रियते, क्वचिदधनानि लुण्ठयन्ते, क्वचिदार्तनादाः, क्वचिदरुधिरधाराः, क्वचिदग्निदाहः, क्वचिदगृहनिपातः, श्रूयते अवलोक्यते च परितः।”

मुसलमान शासक इतने मदान्वित और विलासी प्रवृत्ति के हो चुके थे कि अफजल ख़ाँ भी वीर शिवाजी जैसे शक्तिशाली और सर्वसमर्थ राजा को पराजित करने की प्रतिज्ञा विजयपुर नरेश के सामने करके आया था, सदैव भोग-विलास और नशे में चूर रहता था। जिसका वर्णन करते हुए व्यास जी कहते हैं –

“स प्रौढि विजयपुराधीश महासभायां प्रतिज्ञाय समायातोऽपि शिवप्रतापं च विदन्नपि अद्य नृत्यम्, अद्य गानम्, अद्य लास्यम्, अद्य मद्यम्, अद्य वारांगना, अद्य भ्रुकंसकः अद्य वीणावादनम् इति स्वच्छन्दैरुच्छश्रृंखलाचरणैर्दिनानि गमयति।।”

इसी का परिणाम था कि गायक (गौरसिंह) के समक्ष अफजल ख़ाँ सगर्व अपनी भावी गोप्य योजना (शिववीर को सन्धिव्याज से पकड़ने) की घोषणा स्पष्ट रूप से कर देता है। इस प्रकार तत्कालीन मुस्लिम राजाओं में उसी वृत्ति का संचार हो रहा था जिसके कारण हिन्दु राजाओं की पराजय हुई थी। उस समय हिन्दु राजाओं में आपसी वैरभाव बढ़ा हुआ था, वेश्याओं और मदिरा के चक्कर में अपनी सम्पत्ति नष्ट कर चुके थे, मिथ्या प्रशंसा करने वाले चाटुकारों को ही सबसे निकट और हितैषी समझते थे और स्वार्थ की वृत्ति सर्वोपरि हो चुकी थी। इसी कारण तो भारतवर्ष सैकड़ों वर्ष तक पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा रहा। इसका वर्णन करते हुए व्यास जी कहते हैं।

“शनैःशनैःपारस्परिक-विरोध-विशिथिलीकृत-स्नेहबन्धनेषुराजसुभामिनी-भ्रुमंग-भूरि भाव-प्रभाव-पराभूतवैभवेषु भट्टेषु, स्वार्थचिन्तासन्तान वितानैकतानेषु अमात्यवर्गेषु प्रशंसामात्रप्रियेषु प्रभुषु।” “इन्द्रस्त्वं कुवेरस्त्वं वरुणस्त्वमिति वर्णनमात्रसक्तेषु।।”

किन्तु महाराष्ट्राधीश्वर, वीर शिवाजी उन हिन्दु राजाओं में अपवाद रूप थे; न तो उनमें उक्त प्रकार की कमजोरी थी और न ही स्वार्थ लिप्सा। वे एक वीर, पराक्रमी, राजनीति पारंगत एवं कुशल प्रशासक थे। उनकी क्षमता व्यूहरचना, ओजस्विता एवं धीरता अपूर्व थी। इसी कारण विशाल सेना वाले मुस्लिम शासक के विरुद्ध उन्होंने विजय प्राप्त की। उनके गुप्तचर गौरसिंह आदि तथा द्वारपाल के चरित्र एवं कार्यों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। गौरसिंह अपनी गुप्तचरीय व्यूहरचना का वर्णन करते हुए कहता है –

“भगवन् ! सर्व सुसिद्धम्, प्रतिगव्यूत्यन्तरालमंगीकृतसनातनधर्मरक्षामहाव्रतानां

धारितमुनिवेषणां वीरवराणामाश्रमाः सन्ति। प्रत्याश्रमंच वलीकेषु गोपयित्वा स्थापिताः परश्रुताः खड्गाः, पटलेषु तिरोभाविता शक्तयः कुशपुंजान्तः स्थापिताः भुशुण्डयश्च समुल्लसन्ति। उंछस्य शिलस्य, समिदाहरणस्य, इङ्गुदीपर्यन्वेषणस्य, भूर्जपत्र परिमार्गणस्य, कुसुमावाचयनस्यः तीर्थटनस्य सत्संगस्य च व्याजेन केचन जटिलाः, पेर मुण्डिनः इतरे काषायिणः, अन्ये मौनिनः, अपरे ब्रह्मचारिणश्च बहवः पटवो वटवश्चराः, संचरन्ति। विजयपुरादुङ्डीयात्रागच्छत्या मक्षिकाया अप्यन्तः स्थितं वयं विदमः, किं नाम एषां यवनहतकानाम्।’

वीर शिवाजी सदैव योग्य और विश्वस्त व्यक्ति को ही गुप्तचर के रूप में नियुक्त करते थे। गुप्तचर की निपुणता, कार्यक्षमता, विश्वसनीयता और गम्भीरता आदि की परीक्षा लेने के बाद ही राजपक्ष के लोग गुप्तचरों को रहस्य की बातें बताते थे, केवल गुप्तचर होने मात्र से न तो उनकी सन्तुष्टि हो पाती थी और न ही वे उन्हें गुप्त सन्देशों के कहने योग्य समझते थे। तोरण दुर्ग का अध्यक्ष शिवाजी के गुप्तचर की परीक्षा लेकर ही उसे रहस्य की बात बताने के लिये तैयार होता है –

“नैतेषु विषयेषु कदापि सतन्द्रोऽवतिष्ठते महाराजः, स सदा योग्यमेव जनं पदेषु नियुनक्ति, नूनं बालोप्येषोऽबालहृदयोऽस्ति, तदस्मै कथयिष्याम्यखिलं वृत्तान्तम्, पत्रं च केषूचिद् विषयेषु समर्पयिषामि।”

गौरसिंह गुप्तचर का कार्य करते हुये कभी ब्रह्मचारी बनता है तो कभी संन्यासी; कभी गायक बनता है तो कभी उत्कट योद्धा। और सर्वत्र अपना कार्य बड़ी कुशलता से करता है। दूसरी ओर शिवाजी के द्वारा नियुक्त सभी कर्मचारी अपना कार्य अत्यन्त निष्ठा-विश्वास और स्वामिहित भावना से करते थे। वे किसी के बहकावे या उत्कोच आदि के प्रलोभन में नहीं आते थे। स्वामी की आज्ञा के सामने ब्रह्मा तक के आदेश मानने को तैयार नहीं होते थे। स्वामी का आदेश ही उनके लिये ब्रह्मा का आदेश होता था। इसी प्रकार के आचरण की एक द्वारपाल की उक्ति द्रष्टव्य है –

सन्यासिन् ! सन्यासिन् !! बहूक्तम्, विरम, न वयं दौवारिका ब्रह्माणोप्याज्ञां प्रतीक्षामहे। किन्तु यो वैदिक धर्म रक्षाव्रती, यश्च सन्यासिनां ब्रह्मचारिणां तपस्विनांच, संन्यासस्य ब्रह्मचर्यस्य तपसश्चाप्तरायाणां हन्ता, येन च वीरप्रसविनीयमुच्यते कौकणदेशभूमिः तस्यैव महाराजशिववीरस्याऽऽज्ञां वयं शिरशा वहामः।”

महाराज शिवाजी एक स्वाभिमानी शासक थे। अपने शत्रु मुगल शासकों से सन्धि करना या उनकी अधीनता स्वीकार करना उन्हें स्वीकार न था। इस स्थिति में शत्रुओं से रक्षा एक मात्र उपाय युद्ध ही था। शत्रु से सन्धि करने की अपेक्षा अपने प्राणों को उत्सर्ग कर देना वे कहीं अधिक श्रेयष्कर समझते थे। अपने इन विचारों पर सदैव दृढ़ रहे। शिवाजी के हृदय में यवनों से प्रतिशोध लेने की भावना कितनी प्रबल थी इसका एक सुन्दर उदाहरण देखिये –

“ये अस्मादिष्टदेव मूर्तीभङ्गत्वा मन्दिराणि समुन्मूल्य तीर्थस्थानानि पक्वणी कृत्य, पुराणानि पिष्ट्वा, वेद पुस्तकानि विदीर्य च आर्यवंशीयान् वलादयवनीकुर्वन्ति; तेषामेव चरणयोरंजलिं बद्ध्वा लालाटिकतामंगी कुर्याम् ? एवं चेद् धिक् मां कुलकलंकवलीबम्। या प्राणभयेन सनातनधर्मद्वेषिणां दासे तां वहेत्। यदि चाहमाहवे म्रियेय, बध्येय, ताडयेय वा तदैव धन्योऽहम् धन्यो च मम पितरौ। कथ्यतां भावदृशां विदुषामत्र कः सम्मतिः ?”

इस प्रकार व्यास जी ने तत्कालीन भारत की सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का सम्यक् चित्रण किया है। जिससे ‘साहित्य समाज का दर्पण होता है’ कि उक्ति पूर्णतः चरितार्थ होती है।

संस्कृत गद्य साहित्य में शिवराजविजय की कथा वस्तु

‘शिवराजविजय’ का कथानक तीन विरामों में विभक्त है। प्रत्येक विराम में चार निःश्वास है। संक्षेप में कथानक इस प्रकार है—

दक्षिण में मुसलमानों के आधिपत्य तथा अत्याचारों से खिन्न शिवाजी ने स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष प्रारम्भ किया। उस काल में दो-दो कोस पर आश्रम बने हुए थे, जो मुसलमानों की गतिविधि का परिचय रखते थे। शिवाजी की निरन्तर विजय से उद्विग्न होकर बीजापुर दरबार ने उनसे युद्ध करने के लिये अफजल खॉं को भेजा। उसी समय शिवाजी प्रताप दुर्ग में थे। अफजल खॉं ने भी वहीं भीमा नदी के तट पर शिविर डाल दिया। बीजापुर के शासक सन्धि का धोखा करके शिवाजी को जीवित पकड़ना चाहते थे, उनकी इस अभिसन्धि का शिवाजी को पता लग गया। एक यवन गुप्तचर बीजापुर दरबार का पत्र ले जा रहा था। मार्ग में उसने एक ब्राह्मण कन्या का अपहरण किया, किन्तु वह कन्या एक आश्रम में अध्यक्ष— ब्रह्मचारि गुरु के शिष्यों—गौरसिंह और श्यामसिंह द्वारा बचा ली गयी, यवन गुप्तचर गौरसिंह द्वारा मारा गया तथा बीजापुर का गुप्त संदेश उसके वस्त्रों में से गौरसिंह को प्राप्त हुआ।

इस गुप्त संदेश को जानकर शिवाजी ने स्वयं अफजल खॉं को छलने की योजना बनाई। बीजापुर के दरबार से सन्धि—प्रस्ताव लेकर भेजे गये, पण्डित गोपीनाथ द्वारा प्रताप दुर्ग की तलहटी में अफजल खॉं से मिलने का शिवाजी ने प्रबन्ध किया। गौरसिंह भी गायक के वेश में अफजल खॉं के शिविर में जाकर सम्पूर्ण षड्यन्त्र का भेद निकाल लाया। शिवाजी ने अपनी सेना चारों ओर जंगल में तथा अफजल खॉं के शिविर के आस—पास छिपा दी। प्रातःकाल अफजल खॉं शिवाजी से मिलने आया। शिवाजी अपने कपड़ों के अन्दर कवच और हाथों में बाघनख नाम का हथियार पहनकर गये। परस्पर आलिंगन करने पर शिवाजी ने अफजल खॉं के कन्धों और गर्दन को फाड़कर उसे पटक दिया तथा उनकी सेना ने मुसलमानी सेना को मार कर भगा दिया।

गौरसिंह द्वारा जिस ब्राह्मण कन्या की रक्षा की गई थी, उसके संरक्षक एक वृद्ध ब्राह्मण थे। उनके आने पर रहस्योद्घाटन हुआ कि वह कन्या गौरसिंह और श्यामसिंह की बहन सौवर्णी है तथा वृद्ध उनके पुरोहित देव—शर्मा है। तदनन्तर ब्रह्मचारि गुरु के अनुरोध पर गौरसिंह ने अपना वृत्तान्त सुनाया—

वे उदयपुर के एक जागीरदार खड्गसिंह के पुत्र हैं। माता—पिता की मृत्यु के बाद तीनों बहिन भाई पुरोहित की संरक्षकता में रहते थे। एक बार शिकार खेलने जाकर दोनों भाई लुटेरों द्वारा पकड़े गये। किसी युक्ति से वे घोड़ों पर चढ़कर भाग निकले और एक हनुमान मन्दिर के अध्यक्ष की सहायता से महाराष्ट्र पहुँचे। यहाँ भीमा नदी के किनारे उनकी शिवाजी से भेंट हुई और वे इस आश्रम में रहने लगे।

शाइस्ता खॉं पूना पर अधिकार करके वहीं शिवाजी के महलों में रहने लगा था। शिवाजी का उससे युद्ध अनिवार्य हो गया। शिवाजी ने सिंह दुर्ग में अपना एक संदेश रघुवीरसिंह द्वारा तोरण दुर्ग के अध्यक्ष के पास भेजा। आँधी—पानी की उपेक्षा करता हुआ वह तोरण दुर्ग पहुँच कर दुर्गाध्यक्ष की आज्ञा से हनुमान मन्दिर में ठहरा। इसी मन्दिर में देवशर्मा सौवर्णी को साथ लेकर रहने लगे थे। मन्दिर की वाटिका में गाना गाती हुई सौवर्णी को देखकर रघुवीर सिंह हृदय में उसके प्रति अनुराग की भावना जागृत हुई। शिवाजी के आदेश के अनुसार रघुवीर सिंह शाइस्ता खॉं के साथ होने वाले युद्ध के भविष्य को पूछने के लिए देवशर्मा के पास गया। देवशर्मा ने सौवर्णी द्वारा उसे एक मोदक खिला कर गले में एक माला डलवाई और प्रातःकाल आकर रात्रि में देखे गये स्वप्न का वृत्तान्त सुनाने के लिए कहा। प्रातःकाल दुर्गाध्यक्ष से संदेश का उत्तर लेकर वह देवशर्मा के पास गया और यवनों के साथ युद्ध में विजय तथा आर्यों के साथ युद्ध में पराजय यह भविष्य जानकर वाटिका में गया। वाटिका में उसकी सौवर्णी से पुनः भेंट हुई। तदनन्तर वह हनुमान जी का प्रसाद लेकर सिंह दुर्ग की ओर चल पड़ा। एक बार शिवाजी पण्डित के वेश में माल्यश्रीक के साथ शाइस्ता खॉं के साथ पूना जाकर गुप्त रूप से वहाँ का निरीक्षण कर आये और संदेह करने पर पीछा

करने वाला चाँद खाँ शिवाजी के द्वारा मारा गया। शिवाजी ने यशवन्त सिंह को पूना से दूर रहने के लिए अनुरोध करके कुछ चुने हुए साथियों के साथ बारात के बहाने पूना में प्रवेश किया और शाहस्ता खाँ के निवास पर आक्रमण कर दिया, चाँद खाँ और शाहस्ता खाँ के पुत्र रघुवीर सिंह द्वारा मारे गये। शाहस्ता खाँ अपनी घायल उँगली के साथ खिड़की से कूदकर बाहर भाग गया। दूसरी ओर इसके पूर्व ही रघुवीर सिंह ने औरंगजेब की पुत्री रोशनआरा को गिरफ्तार कर लिया था।

एक समय ब्रह्मचारि गुरु ने गौरसिंह से अपना और अपने पुत्र वीरेन्द्र सिंह का पूर्व वृत्तान्त बताया। उधर रघुवीर सिंह की प्रेयसी सौवर्णी ने क्रूर सिंह द्वारा किये जाने वाले अपने अपमान की बात बताई। तभी संयोगवश क्रूर सिंह की नियुक्ति अन्यत्र हो गई और उसका कष्ट दूर हो गया।

इधर रोशनआरा अपना प्रेम शिवाजी से प्रकट कर रही थी परन्तु उन्होंने कह दिया कि वे उसे पिता द्वारा जाने पर ही स्वीकार कर सकते हैं। तभी जयसिंह ने सैन्य आक्रमण कर दिया। शिवाजी ने उसके मन में हिन्दुत्व की भावना जाग्रत करने का प्रयास किया परन्तु असफल रहने पर कुछ कारणों से उसने मुगलों की कुछ शर्तें मानकर सन्धि करने को विवश हुए। इसी सन्धि के अनुसार रोशनआरा और मुअज्जम को वापस कर दिया। उसके बाद बीजापुर के एक किले पर आक्रमण करके रघुवीर सिंह को सहायता से शिवाजी ने विजय प्राप्त की और रहमत खाँ को जीवित पकड़ लिया। परन्तु रहमत खाँ और क्रूर सिंह द्वारा रघुवीर सिंह को राजद्रोही बताया जाने पर शिवाजी ने उसे निष्कासित कर दिया। बाद में ज्ञात हुआ कि राजद्रोही वास्तव में क्रूरसिंह ही था।

अपमानिक रघुवीर सिंह राधास्वामी का वेश धारण कर शिवाजी का उपकार करता रहा और सौवर्णी के अपहरण करने की इच्छा वाले क्रूरसिंह का वध कर दिया। जयसिंह की सन्धि के अनुसार शिवाजी 1666 में औरंगजेब के राजदरबार दिल्ली में उपस्थित हुए। मार्ग में राधास्वामी (रघुवीर सिंह) के कई बार रोकने का प्रयास करने पर भी शिवाजी नहीं माने। दरबार में उपस्थित होने के बाद औरंगजेब ने शिवाजी को नजरबन्द करवा दिया और मकान के चारों ओर पहरा लगवा दिया। परन्तु स्वयं की योजना तथा रघुवीर सिंह के सहयोग से शिवाजी अपने साथियों के साथ भाग निकलने में सफल हो गये। बाद में यह जानकर कि राधास्वामी ही रघुवीर सिंह हैं शिवाजी ने क्षमा याचना की। इसके बाद रघुवीर सिंह भी शिवाजी के साथ वापस लौट आता है उसे मण्डलेश्वर पद प्रदान किया गया तथा सौवर्णी के साथ उसका विवाह सम्पन्न हुआ। शिवाजी ने विवाह में सम्मिलित होकर आशीर्वाद दिया। उधर दूतों ने सूचना दी कि सन्धि में मुगलों को दिये गये सभी किले जीत लिये गये हैं। बाद में शिवाजी सतारा नगरी को राजधानी बनाकर रहने लगे और धीरे-धीरे कुछ ही दिनों में सम्पूर्ण महाराष्ट्र पर शिवाजी का अधिकार हो गया तथा औरंगजेब द्वारा प्रेषित सेनापति मोहब्बत खाँ भगा दिया गया।

शिवराजविजय की ऐतिहासिकता

आधुनिक समालोचकों की दृष्टि में "शिवराजविजय" एक ऐतिहासिक उपन्यास है। वर्तमान समय में उपन्यास एक वह साहित्य विधा है, जो संसार के प्रायः सभी देशों में प्रचलित है। संसार के प्रायः सभी विद्वानों ने इसे मानव जीवन की अभिव्यक्ति स्वीकार किया है जिसमें मनुष्य जीवन के रहस्यों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया जाता है। उपन्यासों में भी अनेक विधाएँ हैं, जिनमें ऐतिहासिक उपन्यास अधिक लोकप्रिय है। उपन्यासकार जब ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाकर अपने कथानक का निर्माण करता है तब वह ऐतिहासिक उपन्यास कहलाता है। इसमें काल विशेष से सम्बन्धित घटनाओं के साथ काल्पनिक घटनाओं का भी समावेश हो सकता है। कवि तदयुगीन

देश-काल को ध्यान में रखकर ऐतिहासिक पात्रों के साथ कुछ सीमा में काल्पनिक पात्रों को भी रख सकता है। यद्यपि ऐतिहासिक उपन्यास में कल्पना का भी समावेश होता है तथापि उसमें प्रमुख तथ्यों की उपेक्षा नहीं की जाती है। इसके साथ ही इसमें कवि अपने व्यक्तित्व को विशिष्ट कल्पनाओं से भूतकाल की चरित गाथाओं, सामाजिक व्यवहार और परम्पराओं को इस प्रकार से जीवित करता है कि उनको पढ़कर पाठक का हृदय प्राचीन गौरव से अनुप्राणित हो जाता है। इस प्रकार प्रेमचन्द के अनुसार ऐतिहासिक उपन्यास में संसार की प्रत्येक वस्तु, प्रकृति का प्रत्येक रहस्य, जीवन का हर एक पहलू विषय बनाया जा सकता है और इसका महत्व तथा गहराई उपन्यास के सफल होने में सहायक होते हैं।

भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही ऐतिहासिक कथाएँ लिखी जाती रही हैं। संस्कृत में प्रायः अधिकांश महाकाव्य, खण्डकाव्य तथा नाट्यकाव्य भी ऐतिहासिक कथाओं के आधार पर लिखे गये हैं परन्तु वर्णन की प्रधानता; आदर्श की प्रतिष्ठा तथा कल्पना के अतिरेक के कारण उन्हें ऐतिहासिक काव्य नहीं कहा जा सकता है, इनमें से प्रमुख हैं—राजतरंगिणी, विक्रमांकदेवचरित, नवसाहस्रकचरित, पृथ्वीराजविजय तथा हर्षचरित आदि। संस्कृत भाषा में प्राचीनकाल से कथा साहित्य की अनेक विधाएँ प्रचलित हैं। ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित गद्यकाव्य को आख्यायिका कहा जाता था। परन्तु यथार्थवादी दृष्टि से औपन्यासिक कला का प्रचलन आधुनिक युग की देन है।

संस्कृत भाषा में 18 वीं सदी उपन्यास-विधा की काव्य-रचना का प्रारम्भ नहीं हुआ था। इस नवीन, मनोरम तथा चमत्कारी मार्ग की ओर संस्कृतज्ञों की प्रवृत्ति न होने देखकर व्यास जी संस्कृत साहित्य की इस दुर्बलता को दूर करने के लिए प्रवृत्त हुए और महाराष्ट्र के सरी वीर शिवाजी के चरित पर आधारित इस ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करके संस्कृत साहित्य में एक नवीन काव्य-विधा का सूत्रपात किया। व्यास जी की 'गद्यकाव्य' मीमांसा भाषा के अध्ययन से विदित होता है कि वे यूरोपीय सम्पर्क से प्रोत्साहित बंगला उपन्यासों की शैली से प्रभावित थे। उन्नीसवीं सदी में भारतीय जनता में सांस्कृतिक चेतना का पुनर्जागरण हुआ। पराधीनता और जातीय गौरव के विनाश ने निश्चित रूप से व्यास जी को विह्वल किया होगा। और उस समय स्वातन्त्र्य तथा जातीय गौरव का सन्देश देने वाले महाराष्ट्र जीवन प्रभात, राजसिंह तथा आनन्दमठ आदि उपन्यासों का अनुसरण करते हुए उन्होंने संस्कृत भाषा में ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करके भारतीय जनता को जातीय एवं राष्ट्रीय गौरव का सन्देश दिया। कुछ आलोचकों ने कल्पना और इतिहास की विभाजक रेखा की दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यासों के चार प्रकार माने हैं—

1. पूर्ण प्रामाणिक तथा साहित्य से ओत-प्रोत।
2. ऐतिहासिक वातावरण से युक्त तथा कल्पित पात्र और घटनाओं से युक्त।
3. ऐतिहासिक पात्रों से युक्त किन्तु कल्पित घटनाओं से ओत-प्रोत।
4. ऐतिहासिक घटनाओं के सत्य का निदर्शन करने वाले।

उक्त विभाजन के अनुसार 'शिवराजविजय' को प्रथम श्रेणी का उपन्यास माना जा सकता है। इस श्रेणी के उपन्यास में इतिहास और कल्पना का समन्वय लेखक को करना होता है। शिवराजविजय में न तो कल्पना द्वारा इतिहास को विकृत किया गया है और न ही ऐतिहासिक यथार्थ के बाहुल्य से इसे नीरस अथवा घटना का द्योतक बनाया गया है। इस उपन्यास में लेखक ने ऐतिहासिक यथार्थता और कल्पना का इस प्रकार सम्मिश्रित चित्रण किया है कि दोनों को अलग-अलग पहिचानना कठिन है। इसमें ऐतिहासिक तथा कल्पित दोनों पात्रों का चरित देश काल के अनुरूप ही है। इसकी सभी प्रमुख घटनाएँ भी ऐतिहासिक तथा वास्तविक हैं। इस प्रकार इस उपन्यास की ऐतिहासिकता की समीक्षा हम — 1. पात्र-योजना, 2. चरित्र-चित्रण तथा 3. घटनाओं

के वर्णन के आधार पर कर सकते हैं।

2. घटनाओं की दृष्टि शिवराजविजय की ऐतिहासिकता – शिवराजविजय में वर्णित अधिकांश घटनाएँ शिवाजी से सम्बद्ध हैं क्योंकि कथा के फल के अधिकारी प्रमुख पात्र हैं। इसकी कथा अफजल ख़ाँ के पराजय से प्रारम्भ होकर है। इसमें निम्नलिखित प्रमुख घटनाएँ ऐसी हैं, जिसका स्रोत ऐतिहासिक है –

1. शिवाजी का अफजल ख़ाँ से युद्ध।
2. शाइस्ता ख़ाँ के पूना निवास पर शिवाजी द्वारा आक्रमण।
3. शिवाजी और भूषण कवि।
4. शिवाजी और शहजादा मुअज्जम।
5. शिवाजी द्वारा सूरत नगर की विजय।
6. शिवाजी और जयसिंह का संघर्ष तथा सन्धि।
7. शिवाजी की औरंगजेब के दरबार में उपस्थिति।
8. शिवाजी का महाराष्ट्र वापिस आना तथा सम्पूर्ण महाराष्ट्र को स्वतन्त्र करना।

1. शिवाजी और अफजल ख़ाँ का युद्ध हुआ और अफजल ख़ाँ मारा गया। यह एक ऐतिहासिक घटना है। इसका उल्लेख सभी इतिहासकारों ने किया है। ग्रान्ट डफ के अनुसार सन्धि के ब्याज के कपटपूर्ण ढंग से शिवाजी ने अफजल ख़ाँ पर आक्रमण किया और वह विश्वासघात का शिकार हुआ। परन्तु अब शिवराजविजय के वर्णन के अनुरूप ही 'बीजापुर नरेश' द्वारा शिवाजी को धोखे से पकड़ने का षड्यन्त्र किया था— यह सिद्ध हो चुका है। साथ ही नवीन गवेषणाओं ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि प्रथम आक्रमण अफजल ख़ाँ ने ही किया था तब शिवाजी ने अपने गुप्त शस्त्रों से उसे मार डाला।

2. शिवाजी ने शाइस्ता ख़ाँ के पूना निवास पर आक्रमण किया। ग्रान्ट डफ के अनुसार शाइस्ता ख़ाँ मराठों की दुर्ग युद्ध की विभीषिका से पूना में किसी भी व्यक्ति का प्रवेश रोकने का प्रबन्ध किया था। तब शिवाजी ने बारात के माध्यम से पूना में प्रवेश की अनुमति प्राप्त करके 25 सैनिकों के साथ प्रवेश किया। मराठे सैनिकों ने पीछे की दीवार तोड़कर अन्दर किले में प्रवेश किया। जब इसकी जानकारी स्त्रियों द्वारा शाइस्ता ख़ाँ को हुई तब वह खिड़की से निकल कर भागा परन्तु खड्ग के प्रहार से उसकी उँगली कट गई। फिर भी वह भाग गया परन्तु उसका पुत्र और अनेक रक्षक मारे गये। शिवाजी सैनिकों के साथ निर्विध्न बाहर निकल आये और पूना से 2-4 मील दूर मसालें जलाकर सिंह दुर्ग में प्रविष्ट हो गये। एक ऐतिहासिक घटना है और इसी रूप में व्यास जी ने भी इसका वर्णन किया है। कुछ इतिहासकारों ने इस घटना के कुछ अन्य रूप में वर्णित किया है।

3. शिवाजी और भूषण कवि का मिलन एक किंवदन्ती के अनुसार बतलाया जाता है। यद्यपि इन दोनों के समकालीन होने पर कुछ इतिहासकार सन्देह करते हैं परन्तु शिवराजविजय तथा कुछ ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार उनका समकालीन होना सिद्ध होता है।

4. इतिहास के अनुसार मुअज्जम ने जनवरी 1664 में शाइस्ता ख़ाँ का स्थान ग्रहण किया था। शिवराजविजय के अनुसार मुअज्जम को शिवाजी के सैनिक कैद कर लेते हैं। परन्तु इतिहास के अनुसार उसके कैद की पुष्टि नहीं होती है।

5. इतिहास के अनुसार 5 जनवरी 1664 को शिवाजी ने स्वयं सेना लेकर सूरत नगर पर आक्रमण करके उसे जीत लिया था। परन्तु व्यास जी ने सूरत नगर को जीतने के लिये शिवाजी को न भेजकर सेनापति धीरेन्द्र सिंह को भेजा है।

6. इतिहास के अनुसार 30 सितम्बर 1664 को औरंगजेब ने जयसिंह और

7. दिलेर खॉ को शिवाजी के दबाने के लिये भेजा था। युद्ध में शिवाजी पराजित हुये और उनकी अनेक शर्तें स्वीकार की तथा औरंगजेब के दरबार में जाने को सहमत हुए। जयसिंह के साथ इस संघर्ष और सन्धि की घटना को व्यास जी ने कुछ परिवर्तन करके लिखा है। इसमें युद्ध का वर्णन नहीं है तथा जयसिंह से पराजय की दुर्बलता को भी छिपाने के लिए देवशर्मा की भविष्यवाणी द्वारा ढकने का प्रयास किया गया है।

8. ग्रान्ट डफ के अनुसार शिवाजी पाँच सौ घुड़सवारों तथा एक हजार पदातियों के साथ दिल्ली जाकर औरंगजेब के दरबार में उपस्थित हुए। कुछ इतिहासकारों ने दिल्ली जाने को न लिखकर, आगरा जाने का उल्लेख किया है और शिवाजी ने वहीं मुगल सम्राट से भेंट की।

9. औरंगजेब की कैद से वापस लौटने के बाद शिवाजी की उपस्थिति प्रताप दुर्ग में दिखाई गई है परन्तु इतिहास के अनुसार वे रायगढ़ में प्रकट हुए थे। कुछ इतिहासकारों के अनुसार शिवाजी ने दक्षिण पहुँचकर मुगलों को दिये हुए सभी किलों को जीत लिया। शिवराजविजय में भी ऐसा ही वर्णन है। कुछ इतिहासकारों के अनुसार उन्होंने 3 वर्ष तक पुरन्दर सन्धि का पालन किया उसके बाद युद्ध करके सभी किले जीते। इसी प्रकार जयसिंह की कारुणिक मृत्यु, मोहब्बत खॉ का मराठों द्वारा हराया जाना आदि व्यास जी द्वारा वर्णित घटनाएँ ऐतिहासिक ही हैं।

इस प्रकार शिवराजविजय में वर्णित अधिकांश प्रमुख घटनाएँ ऐतिहासिक हैं। यत्र-तत्र लेखक ने साहित्यिक आवश्यकता तथा नेतृगत एवं प्रतिनेतृगत चरित्रों की संगीत के लिये ऐतिहासिक कथा में परिवर्तन किया है, फिर भी इसकी ऐतिहासिकता पर आघात नहीं हुआ है।

1. **चरित्र की दृष्टि से शिवराजविजय की ऐतिहासिकता** – जैसा कहा गया है कि शिवराजविजय में ऐतिहासिक और काल्पनिक दोनों प्रकार के पात्र हैं। ऐतिहासिक पात्रों में शिवाजी, जयसिंह, औरंगजेब आदि पात्रों का चरित्र इतिहास के अनुरूप ही चित्रित किया गया है। कुछ ऐतिहासिक पात्र ऐसे भी हैं, जिनके चरित्रों को कवि ने बहुत कुछ अंशों में काल्पनिक रूप में चित्रित किया है। इसी सन्दर्भ में यह भी कहना अनुचित न होगा कि व्यास जी ने काल्पनिक पात्रों को भी ऐतिहासिक चरित्रों के साथ इतना मिला दिया है कि वे भी ऐतिहासिक ही प्रतीत होते हैं।

अस्तु, शिवराजविजय एक ऐसा काव्य है जिसमें साहित्यिक कलात्मकता के आधान के बाद भी ऐतिहासिकता अक्षुण्ण है। भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार ऐतिहासिक काव्य में ऐतिहासिक तत्व केवल इतिवृत्त के निर्वाह-मात्र के लिये नहीं होते, अपितु वे कथा के रस अथवा भावों के अनुकूल होते हैं। कवि की कल्पना इतिहास की मर्यादा को भंग नहीं करती, अपितु इतिहास-गत मुख्य कथानक से एक रूप हो जाती है। व्यास जी ने अपने इस ऐतिहासिक उपन्यास में मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं किया है।

शिवराजविजय की औपन्यासिकता – संस्कृत साहित्य में कथा-आख्यायिका आदि विविध रूपों में गद्यकाव्य लिखे जाते रहे हैं जो कि कृष्णमाचार्य के अनुसार एक ही जाति के दो नाम हैं। संस्कृत में व्यास जी से पूर्व उपन्यास का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था यद्यपि नाटयशास्त्र आदि में उपन्यास शब्द का प्रयोग अवश्य मिलता है परन्तु इस अर्थ के लिये उसका प्रयोग नहीं हुआ – “वज्रम् पुष्पमुपन्यासः वर्णसंहार इत्यादि।” (दशरूपक) इस नवीन (काव्य विधा) उपन्यास शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम बंगला साहित्य में हुआ और उसी से हिन्दी में भी इसका प्रचलन हुआ।

पं० अम्बिकादत्त व्यास संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं के विद्वान् थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से उनका घनिष्ठ सम्पर्क था। सम्भवतः उन्हीं से उपन्यास लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई होगी। व्यास जी की ‘गद्यकाव्य मीमांसा भाषा’ से यह प्रतीत होता है कि

संस्कृत में उपन्यास के अभाव से वे दुःखी थे और उसकी पूर्ति हेतु 'शिवराजविजय' की रचना में प्रवृत्त हुए। इस प्रकार संस्कृत साहित्य की गद्य परम्परा में शिवराजविजय एक नवीन एवं आधुनिक काव्य-विधा होने के कारण उन्हीं मानदण्डों के अनुसार इसकी आलोचना भी संगत होगी। आधुनिक समालोचनात्मक दृष्टि से उपन्यास के 6 तत्व माने गये हैं - 1. कथानक, 2. संवाद, 3. रचना-शैली 4. चरित्र-चित्रण, 5. देशकाल और 6. उद्देश्य। इन्हीं तत्वों के आधार पर शिवराजविजय की समीक्षा प्रस्तुत है।

कथानक - कथानक उपन्यास का आधारस्तम्भ है। अन्य तत्व इसी के आश्रित होते हैं। व्यास जी ने अपनी काव्य-रचना के लिये ऐसी कथा का चयन किया जो भारतीय हिन्दू जन के लिये अत्यन्त हृदयग्राही था और उसके नायक शिवाजी देश, जाति एवं धर्म के उद्धारक के रूप में समादृत थे। व्यास जी ने प्राचीन गद्यकाव्य की परम्पराओं से कुछ अलग हटकर अपनी कथावस्तु की योजना की। शिवराजविजय का कथानक शिवाजी के ऐतिहासिक रूप को उपस्थित करने में समर्थ है। इसमें प्रासंगिक कथा के नायक रघुवीर सिंह का भी चरित्र कम विकसित नहीं है। जहाँ प्राचीन गद्यकाव्यों में कथानक की यथार्थता पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था वहीं व्यास जी की प्रवृत्ति इससे भिन्न है। इसमें उन्होंने आधुनिक उपन्यास कला के अनुसार यथार्थता का पर्याप्त समावेश किया है। कथानक की दूसरी विशेषता होती है उसकी साकांक्षता एवं सम्प्रेषणीयता जिसका उपन्यास में विशेष महत्व है। व्यास जी ने इसकी ओर विशेष ध्यान दिया है। कहीं पर भी अनावश्यक विशेषणों तथा वर्णनों की भरमार से कथा-गति को शिथिल नहीं होने दिया है।

व्यास जी शिवराजविजय की कथा का प्रारम्भ ही बिल्कुल नये ढंग से किया है जो प्राचीन परम्पराओं से भिन्न है। सूर्योदय होने पर एक ब्राह्मण बटु कुटी से बाहर निकलकर पूजा के लिये फूलों का चयन प्रारम्भ करता है। काव्य की समाप्ति अवश्य कुछ प्राचीन मार्ग पर ही आधृत प्रतीत होती है। शिवराजविजय का कथानक संगठित घटनात्मक की अपेक्षा शिथिल कथनात्मक ही अधिक है क्योंकि इसकी प्रत्येक घटनाएँ एक दूसरे का परिणाम न होकर स्वतन्त्र हैं। गौरसिंह का वृत्तान्त, वीरेन्द्र सिंह की कथा, रघुवीरसिंह और सौवर्णी की प्रेम-गाथा आदि पृथक्-पृथक् घटनाएँ हैं। लेखक ने उन्हें एक सूत्र में पिरोकर साकांक्ष बना दिया है। अस्तु कथानक की दृष्टि से शिवराजविजय संस्कृत जगत् से हट कर आधुनिकता का परिवेश लिये हुए संस्कृत जगत् में अवतरित हुआ है। व्यास जी ने बड़ी कुशलता के साथ काव्यात्मकता का पुट देकर भी उसकी ऐतिहासिकता को अक्षुण्ण रखा।

रचना-शैली - व्यास जी ने शिवराजविजय में गद्य की प्राचीन परम्पराओं का पालन करते हुए उसकी अतिशयता से बचने की चेष्टा की है। वैदर्भी रीति का आश्रय लेते हुए अधिक समासों से उपन्यास का विलष्ट नहीं बनाया है। अलंकारों का भी प्रयोग उचित मात्रा में करके उससे काव्य को बोझिल नहीं बनाया है। कहीं-कहीं पर नाटकीय मोड़ से उपन्यास को अत्यधिक मार्मिक एवं हृद्य बना दिया। जयसिंह द्वारा शिवाजी के सैनिकों को पारितोषिक दिये जाते समय रघुवीर का अपमानित किया जाना, आगरे में शिवाजी की कृत्रिम रुग्णता के अवसर पर मुरेश्वर का यवन चिकित्सक के रूप में आना आदि भावनात्मक घटनाओं के नाटकीय दृश्य शिवराजविजय की विशेषताएँ हैं।

उद्देश्य - संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसार ये 6 उद्देश्य माने गये हैं - यशः प्राप्ति, धनप्राप्ति, व्यवहार-ज्ञान, दुःख-विनाश, आनन्द प्राप्ति तथा उपदेश। प्रायः इन्हीं उद्देश्यों के लिये काव्यों की रचना की जाती थी। काव्य-रचना उद्देश्य की दृष्टि से भी व्यास जी के शिवराजविजय में कुछ नवीनता दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने परम्परागत प्रयोजनों को रखते हुए भी देश, जाति और धर्म के गौरव की प्रतिष्ठा और इससे जनमानस को आप्लावित करना अपना मुख्य लक्ष्य निर्धारित किया- "परं मया तु सनातन धर्मधूर्वह

शिवराजवर्णनेन रशना पावितैव, प्रसंगतः सदुपदेश निर्देशैः स्वब्राह्मण्यं सफलितमेव, ऐतिहासिक काव्य रुचीनि स्वमित्राणि रजितान्येव“व्यास जी का दूसरा उद्देश्य यह रहा कि संस्कृत साहित्य में नवीन, मनोरम तथा चमत्कारपूर्ण मार्गों का आधान किया जाय। व्यास जी अपनी सशक्त लेखनी से शिवराजविजय उपन्यास विधा को स्रावित करके अपने उद्देश्यों में पूर्ण सफल हुए हैं।

व्यास और बाण की तुलनात्मक समीक्षा

कोई भी कवि या लेखक अपने पूर्ववर्ती साहित्यिक प्रवृत्तियों से बिल्कुल अछूता नहीं रह सकता है। व्यास जी के पूर्ववर्ती गद्यकारों में तीन प्रमुख थे— बाण, दण्डी और सुबन्धु। इन तीन गद्यकारों में बाण और सुबन्धु की रचना और भाव के चित्रण की शैली लगभग एक—सी रही है परन्तु दण्डी की भाषा—शैली तथा भावाभिव्यंजना दोनों ही पृथक् रही है। इन दोनों परम्पराओं के रहते हुए भी आधुनिकता से प्रभावित पं० अम्बिकादत्त व्यास ने कुछ—कुछ अंशों में उक्त दोनों गद्य परम्पराओं का अनुकरण किया तथा कुछ अंशों में अपने उपन्यास को आधुनिक औपन्यासिक तत्वों से सजा कर एक नवीन विधा के रूप में प्रस्तुत किया। अतः शिवराजविजय को बाण और दण्डी के काव्यात्मक मानदण्डों तथा आधुनिक मानदण्डों का एक सम्मिश्रित रूप कहा जा सकता है। शिवराजविजय के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि शिवराज पर बाण की काव्य—शैली का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। इसलिए समालोचकों ने व्यास जी को अभिनव बाण ‘व्यासस्त्वभिनवो बाणः’ कहकर उनकी प्रतिभा और काव्य—शैली का उचित मूल्यांकन किया है। यह सच कि अलंकृत गद्य—काव्य—परम्परा में बाण के सच्चे उत्तराधिकारी के रूप में व्यास जी को ही माना जा सकता है।

बाण और व्यास की संक्षिप्त तुलना इस प्रकार है

बाण ने अनेकों ग्रन्थों की रचना की परन्तु अलंकृत गद्य शैली के प्रतीक कादम्बरी और हर्षचरित ही उनकी अमर कृतियाँ मानी जाती हैं। व्यास जी ने कुल तो लगभग 78 ग्रन्थों का प्रणयन किया है, परन्तु शिवराजविजय एकमात्र ऐसी कृति है जो उनकी यशोगाथा को विकसित करने वाली है। अतः इनकी तुलना करते हुए हम कह सकते हैं कि —

1. **कथानक** — हर्षचरित की कथा ऐतिहासिक है, कादम्बरी की कल्पित। इन दोनों कथानकों का समाहार करते हुए हर्षचरित के आधार पर व्यास जी ने हर्षवर्धन की भाँति महाराष्ट्र—केसरी वीर शिवाजी के ऐतिहासिक कथा को स्वीकार किया और कादम्बरी की प्रेमगाथा के अनुरूप सौवर्णी की प्रणय—कथा की कल्पना की। हर्षचरित की ऐतिहासिक कथा का संघटनात्मक कथानक है, शिवराजविजय की कथा का शिथिल कथानात्मक है। कादम्बरी में वर्णनों और विशेषणों के आधिक्य से कथा की गति मन्द पड़ जाती है परन्तु व्यास जी की कथा ऐसी नहीं है। कथा के संयोजन में दोनों लेखकों ने संश्लिष्टात्मकता पर विशेष ध्यान दिया है। बाण का कथानक परम्परावादी दृष्टिकोण से वर्णित है परन्तु व्यास जी के कथानक में नवीनता का प्रयोग है।

पात्र — बाण के पात्र ऐतिहासिक एवं कल्पित दोनों हैं। व्यास जी ने भी दोनों प्रकार के पात्रों की योजना की है। बाण के पात्रों में अतिशयता और अतिमानवीयता का आधार है परन्तु व्यास जी के पात्र इससे रहित हैं। वे यथार्थ के धरातल पर स्थित हैं। पात्रों के चरित्र—चित्रण में बाण का दृष्टिकोण आदर्शवादी अधिक और यथार्थवादी कम है। व्यास का दृष्टिकोण यथार्थवादी अधिक तथा आदर्शवादी कम है।

रचना शैली — बाण की भाषा शैली आलंकारिक, समासबहुल तथा जटिल पदविन्यासात्मिका है। व्यास जी की भाषा शैली भी आलंकारिक है परन्तु अलंकारों का प्रयोग उचित मात्रा में किया गया है। अधिक लम्बे समास नहीं हैं, पर विन्यास सरल

है। नूतन शब्दों का प्रयोग भी व्यास जी ने बाण की अपेक्षा कम किया है। बाण के काव्य में विभिन्न शैलियों तथा रीतियों का निदर्शन होता है और यह विशेषता व्यास जी के काव्य में भी विद्यमान है किन्तु बाण के जितनी दक्षता और प्रौढ़ता इनके काव्य में नहीं है। बाण के काव्य में पाण्डित्य-प्रदर्शन की भावना का अभाव है। समग्र दृष्टि से बाण के काव्य में काल्पनिक चमत्कार और भावों के विशद वर्णन के लिए प्रयुक्त भाषा में जटिलता और दुरुहता है इसलिए तो बाण के काव्य को नारिकेलफल सम्मितम् वचः कहा गया है। परन्तु व्यास जी के काव्यों में इस प्रकार की जटिलता नहीं है। उनकी भाषा बड़ी ही सुबोध तथा प्रवाहमयी है। इसी दृष्टि से डा० भगवानदास ने लिखा है – “.....वासवदत्ता और कादम्बरी के शब्दों की अरण्यानी में तो बेचारा अर्थपथिक सर्वथा भूल भटक कर खो जाता है, उसका पता नहीं लगता। कविता के गुणों में प्रसाद गुण एक मुख्य गुण है; वह इन दो काव्याभासों में मिलता नहीं— विपरीत इसके ‘शिवराजविजय’ में भाषा उत्तमोत्तम ओजस्विनी भी, अर्थपूर्ण भी, सुबोध्य भी, यथास्थान, यथावसर उद्दाम भी, कोमल भी है।”

विविध वर्णन – महाकवि बाण पृथ्वी से आकाश तक के वर्णन के लिए प्रसिद्ध हैं। भावतत्त्व हो या वस्तु, बाण की लेखनी से अछूता नहीं रह गया है। इसी दृष्टि से ‘बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्—’ की उक्ति प्रसिद्ध है। व्यास जी विविध वर्णनों के चक्कर में उतना नहीं पड़ते हैं। कथानक की यथार्थता को प्रदर्शित करने के लिए जितना अपेक्षित होता है, उतना ही वर्णन करते हैं।

प्राकृतिक चित्रण भी बाण बड़ी विशदता के साथ करते हैं। पहाड़ हो या नदी, जंगल हो या सरोवर, पशु हो या पक्षी, सभी का चित्रण बड़ी सूक्ष्मता के साथ करते हैं। प्राकृतिक चित्रण व्यास जी ने भी किया है, परन्तु उनके चित्रण की इतनी विशदता तथा सूक्ष्मता नहीं है। बाण और व्यास दोनों ने प्रकृति के कोमल और कठोर दोनों पक्षों का चित्रण किया है।

जीवन के गहन अनुभवों की जितनी मार्मिक अभिव्यंजना बाण ने की है, उतनी व्यास जी नहीं कर सके हैं। सौन्दर्य और प्रेम की जैसी जीवन्त प्रतिमाएँ कादम्बरी और महाश्वेता हैं। वैसी सौवर्णी और रोशनआरा नहीं हैं। चन्दापीड जैसा प्रेमी शिवराजविजय में कोई नहीं है। फिर भी प्रणय की उदार भावना की अभिव्यंजना दोनों में समान रूप से की है। बाण ने अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षणी शक्ति, कल्पना और ज्ञान से मानवीय भावों और प्रवृत्तियों के विशद चित्रण में, विविध वस्तुओं के प्रतीक प्रकाशन में तथा सिद्धान्तों के सुस्पष्ट प्रतिपादन में अत्यन्त सफल और सिद्धहस्त हैं। यद्यपि ऐसा प्रयास व्यास जी ने भी किया है और बहुत अंशों में सफल हुए हैं, परन्तु बाण की समानता नहीं कर सके हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि व्यास बाण के अनुगामी है। उनकी बहुत सी परम्परागत विशेषताओं का अनुकरण करके अपने काव्य को अलंकृत किया है। जहाँ तक कलावादिता के प्रत्येक क्षेत्र में व्यास को बाण से पीछे रह जाने की बात है उसका एक कारण यह भी है कि व्यास जी शुद्ध रूप से केवल बाण अनुगामी नहीं रहे हैं अपितु उपन्यास की आधुनिक प्रवृत्तियों को विशेष रूप से ध्यान में रखकर काव्य लिख रहे थे। अतः दोनों के दृष्टिकोण में भी अन्तर था।

दण्डी और व्यास की तुलनात्मक समीक्षा – महाकवि दण्डी के दो गद्यकाव्य माने जाते हैं— 1. अवन्तिसुन्दरीकथा और 2. दशकुमारचरित। अवन्तिसुन्दरी कथा के अपूर्ण तथा सन्देहास्पद होने के कारण उनकी काव्य शैली का मापदण्ड दशकुमारचरित ही माना जाता है। इसमें दस राजकुमार अपने-अपने पर्यटनों, अनुभवों तथा पराक्रमों का मनोहारी वर्णन करते हैं। इसमें झूठ, कपट, चोरी, जुआ, मार-काट की भरमार है। सभी राजकुमार उचित-अनुचित का विचार छोड़कर अपनी कार्यसिद्धि के लिये प्रयास

करते हैं। सम्भवतः इसीलिए चन्द्रशेखर पाण्डेय तथा शान्तिकुमार आदि इसे धूर्तों का रोमांस मानते हैं। दण्डी का दशकुमारचरित छठीं शताब्दी के भारतीय समाज का यथार्थ चित्रण करने में समर्थ हुआ है। इसमें समाज के दोषों को बड़ी निर्ममता के साथ अनावृत्त किया गया है। वस्तुतः दशकुमारचरित का कथानक अपने ढंग का एक अनोखा कथानक है। इसकी कथा आदर्श की अपेक्षा यथार्थ पर आधारित है।

महाकवि दण्डी पण्डित मण्डली के बीच में होते हुए भी, कलावादियों के प्रभाव से प्रभावित रहते हुए भी तथा रूढ़ीवादी प्रवृत्तियों में पलते हुए भी इनसे मुक्त रहकर स्वतन्त्र विचारधारा और चिन्तन के अनुरूप उन्होंने परम्परागत मार्ग से हटकर एक विचित्र ढंग की योजना की, जिसके पात्र आदर्श चरित न होकर यथार्थ के उद्घाता कहे जा सकते हैं और कथानक के चित्रण में अवान्तर कथाओं के द्वारा किसी प्रकार का अवरोध उत्पन्न नहीं किया गया है और न ही भाषा की जटिलता, पाण्डित्य प्रदर्शन तथा काल्पनिक चमत्कारों से किसी प्रकार की दुर्बोधता का आधान हुआ है। बाण, दण्डी तथा सुबन्धु की विवेचना करते हुए डॉ० भोला शंकर व्यास कहते हैं – “सुबन्धु और बाण का खास ध्यान परिश्रम साध्य रीति की ओर अधिक है, पर दण्डी का ध्यान केवल अभिव्यंजना पक्ष की ओर नहीं है, वे कथा के विषय को कम महत्व नहीं देते। सुबन्धु ने एक छोटी-सी कहानी लेकर कला का आलवाल खड़ा कर दिया है, पर दण्डी के पास विषय की कमी नहीं है और उनकी अभिव्यंजना-शैली इतनी गठी हुई है कि वह विषय को लेकर आगे बढ़ती है। सुबन्धु और बाण दोनों ही कवियों की रीति पक्ष बड़ी तेजी से, बड़ी सज-धज से आगे बढ़ता है और विषय पीछे घसिटता रहता है, दोनों कदम-व-कदम मिलाकर चलते नहीं दिखाई देते। दण्डी के ‘दशकुमारचरित’ में कथा या विषय की परिणति नहीं देखी जाती है। ‘वे सरल प्रवाहमय भाषा के सिद्ध प्रयोक्त हैं, संवाद सूक्ष्म और तात्विक होते हैं। शाब्दी या आर्थी क्रीड़ा के फेर में अधिक नहीं पड़ते।”

दण्डी की उपर्युक्त विशेषताएँ व्यास जी के शिवराजविजय में भी पाई जाती हैं। दण्डी और व्यास के काव्यात्मक दृष्टिकोण में पर्याप्त साम्य है यदि इन दोनों में अन्तर है तो केवल इतना कि व्यास जी ने ऐसे कथानक को अपने काव्य का आधार बनाया है जो ऐतिहासिक है, उत्कृष्ट चरित्रयुक्त है, अनुकरणीय है यथार्थ होते हुए भी आदर्श का प्रेरक है परन्तु दण्डी का कथातत्व सामाजिक यथार्थता से युक्त होते हुए भी न तो अनुकरणीय है, न उत्कृष्ट है न ही आदर्श का प्रेरक है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि दण्डी के कथानक में सत्यम् और सुन्दरम् के होते हुए भी शिवम् का पोषण नहीं हो पाया है। जब कि व्यास जी सत्यम्, शिवम् सुन्दरम् का पूर्ण पोषक है शिवराजविजय और दशकुमारचरित दोनों में ही भिन्न-भिन्न घटनाओं को परस्पर सम्बद्ध करके एक सूत्र में पिरोया गया है। रचना शैली की दृष्टि से दण्डी और व्यास में पर्याप्त समानता है। दण्डी के समान ही व्यास जी की भी शैली सरस एवं प्रभावपूर्ण है। लम्बे-लम्बे समासों वाली, श्लेष और उत्प्रेक्षाओं से भरी, विराधाभास एवं श्लेषमूलक परिसंख्या से विभूषित तथा अलंकारों के भार से बोझिल कवित्व भरी शैली का दण्डी के समान व्यास जी में भी अभाव है। वस्तुतत्त्व एवं भावतत्त्व के विविध वर्णन भी व्यास ने दण्डी के समान ही किया है, जो कथा में अवरोधक न होकर पोषक ही है। प्रकृति-चित्रण भी दोनों ने प्रायः समान रूप में ही किया है। दोनों का प्रकृति-चित्रण नातिदीर्घ तथा प्रभावशाली है। कलावादिता की ओर अधिक अभिरुचि न दण्डी की है और न व्यास की ही। शाब्दी और आर्थी क्रीड़ा के प्रति दोनों उदासीन हैं। शिवराजविजय में शाब्दी क्रीड़ा का नितान्त अभाव है, जब कि दण्डी ने शब्दविन्यास पर अवश्य कुछ ध्यान दिया, तभी तो वे पदलालित्य की योजना कर सके हैं ‘दण्डिनः पदलालित्यम्। दण्डी और व्यास दोनों ने ही पात्रों की योजना समान रूप से की है। दोनों के ही पात्र धरती पर रहने वाले

सामाजिक प्राणी है, मानवीय भावनाओं से युक्त है, तथा चरितगत यथार्थता से मण्डित है। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि दण्डी और व्यास में जितना साम्य है, उतना बाण और व्यास में नहीं। फिर भी वस्तुतत्त्व का अन्तर इतना महत्वपूर्ण है कि व्यास को अभिनव दण्डी न कहकर अभिनव बाण ही कहा गया। व्यास को दण्डी का अनुगामी न मानकर बाण का ही अनुगामी माना गया।

अभ्यास प्रश्न 1

- 1-प्रश्न- 'शिवराजविजय' का कथानक कितने विरामों में विभक्त है?
- 2-प्रश्न- प्रत्येक विराम में कितने निःश्वास हैं?
- 3-प्रश्न- गौरसिंह द्वारा किसकी रक्षा की गई थी,?
- 4-प्रश्न- उस कन्या का संरक्षक कौन था?
- 5-प्रश्न- शिवाजी का विपक्षी हिन्दू राजा कौन था?

1.4 सारांश

इस इकाई में शिवराजविजय के प्राचीन गद्यकाव्यों में अथवा सम्पूर्ण श्रव्य काव्य में संवाद-योजना का कोई महत्व नहीं था। काव्यशास्त्रियों ने भी संवाद को काव्य के आवश्यक तत्व के रूप में स्वीकार नहीं किया है। परन्तु आधुनिक युग में उपन्यास आदि में संवादों का विशेष महत्व स्वीकार किया गया है। अम्बिकादत्त व्यास के अनुसार संवाद उपन्यास के सर्वाधिक आनन्दमयी तत्त्वों में से एक है। व्यास जी ने शिवराजविजय में नाटकीय एवं प्रभावशाली संवादों की योजना करके संस्कृत-गद्य-काव्य के लिये एक नई दिशा प्रदान की। संन्यासी (गौरसिंह) तथा द्वारपाल (प्रहरी) के संवाद तथा तानरंग (गौरसिंह) एवं अफजल खॉ के संवाद अत्यन्त नाटकीय एवं रोचक हैं। शिवराजविजय के संवाद अत्यन्त स्वाभाविक एवं चरित्रों के अनुकूल हैं। इन सभी विषयों का वर्णन इस इकाई में किया गया है।

1.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
मन्दिराणि	मन्दिरों को
तीर्थस्थानानि	तीर्थ स्थानों को
पुराणानि	पुराणों को
पिष्ट्वा,	पीसकर
वेद पुस्तकानि	वेद पुस्तकों को
विदीर्य	फाड़कर

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. तीन विरामों
2. चार निःश्वास
3. ब्राह्मण कन्या की
4. वृद्ध ब्राह्मण
5. राजा जयसिंह

1.7 सदर्थ ग्रन्थ सूची

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
शिवराजविजय	अम्बिकादत्तव्यास	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
2-संस्कृत साहित्य का इतिहास	बलदेव उपाध्याय	प्रकाशक शारदा निकेतन वी, कस्तूरवानगर

1. 8 उपयोगी पुस्तकें

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
शिवराजविजय	अम्बिकादत्तव्यास	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

1. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1- पं० अम्बिकादत्त व्यास के विषय में विस्तार से परिचय दीजिये ।

इकाई .2 विष्णोर्माया से उपाविशच्च तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 विष्णोर्माया से उपाविशच्च तक व्याख्या
- 2.4 सारांश
- 2.5 शब्दावली
- 2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 2.8 उपयोगी पुस्तकें
- 2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्य साहित्य शास्त्र से सम्बन्धित खण्ड एक की दूसरी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि इसमें मंगला चरण किया गया है। लेखक ने प्रारम्भ में भागवत् की सूक्तियों को स्थान दिया है। इसमें भगवान् विष्णु की माया शक्ति के प्रभाव का उल्लेख किया गया है। यह मंगल सूचक है। दुष्ट विनाश यवन शासक के विनाश को सूचित करता है तथा सज्जन संरक्षण के द्वारा शिवराज विजय की सूचना प्राप्त होती है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- भगवान् विष्णु की माया नाम की शक्ति ऐश्वर्य से सुशोभित है, इसकी व्याख्या कर सकेंगे।
- भगवान् विष्णु के विषय में बता सकेंगे।
- पर्णकुटी के विषय में आप बता सकेंगे
- भगवान् सूर्य के विषय में बता सकेंगे
- श्याम वटुक के विषय में आप बता सकेंगे
- गौर वटुक के विषय में आप बता सकेंगे

2.3 विष्णोर्माया से उपाविशच्च तक व्याख्या

शिवराज विजय प्रथमो विराम :

“विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितज्जगत्”(भागवतम् 10/1/25)“हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयादविमुच्यते” (भागवतम् 10/1/31)

हिन्दी अनुवाद : भगवान् विष्णु की माया नाम की शक्ति ऐश्वर्य से सुशोभित है, जिसके द्वारा सम्पूर्ण भुवन को मोहग्रस्त किया गया है। दुष्ट हिंसा करने वाला अपने पाप से मारा गया और सज्जन व्यक्ति समत्व बुद्धि के कारण भयः से मुक्त हो गया।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : विष्णोः = विष्णु की, माया = माया सत्वप्रधाना शक्ति का नाम है, भगवती = (भग+मतुप=डीप) ऐश्वर्यशालिनी, यया = जिस सत्वप्रधाना माया शक्ति के द्वारा, सम्मोहितम् = मोह ग्रस्त कर दिया गया है। जगत् = सम्पूर्ण भुवन, हिंस्र = हिंसक, स्वपापेन = अपने पाप से, विहिंसितः = मारा गया, खलः = दुष्ट, साधुः = सज्जन, समत्वेन = समत्व बुद्धि से अर्थात् राग द्वेष आदि भावना से रहित होकर। भयात् = भय से, विमुच्यते = मुक्त हो जाता है।

अरुण एष प्रकाशः पूर्वस्यां भगवतो मरीचिमालिनः। एष भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचर-चक्रस्य, कुण्डलमाखण्डलदिशः, दीपको ब्रह्माण्डमण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोकविमोकः कोकलोकस्य, अवलम्बो रोलम्बकदम्बस्य, सूत्रधारः सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य। अयमेव अहोरात्रं जनयति, अयमेव वत्सरं द्वादशसु भागेषु विभनक्ति, अयमेव कारणं षण्णामृतनाम्, एष एवाङ्गीकरोति उत्तरं दक्षिणं चायनम्, एनेनैव सम्पादिता युगभेदाः, एनेनैव कृताः कल्पभेदाः, एनेमेवाऽऽश्रित्य भवति परमेष्ठिनः परार्द्धसङ्ख्या, असावेव चर्कति बर्भर्ति जर्हति च जगत्, वेदा एतस्यैव वन्दिनः गायत्री अमुमेव गायति, ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणा अमुमेवाहरहरुपतिष्ठन्ते। धन्य एष कुलमूलं श्रीरामचन्द्रस्य प्रणम्य एष विश्वेषामिति उदेष्यन्तं भास्वन्तं प्रणमन्

निजपर्णकुटीरात् निश्चक्राम कश्चित् गुरुसेवनपटुर्विप्रबटुः।

हिन्दी अनुवाद : पूर्व दिशा में भगवान् सूर्य का यह लाल प्रकाश है। यह भगवान् सूर्य आकाश-मण्डल के रत्न, तारामण्डल के चक्रवर्ती राजा, पूर्व दिशा के कुण्डल, ब्रह्माण्ड रूपी गृह के दीपक, कमल समूह के प्रिय चक्रवाक मण्डल के दुःख को हरने वाले, भ्रमर समूह के आश्रय, सांसारिक सम्पूर्ण व्यवहार के प्रवर्तक और दिन के स्वामी हैं। यही भगवान् सूर्य दिन-रात को उत्पन्न करते हैं, ये ही वर्ष को बारह हिस्सों में विभक्त करते हैं, यही भगवान् सूर्य छः ऋतुओं के कारण हैं, यही उत्तर मार्ग और दक्षिण मार्ग को स्वीकार करते हैं, इन्हीं भगवान् सूर्य के द्वारा युगभेद (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग) किया गया है, इन्हीं के द्वारा कल्पों का विभाजन किया गया है, इन्हीं के आश्रय से विधाता की अन्तिम परार्द्ध नाम की संख्या पूरी होती है। यही संसार का बार-बार सृजन, पालन-पोषण एवं नाश करते हैं, वेद इन्हीं की स्तुति करते हैं, गायत्री इन्हीं का गुणगान करती हैं, ब्रह्मरत ब्राह्मण प्रतिदिन इन्हीं की पूजा करते हैं, श्री रामचन्द्र के वंश के मूल ये भगवान् सूर्य धन्य हैं, ये भगवान् सूर्य सम्पूर्ण लोगों के लिए पूजनीय हैं, उगते हुये भगवान् सूर्य को प्रणाम करता हुआ, गुरु सेवा में निपुण कोई विप्र बालक अपनी पर्ण कुटी से बाहर निकला।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : पूर्वस्यां = पूर्व दिशा में, भगवतः = ऐश्वर्यशाली, भग का तात्पर्य ऐश्वर्य अर्थात् जिसके पास भग हो, मरीचिमालिनः = किरणों की माला वाला, मरीचि अर्थात् किरण, खेचर चक्रस्य = तारामण्डल या नक्षत्र मण्डल, आखण्डल दिशः = आखण्डल = इन्द्र अर्थात् इन्द्र की दिशा अर्थात् पूर्व दिशा, ब्रह्माण्ड भाण्डस्य = ब्रह्माण्ड रूपी घर ब्रह्माण्डमेवभाण्डम्, प्रेयान् = अति प्रिय, पुण्डरीक पटलस्य = पुण्डरीकाणां पटलस्य (षष्ठी तत्पु) अर्थात् कमलों का समूह, रोलम्बकदम्बस्य = रोलम्बानां कदम्बस्य (षष्ठी तत्पु) भ्रमर समूह, रोलम्ब = भ्रमर, कदम्ब = समूह, सर्व व्यवहारस्य = सांसारिक सम्पूर्ण कार्यों का, इनः = स्वामी, अहो रात्रम् = अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रम् (द्वन्द्व समास) दिन-रात, कल्प भेदाः = कल्पों के भेद, एक सहस्र युग की काल सीमा को कल्प कहते हैं, चकर्ति = बार-बार सृजन करता है, कृ+यङ्+लट्, प्र.पु. ए.व., विभर्ति = बार-बार भरण-पोषण करता है, भृज्+यङ्+लट् प्र.पु., जहर्ति = बार-बार संहार करता है, हृ+यङ्+लट्+प्र.पु. ए.व., अहरहः = प्रतिदिन, उपतिष्ठनो = उप+स्था (पूजा करना) + लट् (आत्मने पद), प्रणम्य = प्रणाम करने योग्य, प्र+नम्+यत्, भास्वन्तम् = उदित होते हुए, सूर्य को प्रणमन् = प्रणाम करता हुआ, प्र+नम्+शट् प्रत्यय, निज-पर्णकुटीरात् = अपने छोटे पर्ण कुटी से, कश्चित् = कोई, गुरुसेवनपटुः गुरु की सेवा में निपुण, गुरोः सेवयाम् पटुः, विप्र बटुः = ब्राह्मण बालक।

समास : मरीचि मालिनः = मरीचीनां माला यस्य सः मरीचि माली तस्य (बहुव्रीहि)।

विशेष : अरुण को सूर्य का सारथी भी कहा गया है। आकाश में जो यह प्रकाशदिखाई पड़ता है उसे अरुण कहा गया है। अभिज्ञान शाकुन्तल में इसी तथ्य को प्रकाशित किया गया है। ब्रह्मा का दिन-रात मुनियों कल्प अर्थात् स्थिति एवं प्रलय काल है।

“अहो! चिररात्राय सुप्तोऽहम्, स्वप्नजालपरतन्त्रेणैव महान् पुण्यमयः समयोऽतिवातिः, सन्ध्योपासन-समयोऽयमस्मद्गुरुचरणानाम्, तत्सपदि अवचिनोमि कुसुमानि” इति चिन्तयन् कदलीदलमेकमाकुञ्च्य, तृणशकलैः सन्धाय, पुटकं विधाय, पुष्पावचयं कर्तुमारभे।

हिन्दी अनुवाद : ओह ! खेद है, मैं बहुत देर तक सोता रहा, निद्रा रूपी जाल में बंध कर अत्यन्त पुण्य पूर्ण समय व्यतीत कर दिया, हमारे गुरुजी के सन्ध्या पूजन का समय

है, अतः शीघ्र ही पुष्पों को तोड़ता हूँ। इस प्रकार विचार करता हुआ (उस ब्राह्मण-पुत्र ने) एक केले के पत्ते को तोड़कर तिनके के टुकड़ों से उसे जोड़कर दोना बनाकर पुष्पों का चुनना प्रारम्भ कर दिया।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : अहो ! = आश्चर्य युक्त खेद है, चिररात्राय = बहुत देर तक, अहम् = ब्राह्मण बालक मैं, स्वप्नजालपरतन्त्रेणैव = निद्रा रूपी जाल में फँसकर ही, महानपुण्यमयःसमयः = महान् पुण्यमय समय, अतिवाहितः = बिता दिया, सन्ध्योपासन समयो = सन्ध्योपासना का समय, अस्मद् गुरुचरणानाम् = हमारे पूज्य गुरुजी का, तत् = अतः, सपदि = शीघ्र, अवचिनोमि = चुनता हूँ, कुसुमानि = फूलों को, चिन्तयन् = सोचता हुआ चिन्त+शतृ, कदली दलमेकं = एक केले के पत्ते को, आकुञ्च्य = तोड़कर, आ+कुञ्च+क्त्वा+ल्यप्, सन्धाय = जोड़कर, सम्+धा+क्त्वा+ल्यप्, आरंभे = प्रारम्भ कर दिया, आङ्+रम्भ्+लिट्+तिप्।

समास : स्वप्नजालपरतन्त्रेणैव = स्वप्न एव जालम्, तस्य परतन्त्रेणैव (तत्पुरुष), कदलीदलम् = कदल्याःदलम् (षष्ठी तत्पुरुष), तृणशकलैः = तृणानां शकलैः (षष्ठी तत्पुरुष), पुष्पावचयम् = पुष्पाणां अवचयः (षष्ठी तत्पुरुष)।

बटुरसौ आकृत्या सुन्दरः वर्णेन गौरः, जटाभिर्ब्रह्मचारी। वयसा षोडशवर्षदेशीय कम्बुकण्ठः, आयतललाटः, सुबाहुर्विशाललोचनश्चाऽऽसीत्।

हिन्दी अनुवाद : वह ब्रह्मचारी आकृति से सुन्दर, रंग से गोरा और जटाओं से ब्रह्मचारी प्रतीत होता था। उसकी अवस्था सोलह वर्ष में कुछ कम थी, शंख के समान कण्ठ वाला, चौड़े ललाट वाला, सुन्दर भुजाओं वाला तथा विशाल नेत्रों वाला था।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : असौ = वह, बटुः = ब्रह्मचारी, आकृत्या = आकृति से, सुन्दरः = सुन्दर, वर्णेन = रंग से, गौरः = गोरा, जटाभिः = जटाओं से, ब्रह्मचारी = बटु, वयसा = अवस्था से, षोडशवर्षदेशीयः = लगभग सोलह वर्ष की अवस्था वाला, कम्बु कण्ठः = शंख के समान कण्ठ वाला, आयत ललाटः = चौड़े ललाट वाला, सुबाहुः = सुन्दर भुजाओं वाला, विशाल लोचनः = विशाल नेत्रों वाला।

समास : कम्बुकण्ठः = कम्बुः इव कण्ठो यस्य सः (बहुव्रीहि), आयत ललाटः = आयतं ललाटं यस्यासौ (बहुव्रीहि), सुबाहुः = शोभनौ बाहु यस्य सः (बहुव्रीहि), विशाल लोचनः = विशाले लोचने यस्य सः (बहुव्रीहि)।

अलंकार : कम्बु कण्ठ में लुप्तोपमा अलंकार, ब्रह्मचारी के सुन्दर अंग प्रत्यंगों का नैसर्गिक एवं उदात्त वर्णन किया गया है। अतः उदात्त अलंकार है।

कदलीदलकुञ्जायितस्य एतत्कुटीरस्य समन्तात् पुष्पवाटिका, पूर्वतः परम-पवित्र-पानीय परस्सहस्र-पुण्डरीक-पटल-परिलसितं पतत्रि-कुल-कूजित पूजित पयः पूरितं सरः आसीत्। दक्षिणतश्चैको निर्झर-झर्झर-ध्वनिध्वनित-दिगन्तरः फल-पटलाऽऽस्वाद चपलित-चञ्चुपतङ्गपतङ्गकुलाऽऽक्रमणाधिक-विनत-शाख-शाखि समूह व्याप्तः सुन्दरकन्दरः पर्वतखण्ड आसीत्।

हिन्दी अनुवाद : केले के पत्तों से घिरे हुए होने के कारण कुंज के सदृश प्रतीत होने वाली इस पर्णकुटी के चारों तरफ पुष्पवाटिका थी। पूर्व में अतिशय पावन जल वाला, सहस्र कमलों से सुशोभित, पक्षिगण के कलरव से परिपूर्ण, अतिशय जल से भरा हुआ सरोवर था। दक्षिण की ओर झरने की झर-झर ध्वनि से दिशाओं को ध्वनित करने

वाला, फल-समूह के आस्वादन से चंचल चोंचों वाले पक्षियों के आक्रमण से अतिशय झुकी हुई डालियों वाले वृक्षों के समूह से भरा हुआ तथा सुन्दर गुफाओं वाला एक पर्वत का टुकड़ा था।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : कदलीदल कुञ्जायितस्य = केले के पत्तों से घिरे होने के कारण कुञ्ज के समान प्रतीत होने वाले, कुञ्ज+क्यङ्+क्त, समन्तात् = चारों तरफ, पूर्वतः = पूर्व के ओर पूर्व+तस्, पुष्प वाटिका = फूलों का उपवन, परम पवित्र पानीयम् = अतिशय पावन जल वाला, परस्सहस्र-पुण्डरीक पटल परिलसितम् = हजारों श्वेत कमलों के समूह से शोभित, पुण्डरीक = श्वेत कमल, पटल = समूह, परिलसितम् = सुशोभित, पतत्रिकुल कूजित-पूजितम् = पतात्रि = पक्षी, कुल = समूह, कूजित = कलरव, पूजितम् = सुशोभित अर्थात् पक्षी-समूह के कलरव से सुशोभित, पयःपूरितं सर = जल से भरा हुआ तालाब, दक्षिणतः = दक्षिण+तस् दक्षिण की ओर, एको = एक, निर्झर-झर्झर-ध्वनि ध्वनित दिगन्तरः = निर्झर = झरना, झर्झर ध्वनि = झर्झर की आवाज, ध्वनित = मुखरित, दिगन्तरः = दिशाओं के मध्य अर्थात् झरने की झर्झर ध्वनि से मुखरित दिशाओं वाला, फल पटलाऽऽस्वादचपलित-चञ्चुषतङ्गकुलाऽऽक्रमणाधिक = फल पटल = फल-समूह, आस्वाद = खाने से, चपलित = चंचल, चञ्चु = चोंच, पतंग = पक्षी, कुल = समूह अर्थात् फलों के आस्वादन से चंचल चोंचों वाले पक्षी समूह के आक्रमण से अधिक, विनत शाखा-शाखि समूह व्याप्तः = झुकी हुई डालियों वाले वृक्ष समूह से व्याप्त, विनय = झुकी हुई, शाखि = वृक्ष, सुन्दर कन्दरः = सुन्दर गुफाओं वाला, पर्वत खण्डः = पर्वत का टुकड़ा (पहाड़ी)।

समास : पुष्पवाटिका = पुष्पाणां वाटिका (षष्ठी तत्पुरुष), परमपवित्र-पानीयम् = परमं पवित्रं पानीयं यस्य तत् (बहुव्रीहि), निर्झर-झर्झर ध्वनि ध्वनित दिगन्तरः = निर्झरस्य झर्झर ध्वनिना ध्वनितम् दिगन्तरम् यस्यसः (बहुव्रीहि), फलपटलास्वाद चपलित चञ्चु पतंग = फलानां पटलस्य आस्वादेन चपलिताः चंचवः येषां ते च ते पतंगाः, तेषां कुलस्य आक्रमणेन अधिक विनताः शाखाः येषां ते च ते शाखिनः तेषां समूहेन व्याप्तः (तत्पुरुष एवं बहुव्रीहि), सुन्दरकन्दराः = सुन्दराः कन्दराः यस्य सः (बहुव्रीहि), पर्वतखण्ड = पर्वतस्य खण्डः (षष्ठी तत्पुरुष)।

विशेष : प्रकृति का मनोरम चित्रण किया गया है।

यावदेष ब्रह्मचारी बटुरलिपुञ्जमुद्ध्य कुसुमकोरकानवचिनोतिः तावत् तस्यैव सतीर्थोऽपरस्तत्समानवयाः कस्तूरिका-रेणु-रुषित इव श्यामः, चन्दनचर्चित-भालः, कर्पूरागुरु-क्षोदच्छुरित-वक्षो-बाहु-दण्डः, सुगन्धपटलैरु-निद्रयन्निव निद्रा-मन्थराणि कोरकनिकुरम्बकान्तरालसुप्तानि मिलिन्द-वृन्दानि झटिति समुपसृत्य निवारयन् निवारयन् गौरबटुमेवमवादीत्।

हिन्दी अनुवाद : जैसे ही यह ब्रह्मचारी बालक भ्रमर समूह को उड़ाकर पुष्पों की कलियों को तोड़ता है, तब तक उसी का सहपाठी सह अवस्था वाला, कस्तूरी के चूर्ण से धूसरित सा श्यामल रंग वाला, चन्दन से सुभोभित ललाट वाला, कपूर और अगरु के चूर्ण से व्याप्त वक्षःस्थल एवं भुजाओं वाला, निद्रा से आलस्य करते हुए तथा कलियों के भीतर सोये हुए भ्रमर समूह को सुगन्ध-समूह से मानो जगाता हुआ अचानक निकट पहुँचकर उस गौर बालक को रोकता हुआ इस प्रकार कहा -

शब्दार्थ एवं व्याकरण : अलिपुञ्जम् = भ्रमरों का समूह, उद्ध्य = उड़ाकर उद्+धूञ्+त्यप्, कुसुम कोरकान् = फूलों की कलियों को, सतीर्थो = साथ अध्ययन करने वाला अर्थात् सहपाठी, तत्समानवया = उसके समान अवस्था वाला, कस्तूरिका-रेणु-रुषित इव = कस्तूरी के चूर्ण से सना हुआ सा, चन्दन चर्चित भालः =

चन्दन के लेप से सुशोभित ललाट वाला, कर्पूरागुरुक्षोदच्छुरित-वक्षो-बाहुदण्डः = कपूर एवं अगरु के चूर्ण से सुशोभित वक्षःस्थल एवं भुजाओं वाला, सुगन्धपटलैरुन्निद्रयन्निव = सुगन्ध समूह से मानो जगाता हुआ, निद्रामन्थराणि = निद्रासे आलस्य करते हुए, कोरक निकुरम्बकान्तराल सुप्तानि = कलियों के समूह के भीतर सोते हुए, मिलिन्द वृन्दानि = भ्रमर-समूह, झटिति = सहसा, समुपसृत्य = समीप जाकर सम+उप+सज्+ल्यप्, निवारयन् = रोकता हुआ, गौरवटुम् = गौर ब्रह्मचारी बालक।

समास : अलि पुञ्जम् = अलीनां पुञ्जम् (षष्ठी तत्पुरुष), कुसुमकोरकान् = कुसुमानां कोरकान् (षष्ठी तत्पुरुष), सतीर्थो = समाने तीर्थे गुरौ वसति, चन्दन चर्चित भालः = चन्दनेन चर्चितम् भालम् यस्य सः (बहुवीहि)।

अलंकार : कस्तूरिकाश्यामः में उत्प्रेक्षा अलंकार है, उन्निद्रयन्निव = उत्प्रेक्षा अलंकार है।

अलं भो अलम् ! मयैव पूर्वमवचितानि कुसुमानि, त्वं तु चिरं रात्रावजागरीरिति क्षिप्रं नोत्थापितः, गुरुचरणा अत्र तडागतटे सन्ध्यामुपासते, संस्थापिता मया निखिला सामग्री तेषां समीपे। यां च सप्तवर्षकल्पाम् यावनत्रासेन निःशब्दं रुदतीम्, परमसुन्दरीम्, कलित-मानवदेहामिव सरस्वती सान्त्वयन् मरन्दमधुरा अपः पाययन्, कन्दखण्डानि भोजयन्, त्वं त्रियामाया यायत्रयमनैषीः समयधुना स्वपिति, उदबुद्धय च पुनस्तथैव रोदिष्यति, तत्परिमार्गणीयान्येतस्याः, पितरौ गृहं च –“इति संश्रुत्य उष्णं निःश्वस्य यावत् सोऽपि किञ्चिद् वक्तुमिषेव तावदकस्मात् पर्वतशिखरे निपपात उभयोर्दृष्टिः।

हिन्दी अनुवाद : हे मित्र अब रहने दीजिए! मैंने पहले ही पुष्प तोड़ लिए हैं, तुम तो देर रात तक जागते रहे, इसलिए तुमको शीघ्र नहीं उठाया, गुरुजी यहाँ सरोवर के तट पर सन्ध्योपासना कर रहे हैं, मैंने सभी पूजन-सामग्री उनके पास रख दी है और जिस, (कन्या को) लगभग सात वर्ष की, यवनों के त्रास से सुबक-सुबक कर रोती हुई, अति सुन्दरी-मानव शरीर धारण करने वाली सरस्वती के समान कन्या को ढाढ़स बंधाते हुए पुष्परस से मधुर जल को पिलाते हुए, कन्दमूल के टुकड़ों को खिलाते हुए तुमने रात्रि के तीन प्रहर बिता दिये थे, वही (कन्या) इस समय सो रही है, जागकर पुनः उसी प्रकार रुदन करेगी। इसलिए उसके माता-पिता एवं घर का पता लगाना चाहिए। यह सुनकर गर्म निःश्वास लेकर जैसे ही उसने भी कुछ कहना चाहा, तब तक अचानक पर्वत-शिखर पर दोनों की दृष्टि पड़ी।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : भो = सम्बोधन वाचक पद है, अलम् = पर्याप्त, अवचितानि = अव+चित्र+क्त = चुनलिये गये, चिरम् = देर तक, अव्यय पद, रात्रौ = रात्रि में, अजागरीः = जागते रहे, जागृ+लङ् (म.पु. ए.व.), क्षिप्रं = शीघ्र, न उत्थापितः = नहीं उठाये गये, उत्+स्था+पृक्+णिच्+क्त, गुरुचरणः = गुरुजी, तडाग तटे = सरोवर के तट पर, सन्ध्यामुपासते = सन्ध्योपासना कर रहे हैं, उप+आस्+लट् आत्मने पद, संस्थापिता = (सम+स्था+णिच्+पुक्+क्त) (स्त्रीलि) रख दिया, सप्तवर्ष कल्पाम् = लगभग सात वर्ष अवस्था वाली ईषद् असमाप्ति के अर्थ में, यावनत्रासेन = यवन+अण् = यवन = यवन के भय के कारण, निःशब्दम् = शब्द रहित, रुदतीम् = रुद+शतृ+ङीप्, कलितमानवदेहाम् = मानव शरीर धारण करने वाली, मरन्दमधुरा = पुष्परस के मिश्रण से मीठा, अपः = जल, पाययन् = पिलाता हुआ, पा+णिच्+शतृ, कन्दखण्डानि = कन्द के टुकड़ों को (ऋषियों का भोज्य पदार्थ), भोजयन् = खिलाते हुए भुज+णिच्+शतृ, त्रियामायाः = रात्रि के, यामत्रयम् = तीन प्रहर, अनैषीः = बिता दिया था, नी+लुङ् (म.पु., ए.व.), स्वापिति = सो रही है, उदबुद्धय = जगकर उद्+बुध्+ल्यप्, रोदिष्यति = रोयेगी, परिमार्गणीयानि = खोजना चाहिए परि+मृज्+अनीयर, एतस्याः = इसके, पितरौ = माता-पिता को, निःश्वस्य = निःश्वास लेकर निः+श्वस्+ल्यप्, वक्तुम् = बोलने के लिए वच्+तुमुन्, इयेष = इच्छा की

इस्+लिट्, पर्वत शिखरे = पर्वत की चोटी पर, निपतात् = पड़ी पत्+लिट्।

समास : तडागस्य तटे (षष्ठी तत्पुरुष), यावनत्रासेन = यावनश्चासौत्रासः, निःशब्दम् = निर्गतः शब्दः यथा तथा निःशब्दम्, कलितमानव-देहाम् = कलितः मानवः देहः यथा सा तां (बहुव्रीहि), पितरौ = माता च पिता च (द्वन्द्व), पर्वतशिखरे = पर्वतस्य शिखरे (तत्पुरुष)।

अलंकार : कलितमानवदेहमिव = उत्प्रेक्षा अलंकार।

तस्मिन् पर्वते आसीदेको महानकन्दरः। तस्मिन्नेव महामुनिरेकः समाधौ तिष्ठति स्म। कदा स समाधिमङ्गीकृतवानिति कोऽपि न वेत्ति। ग्रामणी-ग्रामीण-ग्रामाः समागत्य मध्ये मध्ये तं पूजयन्ति प्रणमन्ति स्तुवन्ति च। तं केचित् कपिल इति, अपरे लोमश इति इतरे जैगीषव्य इति, अन्ये च मार्कण्डेय इति, विश्वसन्ति स्म। स एवायमधुना शिखरादवतरन् ब्रह्मचारिबटुभ्यामदर्शि।

हिन्दी अनुवाद : उस पर्वत पर एक विशाल कन्दरा थी। उसी में एक महामुनि समाधि में लीन थे। उन्होंने कब समाधि लगाई कोई भी नहीं जानता है। ग्राम प्रधान तथा ग्रामीणजन बीच-बीच में आकर उनकी आराधना करते थे, प्रणाम करते थे एवं स्तुति करते थे। कोई उन्हें कपिल, कोई लोमश, कोई जैगीषव्य तथा दूसरे मार्कण्डेय समझते थे। वही महामुनि इस समय पर्वत शिखर से उतरते हुए ब्रह्मचारी बालकों द्वारा देखे गये।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : महाकन्दरः = विशाल गुफा, समाधौ = समाधि में, तिष्ठति

स्म = बैठे थे, अङ्गीकृतवान् = स्वीकार किया, कोऽपि = कोई भी, न = नहीं, वेत्ति = जानता है विद्+लट्+तिप्, ग्रामणी = गाँव का प्रधान, ग्रामीण ग्रामाः = ग्रामवासियों का समूह, समागत्य = आकर सम+आ+गम्+त्यप्, पूजन्ति = पूजा करते हैं पूज्+लट्, प्र.पु.व.व., प्रणमन्ति = प्रणाम करते हैं प्र+नम्+लट्, प्र.पु.व.व., स्तुवन्ति = स्तुति करते हैं स्तुञ्+लट्, प्र.पु.व.व., विश्वसन्ति स्म = विश्वास करते थे (स्म लगा देने से भूतकाल की क्रिया बन जाती है), अवतरन् = उतरते हुए अव+तृ+शत्, आदर्शि = देखे गये दृश्+लुङ् आत्मने पद।

समास : महामुनिः = महान् चासौ मुनिः (कर्मधारय), ग्रामणी-ग्रामीण-ग्रामाः = ग्रामण्यः च ग्रामीणाः च तेषां ग्रामाः। द्वन्द्व एवं तत्पुरुष समास।

अलंकार : “ग्रामणी-ग्रामीण-ग्रामाः” में अनुप्रास अलंकार है। तं केचित् कपिल इति, अपरे लोमश इति आदि वाक्य में उल्लेख अलंकार है।

“अहो! प्रबुद्धो मुनिः! प्रबुद्धो मुनि! इत एवाऽऽगच्छति, इत एवाऽऽगच्छति, सत्कार्योऽयम्, सत्कार्योऽयम्” इति तौ सम्भ्रान्तो बभूवतुः। अथ समापितसन्ध्यावन्दनादिक्रिये समायाते गुरौ, तदाज्ञया नित्य-नियम-सम्पादनाय प्रयाते गौरबटौ छात्रगण-सहकारेण प्रस्तुतासु च स्वागत-सामग्रीषु, इत आगम्यताम् सनाथ्यतामेष आश्रमः, इति सप्रणाममभिगम्यवदत्सु निखिलेषु, योगिराज आगत्य तन्निर्दिष्टकाष्ठपीठं भास्वानिवोदयगिरिमारुरोह उपाविशच्च।

हिन्दी अनुवाद : “अहो! मुनि जग गये ! मुनि जग गये ! इधर ही आ रहे हैं। इधर ही आ रहे हैं, ये सत्कार-योग्य हैं, ये सत्कार योग्य है।” इस प्रकार कहते हुए वे दोनों प्रसन्नता से विह्वल हो गये। इसके पश्चात् सन्ध्यावन्दन आदि कार्यों को समाप्त कर लेने वाले गुरु के आ जाने पर, उनकी आज्ञा से नित्य नियमों (स्नान पूजनादि) को सम्पादित करने के लिए गौर बटु के चले जाने पर छात्रों की सहायता से स्वागत योग्य सामग्रियों के प्रस्तुत हो जाने पर ‘इधर आइए, इस आश्रम को सनाथ करें’ ऐसा सभी लोगों के द्वारा प्रणामपूर्वक आकर बोलने पर, योगिराज आकर मुनि के द्वारा निर्दिष्ट काठ के आसन (चौकी) पर उसी प्रकार आरूढ़ हुए और बैठ गये जिस प्रकार सूर्य

उदयाचल पर (स्थित होकर विराजमान होते हैं।)

शब्दार्थ एवं व्याकरण : अहो = आश्चर्य सूचक, प्रबुद्धो = जग गये प्र+बुध+क्त, इत एव = इधर ही, सत्कार्य = सत्कार के योग्य, सम्भ्रान्तौ = प्रसन्नता से विह्वल हुये, अथ = इसके बाद, समापितसन्ध्यावन्दनादि क्रिये = सन्ध्या वन्दनादि कार्यो को समाप्त कर लेने वाले (गुरो का विशेषण), गुरौ = मुनि के, समायाते = आ जाने पर सम+आ या+क्त (सप्तमी, एकवचन), तदाज्ञया = उनकी आज्ञा से, नित्यनियमसम्पादनाय = स्नान पूजन आदि नित्य नियम को सम्पन्न करने कि लिए, प्रयाते = चले जाने पर, प्र+या (जाना) + क्त (सप्तमी एकवचन), छात्रगणसहकारेण = छात्रों की सहायता से, प्रस्तुततासु = प्रस्तुत हो जाने पर, स्वागतसामग्रीषु = स्वागत सामग्री के, आगम्यताम् = आइए, सनाथ्यताम् = सनाथ कीजिए, सप्रणामम् = प्रणाम के साथ, अभिगम्य = आकर, अभि+गम+ल्यप्, वदत्यु = बोलने पर, निखिलेषु = सभी लोगों के, योगिराजः = योगियों के राजा, तन्निर्दिष्टकाष्ठपीठं = उनके द्वारा निर्दिष्ट काठ की चौकी पर, भास्वान् इव = सूर्य के समान, उदयगिरिं = उदयाचल, आरुरोह = आरुढ़ हुए, आ+रुह+लिट्, उपाविशत् = बैठे गये, उप+आ+विश्+लङ् प्र.पु.ए.व.।

समास : समापितसन्ध्यावन्दनादिक्रिये = समापिता सन्ध्या वन्दनादि क्रिया येन सः तस्मिन् (बहुव्रीहि), छात्रगणसहकारेण = छात्रगणस्य सहकारेण (षष्ठी तत्पुरुष), सप्रणामम् = प्रणामेन सहितम् (अव्ययी), योगिराजः = योगिनां राजा (षष्ठी तत्पुरुष)।

अलंकार : उपमा अलंकार।

अभ्यास प्रश्न

- 1-प्रश्न-भगवान् सूर्य किस दिशा में उदित होते हैं?
- 2-प्रश्न- पूर्व दिशा में भगवान् सूर्य का प्रकाश कैसा है?
- 3-प्रश्न- दिन-रात को उत्पन्न कौन करता है?
- 4-प्रश्न- भगवान् सूर्य तारामण्डल के चक्रवर्ती क्या है?
- 5-प्रश्न- किसके द्वारा युगभेद (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग) किया गया है?

2.4 सारांश

इस इकाई में भगवान् सूर्य के अनेक प्रकार का वर्णन किया गया है। पर्णकुटी केले के पत्तों से घिरे हुए होने के कारण कुंज के सदृश प्रतीत होने वाली इस पर्णकुटी के चारो तरफ पुष्पवाटिका थी। पूर्व में अतिशय पावन जल वाला, सहस्र कमलों से सुशोभित, पक्षिगण के कलरव से परिपूर्ण, अतिशय जल से भरा हुआ सरोवर का वर्णन किया गया है। दक्षिण की ओर झरने की झर-झर ध्वनि से दिशाओं को ध्वनित करने वाला, फल-समूह के आस्वादन से चंचल चोंचों वाले पक्षियों के आक्रमण से अतिशय झुकी हुई डालियों वाले वृक्षों के समूह से भरा हुआ तथा सुन्दर गुफाओं वाला एक पर्वत का टुकड़ा था इन सबका वर्णन इस इकाई में किया गया है।

2.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
अहो	आश्चर्य सूचक,
प्रबुद्धो	जग गये
इत एव	इधर ही,
सत्कार्य	सत्कार के योग्य,
सम्भ्रान्तौ	प्रसन्नता से विह्वल हुये
गुरौ	मुनि के
समायाते	आ जाने पर

तदाज्ञया प्रयाते छात्रगणसहकारेण प्रस्तुततासु स्वागतसामग्रीषु	उनकी आज्ञा से, चले जाने पर छात्रों की सहायता से, प्रस्तुत हो जाने पर, स्वागत सामग्री के,
--	--

2. 6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1- पूर्व दिशा में 2- लाल 3- भगवान सूर्य 4- राजा 5- भगवान् सूर्य के द्वारा

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
शिवराजविजय	अम्बिकादत्तव्यास	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
2-संस्कृत साहित्य का इतिहास .	बलदेव उपाध्याय	शारदा निकेतन वी, कस्तूरवानगर सिगरा वाराणसी

2. 8 उपयोगी पुस्तकें

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
शिवराजविजय	अम्बिकादत्तव्यास	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

2. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1- पर्णकुटी का वर्णन कीजिये ।

इकाई .3 तस्मिन् पूज्यमानैः से तूष्णीमवतस्थे तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 तस्मिन् पूज्यमानैः से तूष्णीमवतस्थे तक व्याख्या

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 उपयोगी पुस्तकें

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्य साहित्य शास्त्र से सम्बन्धित खण्ड एक की तीसरी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि योगिराज कौन थे? योगिराज के पूजे जाने पर ही 'महामुनि उठ गये हैं, और यहाँ आये हैं' ऐसा कानों कान सुनकर बहुत से लोग चारों ओर उपस्थित हो गये हैं।

एक कन्या को सुन्दरी जानकर कोई यवन का लड़का नदी के किनारे से माता के हाथ से छीनकर रोती हुई (इस कन्या को) लेकर भाग गया। उसके बाद कुछ दूर जाकर, जब तक (उसने) छुरा दिखाकर भय से इसके रुदन की ध्वनि को शान्त करने का प्रयत्न किया, तब तक अचानक काल रूपी कम्बल के समान एक भालू वन प्रान्त से आ गया। इन सबका वर्णन इस इकाई में किया गया है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- योगिराज के विषय में बता सकेंगे
- महामुनि के विषय में बता सकेंगे
- महा मुनि को किसने देखा इसके विषय में बता सकेंगे
- कन्या के विषय में आप बता सकेंगे
- कन्या को कौन लेकर भागा, इसके विषय में आप बता सकेंगे

3.3 तस्मिन् पूज्यमानैः, से तूष्णीमवतस्थे तक व्याख्या

तस्मिन् पूज्यमाने, "योगिराडुत्थित" इति "आयात", इति च आकर्ण्य कर्णपरम्पराया बहवो जनाः परितः स्थिताः। सुघटितं शरीरम् सान्द्रां जटाम्, विशालान्यङ्गानि, अङ्गारप्रतिमे नयने, मधुरां गम्भीराञ्च वाचं वर्णयन्तश्चकिता इव सञ्जाताः।

हिन्दी अनुवाद : उस योगिराज के पूजे जाने पर ही 'महामुनि उठ गये हैं, और यहाँ

आये हैं' ऐसा कानों कान सुनकर बहुत से लोग चारों ओर उपस्थित हो गये हैं। (उस महामुनि के) गठे हुए शरीर, घनी जटा, विशाल अंगों, अंगार के समान नेत्रों एवं मधुर तथा गम्भीर वाणी का वर्णन करते हुए आश्चर्य चकित जैसे हो गये।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : तस्मिन् = उस योगिराज के, पूज्यमाने = पूज+य+शानच् पूजे जाने पर, योगिराट् = महामुनि, उत्थितः = उठ गये हैं, इति = ऐसा, आयातः = आये हुए हैं, कर्णपरम्पराया = कर्ण परम्परा से अर्थात् कानों कान, आकर्ण्य = सुनकर, बहवो जनाः = बहुत से लोग, सुघटितम् = सुगठित, सान्द्रां = सघन, विशालान्यङ्गानि = विशाल अंगों को, अङ्गारप्रतिमेनयने = अंगार के समान नेत्रों, मधुरां = मीठी, गम्भीरां = गम्भीर, वाचं = वाणी की, वर्णयन्तः = वर्णन करते हुए अथवा प्रशंसा करते हुए, चकिता इव = आश्चर्य युक्त जैसे, सञ्जाताः = हो गये।

समास : योगिराट् = योगिनां राजा (षष्ठी तत्पुरुष), कर्णपरम्पराया = कर्णयोः परम्पराया (षष्ठी तत्पुरुष)।

अलंकार : अङ्गारप्रतिमे नयने = उपमा अलंकार चकिता इव, सञ्जाताः = इव पद उत्प्रेक्षा वाचक हैं।

विशेष : योगिराज के नेत्र अंगार के सदृश थे। अंगार शब्द से तेज का बोध होता है अर्थात् योगिराज के नेत्र तेज से परिपूर्ण थे।

अथ योगिराजं सम्पूज्य यावदीहितं किमपि आलपितुम्, तावत् कुटीरात् अश्रूयत

तस्या एव बालिकायाः सकरुण—रोदनम्। ततः “किमिति ? कुतः इति ? केयमिति ? कथमिति ?” पृच्छा—परवशे योगिराजे ब्रह्मचारिगुरुणा बालिकां सान्त्वयितुं श्यामबटुमादिश्य कथितम् —

हिन्दी अनुवाद : तत्पश्चात् योगिराज को सम्यक् पूजकर जब तक गुरु ने कुछ बोलने की इच्छा की तब तक पर्ण कुटी से उसी बालिका का करुण रुदन सुनाई पड़ा। तब ‘यह क्या है ?’ ‘यह कहाँ से आई ?’ ‘यह कौन है ?’ ‘यह कैसे आई ?’ इस प्रकार योगिराज के प्रश्न करने पर ब्रह्मचारी के गुरु ने कन्या को शान्त करने के लिए श्याम वर्ण

वाले ब्रह्मचारी को आदेश देकर कहा —

शब्दार्थ एवं व्याकरण : अथ = इसके बाद, सम्पूज्य = सम्यक् पूजा करके सम्पूज्+क्त्वा+ल्यप्, ईहितम् = चेष्टा किया ईह+क्त, कुटीरात् = कुटी से, किमपि = कुछ भी, पृक्षापरवशे = पूछने की इच्छा के अधीन होने पर, आलपितुं = कहने के लिए, आ+लप्+तुमुन्, अश्रूयत् = सुनाई पड़ा श्रु धातु लङ् लकार प्र.पु.ए.व., ब्रह्मचारी गुरुणा = ब्रह्मचारी के गुरु द्वारा, सान्त्वयितुं = सान्त्वना देने के लिए, सान्त्व+णिच्+तुमुन्, आदिश्य = आदेश देकर, आ+दिश्+क्त्वा+ल्यप्, सकरुणरोदनम् = करुण क्रन्दन।

समास : सकरुणरोदनम् = करुणया सहितम् इति सकरुणम् सकरुणं च तद् रोदनम्, पृच्छा परवशे = पृच्छया परवशः पृच्छा परवशः तस्मिन् (तत्पुरुष), ब्रह्मचारि गुरुणा = ब्रह्मचारिणः गुरु इति ब्रह्मचारिगुरु तेन ब्रह्मचारिगुरुणा (तत्पुरुष)।

भगवन्! श्रूयताम् यदि कुतूहलम्। ह्यः सम्पादित—सायन्तनकृत्ये, अत्रेव कुशाऽऽस्तरणमधिष्ठते मयि, परितः समासीनेषु छात्रवर्गेषु, धीर—समीरे—स्पर्शेन मन्दमन्दमादोल्यमानासु, व्रततिषु, समुदिते यामिनी—कामिनी—चन्दनविन्दौ इव इन्दौ, कौमुदीकपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्तां शुश्रूषु इव मौनमाकलयत्सु पतंगकुलेषु, कैरव—विकासहर्षप्रकाशमुखरेषु चञ्चरीकेषु, अस्पष्टाक्षरम्, कम्पमान निःश्वासम्, श्लथकण्ठम्, घर्घरितस्वनम्, चीत्कारमात्रम्, दीनतामयम्, अत्यवधानश्रव्यत्वादानुमितदविष्टतम् क्रन्दनमश्रौषम्।

हिन्दी अनुवाद : भगवन् ! यदि उत्सुकता है तो सुनिए। कल सायंकालीन कार्यो को सम्पन्न कर लेने पर मैं यहीं कुश के आसन पर बैठा हुआ था, चारों तरफ छात्रगण आसीन थे, मन्द—मन्द पवन के स्पर्श से लताएँ कम्पित हो रही थीं, रजनीरूपी कामिनी (युवती) के ललाट पर स्थित चन्दन बिन्दु के समान चन्द्रमा उदित हो रहा था, ज्योत्सना के बहाने आकाश मानो अमृत की धारा बरसा रहा था, हम लोगों की नीति विषयक चर्चा को सुनने के लिए पक्षियों के समूह ने मौन धारण कर लिया था, कुमुद पुष्पों के विकसित हो जाने पर प्रसन्नता की अभिव्यक्ति से भौरें गुंजार कर रहे थे, (तभी) अस्पष्ट अक्षरों वाला, कम्पन युक्त, निःश्वास वाला, अवरुद्ध कंठ वाला, घरघराहट ध्वनि वाला, चीत्कार मात्र, दीनता से युक्त अतिशय ध्यान से सुनाई पड़ने के कारण, बहुत दूर स्थित होने का अनुमान हो रहा था, ऐसा विलाप सुनाई पड़ा।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : श्रूयताम् = सुनें, कुतूहलम् = उत्सुकता, ह्यः! = बीता हुआ कल, सम्पादित—सायन्तनकृत्ये = सायंकालीन कार्यो को सम्पन्न कर लेने पर, कुशास्तरणम् = कुश का आसन, समासीनेषु = बैठ जाने पर सम+आस्+शानच्, धीर समीरस्पर्शेन = मन्द पवन के स्पर्श से, मन्द—मन्दमादोल्यमानासु = मन्द—मन्द हिलने वाली, व्रततिषु = लताओं के, समुदिते = उदित होने पर सम+उद्+इ+क्त, इन्दौ = चन्द्रमा के, यामिनी—कामिनी—चन्दन विन्दौ इव = रजनी रूपी युवती के ललाट पर स्थित चन्दन बिन्दु के समान, कौमुदी कपटेन = ज्योत्सना के छल से, सुधाधाराम् = अमृत की धारा, वर्षति इव = मानो वर्षा कर रहा है, अस्मन्नीतिवार्तां = हम लोगों की नीति से सम्बन्धित वार्ता को, शुश्रूषु = सुनने की इच्छा से श्रु+सन्+उ, इव = मानो,

पतंग कुलेषु = पक्षियों के समूह के, मौनम् = चुप्पी को, आकलयत्यु = धारण करने पर आ कल+शतृ (सप्तमी व.व.), कैरवविकासहर्षप्रकाशमुखरेषु = कुमुद पुष्पों के खिल जाने के कारण प्रसन्नता को प्रकट करने से गुंजार करने पर, चंचरीकेषु = भ्रमरों के, अस्पष्टाक्षरम् = स्पष्टता रहित अक्षरों वाला, कम्पमाननिःश्वासम् = कम्पन युक्त निःश्वास वाला, कम्प शानच, श्लथत्कण्ठम् = अवरुद्ध कण्ठ वाला, घर्घरित स्वनम् = घर्घर ध्वनि, चीत्कार मात्र = क्रन्दन मात्र, दीनतामयम् = दीनता से भरे हुए, अत्यवधानश्रयत्वात् = अतिशत ध्यान से सुनाई पड़ने के कारण, अनुमितदविष्टम् = बहुत दूर का अनुमान होने वाला दूर+इष्टन्+ता, क्रन्दनम् = रुदन, अश्रौषम् = सुना श्रू+लुङ् लकार उ.पु.ए.व।

समास : सम्पादितसायन्तनकृत्ये = सम्पादितं सायन्तनकृत्यं येन सः इति सम्पादितसायन्तनकृत्यः तस्मिन् (बहुव्रीहि समास), कुशास्तरणम् = कुशानां, आस्तरणम् = (षष्ठी तत्पुरुष), 'अधिशीङ् स्थासां कर्म' सूत्र से अधि एवं स्था धातु के योग के कारण द्वितीय विभक्ति हुई है। सुधाधाराम् = सुधायाः धाराम् (षष्ठी तत्पुरुष), अस्पष्टाक्षरम् = अस्पष्टानि अक्षराणि यस्मिन् तत (बहुव्रीहि), कम्पमान निःश्वासम् = कम्पमानानिःश्वासा यस्मिन् तत् (बहुव्रीहि)।

विशेष : समासीनेषु छात्रेषु, कैरवविकासहर्षप्रकाशमुखरेषु चंचरीकेषु आदि कई वाक्यों में यस्य च भावेन भाव लक्षणम् सूत्र से सप्तमी विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

अलंकार : समुदितेपतंगकुलेषु में उत्प्रेक्षा अलंकार; यामिनी कामिनी – यहाँ यामिनी में कामिनी का आरोप किया गया है अतः रूपक अलंकार है।

तत्क्षणमेव च "कुत इदम् ? किमिदमिति दृश्यताम् ज्ञायताम्" इत्यादिश्य छात्रेषु विसृष्टेषु, क्षणानन्तरं छात्रेणैकेन भयभीता सवेगमत्युष्णं दीर्घं निःश्वसती, मृगीव व्याघ्राऽऽघाता, अश्रुप्रवाहैः स्नाता, सवेपथुः कन्यकैका अङ्के निधाय समानीता। चिरान्वेषणेनापि च तस्याः सहचरी सहचरो वा न प्राप्तः। ताञ्च चन्द्रकलयेव निर्मिताम् नवनीतेनेव रचिताम् मृणालगौरीम् कुन्दकोरकाग्रदतीम् सक्षोभं रुदतीमवलोक्यास्माभिरपि न पारित निरोद्धुं नयनवाष्पाणि।

हिन्दी अनुवाद : उसी समय, यह करुण विलाप कहाँ से ? यह क्या है, देखों और पता लगाओ ? यह आदेश देकर छात्रों को भेज देने पर, कुछ ही समय बाद एक छात्र भयभीत तीव्रता के साथ गर्म एवं लम्बा सांस लेती हुई, बाघ से सूंघी गयी मृगी के समान, अश्रुधाराओं से स्नान की हुई, कम्पन युक्त एक कन्या को गोद में उठाकर ले आया और बहुत देर तक खोजने पर भी उस कन्या की सखी अथवा साथी नहीं मिला। चन्द्रकलाओं से मानो बनाई गयी, मक्खन से मानो रची गयी, कमल नाल के समान गौर वर्ण वाली कुन्द पुष्प की कली के अग्रभाग के समान दाँतों वाली, व्याकुलता के साथ रोती हुई उस कन्या को देखकर हम लोग भी आँसुओं को रोकने में समर्थ न हो सके।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : तत्क्षणमेव = उसी समय, दृश्यताम् = देखिए दृश्+लोट् लकार (प्र.पु., ए.व.), ज्ञायताम् = जानिए ज्ञा+लोट् लकार (प्र.पु., ए.व.), विसृष्टेषु = भेज देने पर, छात्रेषु = छात्रों के, भीता = डरी हुई भी+क्त+टाप्, निःश्वसती = निःश्वास लेती हुई, निस्+श्वस्+शतृ (स्त्री), मृगीव = मृगी के समान, व्याघ्राघाता = बाघ सूँघी गई, स्नाता = नहाई हुई, स्ना+क्त+टाप्, संवेपथुः = कम्पन युक्त, स+वेपृ+अथुच्, निधाय = रखकर, नि+धा+ल्यप्, समानीता = ले आयी गयी, सम्+आ+नी+क्त+टाप्, चिरान्वेषणेनापि = (चिर+अन्वेषणेन+अपि) बहुत समय तक खोजने पर भी, सहचरी = सखी, सह+चर्+अच्+डीस् (स्त्री), सहचर = साथी, न = नहीं, प्राप्तः = प्राप्त हुआ प्र+अप्+क्त, ताम् = उस कन्या को, चन्द्रकलाया = चन्द्रमा की कला से, निर्मिताम् = बनाई गई, नवनीतेन = मक्खन से, मृणाल गौरीम् = कमल नाल के समान गौर वर्ण वाली, कुन्दकोरकाग्रदतीम् = कुन्द पुष्प की कली के अग्रभाग के समान दाँतों वाली, कोरक = कली, सक्षोभं = व्याकुलता से युक्त, रुदती = रोती हुई, रुद्र+शतृ+डीप्,

अवलोक्य = देखकर, अव लोक+ल्यप्, अस्माभिः = हम लोगों के द्वारा (अस्मद् शब्द तृतीया व.व.), नयन वाष्पाणि = आँसुओं को, निरोद्धम् = नियन्त्रित करने के लिए, नि+रुध+तुमुन्, नपारितम् = पार न पा सकें।

समास : वेगेन सहितम् (तत्पुरुष), व्याघ्राघाता = व्याघ्रेण आघाता (तृतीया तत्पुरुष), अश्रुप्रवाहैः = अश्रूणां प्रवाहै (षष्ठी तत्पुरुष), सहचरी = सहचरति इति सहचर स्त्रीलिंग में डीस् प्रत्यय लगाकर सहचरी बना, चन्द्रकलया = चन्द्रस्य कला इति चन्द्रकला तथा, मृणालागौरीम् = मृणालस्य इव गौरीम्, कुन्दकोरकाग्रदतीम् = कुन्दस्य कोरकाणाम्, अग्राणि इव दन्ताः यस्याः सा, ताम् (बहुव्रीहि), सक्षोभम् = क्षोभेन सहितम् (तत्पुरुष), नयन-वाष्पाणि = नयनस्य वाष्पाणि (षष्ठी तत्पुरुष)।

अलंकार : चन्द्रकलयेव निर्मिताम्, नवनीतेनेव रचिताम् में उत्प्रेक्षा अलंकार है। मृणालगौरीम् तथा कुन्दकोरकाग्रदतीम् में लुप्तोपमा अलंकार है।

अथ "कन्यके। मा भैषीः पुत्रि ! त्वाम् मातुः, समीपे प्रापयिष्यामः, दुहितः ! खेदं मा वह, भगवति ! भुङ्क्ष्व किञ्चित्, पिब पयः, एते तव भ्रातरः, यत् कथयिष्यसि तदेव करिष्यामः, मा स्म रोदनैः प्राणान् संशयपदवीमारोपयः, मास्मकोमलमिदं शरीरं शोकज्वालालीढं कार्षीः" इति सहस्रधा बोधनेन कथमपि सम्बुद्धा किञ्चिद् दुग्धं पीतवती। ततश्च मया क्रोडे उपवेश्य, "बालिके ! कथय क्व ते पितरौ ? कथमेतस्मिन्श्रमप्रान्ते समायात ? किं ते कष्टम् ? कथमारोदीः किं वाच्छसि ? किं कुर्मः ?" इति पृष्ठा मुग्धतया अपरिकलित-वाक्पाटवा, भयेन-विशिथिलवचनविन्यासा, लज्जया अतिमन्दस्वरा, शोकेन रुद्धकण्ठा, चकितचकितेव कथं कथमपि अबोधयदस्मान् यद्-एषा अस्मिन्नेदीयस्येव ग्रामे वसतः कस्यापि ब्राह्मणस्य तनयाऽस्ति।

हिन्दी अनुवाद : इसके बाद हे बालिके ! भयभीत मत हो पुत्री तुमको (तुम्हारी) माता के पास पहुँचा देंगे। हे पुत्रि ! दुःखी मत हो। हे देवि कुछ खाओ, दुग्ध पिया, ये सब तुम्हारे भाई हैं, जो तुम कहोगी, वही हमें करेंगे, रोने से अपने प्राणों को संशय में मत डालो, इस कोमल शरीर को शोक की ज्वाला से मत जलाओ, इस प्रकार हजारों प्रकार से समझाने पर समझी और कुछ दूध पिया। तत्पश्चात् मैंने गोद में उठाकर हे बालिके! बोलो, तुम्हारे माता-पिता कहाँ हैं ? कैसे इस आश्रम प्रान्त में आगमन हुआ ? तुमको क्या दुःख है ? क्यों रो रही हो ? क्या चाहती हो ? हम सब क्या करें ? इस प्रकार पूछी गयी अबोधता के कारण वाणी की चतुराई को न जानने वाली, डर के कारण अस्पष्ट वचनों वाली, लज्जा के कारण अतिशय मन्द स्वर वाली, चिन्ता के कारण भरे हुए कण्ठ वाली अत्यधिक डरी हुई जैसी, किसी प्रकार हम लोगों को बताया कि वह अति निकट के ही गाँव में निवास करने वाले किसी ब्राह्मण की पुत्री है।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : कन्यके = हे बालिके, कन्यका शब्द सम्बोधन ए.व., भैषी = मत डरो भी+लुङ् प्र.पु.ए.व., दुहितः = पुत्रि, प्रापयिष्यामः = पहुँचा देंगे, प्र+अप्+णिच्+लिट् उत्तम पुरुष व.व., मा वह = मत करो, भुङ्क्ष्व = खाओ भुज् आत्मने पद, लोट् लकार म.पु.ए.व., पिब = पिया, संशयपदवी = संदेह की पदवी, आरोपयः = प्राप्त करो, मा स्म के योग में लङ् लकार म.पु.ए.व., शोकज्वालावलीढम् = शोक की अग्नि से युक्त अव+लिङ्+क्त, कार्षीः = करो, क्+लुङ् म.पु.ए.व., सहस्रधा = अनेक प्रकार, बोधनेन = समझाने से सम्बुद्धा = समझ गई, पीतवती = पी, पा+क्तवतु+डीप्, क्रोडे = गोद में, क्रोड शब्द सप्तमी ए.व., उपवेश्य = बैठाकर, उप+विश+णिच्+ल्यच्, पितरौ = माता और पिता, आरोदीः = रोई रुद लुङ् म.पु.ए.व., पृष्ठा = पूछी गई, मुग्धतया = भोलापन के कारण मुग्धता शब्द तृतीया ए.व., अपरिकलितवाक्पाटवा = बोलने की चतुराई से रहित, विशिथिलवचनविन्यासा = अस्पष्ट शब्दों में बात करने वाली, समायाता = आयी, सम+आ+या+क्त, लज्जया = लज्जा शब्द तृतीया ए.व., अतिमन्दस्वरा = अत्यधिक मन्द स्वरों वाली, रुद्धकण्ठा = अवरुद्ध कण्ठ वाली, (रुद्ध = रुध्+क्त), चकित चकिता =

अत्यन्त चकित हुई, **नेदीयसि** = अति निकट के ही आन्तिक+इयसुन्, **वसतः** = निवास करने वाले, वस्+शतृ, षष्ठी ए.व., **तनया** = पुत्री।

समास : संशयपदवी = संशयस्य पदवी (षष्ठी तत्पुरुष), **शोकज्वालावलीढम्** = शोकस्य ज्वालाया अवलीढम् (तत्पुरुष), **अपरिकलितवाक् पाटवा** = अपरिकलितम् वाक्पाटवम् यया स (बहुव्रीहि), **अतिमन्दस्वरा** = अति मन्दः स्वरो चस्याः सा (बहुव्रीहि), **विशिथिल वचन विन्यासा** = विशेषेण शिथिलः वचनानां विन्यासः यस्याः सा (बहुव्रीहि), **रुद्धकण्ठाः** = रुद्धः कण्ठः यस्याः सा (बहुव्रीहि)। **अलंकार** : शोकज्वालावलीढम् में शोक रूपी ज्वाला से युक्त यहाँ रूप अलंकार है।

विशेष : भयग्रस्त ब्राह्मण कन्या का स्वाभाविक चित्रण किया गया है।

एनां च सुन्दरीमाकलय्य कोऽपि यवनतनयो नदीतटान्मातुर्हस्तादाच्छिद्य क्रन्दन्ती नीत्वाऽपससार। ततः कञ्चिदध्वानमतिक्रम्य यावदसिधेनुकां सन्दर्श्य विभीषिकयाऽस्याः क्रन्दनकोलाहलं शमयितुमियेष; तावदकस्मात्कोऽपि काल-कम्बल इव भल्लूको वनान्तादुपजगात्। दृष्ट्वैव यवनतनयोऽसौ तत्रैव त्यक्त्वा कन्यकामिमां शाल्मलितरुमेकमारुरोह। विप्रतनया चैव पलाशपलाशिःश्रेण्यां प्रविश्य घृणाक्षरन्यायेन इत् एव समायाता यवाद् भयेन पुनारोदितुमारब्धवती, तावदस्मच्छात्रेणैवाऽनीतेन' ति।

हिन्दी अनुवाद : और इस कन्या को सुन्दरी जानकर कोई यवन का लड़का नदी के किनारे से माता के हाथ से छीनकर रोती हुई (इस कन्या को) लेकर भाग गया। उसके बाद कुछ दूर जाकर, जब तक (उसने) छुरा दिखाकर भय से इसके रुदन की ध्वनि को शान्त करने का प्रयत्न किया, तब तक अचानक काल रूपी कम्बल के समान एक भालू वन प्रान्त से आ गया। उसे देखते ही वह यवन का लड़का वहीं इस कन्या को छोड़कर एक सेमर के वृक्ष पर चढ़ गया और यह ब्राह्मण कन्या पलाश वृक्षों की पंक्ति में घुस कर घृणाक्षरन्यास से इधर ही आ गई, ज्यों ही डर से पुनः रोना आरम्भ किया त्यों ही मेरा छात्र ही इसे ले आया।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : एनां = इस कन्या को, **सुन्दरी** = सौन्दर्य से भरी हुई, **आकलय्य** = समझकर, आ+कल्+त्यप्, **कोऽपि** = कोई, **यवनतनयः** = मुसलमान का लड़का, **नदीतटात्** = नदी के तट से, **क्रन्दती** = रोती हुई (कन्या को) **क्रन्द+शतृ**, **नीत्वा** = लेकर नी+क्त्वा, **अपससार** = पलयित हो गया, अप सृ लिट् लकार प्र.पु. ए.व., **ईषद** = कुछ, **अध्वानम्** = मार्ग को, **अतिक्रम्य** = जाकर, अति+क्रम+त्यप्, **असिधेनुकाम्** = छुरिका (छुरी), **सन्दर्श्य** = दिखाकर सम+दृश+णि+त्यप्, **विभीषिकया** = डर से, **विभीषिका** शब्द तृतीया ए.व., **क्रन्दन कोलाहलम्** = रोने की ध्वनि को, **शमयितुम्** = शान्त करने के लिए, शम+णि+तुमुन्, **इयेष** = इच्छा की, इष् (इच्छा के अर्थ में) + लिट् लकार प्र.पु., ए.व., **तावत्** = तभी, **अकस्मात्** = सहसा, **काल कम्बल** = काले कम्बल के समान, **भल्लूकः** = भालू, **वनान्वात्** = वन प्रान्त से, **उपजगाम** = आ गया, उप+गम्+लिट्, **त्यक्त्वा** = छोड़कर, त्यज्+क्त्वा, **शाल्मलीतरुम्** = सेमर के पेड़ पर, **आरुरोह** = चढ़ गया, आ+रुह+लिट्, प्र.पु.ए.व. **विप्रतनया** = ब्राह्मण-कन्या, **पलाशपलाशिःश्रेण्यां** = पलाश के पत्तों के बीच में, **प्रविश्य** = प्रवेश कर, प्र+विश+त्यप्, **घृणाक्षरन्यायेन** = घृणाक्षर न्याय से (आशातीत कार्य सिद्धि), **इत् एव** = इधर ही, **समायाता** = आ गयी, सम+आ+या+क्त+टाप्, **आरोदितुम्** = रोने के लिए, रुद्+इ+तुमुन्, **आरब्धवती** = प्रारम्भ कर दिया, आ+रभ+क्तवतु+डीप्, **अस्मच्छात्रेण** = मेरे विद्यार्थी के द्वारा, **अनीता** = लाई गई, आ+नी+क्त+टाप्।

समास : यवनतनयः = यवनस्य तनयः (षष्ठी तत्पुरुष), **नदीतटात्** = नद्याः तटं = नदी तटम् तस्याः (षष्ठी तत्पुरुष), **क्रन्दनकोलाहलम्** = क्रन्दनस्य कोलाहलम् (षष्ठी तत्पुरुष), **काल कम्बलः** = कालश्चसौ कम्बलः (कर्मधारय समास) अथवा कालस्य कम्बलः (षष्ठी तत्पुरुष), **पलाशपलाशिः श्रेण्यां** = पलाशाः, ते पलाशिनः तेषां श्रेणी, तस्याम् (तत्पुरुष)

अलंकार : पलाशपलाशिःश्रेण्यां = यमक अलंकार।

विशेष : घुणाक्षरन्याय = घुन जब लकड़ी को छेदता है, तब यदा-कदा अक्षरों जैसी आकृति बन जाती है, अर्थात् कभी-कभी ऐसे कार्य सिद्ध हो जाते हैं, जिसके विषय में सोचा भी न गया हो।

तदाकर्ण्य कोपज्वालाज्वलित इव योगी प्रोवाच – “विक्रमराज्येऽपि कथमेष पातकमयो दुराचारणामुपद्रवः ?” तः स उवाच – “महात्मन्! क्वाधुना विक्रमराज्यम् ? वीरविक्रमस्य तु भारतभुवं विरहय्य गतस्य वर्षाणां सप्तदश-शतकानि व्यतीतानि। क्वाधुना मन्दिरे मन्दिरे जय-जय ध्वनिः ? क्व सम्प्रति तीर्थ-तीर्थे घण्टानादः ? क्वाद्यापि मठे-मठे वेद घोष ? अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धू ये धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यन्ते: “क्वचिन्मन्दराणि भिद्यन्ते क्वचित्तुलसीवनानि छिद्यन्ते, क्वचिद्दारा अपह्रियन्ते, क्वचिद्धनानि-लुण्ठयन्ते, क्वचिदार्तनादाः, क्वचिदरुधिरधारा, क्वचिदग्निदाहः, क्वचिद् गृहनिपातः” इत्येव श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः।

हिन्दी अनुवाद : उसको सुनकर मानो क्रोध की ज्वाला से जलते हुए योगी ने कहा – “विक्रम के राज्य में भी कैसे यह दुराचारियों का पाप से भरा हुआ उपद्रव ? तत्पश्चात् वे ब्रह्मचारी के गुरु बोले – महात्मन् ! विक्रम का राज्य इस समय कहाँ ? वीर विक्रम को तो भारत भूमि को छोड़कर गये सत्रह सौ वर्ष बीत गये। अब मन्दिरों में जयनाद कहाँ ? तीर्थ-स्थानों में घण्टों का निनाद अब कहाँ ? मठों में आज भी वेदों की ध्वनि कहाँ ? आज वेदों को फाड़कर रास्तों में फेंक दिये जा रहे हैं, धर्मशास्त्रों को उड़ाकर अग्नि में जला दिये जाते हैं, पुराणों को पीसकर जल में डाल दिये जाते हैं, भाष्यों को नष्ट करके भाड़ों में भस्म कर दिये जाते हैं, कहीं पर मन्दिरों को तोड़ दिया जा रहा है, कहीं तुलसी के वन काटे जा रहे हैं, कहीं स्त्रियों का अपहरण कर लिया जा रहा है, कहीं धन लूट लिये जा रहे हैं, कहीं करुण क्रन्दन सुनाई पड़ते हैं। कहीं खून की धारा, कहीं अग्निदाह तो कहीं घर गिरा दिये जा रहे हैं, इस समय चारों ओर यही सुनाई देता है और दिखाई पड़ता है।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : पातकमयः = पाप से युक्त, पातक+मयट्, महात्मन् = महानुभाव, तदाकर्ण्य = उसको सुनकर, कोपज्वालाज्वलित इव = क्रोध की ज्वाला से मानो जलते हुए, प्रोवाच = बोले, विक्रम राज्येऽपि = विक्रम के राज्य में भी, भारतभुवं = भारत भूमि को, विरहय्य = छोड़कर, वि रह+ल्यप्, गतस्य = गये हुए का, गम्+क्त (षष्ठ ए.व.), सप्तदश शतकानि = सत्रह सौ, व्यतीतानि = व्यतीत हो गये, वि+अत+क्त, मन्दिरे-मन्दिरे = प्रत्येक मन्दिरों में, मठे-मठे = प्रत्येक मठों में, वेद-घोषः = वेदों की ध्वनि, विच्छिद्य = फाड़कर, वि+च्छिद्+ल्यप्, वीथीषु = मार्गों में, विक्षिप्यन्ते = फेंक दिये जाते हैं, उद्धूय = उड़ाकर, उद्+धूञ्+ल्यप्, धूमध्वेषु = अग्नि में, ध्मायन्ते = झोंके जा रहे हैं, ध्मा लट् लकार, पिष्ट्वा = पीसकर पिष्ट्+क्त्वा, पात्यन्ते = डाले जा रहे हैं, भाष्याणि = भाष्यों को, भ्राष्ट्रेषु = भाड़ों में, भर्ज्यन्ते = जलाये जा रहे हैं, भृजी+यक् (भाव कर्म) लट्, भिद्यन्ते = तोड़े जा रहे हैं, भिद्+यक्+लट्, छिद्यन्ते = काटे जा रहे हैं, दाराः = स्त्री, दृ (विदारणे)+णि+घञ्, लुण्ठयन्ते = लूटे जाते हैं, आर्तनादाः = करुणक्रन्दन, रुधिरधाराः = खून की धारा, गृह निपातः = घरों का नाश, इत्येव = ऐसा ही, श्रूयते = सुनाई पड़ता है, अवलोक्यते = दिखाई देता है।

समास : महात्मन् = महान् आत्मा यस्य सः सम्बोधन में (बहुव्रीहि), भारतभुवन् = भारतस्य भूः ताम् भारतभुवम् (तत्पुरुष), घण्टानादः = घण्टायाः नादः (तत्पुरुष), कोपज्वालाज्वलितः = कोपस्य ज्वालाया ज्वलितः (तत्पुरुष), धूमध्वजेषु = धूम एव ध्वजो यस्य सः धूमध्वजः तेषु धूमध्वजेषु (बहुव्रीहि), तुलसीवनानि = तुलस्याः वनानि (षष्ठी तत्पुरुष), रुधिरधाराः = रुधिरस्य धाराः (षष्ठी तत्पुरुष), अग्निदाहः = अग्निना दाहः

(तृतीया तत्पुरुष), गृह-निपातः = गृहाणां निपातः (षष्ठी तत्पुरुष)।

अलंकार : 'कोपज्वाला ज्वलित इव' उत्प्रेक्षा अलंकार है।

विशेष : 'दारा' शब्द का प्रयोग सर्वदा बहुवचन में होता है 'दारयति हृदयम्' इति दाराः यहाँ प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति का प्रयोग किया गया है।

तदाकर्ण्य दुखितश्चकितश्च योगिराडुवाच – "कथमेतत् ? ह्य एव पर्वतीयाञ्छकान् विनिर्जित्य महता जयघोषेण स्वराजधानीमायातः श्रीमानादित्यपदलाञ्छनो वीरविक्रमः। अद्यापि तद् विजयपताका मम चक्षुषोरग्रत इव समुद्धूयन्ते, अधुनाऽपि तेषां पटहगोमुखादीनां निनादः कर्णशष्कुलीं पूरयतीव, तत्कथमद्य वर्षाणाम् सप्तदश-शतकानि व्यतीतानि" इति ? ततः सर्वेषु स्तब्धेषु चकितेषु च ब्रह्मचारिगुरुणा प्रणम्य कथितम् –

हिन्दी अनुवाद : उसे सुनकर दुःखी और आश्चर्यचकित होकर योगिराज ने कहा – यह कैसे ? कल ही आदित्य उपाधि से अलंकृत श्रीमान् वीर विक्रम पर्वत पर रहने वाले शकों को जीतकर महान् जयघोष के साथ अपनी राजधानी आये हैं। आज भी मानो उनकी (वीर विक्रम की) विजय पताकाएं मेरे नेत्रों के समक्ष फहरा रही हैं, अब भी उनके नगाड़े, तुरही आदि वाद्य यन्त्रों की ध्वनि मानो मेरे कर्ण छिद्रों को भर रही हैं, तो फिर कैसे आज सत्रह सौ वर्ष व्यतीत हो गये। तत्पश्चात् सब लोगों के स्तब्ध हो जाने पर ब्रह्मचारी के गुरु ने प्रणाम करके कहा –

शब्दार्थ एवं व्याकरण : तदाकर्ण्य = यह सुनकर, ह्य एव = कल ही, पर्वतीयान् = पर्वत वासियों को, शकान् = शकराजाओं को, विनिर्जित्य = जीतकर, वि+निर्+जी+ल्यप्, महता = बहुत बड़े (महत् शब्द तृतीया ए.व.), स्वराजधानीम् = अपनी राजधानी को, आदित्यपदलाञ्छनः = आदित्य उपाधि से सुशोभित, अद्यापि = आज भी, तदविजय पताका = उसकी विजय पताकाएं, चक्षुषोरग्रतः = चक्षुषोः+अग्रत+नेत्रों के सामने, समुद्धूयन्ते = उड़ रही है सम्+उद्+धूञ्+लट् आत्मने पद, पटह गोमुखादीनां = नगाड़े एवं तुरही आदि वाद्ययन्त्रों के, निनादः = ध्वनि, कर्णशष्कुली = कर्णविवर, पूरयति इव = मानो भर रहे हैं, ततः = उसके बाद, सर्वेषु स्तब्धेषु = सभीके स्तब्ध हो जाने पर, प्रणम्य = प्रणाम करके, प्र+नम्+क्त्वा+ल्यप्।

समास : जयघोषेण = जयस्य घोषेण (षष्ठी तत्पुरुष), आदित्य पद लाञ्छनः = आदित्य पद लाञ्छनं यस्य सः (बहुव्रीहि), तदविजयपताका = तस्य विजयस्य पताका (षष्ठी तत्पुरुष), पटहगोमुखादीनाम् = पटहश्च गोमुखश्च आदिर्येषां तेषां (द्वन्द्व एवं बहुव्रीहि समास), कर्णशष्कुलीम् = कर्णस्य शष्कुलीम् (षष्ठी तत्पुरुष),

अलंकार : अद्यापि पूरयतीव में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

भगवान्बद्धसिद्धासनैर्निरुद्ध-निश्वासैःप्रबोधितकुण्डलिनीकैर्विजितदशैन्द्रियैरनाहतनाद-तन्तुमवलम्ब्याऽऽज्ञाचक्रं संस्पृश्य, चन्द्रमण्डलं भित्त्वा, तेजः पुञ्जमविगम्य, सहस्रदलकमलास्यान्तः प्रविश्य, परमात्मानं साक्षात्कृत्य, तत्रैव रममाणैर्मृत्युञ्जयैरानन्दमात्रस्वरूपैर्ध्यानावस्थितैर्भवा-दृशैर्न ज्ञायते कालवेगः। तस्मिन् समये भवता ये पुरुषा अवलोकिताः तेषां पञ्चाशत्तमोऽपि पुरुषो नावलोक्यते। अद्य न तानि स्रोतांसि नदीनाम् न सा संस्था नगराणाम् न सा आकृतिर्गिरीणाम्, न सा सान्द्रता विपिनानाम् । किमधिकं कथयामो भारतवर्षमधुना अन्यादृशमेव सम्पन्नमस्ति ।

हिन्दी अनुवाद : भगवान् ? सिद्धासन लगाकर, निःश्वास को रोककर, कुण्डलिनी को जागृत कर, दशों इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर, अनाहतनाद के तन्तु का आश्रय ग्रहण करके आज्ञाचक्र को सम्यक् रूप से लक्ष्य करके, चन्द्रमण्डल को भेदकर चन्द्रमण्डल से सम्बन्धित तेज पुञ्ज का तिरस्कार करके, सहस्र दलों वाले कमल के भीतर प्रवेश करके, परमात्मा का दर्शन कर उसी में रमण करने वाले, मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले आनन्द मात्र स्वरूप वाले, ध्यान में लीन आप जैसे महायोगियों के द्वारा समय की गतिशीलता नहीं जानी जाती है, उस समय आपके द्वारा जो पुरुष देखे गये,

(अब) उनकी पचासवीं पीढ़ी का व्यक्ति भी नहीं दिखाई पड़ रहा है। आज न तो नदियों की वे धाराएँ हैं, नगरों की वह स्थिति नहीं है, पर्वतों की वह आकृति नहीं है, वनों की वह सघनता नहीं है। अधिक मैं क्या कहूँ, इस समय भारतवर्ष दूसरे जैसा हो गया है।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : बद्धसिद्धासनै = सिद्धासन लगाने वाले, निरुद्ध निःश्वासैः = श्वासों को रोकने वाले, निरुद्ध = नि+रुध+क्त, प्रबोधित कुण्डलिनीकैः = कुण्डालिनी को जगाने वाले, विजितदशेन्द्रियैः = दशों इन्द्रियों को जीत लेने वाले, अनाहतनादतन्तुम् = अनाहतनाद के तन्तु का, अवलम्ब्य = आश्रय लेकर, आज्ञाचक्रं = आज्ञा चक्र को, संस्पृश्य = सम्यक स्पर्श करके, सम्+स्पृश+क्त्वा+ल्यप्, चन्द्रमण्डलं = चन्द्रमण्डल को, भित्त्वा = भेदकर भिद्+क्त्वा, तेजपुञ्जम् = तेज समूह को, अविगणय्य = न समझकर, अ+वि+गण्+ल्यप्, रममाणैः = विहार करते हुए, रम+शानच्, मृत्युञ्जयैः = मृत्यु को जीतने वाले, मृत्यु+जि+खच् मुम् का आगम, सहस्रदलकमलस्यान्तः = सहस्रदलों वाले कमल के भीतर, प्रविश्य = प्रवेश कर, प्र+विश्+क्त्वा+ल्यप्, परमात्मानं = परमात्मा को, साक्षात्कृत्य = साक्षात्कार करके, आनन्दमात्रस्वरूपैः = आनन्द मात्र स्वरूप वाले, ध्यानावस्थितैः = ध्यान में लीन, भवादृशैः = आप जैसों के द्वारा, न ज्ञायते = नहीं जाना जाता है, कालवेगः = समय का वेग, अवलोकिताः = देखे गये हैं, भवता = आपके द्वारा, पञ्चाशतमोऽपि = पचासवाँ भी, न = नहीं, अवलोक्यते = दिखाई पड़ रहा है, अद्य = आज, तानि = वे, स्त्रोतोसि = धाराएँ, नदीनां = नदियों की, संस्था = स्थिति, नगराणाम् = नगरों की, सा = वह (स्त्रीलिङ्ग), आकृतिः = आकृति, गिरीणाम् = पर्वतों की, षष्ठी (व.व.), सान्द्रता = सघनता, सान्द्र+तल, विपिनानाम् = वनों की, किमधिकं = अधिक क्या, कथयामि = कहूँ, अधुना = इस समय, अन्यादृशमेव = अन्य जैसा ही, सम्पन्नमास्ति = हो गया है।

समास : बद्धसिद्धासनैः = बद्धं सिद्धासनं यैः तैः (बहुव्रीहि), निरुद्धनिःश्वासैः = निरुद्धाः निःश्वासाः यैस्तैः (बहुव्रीहि), प्रबोधितकुण्डलिनीकैः = प्रबोधिता कुण्डलिनी यैस्तैः (बहुव्रीहि), विजितदशेन्द्रियैः = विजितानि दशेन्द्रियाणि यैस्तैः (बहुव्रीहि), अनाहतनादतन्तुम् = अनाहतश्चासौनादः (कर्मधारय), तस्य तन्तुम् (षष्ठी तत्पुरुष), सहस्रदलकमलस्य = सहस्रदलं यत् कमलम् तस्य (कर्मधारय), ध्यानावस्थिताः = ध्याने अवस्थिताः (सप्तमी तत्पुरुष)।

विशेष : सिद्धासन = योगसाधना में लगाये जाने वाला आसन, कुण्डलिनी = एक शक्ति है, जिसे योगी लोग जगाकर मस्तिष्क तक पहुँचाते हैं, अनाहतनाद = सुषुम्ना नाड़ी के मध्य में स्थित चतुर्थ कमल को अनाहत कहा जाता है, उसी कमल से उत्पन्न नाद (ध्वनि) को अनाहत नाद कहा जाता है, आज्ञा चक्र = दोनों भौंहों के मध्य इसकी स्थिति मानी गयी है, योगी लोग उसी को लक्ष्य करके ध्यान लगाते हैं, चन्द्रमण्डल = आज्ञा चक्र से परे सोलह दलों वाला कमल चक्र, सहस्रदल कमल = इसकी स्थिति मस्तिष्क में मानी गयी है, यही परमात्मा का निवास माना जाता है।

इदमाकर्ण्य किञ्चित्स्मित्वेव परितोऽवलोक्य च योगी जगाद — “सत्यं न लक्षितो मया समयवेगः। यौधिष्ठिरे समय कलितसमाधिरहं वैक्रम-समये उदस्थाम्। पुनश्च वैक्रमसमये समाधिमाकलय्य अस्मिन् दुराचारमये समयेऽहमुत्थितोऽस्मि। अहं पुनर्गत्वा समाधिमेव कलयिष्यामि, किन्तु तावत् संक्षिप्य कथ्यतां का दशा भारतवर्षस्येति।”

हिन्दी अनुवाद : यह सुनकर कुछ मुस्कराते हुए से चारों तरफ देखकर योगी बोले — सच्ची बात है, मेरे द्वारा समय का वेग नहीं देखा गया। युधिष्ठिर के काल में समाधि लगाकर विक्रमादित्य के समय में उठा था और पुनः विक्रमादित्य के समय में समाधि लगाकर इस दुराचार से भरे हुये काल में मैं उठा हूँ। मैं पुनः जाकर समाधि में लीन हो जाऊँगा, किन्तु थोड़े में तब तक बतलाइये कि भारतवर्ष की क्या दशा है ?

शब्दार्थ एवं व्याकरण : इदम् = इस कथल को, आकर्ण्य = सुनकर,

आ+कर्ण+क्त्वा+ल्यप्, किञ्चिद् = कुछ, स्मिन्त्वा = मुस्कराकर, इव = मानो, परितः = चारों तरफ, अवलोक्य = देखकर, अव+लोक+क्त्वा+ल्यप्, जगाद् = बोले (गद्+लिट् लकार प्र.पु. ए.व.), न लक्षितो = नहीं देखा गया, मया = मेरे द्वारा, समय वेगः = समय का प्रवाह, यौधिष्ठिरे = युधिष्ठिर से सम्बद्ध, युधिष्ठिर+अणु, समये = समय में, कलित समाधि = समाधि लगाने वाला, वैक्रम = विक्रम से सम्बद्ध विक्रम+अणु, उदस्थाम् = उठा, उत्+स्था+लुङ् उ.पु. ए.व. गत्वा = जाकर, गम्+क्त्वा, कलयिष्यामि = धारण करूँगा (कल+लृट् लकार उ.पु. ए.व.), आकलय्य = आ+कल+ल्यप्, लगाकर, दुराचारमये = दुराचारों से युक्त, उत्थितो = उठा, उद्+स्था+क्त्, संक्षिप्य = संक्षेप करके, सम्+क्षिप्+ल्यप्।

समास : समयवेगः = समपस्य वेगः (षष्ठी तत्पुरुष), कलित समाधिः = कलितः समाधिः येन सः (बहुव्रीहि)।

तत्संश्रुत्य

भारतवर्षीयदशासंस्मरण—संजातशोको

हृदयस्थप्रसादसम्भारोद्गिरणश्रमेणेवातिमन्थरेण स्वरेण “मा स्म धर्मध्वंसनघोषणैर्यो—गिराजस्य धैर्यमवधीरय” इति कण्ठं रुन्धतो वाष्पानविगणय्य, नेत्रे प्रमृज्य, उष्णं निःश्वस्य, कातराभ्यामिव नयनाभ्याम् परितोऽवलोक्य, ब्रह्मचारिगुरुः प्रवक्तुमारभत—“भगवन् ! दम्भोलिघटितेयं रसना, या दारुणदान—वोदन्तोदीरणैर्न दीर्यते, लोहसारमयम्, हृदयम्, यत्संस्मृत्य यावनान्परस्सहस्त्रान् दुराचारान् शतधा न भिद्यते, भस्मसाच्च न भवति। धिगस्मान्, येऽद्यापि जीवामः, श्वसिमः, विचरामः, आत्मन आर्यवंश्यांश्चाऽभिमन्यामहे” —

हिन्दी अनुवाद : उसे सुनकर भारतवर्ष की दशा का स्मरण करके उत्पन्न शोक वाले, मानो हृदय में स्थित हर्ष समूह को प्रकट करने के श्रम से अत्यधिक मन्द स्वर वाले, “धर्म को नष्ट करने वाली वार्ताओं से योगिराज के धैर्य को मत विचलित करो” इस प्रकार कण्ठ को अवरुद्ध करने वाले आँसुओं का विचार न करके नेत्रों को पोछकर, गर्म निःश्वास लेकर, दीनता पूर्ण नेत्रों से चारों ओर देखकर ब्रह्मचारी के गुरु ने बोलना प्रारम्भ कर दिया — “भगवन् ! (मेरी) यह जिह्वा वज्र से निर्मित है, जो भयंकर राक्षसों के वृत्तान्त की चर्चा से फट नहीं जाती, (मेरा) हृदय लोहे से बना हुआ है, जो यवनों के हजारों अत्याचारों को याद करके सैकड़ों टुकड़ों में विभक्त नहीं हो जा रहा है और भस्म होकर राख नहीं हो जाता है। हम लोगों को धिक्कार है, जो आज भी जी रहे हैं, श्वास ले रहे हैं, घूम रहे हैं और स्वयं को आर्यवंशी समझ रहे हैं।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : तत्संश्रुत्य = उसको सुनकर, सम्+श्रु+क्त्वा+ल्यप्, भारतवर्षीय दशा संस्मरण = भारत वर्ष की दशा का स्मरण, संजातशोको = उत्पन्न शोक वाले, हृदयस्थप्रसादसम्भारी = हृदय के स्थित प्रसन्नता का समूह, उद्गिरण = प्रकट करने में, उद्+गृ+ल्युट्, इव = उत्प्रेक्षा वचक, अतिमन्थरेण = अत्यन्त, मन्द, स्वरेण = स्वर से, मा = निषेध सूचक, धर्म ध्वंसन घोषणैः = धर्म विनाशक चर्चाओं से, ध्वंसनम् = ध्वंस+ल्युट्, अवधीरय = विचलित करो, अव+धृ+लोट् म.पु.ए.व., वाष्पान् = आँसुओं को, अविगणय्य = न गिनकर, अ+वि+गण+ल्यप्, प्रमृज्य = पोंछकर, प्र+मृज्+ल्यप्, निःश्वस्य = श्वास लेकर, निर्+श्वस्+ल्यप्, कातराभ्याम् = दीनता से पूर्ण, नयनाभ्यात् = नेत्रों से, परितः = चारों तरफ, अवलोक्य = देखकर, प्रवक्तुम् = बोलने के लिए, प्र+वच्+तुमुन्, आरभत् = आरम्भ किया, आ+रभ्+लङ् लकार, दम्भोलि = वज्र, घटिता = बनी हुई, रसना = जिह्वा, दारुण = भयंकर, दानव = राक्षस, उदन्त = वृत्तान्त, उदीरणैः = वर्णनों से, न = नहीं, दीर्यते = विदीर्ण हो रहा है, द्व+भावकर्म यक्+लट्+तिप्, लौह सारमयम् = लौह निर्मित, संस्मृत्य = स्मरण करके, सम्+स्मृ+क्त्वा+ल्यप्, यावनान् = यवनों के द्वारा किये गये, परस्सहस्त्रान् = हजारों,

दुराचारान् = अत्याचारों को, शतधा = सैकड़ों टुकड़ों में, न भिद्यते = नहीं विभक्त कर रहा है, भस्मसात् = भस्म (जलकर राख नहीं हो जा रहा है), धिक् = धिक्कार है, अस्मान् = हम सबको, जीवामः = जी रहे हैं, श्वसिमः = श्वास ले रहे हैं, विचरामः = घूम रहे हैं, आत्मनः = स्वयं को, आर्य वंश्याः = आर्य वंशज, अभिमन्यामहे = मानते हैं।

समास : भारतवर्षीयदशासस्मरणसंजातशोको = भारतवर्षीया दशायाः संस्मरणेन संजातः शोकः यस्य सः (बहुव्रीहि), हृदयस्थप्रसादसम्भारोद्गिरणश्रमेण = हृदये तिष्ठति, हृदयस्थः हृदयस्थः, यः प्रसादः हृदयस्थ प्रसादः तस्य सम्भारो, तस्य उद्गिरणे यः श्रमः तेन (तत्पुरुष), दम्भोलि घटिता = दम्भोलिना घटिता (तत्पुरुष), दारुणदानवोदन्तोदीरणैः = दारुणाः ये दानवाः तेषाम् उदन्तस्य उदीरणैः (तत्पुरुष)।

विशेष : धिगस्मान् धिक् के योग में द्वितीय विभक्ति हुयी है। अस्मान् शब्द अस्मद् शब्द का द्वितीयाः वर्ष है।

अलंकार : हृदयस्थप्रसादसम्भारोद्गिरणश्रमेणैव = उत्प्रेक्षा अलंकार है, कातराभ्यामिव = उपमा अलंकार है, ये अद्यापि अभिमन्यामहे तक दीपक अलंकार है।

उपक्रममुममाकर्ण्य अवलोक्य च मुर्नेविमनायमानं हरिद्राद्रवक्षालितमिव वदनम्, निपतदवारिबिन्दुनी नयने, अञ्चितरोमकञ्चुकं शरीरम्, कम्पमानमधरम्, भज्यमानञ्चस्वरम्, अवागच्छत् 'सकलानर्थमयः, सकलवञ्चनामयः, सकलपापमयः सकलोपद्रवमयश्चायं वृत्तान्तः' इति, अतएव तस्मरणमात्रेणापि खिद्यत एष हृदये, तन्नाहमेनं निरर्थं जिग्लापयिषामि, न वा चिखेदयिषामि" इति च विचिन्त्य -

"मुने ! विलक्षणोऽयं भगवान् सकल-कला-कलाप-कलनः सकलकालनः करालः कालः। स एव कदाचित् पयःपूर-पूरितान्यकूपारतलानि मरुकरोति। सिंह-व्याघ्र-भल्लूक-गण्डक फेरु-शश-सहस्र-व्याप्तान्यरण्यानि जनपदी करोति, मन्दिर-प्रासाद-हर्म्य-श्रङ्काटक-चत्वरोद्यान-तडागगोष्ठमयानि नगराणि च काननीकरोति। निरीक्ष्यताम् कदाचिदस्मिन्नेव भारतेवर्षे यायजूकै राजसूयादियज्ञा व्ययाजिषत, कदाचिदिहैव वर्षवाताऽऽतप-हिम-सहानि-तपांसि अतापिषत। सम्प्रति तु म्लेच्छैर्गावो हन्यन्ते, वेदां विदीर्यन्ते, स्मृतयः समृद्यन्ते; मन्दिराणि मन्दुरीक्रियन्ते, सत्यःपात्यन्ते, सन्तश्च सन्ताप्यन्ते। सर्वमेततन्माहृत्यं तस्येव महाकालस्येति कथं धीरधौरेयोऽपि धैर्यं विधुरयसि ? शान्तिमाकलय्यातिसंक्षेपेण कथय यवनराज्यवृत्तान्तम्। न जाने किमित्यनावश्यकमपि शुश्रुषते में हृदयम्" - इति कथयित्वा तूष्णीमवतस्थे।

हिन्दी अनुवाद : इस उपक्रम (प्रस्तावना) को सुनकर, हल्दी के रस से धुले गये जैसे मुनि के उदासमुख, आँसुओं को बहाते हुए नेत्रों, अत्यधिक रोमांचित शरीर, काँपते हुए अधर, टूटते हुए स्वर को देखकर जान गये कि यह सम्पूर्ण वृत्तान्त सभी अनर्थों से भरा हुआ, सम्पूर्ण वंचनाओं, सभी पापों तथा सम्पूर्ण उपद्रवों से युक्त है। अतएव, उसको याद करने मात्र से ही इनका हृदय दुःख से भर जा रहा है, इसलिए मैं इनको निरर्थक इन्हें उदास एवं कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता हूँ। यह सोचकर (बोले) -

हे मुनि, सम्पूर्ण कला-कलापों के रचयिता तथा सभी का संहार करने वाला, भयंकर महाकाल अद्भुत हैं। वे ही कभी जल धाराओं से भरे हुए समुद्र तलों को रेगिस्तान बना देते हैं, सहस्रों सिंहों, बाघों, भालुओं, गैंडों, सियारों, खरगोशों से व्याप्त जंगलों को नगर बना देते हैं, मन्दिरों, राजमहलों, धनाढ्यों के निवासों, चौराहों, प्राङ्गणों, उपवनों, सरोवरों तथा गोशालाओं से युक्त नगरों को जंगलों में परिवर्तित कर देते हैं। देखिये, कभी इसी भारत देश में यज्ञकर्त्ताओं ने राजसूय आदि यज्ञ किये थे, कभी यहीं वर्षा, आँधी, धूप एवं ठन्ड आदि को सहकर तपस्याएँ की गयी थीं। इस समय मुसलमान गायों की हत्या कर रहे हैं। वेदों को फाड़ रहे हैं। स्मृति-ग्रन्थ कुचले जा रहे हैं, मन्दिर घोड़ों के निवास स्थान बनाये जा रहे हैं, पतिव्रताओं का सतीत्व भंग किया

जा रहा है। सन्तों को कष्ट पहुँचाया जा रहा है। यह सब कुछ उसी महाकाल का महात्म्य है। (तब) धीरों में अग्रणी होते हुए भी (आप) क्यों धैर्य छोड़ रहे हैं ? शान्ति धारण करके अत्यधिक संक्षेप में यवनराज्य के वृत्तान्त को कहिए। (मैं) नहीं जान पा रहा हूँ कि आवश्यक न होते हुए भी मेरा हृदय इस वृत्तान्त को सुनना चाहता है। यह कहकर योगिराज चुप हो गये।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : उपक्रमम् = भूमिका या प्रस्तावना, विमनायमानम् = उदास, वि+मन्+क्यच्+शानच्, हरिद्राद्रव = हल्दी के रस से, क्षालितम् = धुले हुए, इव = समान, वदनं = मुख को, निपत द्वारि बिन्दुनी = आँसुओं को गिराते हुए, अञ्चित-रोमञ्चुकं = रोमांचित, शरीरम् = शरीर को, कम्पमानधरम् = कांपते हुए अधर वाले, कम्प+शानच्, भज्यमानम् = टूटते हुए, भज्+यक्+शानच्, अवागच्छत् = अव+गम्+लङ् लकार, सकलानर्थमयः = सम्पूर्ण अनर्थों से व्याप्त, अनर्थ+मयट्, सकलवञ्चनामयः = सभी वंचनाओं से युक्त, सकलपापमयः = सभी पापों से युक्त, सकलोपद्रवमयः = सभी उपद्रवों से व्याप्त, तत्स्मरणमात्रेणपि = उन वृत्तान्तों के स्मरण मात्र से ही, खिद्यते = दुःखी हो रहे हैं, जिगलापयिषामि = उदास नहीं करना चाहता हूँ, रलै+पुक्+णिच्+सन्+लट् लकार उ.पु.ए.व., चिखेदयिष्यामि = कष्ट देना नहीं चाहता हूँ, खिद्+णिच्+सन्+मिप्, विचिन्त्य = सोचकर, वि+चिन्त्+ल्यप्, सकल कला कलापकलनः = सम्पूर्ण कलाकलापों के स्रष्टा, सकलकालनः = सभी का संहार करने वाला, करालः = भयंकर, कालः = महाकाल, पयःपूर पूरतानि = जल धाराओं से भरे हुए, अकूपार = समुद्र, मरुकरोति = रेगिस्तान बना देते हैं, भल्लूक = भालू, गण्डक = गैँडा, फेरु = सियार, शश = खरगोश, अरण्यानि = जंगलों को, प्रसाद = राजमहल, हर्म्य = अट्टालिका (धनाद्यों का महल), श्रृंगारक = चौराहों, चत्वर = प्राङ्गण, उद्यान = उपवन, तडाग = सरोवर, गोष्ठीयानि = गोशालाओं, काननी करोति = जंगल बना देता है, निरीक्ष्यताम् = देखिए, निर+ईक्ष्+लोट् लकार, कदाचित् = कभी, अस्मिन्नेव = इसी, भारतेवर्षे = भारत वर्ष में, यायजूकैः = यज्ञकर्ताओं द्वारा, व्ययाजिषत = वि+यज्+लङ्, प्र.पु.ए.व., वर्ष = वर्षा, वात = हवा (आँधी), आतप = धूप, हिम = बर्फ (ठन्ड), सहानि = सहने वाले, तपांसि = तपस्याएं, अतापिषत = तपे जाते थे, तप+लुङ् लकार, म्लेच्छ = यवन, गावो = गाय, हन्यन्ते = मारी जाती हैं, हन्+यक्+लट् लकार प्र.पु. व.व., विदीर्यन्ते = फाड़े जाते हैं, वि+दृ+यक्+लट्, प्र.पु.व.व., स्मृतयः = स्मृतियाँ, समृद्यन्ते = रौंदी जा रही हैं, मन्दुरीक्रियन्ते = मन्दुर = घोड़ों का निवास स्थान, घुड़साल बनाये जा रहे हैं, सत्यः = सती स्त्रियाँ, पात्यन्ते = पतित बनायी जा रही हैं, सन्तः = सज्जन, सन्ताप्यन्ते = पीड़ित किये जा रहे हैं, धीरधौरेयो = धीरों में श्रेष्ठ, विधुरयसि = छोड़ रहे हो, आकलय्य = आ+कल+ल्यप्, अतिसंक्षेपेण = अत्यधिक संक्षेप से, कथयित्वा = कहकर, शुश्रूषते = सुनने की इच्छा कर रहा है, श्रु+सन्+तन्, तूष्णीम् = शान्ति को, अवतस्थे = धारण किया, अव+स्था+लिट् लकार प्र.पु., ए.व.।

समास : हरिद्राद्रवक्षालितम् = हरिद्रायाः द्रवेन क्षालितम् (तत्पुरुष), निपतद्वारिबिन्दुनी = निपतन्तः वारिविन्दवः याम्याम् ते (बहुव्रीहि), अञ्चितरोम कञ्चुकम् = अञ्चितः रोमकञ्चुकः यस्य तत् (बहुव्रीहि), सकल कला कलाप कलनः = सकलानां कलानां कलापस्य कलनः (तत्पुरुष), पयपूर पूरितानि = पयसापूरेण पूरितानि (तत्पुरुष), अकूपारतलानि = अकूपाराणाम् तलानि (तत्पुरुष), मरुकरोति = अमरुं मरुं करोति इति मरुकरोति (तत्पुरुष), धीरधौरेयो = धीरेषु धौरेयो (तत्पुरुष), यवनराज्य-वृत्तान्तम् = यवनराज्यस्यवृत्तान्तम् (तत्पुरुष)।

अलंकार : "हरिद्राद्रवक्षालितमिव = उत्प्रेक्षा अलंकार है। "सकल कला कलापन कलनः सकल कालनः करालः कालः" में अनुप्रास अलंकार है, सभंग पर्द यमक

अलंकार भी दृष्टिगत होता है।

विशेष : भारत वर्ष की पहले की दशा एवं तत्कालीन स्थिति के सुन्दर वर्णन के साथ विषमालंकार भी है।

अभ्यास प्रश्न 1

- 1-प्रश्न- महामुनि को पर्वत शिखर से उतरते हुए किसने देखा?
- 2-प्रश्न- उस योगिराज के पूजे जाने पर कौन उठ गये ?
- 3-प्रश्न- कन्या को लेकर कौन भाग गया ?
- 4-प्रश्न- क्या दिखाकर भय से कन्या के रुदन की ध्वनि को शान्त करने का प्रयत्न किया।
- 5-प्रश्न-भालू को देखते ही यवन का लड़का किस पर चढ़ गया?

3.4 सारांश

इस इकाई में मुनि तथा कन्या का विशेष वर्णन किया गया है। भारत की दशा को देखते हुए योगी ने कहा – विक्रम के राज्य में भी कैसे यह दुराचारियों का पाप से भरा हुआ उपद्रव ? तत्पश्चात् वे ब्रह्मचारी के गुरु बोले – महात्मन् ! विक्रम का राज्य इस समय कहाँ ? वीर विक्रम को तो भारत भूमि को छोड़कर गये सत्रह सौ वर्ष बीत गये। अब मन्दिरों में जयनाद कहाँ ? तीर्थ-स्थानों में घण्टों का निनाद अब कहाँ ? मठों में आज भी वेदों की ध्वनि कहाँ ? मठों में आज भी वेदों की ध्वनि कहाँ ? आज वेदों को फाड़कर रास्तों में फेंक दिये जा रहे हैं, धर्मशास्त्रों को उडाकर अग्नि में जला दिये जाते हैं, पुराणों को पीसकर जल में डाल दिये जाते हैं, भाष्यों को नष्ट करके भाड़ों में भस्म कर दिये जाते हैं, कहीं पर मन्दिरों को तोड़ दिये जा रहे हैं, कहीं तुलसी के वन काटे जा रहे हैं, कहीं स्त्रियों का अपहरण कर लिया जा रहा है, कहीं धन लूट लिये जा रहे हैं, कहीं करुण क्रन्दन सुनाई पड़ते हैं। इन सबका वर्णन इस इकाई में किया गया है

3.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
पातकमयः	पाप से युक्त
महात्मन्	महानुभाव
तदाकर्ण्य	उसको सुनकर
प्रवोच	बोले
विक्रम राज्येऽपि	विक्रम के राज्य में भी
भारतभुवं	भारत भूमि को
विरहय्य	छोड़कर
गतस्य	गये हुए का
सप्तदश शतकानि	सत्रह सौ
व्यतीतानि	व्यतीत हो गये
मन्दिरे-मन्दिरे	प्रत्येक मन्दिरों में
मठे-मठे	प्रत्येक मठों में
वेद-घोषः	वेदों की ध्वनि

3. 6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- 1- ब्रह्मचारी ने 2- महामुनि 3- यवन का लड़का 4- छुरा दिखाकर 5- सेमर के वृक्ष पर

3.7 सदरुु ग्रन्थ सूची

1.ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
शिवराजविजय	अम्बिकादत्तव्यास	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
2.संस्कृत साहित्य का इतिहास .	बलदेव उपाध्याय	प्रकाशक शारदा निकेतन वी, कस्तूरवानगर सिगरा वाराणसी

3. 8 उपयोगी पुस्तकें

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
शिवराजविजय भारती वाराणसी	अम्बिकादत्तव्या	चौखम्भा संस्कृत

3. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कन्या के विषय में परिचय दीजिये ।

इकाई 4 . अथ स मुनिः, से विरराम तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 अथ स मुनिः, से विरराम तक व्याख्या

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 उपयोगी पुस्तकें

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्य साहित्य शास्त्र से सम्बन्धित खण्ड एक की चौथी इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने जाना कि समाधि से उठे हुए योगिराज भारत की दुर्दशा को देखकर यह कहने लगे कि विक्रम के राज्य में यह कैसा अनर्थ हो रहा है, तब ब्रह्मचारियों के गुरु कहते हैं कि विक्रम का राज्य बीते तो सत्रह सौ वर्ष हो चुके हैं।

इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि मूर्तियों को किसने तोड़ा ? सोमनाथ के मन्दिर का वर्णन करते हुए कहते हैं आज तो उस (सोमनाथ) तीर्थ का नाम भी कोई स्मरण नहीं करता है, परन्तु उस समय उसका वैभव अलौकिक था। निश्चित रूप से वहां बहुमूल्य मूँगों, पद्मरागों, मणियों और मोतियों से जटित कपाटों, खम्भों, देहलियों, दीवारों छज्जों, कपोतों के दरबों को मथकर, रत्न समूह को लेकर, दो सौ मन सोने की सीकड़ में लटकने वाला प्रकाशमान चकमकाहट से दर्शकों के नेत्रों को चकित कर देने वाला विशाल सोमनाथ मन्दिर था। इन सबका वर्णन इस इकाई किया गया है

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- महा मुनि के विषय में बता सकेंगे
- भारत पर मुगल शासकों ने कैसा अत्याचार किया इसके विषय में आप अध्ययन करेंगे
- सोमनाथ मन्दिर के विषय में बता सकेंगे
- सोमनाथ मन्दिर को किसने तोड़ा ? इसके विषय में आप अध्ययन करेंगे
- महमूद गजनवी के विषय में बता सकेंगे
- शहाबुद्दीन के विषय में आप बता सकेंगे

4.3 अथ स मुनिः, से स्व कुटीरं प्रविवेश तक व्याख्या

अथ स मुनिः – “भगवन् ! धैर्येण, प्रसादेन, प्रतापेन, तेजसा, वीर्येण, विक्रमेण, शान्त्या, श्रिया, सौख्येन, धर्मेण विद्यया च सममेव परलोकं सनाथितवति तत्र भवति वीरविक्रमादित्ये शनैःशनैः पारस्परिकविरोधविशिथिलीकृतस्नेह— बन्धनेषु राजसु, भामिनी—भ्रू भङ्ग—भूरिभाव प्रभाव—पराभूत—वैभवेषु भटेषु, स्वार्थ चिन्ता—सन्तान वितानैकतान्नेष्मात्यवर्गेषु, प्रशंसामात्रप्रियेषु प्रभुषु, “इन्द्रस्त्वं वरुणस्त्वं कुबेरस्त्वम्” इतिवर्णनामात्रसक्तेषु बुद्धजनेषु कश्चन् गजिनीस्थाननिवासी महामदो यवजि ससेन्ः प्राविशद् भारतवर्षे। स च प्रजानः विलुण्ठय, मन्दिराणि निपात्य, प्रतिमा—विभिद्य परशतान् जनांश्च दासीकृत्य, शतश उष्ट्रेषु रत्नान्यारोप्य स्वदेशमनैषीत्। एवं स ज्ञातास्वादः पौनः पुन्येन द्वादशवारमागत्य भारतमलुलुण्ठत्। तस्मिन्नेव च स्वसंरम्भे एकदा गुर्जरदेश चूडायित सोमनाथतीर्थमपि धूलीचकार।

हिन्दी अनुवाद : इसके बाद उस मुनि ने कहना आरम्भ किया – भगवन् ! धैर्य, हर्ष, प्रताप, तेज, शक्ति, पराक्रम, शक्ति, लक्ष्मी, मित्रता, धर्म, विद्या के साथ ही पूज्य विक्रमादित्य के स्वर्ग चले जाने पर धीरे-धीरे आपसी विरोध के कारण राजाओं में प्रेम बन्धनों के शिथिल हो जाने पर योद्धाओं के कामिनियों के कटाक्षों एवं हावभाव (अदाओं) के प्रभाव से सम्पत्तियों के नष्ट हो जाने पर, मन्त्रियों के एक मात्र स्वार्थ की चिन्ता में लीन हो जाने पर, नृपों के प्रशंसा मात्र में प्रेम रखने पर, “आप इन्द्र हैं, आप वरुण हैं, आप कुबेर हैं”, इस प्रकार के वर्णनों में (प्रशंसात्मक उच्चारणों में) विद्वज्जनों के आसक्त हो जाने पर, गजनी स्थान का रहने वाला कोई महा अहंकारी, यवन सेना के साथ भारत वर्ष में प्रवेश किया और उसने प्रजा को लूटकर, मन्दिरों को ध्वंस करके, मूर्तियों

को तोड़कर, सैकड़ों लोगों को गुलाम बनाकर, सैकड़ों ऊटों पर रत्नों को रखकर अपने देश ले गया। इस प्रकार (लूटने का) स्वाद चख लेने वाला वह यवन शासक बार-बार आकर भारतवर्ष को बारह बार लूटा। अपने उन्हीं आक्रमणों में एक बार गुजरात देश के अलंकार स्वरूप सोमनाथ तीर्थ को भी धूलि में मिला दिया।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : मुनिः = ब्रह्मचारी के गुरु ने, धैर्येण = धैर्य से, प्रसादेन = प्रसन्नता से, प्रतापेन = प्रताप से, तेजसा = तेज से, वीर्येण = शक्ति से, विक्रमेण = पराक्रम से, शान्त्या = शान्ति से, श्रिया = लक्ष्मी से, सौख्येन = सुख से, धर्मेण = धर्म से, विद्यया = विद्या से, तत्रभवति = पूज्य, सनाथितवाति = सनाथित करने पर (चले जाने पर), शनैःशनैः = धीरे-धीरे, पारस्परिक विरोधः = आपसी वैमनस्य, विशिथिलीकृत स्नेह बन्धनेषु = प्रेम बन्धनों को शिथिल कर देने पर, भामिनीभ्रूभङ्गभूरिभाव प्रभाव पराभूत वैभवेषु = भामिनि = कामिनी, भ्रूभङ्ग = कटाक्ष, भूरिभाव = हाव-भाव, पराभूत = नष्ट, वैभवेषु = सम्पत्तियों के अर्थात् कामनियों के कटाक्षों एवं हाव-भावों के प्रभाव से नष्ट सम्पत्तियों वाले, भटेषु = योद्धाओं के, स्वार्थ चिन्ता-सन्तान वितानैकतानेषु, सन्तान = समूह, वितान = विस्तार एकतानेषु = एकमात्र, अर्थात् एक मात्र स्वार्थ की चिन्ताओं के विस्तार में तत्पर हो जाने पर, कश्चन् = कोई, प्राविशद् = प्रवेश किया, विलुण्ठ्य = लूटकर, वि+लुण्ठ+ल्यप्, निपात्य = गिराकर, नि+पत्+णिच्+ल्यप्, विभिद्यः = तोड़कर, वि+भिद्+क्त्वा+ल्यप्, परशशतान् = सैकड़ों, दासीकृत्य = दासी बनाकर दास+च्वि प्रत्यय, उष्ट्रेषु = ऊँटों पर, आरोप्य = लादकर, आ+रोप्+ल्यप्, पौनः पुन्येन = बार-बार करके, अलुण्ठत् = लूटा लुण्ठ+लङ् प्र.पु.ए.व., अनैषीत् = ले गया, णीञ् (प्रापणे) लुङ् लकार, प्र.पु. ए.व., स्वसंरम्भे = अपने आक्रमण में, गुर्जरदेश चूडायितम् = गुजरात देश का अलंकार, चूडायितम् = चूड़ा+क्यच्+इ+ऋत्, धूली चकार = धूलि में मिला दिया।

समास : पारस्परिकविरोधविशिथिलीकृतस्नेहबन्धनेषु = पारस्परिक विरोधेन विशिथिलीकृतानि स्नेह बन्धनानि यैः तेषु (बहुव्रीहि), भामिनी भ्रू भङ्ग भूरि भाव प्रभाव पराभूत वैभवेषु = भामिनीनां भ्रू भंगानां, भूरिभावनां चा प्रभावेण पराभूतानि वैभवानि येषां तेषु (बहुव्रीहि), अमात्यवर्गेषु = अमात्यानां वर्गेषु (तत्पुरुष), गजिनी स्थान निवासी = गजिनी स्थानस्य निवासी (तत्पुरुष), ज्ञातास्वादः = ज्ञातः आस्वादः येन सः (बहुव्रीहि), गुर्जरदेशचूडायितम् = गुर्जरदेशस्य चूडायितम् (तत्पुरुष)।

विशेष : राजाओं के भोग विलास, चाटुकारिता-प्रेम, पारस्परिक विरोध अमात्यों के स्वार्थ आदि का यथार्थ चित्रण किया गया है।

अद्य तु तत्तीर्थस्य नामापि केनापि न स्मर्यते, परं तत्सयमे तु लोकात्तरं तस्य वैभवमासीत्। तत्र हि महार्ह-वैदूर्य-पद्याराग-माणिक्य मुक्ता फलादि जटितानि कपाटानि स्तम्भान्, गृहावग्रहणीः, भित्तीः, वलभीः विटङ्कान च निर्मथ्य, रत्ननिचयमादाय, शतद्वयमणसुवर्ण श्रद्धखलावलम्बिनीं चञ्चच्चाकचक्य चकितीकृतावलोकन-लोचन-निचयां महाघण्टां प्रसह्य संगृह्य, महादेवमूर्तावपि, गदामुदतुलत।

हिन्दी अनुवाद : आज तो उस (सोमनाथ) तीर्थ का नाम भी कोई स्मरण नहीं करता है, परन्तु उस समय उसका वैभव अलौकिक था। निश्चित रूप से वहाँ बहुमूल्य मूँगों, पद्मरागों, मणियों और मोतियों से जटित कपाटों, खम्भों, देहलियों, दीवारों छज्जों, कपोतों के दरबों को मथकर, रत्न समूह को लेकर, दो सौ मन सोने की सीकड़ में लटकने वाला प्रकाशमान चकमकाहट से दर्शकों के नेत्रों को चकित कर देने वाली विशाल घंटा को बलात् ग्रहण करके महादेव की मूर्ति पर भी उसने गदा उठाई।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : तत्तीर्थस्य = उस सोमनाथ तीर्थ का, स्मर्यते = स्मरण किया जाता है, स्मृ+लट् लकार, लोकोत्तरम् = अलौकिक, वैभव = सम्पत्ति महार्ह = बहुमूल्य, वैदूर्य = मूँगा, पद्मरागमाणिक्य-मुक्ता फलादि = पद्मराग, हीरे, मणियाँ

मुक्ताफल आदि, जटितानि = जड़े गये, कपाटानि = किवाड़ियों को, स्तम्भान् = खम्भों को, गृहावग्रहणीः = देहली, भिक्तीः = दीवारा, वलभीः = छज्जा, विटङ्कानि = कबूतरों के दरबों को, निर्मथ्य = मथकर, निर+मथ् +ल्यप्, रत्ननिचयम् = रत्नों के समूह को, आदाय = लेकर, आ+दा+ल्यप्, शतद्वयमणसुवर्ण-श्रृंखलावलम्बिनी = शतद्वय = दो सौ, मण = मन, सुवर्ण = सोना, श्रृंखला = जंजीर, अवलम्बिनी = लटकने वाली, अर्थात् दो सौ मन सोने की जंजीर में लटकने वाली, चंचत् = प्रकाशित, चाकचाक्य = चकमकाहट, चकितीकृता = चकित कर देने वाली, अवलोचक = दर्शक, लोचन निजयां = नेत्र समूह अर्थात् प्रकाशमान चकमकाहट से दर्शकों के नेत्रों को चकित कर देने वाली (घंटा का विशेषण), महाघण्टां = विशाल घंटा को, प्रसह्य = शक्ति पूर्वक प्र+सह्+ल्यप्, संगृह्य = ग्रहण कर, उदतूतुलत् = उठाई, उत्+तुल+लङ् प्र.पु.ए.व.।

समास : महार्ह-वैदूर्य-पद्मराग, माणिक्य मुक्ताफलानिजटितानि = महार्हः वैदूर्याः, पद्मरागाः, माणिक्याः मुक्ताफलानि च ते तैः जटितानि (तत्पुरुष), गृहावग्रहणीः = गृहस्य अवग्रहणीः (तत्पुरुष), रत्न निचयम् = रत्नानां निचयम् (तत्पुरुष), शतद्वयमणसुवर्ण श्रृंखलावलम्बिनीम् = शतद्वयमण सुवर्ण श्रृंखलायम् अवलम्बिनीम् (तत्पुरुष), महादेवमूर्तावपि = महादेवस्य मूर्तावपि (तत्पुरुष)।

अलंकार : इस गद्यांश में सोमनाथ मन्दिर के ऐश्वर्य का वर्णन किया गया है, अतः उदात्त अलंकार है। चञ्चच्चाकचक्य चकिती में अनुप्रास अलंकार है।

अथ "वीर गृहीतमखिलं वित्तं, पराजिता आर्यसेनाः, बन्दीकृता वयम्, संचतममलं यशः, इतोऽपि न शाम्यति ते क्रोधश्चेदस्मांस्ताडय, मारय, छिन्धि, भिन्धि, पातय, मज्जय, खण्डय, कर्तय, ज्वलयः, किन्तु त्यजेमामकिंचित्करीं जडांमहादेव-प्रतिमां। यद्येवं न स्वीकरोषि तद् गुहाणास्मत्तोऽन्यदपि सुवर्णकोटिद्वयम्, त्रायस्व, मैनां भगवन्मूर्तिं स्पाक्षीः" इति साम्रेडं कथयत्सु रुदत्सु पतत्सु विलुण्ठत्सु प्रणमत्सु च पूजकवर्गेषु; "नाहं मूर्तीर्विक्रीणामि; किन्तु भिनद्धि" इति संगर्ज्य जनतायाः हाहाकार-कल-कलमाकर्णयन् घोरगदया मूर्तिमत्तुत्तुत्। गदापातसमकालमेव चानेकार्बुदपद्ममुद्रामूल्यानि रत्नानि मूर्तिमध्यादुच्छलितानि परितोऽवाकीर्यन्त। स च दग्धमुखः तानि रत्नानि मूर्तिखण्डानि च क्रमेलकपृष्ठेष्वारोप्य सिन्धुनदमुत्तीर्य स्वकीयां विजयध्वजिनीं गजिनीं नाम राजधानीं प्राविशत्।

हिन्दी अनुवाद : तत्पश्चात् हे वीर ! तुमने सम्पूर्ण धन ले लिया, आर्यों की सेना को पराजित कर दिया, हम सबको बन्दी बना लिया, निर्मल यश एकत्रित कर लिया, इतने पर भी तुम्हारा क्रोध यदि शान्त नहीं हो रहा है, तो हम सबको प्रताड़ित करो, मारो, विदीर्ण करो, काट डालो, पर्वत से नीचे फेंक दो जल में डुबो दो, खण्ड-खण्ड कर डालो, कतर डालो, जला डालो किन्तु (आपका कुछ न बिगाड़ने वाली) इस जड़ प्रतिमा को छोड़ दो यदि इस प्रकार स्वीकार न हो, तो हम लोगों से और अधिक दो करोड़ सोने की मुद्राएं ले लो, रक्षा करो, इस भगवान् शिव की प्रतिमा का स्पर्श मत करो। इस प्रकार पुजारियों के बार-बार कहने पर, रोने पर, पैरों पर गिरने पर, जमीन पर लोटने और प्रणाम करने पर "मैं मूर्ति बेचता नहीं हूँ किन्तु तोड़ता हूँ" इस प्रकार गर्जन कर लोगों के हाहाकार की ध्वनि को सुनता हुआ भयंकर गदा से मूर्ति को तोड़ दिया और गदा प्रहार के साथ ही अनेक अरब पद्म मुद्राओं के मूल्य के रत्न मूर्ति के बीच से निकल गये और चारों तरफ बिखर गये और वह मुँह जला उन रत्नों और मूर्तियों के टुकड़ों को ऊँट की पीठ पर लादकर सिन्धु नदी को पार करके अपनी विजय पताकाओं से युक्त 'गजिनी' राजधानी में प्रवेश किया।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : गृहीताम् = ले लिया ग्रह+क्त, अखिलम् = सम्पूर्ण, पराजिता = पराजित हो गयी, पर+आ+जि+क्त, आर्य सेना = आर्यों की सेना, बन्दी कृताः = बन्दी बना लिए गये, बन्द+च्चि+कृ+क्त, सञ्चितम् = सञ्चित किया गया,

अमल = निर्मल, इतोऽपि = इतने पर भी, शाम्यति = शान्त होता है, ताडय = पीटो, मारय = मारो, भिन्दि = काट डालो, भिदि+लोट् लकार म.पु.ए.व., पातय = गिरा दो पत्+णिच्+लोट् म.पु.ए.व., माजय = डुबो दो, खण्डय = टुकड़े-टुकड़े कर डालो, कर्तय = कतर दो, अकिञ्चित करीम् = कुछ न करने वाली, जडाम् = अचेतन, स्वीकरोषि = स्वीकार करते हो, गृहाण = ग्रहण करो, अस्मतो = हमसे, अन्यदपि = और भी, सुवर्ण कोटिद्वयम् = दो करोड़ सोने की मुद्राएं, त्रायस्व = रक्षा करो त्रै+म.पु.ए.व., भगवन्मूर्तिम् = भगवान् शिव की प्रतिमा, मा स्प्राक्षीः = स्पर्श मत करो, स्पृश+लुङ् लकार, साम्रेडम् = बार-बार, पूजकवर्गेषु = पुजारियों के कथयत्सु = कहने पर, कथ+शतृ, रुदत्सु = रोने पर रुद + शतृ, पतत्सु = पैरों पर गिरने पर, पत्+शतृ, विलुण्ठत्सु = जमीन पर लोटने पर वि+लुण्ठ+शतृ, प्रणमत्सु = प्रणाम करने पर, प्र+नम+शतृ, विक्रीणामि = बेचता हूँ, भिनदिम = तोड़ता हूँ, संगर्ज्य = गर्जन करके, अतुत्रुत् = तोड़ दिया, त्रुट् लुङ् लकार प्र.पु.ए.व., गदापातसमकालमेव = गदा प्रहार के समय ही, अनेकार्बुदपदममुद्रामूल्यानि = अनेक अरब पदम मुद्राओं के मूल्य वाले, मूर्तिमध्यात् = मूर्ति के बीच से, उच्छलितानि = उछल गये, अवाकीर्यन्त = बिखर गये, अव+कृ+लङ्, दग्धमुखः = मुंह जला, क्रमेलकपृष्ठेषु = ऊँट के पीठ पर, क्रमेलक = ऊँट, आरोप्य = लादकर, उत्तीर्य = उतारकर, उद+तृ+त्यप्, विजयध्वजिनीम् = विजय की पताका वाली, प्राविशत् = प्रवेश किया, प्र+विश्+लङ् लकार।

समास : आर्यसेना = आर्याणां सेना (तत्पुरुष), सुवर्णकोटिद्वयम् = सुवर्णस्य कोटिद्वयम् (तत्पुरुष), महादेव प्रतिमा = महादेवस्यप्रतिमा (तत्पुरुष), पूजकवर्गेषु = पूजकानां वर्गेषु (तत्पुरुष), गदापातसमकालम् = गदापातस्य समकालम् (तत्पुरुष), अनेकार्बुदपदममुद्रामूल्यानि = अनेकानि अर्बुदपदमानि, मुद्राः येषां तानि (बहुव्रीहि), दग्धमुखः = दग्धं मुखं यस्य सः (बहुव्रीहि)।

अथ कालक्रमेण सप्ताशीत्युत्तरसहस्रतमे (1087) वैक्रमाब्दे सशोकं सकष्टञ्च प्राणाँस्त्यक्तवति महामदे, गोरदेशवासी कश्चित् शहाबुद्दीन नामा प्रथमं गजिनीदेशमाक्रम्य, महामदकुलं धर्मराजलोकाध्वन्यध्वनीनं विधाय, सर्वाः प्रजाश्च पशुमारं मारयित्वा, तद्गुधिराद्रिमृदा गोरदेशे बहून् गृहान् निर्माय चतुरङ्गिण्याऽनीकिन्या भारतवर्षप्रविश्य, शीतलशोणितानप्यसयन् पञ्चाशदुत्तर द्वादशशतमितेऽब्दे (1250) दिल्लीमश्वयाम्बभूव।

हिन्दी अनुवाद : इसके बाद समयक्रम से विक्रम संवत् 1087 शोक एवं कष्ट के साथ महमूद गजनवी के प्राण छोड़ देने पर, गोर देश का रहने वाला कोई शहाबुद्दीन नाम का (मुसलमान) पहले गजिनी देश पर आक्रमण करके महमदू गजनवी के वंश को धर्मराज के लोक के मार्ग का पथिक बनाकर, सभी प्रजाओं को पशुओं के सदृश मारकर, उनके रक्त से गीली मिट्टी से गोर देश में बहुत से घरों का निर्माण करके चतुरङ्गिणी सेना के साथ भारतवर्ष में प्रवेश करके ठन्डे रक्त वाले (युद्ध न चाहने वाले) भारतवासियों को भी तलवार से मारते हुए संवत् 1250 में दिल्ली को घुड़सवार सेना से घेर लिया।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : अथ = तत्पश्चात्, कालक्रमेण = समयक्रम से, वैक्रमाब्दे = विक्रम संवत्, सशोकं = शोक के साथ, सकष्टम् = कष्ट के साथ, प्राणान् = प्राणों को, त्यक्तवति = छोड़ देने पर, त्यज्+क्तवतु सप्तमी ए.व., अध्वनीनम् = पथिक, पशुमारम् = पशु के सदृश मौत से, पशु+मृ+णमुल्, मारयित्वा = मारकर, तद्गुधिराद्रिमृदा = उन्हीं के रक्त से गीली मिट्टी से, निर्माय = निर्माण करके, निर+मा+कत्वा+त्यप्, चतुरङ्गिण्य = चतुरङ्गिणी, अनीकिन्या = सेना के साथ, अनीक+इनिः, प्रविश्य = प्रवेश करके, प्र+विश्+क्त्वा+त्यप्, शीतलशोणितान् = ठन्डे रक्त वाले (युद्ध न चाहने वाले), असयन् = तलवार से मारता हुआ, असि+णिच्+शतृ, अश्वयाम्बभूव = अश्वों से घेर लिया, अश्व+णिच्+आम्+भू+लिट् लकार प्र.पु., ए.व।

समास : कालक्रमेण = कालस्यक्रमः कालक्रमः तेन (तत्पुरुष समास), धर्मराजलोकध्वनीनं = धर्मराजस्य लोकः। तस्य अध्वनी अध्वनीनम् (तत्पुरुष), तद्गुधिरार्द्रमृदा = तेषां रुधिराण आर्द्रा मृत् तथा (बहुव्रीहि), शीतल-शोणितान् = शीतलं शोणितं येषां तान् (बहुव्रीहि)।

अलंकार : 'पशुमारं मारयित्वा' में लुप्तोपमा लंकार है।

विशेष : इस स्थल में भाग्य की परिवर्तनशीलता को स्थान दिया गया है।

ततो दिल्लीश्वरं पृथ्वीराजं कान्यकुब्जेश्वरं जयचन्द्रञ्च पारस्परिकविरोध-ज्वर-ग्रस्तं विस्मृतराजनीतिं भारतवर्षदुर्भाग्यायमाणमाकलय्यानायासेनोभावपि विशस्य, वाराणसीपर्यन्तमखण्डमण्डलमकण्टकीटकिट्टं महारत्नमिव महाराज्यमङ्गीचकार। तेन वाराणस्यामपि बहवोऽस्थिरयः प्रचिताः रिङ्गतरङ्गभङ्गा गङ्गाऽपि शोणितशोणा शोणीकृता, परस्सहस्राणि च देवमन्दिराणि भूमिसात्कृतानि। स एव प्राधान्येन भारते यवनराज्याङ्कुराऽऽरोपकोऽभूत्। तस्यैव च कश्चित् क्रीतदासः कुतुबुदीननामा प्रथम भारतसम्राट् संजातः।

हिन्दी अनुवाद : तत्पश्चात् दिल्ली के नृप पृथ्वीराज एवं कान्यकुब्ज के सम्राट् जयचन्द्र को पारस्परिक विरोध रूपी ज्वर से पीड़ित राजनीति को न समझने वाले तथा भारत के आने वाले दुर्भाग्य को जानकर बिना परिश्रम के दोनों (नृपों को) को मारकर वाराणसी तक निर्विघ्न तथा कीड़ों और मल से रहित (निर्मल) श्रेष्ठ रत्न के समान सम्पूर्ण जनपदों से युक्त महान राज्य को अपने अपने अधिकार में कर लिया। उसके द्वारा वाराणसी में हड्डियों के बहुत से पर्वत बना दिये गये, चंचल लहरों वाली गंगा भी रुधिर से लाल करके शोण नदी (लाल रंग) जैसी बना दी गयी, सहस्राधिक देवों के मन्दिर धराशायी कर दिये गये। वही मुख्य रूप से भारतवर्ष में यवनों के राज्य का बीजारोपक हुआ। उसी का कोई खरीदा हुआ कुतुबुदीन नाम का दास भारतवर्ष का प्रथम सम्राट् हुआ।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : पारस्परिक विरोध ज्वरग्रस्तम् = आपसी विरोध के ज्वर से ग्रस्त, विस्मृतराजनीतिम् = राजनीति को स्मरण न करने वाले, भारतवर्ष दुर्भाग्यायमाणम् = भारतवर्ष की आने वाली दुर्भाग्य को, विशस्य = मारकर, वि+शस्+ल्यप्, अनायासेन = बिना परिश्रम के (सरलता से), उभौ अपि = दोनों को भी, अस्थिरयः = हड्डियों के पहाण, पर्यन्तम् = चारों ओर, अखण्डम् = सम्पूर्ण, मण्डलं = जनपद, अकण्टकम् = निष्कण्टक, अकीटकिट्टं = कीट एवं मैल रहित, प्रचिताः = प्र+चि+क्त = बना दिये गये, रिङ्गतरङ्गभङ्गा = चंचल लहरों वाली, शोणितशोणा = रक्त से लाल, शोणीकृता = शोन नदी के रूप में बना दी गयी (शोन नदी का जल लाल होता है), परस्सहस्राणि = हजारों, देवमन्दिराणि = देवों के मन्दिर, भूमिसात्कृतानि = भूमि पर गिरा दिये गये, प्राधान्येन = मुख्य रूप से, यवनराज्याङ्कुरा = यवन राज्य का बीज, आरोपक = आरोपण करने वाला, संजातः = हुआ, सम्+जनी+क्त, क्रीतदासः = खरीदा हुआ गुलाम।

समास : दिल्लीश्वरम् = दिल्ल्याः ईश्वरम् (तत्पुरुष), कान्यकुब्जेश्वरम् = कान्यकुब्जस्य ईश्वरम् (तत्पुरुष), पारस्परिकविरोधज्वरग्रस्तम् = पारस्परिकः विरोधः एवं ज्वरः तेन ग्रस्तम् (तत्पुरुष), विस्मृतराजनीतिं = विस्मृता राजनीतिः येन तम् (बहुव्रीहि), राजनीतिं = राज्ञां नीतिः राजनीतिः ताम् (तत्पुरुष), महारत्नम् = महत् तत् रत्नम् (कर्मधारय), रिङ्गतरङ्गभङ्गा = रिङ्गत्तः तरङ्गाः तेषाम् भङ्गाः यस्याः सा (बहुव्रीहि), देवमन्दिराणि = देवानाम् मन्दिराणि (तत्पुरुष), यवनराज्याङ्कुरा = यवनराज्यस्य अङ्कुरस्य, आरोपकः (तत्पुरुष), भारतसम्राट् = भारतस्य सम्राट् (तत्पुरुष)।

अलंकार : 'महारत्नमिव' = उपमा अलंकार, 'शोणितशोणाशोणीकृता' = अनुप्रास अलंकार।

विशेष : 'राजाओं की आपसी फूट से ही हिन्दुओं की पराजय हुई' इस तथ्य को

उद्घाटित किया गया है।

तमारम्भाद्यावधि राक्षस एव राज्यमकार्षुः। दानवा एव च दीनानदीदलन। अभूतकेवलं अकबरशाह—नामा यद्यपि गुढशत्रुर्भारतवर्षस्य तथापि शान्तिप्रियो विद्वत्प्रियश्च। अस्यैव प्रपौत्री मूर्तिमदिव कलियुगः गृहीतविग्रह इव चाधर्मः, आलमगीरोपाधिधारी अवरङ्गजीवः सम्प्रति दिल्लीवल्लभतां कलङ्कयति। अस्यैव पताकाः केकयेषु, मत्स्येषु, मगधेषु, अङ्गेषु, वङ्गेषुः कलिङ्गेषु च दोधूयन्ते, केवल दक्षिणदेशेऽधुनाऽप्यस्य परिपूर्णो नाधिकारः संवृतः।

हिन्दी अनुवाद : उसी कुतुबुद्दीन से लेकर आज तक राक्षसों (मुसलमानों) ने ही शासन किया। दानवों ने ही दीन भारतीयों को मारा। केवल अकबर नाम का बादशाह यद्यपि भारत का गुप्त शत्रु था फिर भी वह शान्ति प्रिय एवं विद्वज्जनों को सम्मान देने वाला था। इसी (अकबर) का प्रपौत्र साक्षात् कलिकाल के समान तथा शरीर धारण करने वाले अधर्म, सदृश, आलमगीर उपाधि धारी औरंगजेब इस समय दिल्ली के स्वामित्व को कलंकित कर रहा है। इसी के ध्वज कैकय मत्स्य, मगध, अंग, वंग एवं कलिङ्ग राज्यों में फहरा रहे हैं। केवल दक्षिण देश में अब भी इसका पूर्ण अधिकार नहीं हो पाया है।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : तमारम्भ = उसी कुतुबुद्दीन से लेकर, अद्यावधि = आज दिन तक, राक्षसाः एव = यवनों ने ही, अकार्षुः = किये कृ+लुङ्+प्र.पु.व.व., दीनान् = दीनों को, अदीदलन् = दला (मारा) दल+लङ् लकार प्र.पु.व.व., गूढ शत्रुः = छिपा हुआ शत्रु, शान्तिप्रियः = शान्ति प्रेमी, विद्वत्प्रियः = विद्वानों को आदर देने वाला, अस्यैव = इसका ही, मूर्तिमत् = साक्षात्, कलियुगमिव = कलिकाल जैसा, गृहीत विग्रहः = शरीरधारी, विग्रह = शरीर, आलमगीरोपाधिधारी = 'आलमगीर' उपाधि धारण करने वाला, अवरङ्गजीवः = अवरङ्गजेब, दिल्ली वल्लभतां = दिल्ली का शासन, कलङ्कयति = कलङ्कित कर रहा है। कैकयेषु = पंजाब प्रान्त में, मत्स्येषु = राजस्थान प्रान्त में, मगधेषु = दक्षिण बिहार में, अङ्गेषु पूर्वी बिहार में, वङ्गेषु = बंगाल प्रदेश में, कलिङ्गेषु = उड़ीसा प्रान्त में, दोधूयन्ते = फहरा रहे हैं धूञ्+यङ्, प्र.पु.व.व., संवृतः = हो गया, सम्+वृत्+क्त, दक्षिण देशे = महाराष्ट्रादि दक्षिण प्रान्तों में।

समास : गूढशत्रुः = गूढः च असौ शत्रुः (कर्मधारय), शान्तिप्रियः = शान्तिः प्रिया यस्मै सः (बहुव्रीहि), गृहीतविग्रहः = गृहीतः विग्रहः येन सः (बहुव्रीहि), दिल्लीवल्लभतां = दिल्लीयाः वल्लभः, तस्य भावः ताम् (तत्पुरुष)।

अलंकार : 'मूर्तिमदिव कलियुगः' में उत्प्रेक्षा अलंकार, 'गृहीतविग्रह इव चाधर्मः' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

दक्षिणदेशो हि पर्वतबहुलोऽस्ति अरण्यानीसङ्कुलश्चास्तीति चिरोद्योगेनापि नायमशकन्महाष्ट्रकेशरिणो हस्तयितुम्। साम्प्रतमस्यैवाऽऽत्मीयो दक्षिण—देशशासकत्वेन "शास्तिखान" नामा प्रेष्यत इति श्रूयते। महाराष्ट्र देशरत्नम् यवन—शोणित—पिपासाऽऽकुलकृपाणः, वीरता—सीमन्तिनी—सीमन्त—सुन्दर—सान्द्र—सिन्दूर—दान—देदीप्यायमानदोर्दण्डः, मुकुटमणिमहाराष्ट्राणाम्, भूषणं भटानां, निधिर्नीतानाम् कुलभवनम् कौशलानाम् पारावारः परमोत्साहानम्, कश्चन् प्रातः स्मरणीयः स्वधर्माऽऽग्रह ग्रह—ग्रहिलः, शिव इव धृतावतारः शिववीरश्चास्मिन् पुण्यनगरान्नेदीयस्येव सिंहदुर्गे ससेनो निवसति। विजयपुराधीश्वरेण साम्प्रतमस्य प्रवृद्धं वैरम्। "कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्!" इत्यस्य सारगर्भा महती प्रतिज्ञा। सतीनाम्, सताम्, त्रैवर्णिकस्य, आर्यकुलस्य, धर्मस्य भारतवर्षस्य च आशासन्तान—वितानस्यायमेवाऽऽश्रयः। इयमेव वर्तमानादशा भारतवर्षस्य। किमधिकम् विनिवेदयामो योगवलावगतसकलगोप्यत—वृत्तान्तेषु योगिराजेषु" इति कथयित्वा विरराम।

हिन्दी अनुवाद : दक्षिण प्रदेश निश्चित रूप से अधिक पर्वतों वाला है और सघन जंगलों से भरा हुआ है। इस कारण चिर प्रयास से भी वह महाराष्ट्र केशरी को

जीतने में समर्थ न हो सका, अब अपने को दक्षिण देश के शासक के रूप में उसी के आत्मीय शाहस्त खों को भेजा जा रहा है ऐसा सुना जा रहा है। महाराष्ट्र देश के रत्न, यवनों के रक्त को पीने की इच्छा से व्याकुल कृपाण वाले, वीरता रूपी कामिनी की मांग में सुन्दर और गाढ़ा सिन्दूर—दान करने से देदीप्यमान भुजाओं वाले, महाराष्ट्र के मुकुटमणि, वीरों के अलंकार, नीतियों के निधि, निपुणताओं के आश्रय, परम उत्साहों के सागर, प्रातः स्मरणीय, अपने धर्म को पालने करने में दृढ़, अवतार लेने वाले शिव को समान कोई शिवाजी पूना नगर के निकट ही सिंह दुर्ग में सेना के साथ निवास कर रहे हैं। विजयपुर (बीजापुर) के राजा से इस समय उनका वैर बढ़ा हुआ है। 'या तो कार्य पूरा होगा या शरीर का नाश होगा' ऐसी इनकी सारगर्भित बहुत बड़ी प्रतिज्ञा है। साध्वी स्त्रियों, सत्पुरुषों, द्विजों, आर्यों, धर्म और भारतवर्ष की आशाओं के विस्तार के यही आश्रय हैं। भारतवर्ष की यही आज की दशा है। "योग शक्ति से अतिशय गोपनीय सम्पूर्ण वृत्तान्तों को जानने वाले योगिराज से अधिक क्या कहूँ" यह कहकर ब्रह्मचारी के गुरु चुप हो गये।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : दक्षिण देशः = महाराष्ट्र प्रान्त, पर्वत बहुलः = बहुत पर्वतों वाला, अरण्यानी संकुलः = घने जंगलों वाला, अरण्य+आनुक्+डीषु, चिरोद्योगेन = चिर प्रयासों से, अशक्त = समर्थ हुआ शक्+लङ् प्र.पु.ए.व., महाराष्ट्र केशरिणः = महाराष्ट्र के केशरियों को, हस्तयितुम् = हस्तगत करने में, हस्त+य+तुमुन्, आत्मीयः = स्वजन, दक्षिणदेशशासकत्वेन = दक्षिण देश के शासक के रूप में, महाराष्ट्र देशरत्नम् = महाराष्ट्र देश के रत्न, यवनशोणितपिपासाऽऽकुलकृपाणः = यवन = मुसलमान, शोणित = रुधिर, पिपासा = पीने के इच्छा से, आकुल = व्याकुल, कृपाणाः = तलवार, यवनों के रुधिर को पीने की इच्छा से व्याकुल कृपाण वाले, वीरता सीमन्तिनी—सीमन्त—सुन्दर—सान्द्र—सिन्दूर—दान—देदीप्यमानदोर्दण्डः = सीमन्तिनी = स्त्री, सीमन्त = मांग, सान्द्र = गाढ़ा, देदीप्यमान = चमकते हुए, दोर्दण्डः = भुजाएँ अर्थात् वीरता रूपी युवती की मांग से सुन्दर और गाढ़ा सिन्दूर—दान से देदीप्यमान भुजाओं वाले, पारावारः = समुद्र, स्वधर्माग्रह ग्रहग्रहिलः = अपने धर्म को दृढ़ता पालन करने वाला, स्वधर्म = सनातन धर्म, ग्रहिलः = अतिशत दृढ़, धृतावतारः = अवतार लेने वाले, पुष्यनगरात् = पूना नगर से, नेदियसि = अति निकट, सिंह दुर्ग = सिंह दुर्ग में, विजयपुराधीश्वरेण = बीजापुर के राजा के साथ, प्रबृद्धम = बढ़ा हुआ प्र+वृध्+क्त, कार्य वा साधयेयं = या तो कार्य सिद्ध होगा, देहं वा पातपेयम् = या शरीर का नाश होगा। सारगर्भा = सारगर्भित, त्रैवर्णिकस्य = द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य), आशा सन्तानवितानस्य = आशाओं के विस्तार के, सन्तान = समूह, वितान = विस्तार, विनिवेदयामः = निवेदन करें, किमधिकम् = अधिक क्या, योग—बलावगत सकल—गोप्यतम—वृत्तान्तेषु = योग बल से अवगत सम्पूर्ण अतिशत गोपनीय वृत्तान्तों वाले (योगिराज का विशेषण), विरराम = चुप हो गये, विः रम्+लिट, प्र.पु. ए.व.।

समास : यवन—शोणित—पिपासाऽऽकुल कृपाणः = यवनानां शोणितस्य पिपासाकुलः कृपाणः यस्य सः (बहुव्रीहि), महाराष्ट्रदेशरत्नम् = महाराष्ट्र देशस्य रत्नम् (तत्पुरुष), वीरतासीमन्तिनीसीमन्त सुन्दर सान्द्र सिन्दूर दान देदीप्यमान दोर्दण्डः = वीरता एव सीमन्तिनी तस्याः सीमन्ते, सुन्दर सान्द्र सिन्दूरस्य दानेन देदीप्यमानः दोर्दण्डः यस्य सः (बहुव्रीहि), मुकुटमणिः = मुकुटस्य मणिः (तत्पुरुष समास), स्वधर्माऽऽग्रहग्रहिलः = स्वधर्मस्य आग्रहग्रहे ग्रहिलः (तत्पुरुष), धृतावतारः = धृतः अवतारः येनः सः (बहुव्रीहि), विजयपुराधीश्वरेण = विजयपुरस्य अधीश्वरेण (बहुव्रीहि) तत्पुरुष, योगबलावगतसकल—गोप्यतमवृत्तान्तेषु = योगस्य बलेन अवगताः सकलाः गोप्यतमाः वृत्तान्ताः यैः तेषु (बहुव्रीहि समास)।

अलंकार : 'वीरता सीमन्तिनीः' में वीरता के ऊपर सीमन्तिनी (कामिनी) का आरोप है। अतः रूपक अलंकार है। 'शिव इव धृतावतारः' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

अभ्यास प्रश्न 1

- 1-प्रश्न-भारत में सबसे पहले प्रवेश किसने किया
- 2-प्रश्न- सोमनाथमूर्ति को किसने तोड़ा?
- 3-प्रश्न- सोमनाथमन्दिर कहाँ स्थित है?
- 4-प्रश्न- शहाबुद्दीन किस देश का रहने वाला था?
- 5-प्रश्न- दिल्ली के राजा कौन था?

4.4 सारांश

इस इकाई में मुसलमानों ने भारत पर किस प्रकार अत्याचार किया इन सबका वर्णन किया गया है। कुतुबुद्दीन से लेकर आज तक राक्षसों (मुसलमानों) ने ही शासन किया। दिल्ली के राजा पृथ्वीराज एवं कान्यकुब्ज के सम्राट जयचन्द्र को पारस्परिक विरोध रूपी ज्वर से पीड़ित राजनीति को न समझने वाले तथा भारत के आने वाले दुर्भाग्य को जानकर बिना परिश्रम के दोनों (नृपों को) को मारकर वाराणसी तक निर्विघ्न तथा कीड़ों और मल से रहित (निर्मल) श्रेष्ठ रत्न के समान सम्पूर्ण जनपदों से युक्त महान राज्य को अपने अपने अधिकार में कर लिया। इन सबका वर्णन इस इकाई में किया गया है।

4.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
तमारम्भ	उसी कुतुबुद्दीन से लेकर
अद्यावधि	आज दिन तक
राक्षसाः एव	यवनों ने ही
अकार्षुः	किये
दीनान्	दीनों को
अदीदलन्	दला (मारा)
गूढ शत्रुः	छिपा हुआ शत्रु
शान्तिप्रियः	शान्ति प्रेमी
विद्वत्प्रियः	विद्वानों को आदर
अस्यैव	इसका ही
मूर्तिमत्	साक्षात्
कलियुगमिव	कलिकाल जैसा
गृहीत विग्रहः	शरीरधारी
विग्रह	शरीर
अवरङ्गजीवः	अवरङ्गजेव,
दिल्ली वल्लभतां	दिल्ली का शासन
कलङ्कयति	कलङ्कित कर रहा है।

4. 6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1- मुहम्मद गजनी ने 2- गजनी 3- गुजरात में 4- गोर देश का 5- पृथ्वीराज

4. 7 सदर्थ ग्रन्थ सूची

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
--------------	------	---------

शिवराजविजय

अम्बिकादत्तव्यास

चौखम्भा संस्कृत

भारती वाराणसी

2—संस्कृत साहित्य का इतिहास . बलदेव उपाध्याय

प्रकाशक

शारदा निकेतन

वी, कस्तुरवानगर

सिगरा वाराणसी

4. 8 उपयोगी पुस्तकें

1—ग्रन्थ नाम

लेखक

प्रकाशक

शिवराजविजय

अम्बिकादत्तव्यास

चौखम्भा संस्कृत

भारती वाराणसी

4. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1—सोमनाथ मन्दिर के विषय में परिचय दीजिये ।

2— इकाई का सारांश निज शब्दों में लिखिए ।

इकाई 5. तदाकर्ण्य से स्वकुटीरं प्रविवेश तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उद्देश्य
- 5.3 तदाकर्ण्यसे स्वकुटीरं प्रविवेश तक व्याख्या
- 5.4 सारांश
- 5.5 शब्दावली
- 5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 5.8 उपयोगी पुस्तकें
- 5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्य साहित्य शास्त्र से सम्बन्धित खण्ड एक की पाचवीं इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने जाना कि मुसलमानों ने भारत पर किस प्रकार अत्याचार किया।

इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि शिवाजी कैसे थे उनका विशेष वर्णन किया गया है। इसके बाद यवन युवक गौर सिंह से प्रश्न करते हुए कहता है कि कल रात्रि में तुम्हारी कुटिया में रोती हुई जो ब्राह्मण कन्या आई थी (उसे) तुरन्त दे दो, तब कदाचिद् दयावश तुमको जीवित भी छोड़ दूँ, अन्यथा क्षण भर में मेरी तलवार रूपी सर्पिणी के द्वारा डस लेने पर तुम्हारी कथा मात्र ही बच जायेगी। इन सबका वर्णन इस इकाई में किया है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- अफँजल खा के विषय में बता सकेंगे
- शिवा जी के विषय में बता सकेंगे
- श्याम बटुक के विषय में बता सकेंगे
- यवन युवक के विषय में बता सकेंगे

5.3 तदाकर्ण्यसे स्वकुटीरं प्रविवेश तक व्याख्या

तदाकर्ण्य विविध-भाव-भङ्ग-भासुर वदनो योगिराजो मुनिराजं तत्सहचरँश्च निपुणं निरीक्ष्य तेषामपि शिववीरान्तरङ्गतामङ्गीकृत्य, मुनिवेशव्याजेन स्वधर्मरक्षाव्रतिनश्चोररीकृत्य “विजयतां शिववीरः सिद्धयन्तु भवतां मनोरथाः” इति मन्दं व्याहारीत्।

हिन्दी अनुवाद : इस वृत्तान्त को सुनकर विविध भाव भंगिमाओं से चमकते हुए मुख वाले योगिराज ने मुनिराज तथा उनके साथ रहने वाले लोगों को निपुणता (सम्यक् रूप से) से देखकर तथा उन लोगों की भी शिव वीर (वीर शिवाजी) का अन्तरंगता जानकर तथा मुनि-वेश के बहाने से अपने धर्म की रक्षा का व्रत लिये हैं, यह हृदय में धारण कर “वीर शिवाजी विजय को प्राप्त करें, आप लोगों की इच्छाएं पूर्ण हों” ऐसा धीरे से कहा।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : विविधभावभङ्गभासुरवदनः = अनेक भाव-भङ्गिमाओं से देदीप्यमान मुख वाले, भासुर = देदीप्यमान, वदन = मुख, आकर्ण्य = सुनकर, आ+कर्ण+क्त्वा+ल्यप्, तत्सहचरान् = उनके साथियों को, निपुणं = सम्यक् रूप से, निरीक्ष्य = देखकर, निर्+ईक्ष+ल्यप्, शिववीरान्तरङ्गतां = वीर शिवाजी की अन्तरंगताको, अङ्गीकृत्य = स्वीकार करके, मुनिवेशव्याजेन = मुनिवेश के बहाने से, स्वधर्मरक्षा व्रतिनः = अपने धर्म की रक्षा का व्रत लिये हुये, उररीकृत्य = हृदय में धारण कर (जानकर), व्याहारीत् = प्रसन्नता व्यक्त की, वि+आ+ह+लुङ् लकार, प्र.पु. ए.व.।

समास : विविधभावभङ्गभासुरवदनः = विविधानां भावानां भङ्गैः भासुरं वदनं यस्य सः (बहुव्रीहि), योगिराजः = योगिनाम् राजा इति योगिराजः (तत्पुरुष), तत्सहचरान् = सहचरन्ति इति सहचराः तेषां सहचराः तान् (तत्पुरुष), शिववीरान्तरङ्गताम् = शिववीरस्य अन्तरङ्गताम् (तत्पुरुष), मुनिवेशव्याजेन = मुनिवेशस्य व्याजेन (तत्पुरुष), स्वधर्मरक्षाव्रतिनः = स्वस्य धर्मस्य रक्षायाः व्रतिनः (तत्पुरुष)।

अथ “किमपि पिपृच्छिषामीति शनैरभिधाय बद्धकरसम्पुटे सोत्कण्ठे जटिलमुनौ “अवगतम्, यवनयुद्धे विजय एव, दैवादापदग्रस्तोऽपि च सखिसाहाय्येनाऽऽत्मानमुद्धरिष्यति”

इति समभाषीत। मुनिश्च गृहीतमित्युदीर्य पुनः किञ्चिद्विचार्यैव, स्मृत्वेव च, दीर्घमुष्णं निःश्वस्य रोरुध्यमानैरपि, किञ्चिदुदगतैर्बाष्पाबिन्दुभिराकुलनयनो “भगवन्! प्रायो दुर्लभोयुष्मादृक्षाणां साक्षात्कार इत्यपराऽपि पृच्छा आच्छादयति माम्” इति न्यवेदीत्। स च “आम ! ऊरीकृतम् जीवति सः सुखेनैवाऽऽस्ते” इत्युदतीतरत्। अथ “तं कदा द्रक्ष्यामि” इति पुनः पृष्टवति “तद्विवाहसमये द्रक्ष्यसि” इत्यभिधाय बहूनि सान्त्वनावचनानि च गम्भीरस्वरेणोक्त्वा, सपदि उपत्यकाम्, गण्डशौलान्, अधित्यकाञ्चारुह्य पुनस्तस्मिन्नेव पर्वतकन्दरे तपस्तप्सुं जगाम।

हिन्दी अनुवाद : इसके बाद “मैं कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ” इस प्रकार धीरे से कहकर जटाधारण करने वाले ऋषि के जिज्ञासापूर्वक हाथ जोड़ने पर योगिराज बोले – ‘ज्ञात हो गया यवन के संग्राम में (शिवाजी की) विजय ही होगी, दुर्भाग्यवश विपत्ति ग्रस्त होने पर भी मित्रों की सहायता से अपना उद्धार कर लेंगे। मुनि ने भी ‘जान लिया’ ऐसा कहकर पुनः कुछ सोचकर ही और स्मरण कर लम्बे और गर्म श्वास लेकर अत्यधिक नियन्त्रित किये जाने पर भी कुछ निकल आये हुए आँसुओं की बूँदों से व्याकुल नेत्रों वाले (उस मुनि ने) निवेदन किया – ‘भगवन् ! प्रायः आप जैसे महात्माओं का दर्शन दुर्लभ होता है, अतः दूसरा प्रश्न पूछने की इच्छा भी मुझे घेर रही है उस योगिराज ने “अच्छा ! मालूम हो गया वह जीवित है सुखपूर्वक ही है” ऐसा उत्तर दिया। इसके पश्चात् ‘उनको कब देखूँगा ऐसा मुनि के पुनः पूछने पर “उसके विवाह के समय में देखोगे” ऐसा कहकर बहुत से सान्त्वना से भरे हुए वचनों को गम्भीर स्वर से कहकर तुरन्त ही पर्वत की अधोभूमि (घाटी), पर्वत की गिरी हुई बड़ी-बड़ी शिलाओं एवं पर्वत के उन्नत भागों पर चढ़कर पुनः उसी पर्वत की कन्दरा में तप करने के लिए चले गये।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : किमपि = कुछ भी, पिपृच्छिषामी = प्रश्न पूछना चाहता हूँ, प्रच्छ+सन्+लट् उ.पु. ए.व., शनैः = धीरे से, अभिधाय = कहकर, अभि+धा+ऋत्वा+ल्यप्, बद्धकरसम्पुटे = हाथ जोड़ लेने पर, सोत्कण्ठे = जिज्ञासा से युक्त, जटिलमुनौ = जटाधारण करने वाले मुनि के, जटा+इलच् प्रत्यय, सखि साहाय्येन = मित्रों की सहायता से, आत्मानम् = स्वयं को, उद्धरिष्यति = उद्धार कर लेंगे, उद्+हृद्+णिच्+लृट् लकार प्र.पु. ए.व., समभाषीत् = कहा सम्+भण्+लुङ् लकार प्र.पु., ए.व., उदीर्य = कहकर, विचार्यैव = जैसे कुछ विचार करके, स्मृत्वेव = जैसे कुछ याद करके, दीर्घमुष्णम् = दीर्घ एवं गर्म, निःश्वस्य = निःश्वास लेकर, रोरुध्यमानैरपि = बहुत अधिक नियन्त्रित करने पर भी रुध्+शानच्, वाष्पबिन्दुभिः = आँसुओं की बूँदों से, आकुलनयनो = व्याकुल नेत्रों वाले (मुनि का विशेषण), युष्मादृक्षाणाम् = आप जैसे महात्माओं का, अपरा = दूसरी, पृच्छा = पूछने की इच्छा, पृच्छ्+सन्+टाप् (स्त्रीलिङ्ग), आच्छादयति = घेर रही है, आ+छद+लट् लकार, प्र.पु.ए.व., न्यवेदीत् = निवेदन किया नि+विद्+लुङ् प्र.पु. ए.व., आम् = अच्छा, हाँ, ऊरीकृतम् = स्वीकार किया, समझ लिया, उदतीतरत् = उत्तर दिया, उद्+तृ+लुङ्, प्र.पु. ए.व., द्रक्ष्यामि = देखूँगा = दृश्+लृट्+उ. पु., ए.व., अभिधाय = कहकर, अभि+धा+ऋत्वा+ल्यप्, सान्त्वना वचनानि = सान्त्वना से भरे हुए वचनों को, सपदि = शीघ्र, उपत्यकाम् = पर्वत की तलहटी या घाटी, गण्डशौलान् = पर्वत की गिरी हुई चट्टानें, अधित्यकाम् = पर्वत की उन्नत भूमि, आरुह्य = चढ़कर, तपस्तप्सुम् = तप करने के लिए, जगाम = चले गये, गम्+लिट् प्र.पु. ए.व.।

समास : बद्धकरसम्पुटे = बद्धः करयोः सम्पुटः येन सः तस्मिन् (बहुव्रीहि), आपद्ग्रस्तोऽपि = आपद्भिः ग्रस्तोऽपि (तत्पुरुष), बाष्पबिन्दुभिराकुल-नयनो = बाष्पाणां बिन्दुभिः आकुले नयने यस्यासौ (बहुव्रीहि), सान्त्वनावचनानि = सान्त्वनानां वचनानि (तत्पुरुष), पर्वतकन्दरे = पर्वतस्य कन्दरे (तत्पुरुष)।

अलंकार : इस गद्यांश में ‘विचार्यैव, स्मृत्वेव’ स्थल पर उत्प्रेक्षा अलंकार है।

ततः शनैः शनैर्नियतिष्वपरिचितजनेषु, संवृत्ते च निर्माक्षिके, मुनिगौरबटुमाहूय, विजयपुराधीशाऽऽज्ञया शिववीरेण सह योद्धुं ससेनं प्रस्थितस्य अफजलखानस्य विषये यावत् किमपि प्रष्टुमियेष, तावत्, पादचारध्वनिमिव कस्याप्यश्रौषीत्। तमवधार्यान्यमनस्के इव मुनौ गौरबटुरपितेनैव ध्वनिना कर्णयोरकृष्ट इव समुत्थाय, निपुणं परितो निरीक्ष्य पर्यट्य 'कोऽयम्' ? इति च साम्रेडं व्याहृत्य, कमप्यनवलोक्य, पुनर्निवृत्य, मन्ये मार्जारः कोऽपि" इति मन्दं—मन्दं गुरवे निवेद्य पुनस्तथैवोपविवेश। मुनिश्च 'मा स्म कश्चिदितरः श्रौषीत्" इति सशङ्कः क्षणं विरम्य पुररुपन्यस्तुमारेभे।

हिन्दी अनुवाद : तत्पश्चात् धीरे—धीरे अपरिचित लोगों के चले जाने पर, मक्षियों से रहित (निर्जन) हो जाने पर मुनि ने गौर ब्रह्मचारी को बुलाकर, बीजापुर (विजयपुर) के अधिपति की आज्ञा से वीर शिवाजी के साथ युद्ध करने के लिए सेना सहित प्रस्थान करने वाले अफजल खाँ के विषय में ज्यों ही कुछ पूछने की इच्छा, तभी किसी के पैरों के चलने की ध्वनि सुनाई पड़ी। उसको सुनकर मुनि के अन्यमनस्क जैसे हो जाने पर गौर ब्रह्मचारी भी उसी ध्वनि के कानों को आकृष्ट किये जाते हुए के समान उठकर चतुराई से चारों ओर देखकर, घूमकर यह कौन है ? इस प्रकार बार—बार बुलाकर, किसी को भी न देखकर, पुनः लौटकर, मैं समझता हूँ कि कोई बिल्ली है, इस प्रकार मन्द—मन्द गुरु जी निवेदन करके पुनः उसी प्रकार बैठ गया और मुनि से 'कोई दूसरा न सुने' ऐसी शंका के साथ थोड़ी देर रुककर पुनः बोलना प्रारम्भ किया।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : निर्यातषु = चले जाने पर, निर्+या+क्त सप्तमी व.व., अपरिचितजनेषु = अपरिचित लोगों के, संवृत्ते = हो जाने पर, सम्+वृत्+क्त सप्तमी ए. व., निर्माक्षिके = मक्खियों का अभाव (निर्जन), आहूय = बुलाकर, विजयपुराधीशाज्ञया = बीजापुर के राजा की आज्ञा से, योद्धुम् = युद्ध करने के लिए युध्+तुमुन्, इयेष = इच्छा की, इष्+लिट् लकार प्र.पु. ए.व., प्रष्टुम् = पूछने के लिए प्रच्छ+तुमुन्, पादचार ध्वनिम् = पैरों के चलने की ध्वनि, अश्रौषीत् = सुनी श्रु+लुङ् प्र.पु. ए.व., अवधार्य = जानकर, अव+धृ+णिम्+ल्यप्, अन्यमनस्के इव = अन्यमनस्क जैसे, समुत्थाय = उठकर, सम+उद्+स्था+ल्यप्, निरीक्ष्य = देखकर निर्+ईक्ष्, पर्यट्य = घूम कर, परि+अट् (गतौ)+ल्यप्, साम्रेडम् = बार—बार, व्याहृत्य = कहकर वि+आ+हृ+ल्यप्, अनवलोक्य = न देखकर, अन्+अव्+लोक+ल्यप्, मार्जारः = बिडाल (बिल्ला), तथैव = उसी प्रकार, उपविवेश = बैठ गया, उप+विश+लिट् प्र.पु. ए.व., इतरः = दूसरा, मा श्रौषीत् = न सुन ले श्रु+लुङ् प्र.पु. ए.व., विरम्य = रुककर, वि+रम्+क्त्वा+लयप्, उपन्यस्तुम् = कहने के लिए, उप+नि+अस्+तुमुन्, आरेभे = आरम्भ किया, आ+रभ्+लिट् लकार प्रथम पुरुष ए. व.।

समास : निर्माक्षिकं= मक्षिकाणाम् अभावः निर्माक्षिकम् तस्मिन् निर्माक्षिके (अव्ययीभाव समास), विजयपुराधीशाज्ञया = विजयपुरस्य अधीशस्य आज्ञया (तत्पुरुष), ससेनम् = सेनया सहितम् (अव्ययीभाव), पादचारध्वनिम् = पादयोः चारस्य ध्वनिः तम् (तत्पुरुष)। अलंकार : 'अन्यमनस्के इव मुनौ' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

"वत्स गौरसिंह ! अहमत्यन्त तुष्यामि त्वयि, यत्त्वमेकाकी अफजलखानस्य त्रीनश्वान् तेन दासीकृतान् पञ्चब्राह्मणतनयांश्च मोचयित्वा आनीतवानसीति। कथं न भवेरीदृशः ? कुलमेवेदृशं राजपुत्रदेशीयक्षत्रियाणाम्"। तावत् पुनरश्रूयतमर्मरः पादक्षेपश्च। ततो विरम्य, मुनिः स्वयमुत्थाय, प्रोच्चं शिलापीठमेकमारुह्य, निपुणतया परितः पश्यन्नपि कारणं किमपि नावलोकयामास चरणाक्षेपशब्दस्य। अतः पुनरेकतानेन निपुणं निरीक्षमाणेन गौरसिंहेन दृष्टम्, यत् कुटीरनिकटस्थनिष्टक—कदलीकूटे द्वित्रास्तवोऽतित कम्पन्ते इति।

हिन्दी अनुवाद : पुत्र गौर सिंह ! मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, जो तुमने अकेले ही अफजल खाँ के तीन घोड़ों और उसके द्वारा गुलाम बनाये गये पाँच ब्राह्मण—पुत्रों

को छुड़ाकर ले आये हो, तुम ऐसे कैसे न होंगे ? राजपुत्र देश के रहने वाले क्षत्रियों का ऐसा ही कुल होता है। तभी पुनः मर्मर (ध्वनि) और पैरों का संचरण सुनाई पड़ा, इसके बाद रुककर मुनि ने स्वयं उठकर उन्नत एक शिलापीठ पर आरूढ़ होकर, चातुर्य के साथ चारों तरफ देखते हुए भी पैरों के चलने की ध्वनि का कोई कारण नहीं देखा। अतः पुनः एकाग्रचित्त से भली-भाँति देखते हुए गौर सिंह ने देखा कि कुटिया के समीप स्थित गृह वाटिका के केलों के समूह में दो या तीन वृक्ष अत्यधिक हिल रहे हैं।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : तुष्यामि = प्रसन्न हूँ, एकाकी = अकेले, त्रीन् = तीन, अश्वान् = घोड़ों को, द्वितीया व.व., ब्राह्मण तनयान् = ब्राह्मण के पुत्रों को, द्वितीय व.व., मोचयित्वा = छुड़ाकर, मुच्+णिच्+कत्वा, अनीतवानासि = ले आये हो, आ+नी+क्तवत्, ईदृशम् = ऐसा, इदम्+दृश+कञ्, कथं = कैसे, भवेः = हो, भू+विधिलिङ् म.पु. ए.व., राजपुत्रदेशीयक्षत्रियाणाम् = राजपूतदेश में रहने वाले क्षत्रियों का, अश्रूयत = सुना, मर्मरः = मर्मर ध्वनि, पादक्षेपः = पैरों का संचरण, विरम्य = रुककर, वि+रम्+ल्यप्, प्रोच्चम् = उन्नत, शिलापीठ = शिलाखण्ड, आरूह्य = आरूढ़ होकर, आ+रूह+क्त्वा+ल्यप्, निपुणतया = निपुणता के साथ, पश्यन् = देखता हुआ, अवलोकयामास = देखा, चरणाक्षेपशब्दस्य = चरणों के रखने की ध्वनि, एकतानेन = एकाग्रचित्त से, निरीक्षमाणेन = देखने वाले, निर्+ईक्ष+शानच् तृतीया ए.व., दृष्टम् = देखा गया, दृश्+क्त, कुटीर निकटस्थ = कुटिया के निकट, षष्ठी ए.व., निष्कृत = वह वाटिका, कदली कूटे = केलों के समूह में, सप्तमी ए.व., द्वित्रा = तीन-तीन, अतितराम् = अधिकतर, अति+तरप्, कम्पन्ते = हिल रहे हैं।

समास : ब्राह्मणतनयान् = ब्राह्मणस्य तनयान् (तत्पुरुष), राजपुत्र-देशीयक्षत्रियाणाम् = राजपुत्रदेशी यानाम् क्षत्रियाणाम् (तत्पुरुष), पादक्षेपः = पादयोः क्षेपः (तत्पुरुष), शिलापीठम् = शिलायाः पीठम् (तत्पुरुष), चरणाक्षेपशब्दस्य = चरणयोः आक्षेपः, तस्यशब्दः = तस्य (तत्पुरुष), कुटीर निकटस्थ निष्कृत कदली कूटे = कुटीरस्य निकटे स्थिता ये निष्कृतकाः तेषु कदलीनां कूटे (तत्पुरुष)।

अलंकार : राजपूत देशीय क्षत्रियों की वीरता से गौर सिंह की वीरता का प्रतिपादन किया गया है। अतः अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

तदेव संशयस्थानमित्यङ्गुल्या निर्दिश्य, कुटीरवलीके गोपयित्वा स्थापितानामसीनामेकमाकृष्य, रिक्तहस्तेनैव मुनिना पृष्ठतोऽनुगम्यमानः, कपोलतलविलम्बमानान् चक्षुश्चुम्बिनः, कुटिलकचान् वामकराङ्गु लिभिरपसारयन् मुनिवेषोऽपि किञ्चित् कोपकषायितनयनः, करकम्पितकृपाकृपणकृपाणो महादेवमारिराधयिषुस्तपस्विवेषोऽर्जुन इव शान्तवीररसद्वयस्नातः सपदि समागतवान् तन्निकटे, अपश्यच्चलता-प्रतान-वितान-वेष्टित-रम्भा-स्तम्भत्रितयस्य मध्ये नीलवस्त्रखण्डवेष्टितमूर्द्धानं हरितकञ्चुकं श्यामवसनानद्धकटितटकर्बुराधोवसनम्काकासनेनोपविष्टम्, रम्भालवाललग्ना-धोमुखखड्गत्स रुन्यस्तविपर्यस्तहस्तयुगलम्, लशुनगन्धिभिर्निश्वासैः कदली-किसलयानि मलिनयातम्, नवाङ्कुरितश्मश्रुश्रेणिच्छलेन कन्यकापहरणपङ्ककलङ्कलङ्किताननम्, विंशतिवर्षकल्पं यवनयुवकम्। ततः परस्परम् चाक्षुषे सम्पन्ने दृष्टोऽहमिति निश्चित्य, उत्प्लुत्य, कोशात् कृपाणमाकृष्य, युयुत्सुः सोऽपि सम्मुखमवतस्थे। ततस्तयोरेव संजाताः परस्परमालापाः।

हिन्दी अनुवाद : "वही शंका का स्थान है" ऐसा अंगुली से निर्दिष्टकर कुटीर के पटल प्रान्त में छिपा कर रखी हुई तलवारों में से एक तलवार को खींचकर, खाली हाथ वाले ही मुनि के द्वारा अनुगमन किये जाता हुआ, कपालों तक लटकते हुए नेत्रों का स्पर्श करने वाले घुंघराते केशों को बाये हाथ की अंगुलियों से हटाता हुआ, मुनि के वेश में स्थित होता हुए भी कुछ क्रोध के कारण रक्त नेत्रों वाला, हाथ में कांपती हुई

दया करने में कृपण (क्रूर) तलावार को धारण करने वाल, भगवान् शंकर की आराधना करने के लिए इच्छुक तपस्वी का वेश धारण करने वाले अर्जुन के समान, शान्त एवं वीर रस दोनों रसों में नहाये हुये (गौर सिंह) शीघ्र उसके निकट पहुँचा, (और वहाँ), लता-तन्तुओं के विस्तार से घिरे हुए कदली के तीन खम्भों (पेड़ों) के मध्य सिर पर नीले वस्त्र के टुकड़े को बांधने वाले हरे रंग का कंचुक (कुर्त्ता) धारण करने वाले काले वस्त्र से बाँधे हुए कटिभाग वाले, विविध रंगों वाले अधो वस्त्र (लुंगी) को पहने हुए, दोनों घुटनों के बीच में तुड़ड़ी डालकर बैठने वाले (काकासन), केले के थाल्हे पर स्थित अधोमुख वाली तलवार की मुठिया पर दोनों हाथों का उलटे रखे हुए, लहसुन की दुर्गन्ध से युक्त निःश्वासों के केले के किसलयों को (कोमल पत्तों को) मलिन बनाते हुए, नया उगते हुए, नया उगते हुए मूँछ की रेखा के बहाने से कन्या के अपहरण रूपी कीचड़ के कलंक से कलंकित मुख वाले, लगभग बीस वर्ष की अवस्था वाले यवन-युवक को देखा। तत्पश्चात् आपस में नेत्रों के मिलने पर "मैंने देख लिया है ऐसा निश्चित करके, उछलकर, म्यान से कृपाण खींचकर लड़ने के लिए इच्छुक वह भी (मुसलमान युवक) सामने खड़ा हो गया। उसके बाद उन दोनों में इस प्रकार परस्पर वार्तालाप हुआ।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : तदेव = वही, संशयस्थानम् = संदेह का स्थान, निर्दिश्य = निर्देश करके, निर्दिश+ल्यप्, कुटीरवलीके = कुटीर की छज्जे में (पटल प्रान्त में), गोपयित्वा = छिपाकर, गुप्+णिच्+क्त्वा, स्थापितानाम् = रखी हुई (असीनाम् का विशेषण), षष्ठी व.व., असीनाम् = तलवारों में से (षष्ठी), आकृष्य = खींचकर, आ+कृष+क्त्वा+ल्यप्, रिक्त हस्तेनैव = खाली हाथ ही, पृष्ठतः = पीछे-पीछे, अनुगम्यमानः = अनुगमन किया जाता हुआ, अनु गम्+णिच्+शानच्, कपोलतलविलम्बमानाम् = कपलों तक लटकने वाले षष्ठी व.व. (कचान् का विशेषण), चक्षुश्चुम्बिनः = नेत्रों का स्पर्श करने वाले (केशों का विशेषण) षष्ठी, व.व., कुटिलकचान् = घुंघराले केशों वाले, षष्ठी व.व., वामकराङ्गुलिभिः = बायें हाथ की अंगुलियों से, तृतीया व.व., अपसारयन् = दूर हटाता हुआ, अप+सृ+णिच्+शत्, किञ्चित् कोपकषायितनयनः = कुछ क्रोध से लाल नेत्रों वाला, करकम्पित कृपा कृपण-कृपाणः = हाथ में काँपती हुई निर्दय तलवार को धारण करने वाला, आरिराधयिषुः = आराधना करने के लिए इच्छुक, आ+राधि+सन्+उ, तपस्विवेषोऽर्जुन इव = तपस्वी वेष वाले अर्जुन के समान, सपादि = तुरन्त, तन्निकटे = उसके समीप, समागतवान् = आया, सम्+आ+गम्+क्तवत्, अपश्चत् = देखा, दृश+लङ् प्र.पु.ए.व., लता प्रतान वितान वष्टित रम्भा स्तम्भ त्रितयस्य = प्रतान = तन्तु, वितान = विस्तार, वेष्टित = घिरे हुए, रम्भा = केला, स्तम्भ = खम्भा (पेड़), त्रितयस्य = तीन, लता तन्तुओं के विस्तार से घिरे हुए तीन केले के वृक्षों के, नीलवस्त्रखण्डवेष्टितमूद्धनिम् = नीले वस्त्र के टुकड़े से बाँधे हुए सिर वाले, हरित कञ्चुकम् = हरा कुर्त्ता धारण करने वाले, श्यामवसनान-द्धकटितटकर्बुराधोवसनम् = श्याम = काला, वसन = वस्त्र, आनद्ध = बाँधे हुए, आ+नद्ध+क्त, कटितर = कटिभाग, कर्बुर = विविध रंग वाले, काले वस्त्र से बाँधे हुए कटिभाग एवं अनेक रंगों वाले अधोवस्त्र (लुङ्गी) को पहनने वाले, काकासनेनोपविष्टम् = काकासन लगाकर बैठे हुए, रम्भालवाललग्नाधोमुख खड्गत्सरुन्यस्त विपर्यस्त हस्त युगलम् = रम्भा = केला, आलवाल = थाल्हा, लग्न = स्थित, अधोमुख = नीचे मुख वाली, खड्ग = तलवार, त्सरु = मुठिया, न्यस्त = रखे गये, विपर्यस्त = उल्टे, हस्त युगलम् = दोनों हाथों वाले अर्थात् केले के थाल्हे में स्थित अधोमुख वाले कृपाण की मुठिया के ऊपर उल्टे दोनों हाथों को रखने वाले, लशुन = लहसुन, कदली किसलयानि = केले के किसलयों (पत्तों) को, मलिनयन्तम् = मलिन बनाते हुए, नवाङ्कितरश्मश्च श्रेणिच्छलेन = नया उगते हुए मूँछों की रेखा के

बहाने, श्मश्रु = मूँछ, श्रेणि = रेखा, छलेन = बहाने, कन्यकापहरणपङ्ककलङ्कलङ्किताननम् = कन्यका = कन्या, अपहरण = अपहरण, पङ्क = कीचड़ अर्थात् कन्या के अपहरण रूपी कीचड़ के कलङ्क से कलङ्कित मुख वाले (यवन युवक का विशेषण), विंशतिवर्ष कल्पम् = लगभग बीस वर्ष की आयु वाले, निश्चित्य = निश्चित करके, उत्प्लुत्य = उछलकर 'उत्+प्लुङ्+ल्यप्, युयुत्सुः = युद्ध करने के लिए इच्छुक, युध्+सन्+उ, अवतस्थे = स्थित हो गया, अव+स्था+लिट् (प्र.पु.ए. व.), संजाताः = हुई।

समास : संशयस्थानम् = संशयस्य स्थानम् (षष्ठी तत्पुरुष), कुटीरवलके = कुटीरस्य वलीके (षष्ठी तत्पुरुष), रिक्तहस्तेन = रिक्तः हस्तः यस्य सः तेन (बहुव्रीहि), कुटिलकचान् = कुटिलाः च ते कचाः तान् (कर्मधारय), कोपकषायितनयनः = कोपेन कषायिते नयने यस्य सः (बहुव्रीहि), करकम्पितकृपाकृष्णकृपाणः = करे कम्पितः कृपाकृपणः कृपाणः यस्य सः (बहुव्रीहि), लताप्रतानवितानवेष्टितरम्भास्तम्भत्रितयम् = लतानां प्रतानानाम् वितानेन वेष्टितम् रम्भास्तम्भानां त्रितयम् (तत्पुरुष समास), नीलवस्त्र खण्ड वेष्टित मूर्द्धानम् = नीलं च यत् वस्त्रं कर्मधारय) तेन वेष्टितः मूर्द्धान् यस्य सः तम् (बहुव्रीहि), श्यामवसनानद्धकटितटकर्बुराधोवसनम् = श्यामवसनेन आनद्धम् कटितटे कर्बुराधोवसनम् यस्य तम् (बहुव्रीहि), काकासनेन = काकानाम् आसनेन (षष्ठी तत्पुरुष), रम्भालवाललग्नाधोमुखखड्गत्सरुन्यस्त विपर्यस्तहस्तयुगलम् = रम्भायाः आलवाले लग्नस्य अधोमुखस्य खड्गस्य त्सरौ न्यस्तं विपर्यस्तम् हस्त युगलम् यस्य सः तम् (बहुव्रीहि), नवाङ्कुरितश्मश्रुश्रेणिच्छलेन = नवाङ्कुरितायाः श्मश्रु-श्रेण्याः छलेन (तत्पुरुष), यवनयुवकं = यवनस्य युवकं (तत्पुरुष)।

अलंकार : "तपस्विवेशोऽर्जुनइव" में उपमा अलंकार है। 'करकम्पित कृपा कृपण कृपाणो' में अनुप्रास अलंकार है। काकासन = कौओं का आसन, अर्थात् दोनों घुटनों के मध्य में दुङ्डी को रखकर बैठे जाने वाला आसन।

गौरसिंहः — कुता रे यवनकुलकलङ्क!

यवनयुवकः — आः! वयमपि कुत इति प्रष्टव्याः? भारतीयकन्दरि-कन्दरेष्वपि वयं विचरामः, शृङ्गलाङ्गूलविहीनानां हिन्दुपदव्यवहार्याणाञ्च युष्मादृक्षाणां पशूनामाखेटक्रीडया रमामहे।

गौरसिंहः — (सक्रोधं विहस्य) वयमपि स्वाङ्कागतसत्त्ववृत्तयः शिवस्य गणाः अत्रैव निवसामः। तत्सुप्रभातमद्य, स्वयमेव त्वं दीर्घदावदहने पतङ्गायितोऽसि।

यवनयुवकः — अरे रे वाचाल ! ह्यो रात्रौ युष्मत्कुटीरे रुदतीं समायातां ब्राह्मणतनयां सपदि प्रयच्छथ, तत् कदाचिद् दयया जीवतोऽपि त्यजेयम्, अन्यथा मदसिभुजङ्गिन्या दष्टाः क्षणात् कथावशेषाः संवत्स्यथ।

हिन्दी अनुवाद : गौर सिंह — हे यवन कुल कलंक ! (तुम) कहाँ से आया।

यवन युवक — अरे ! हम भी कहाँ से आये, यह पूछने की बात है। भारत की पर्वत कन्दराओं (गुफाओं) में भी हम विचरण करते हैं, (तथा) सींग और पूँछ से हीन, हिन्दू पद व्यवहार वालों (हिन्दू नामधारी) तुम्हारे जैसे पशुओं की शिकार-क्रीडा से आनन्द लेते हैं।

गौर सिंह — (क्रोध के साथ हंसकर) अपने गोद में आये हुए जीवों के ऊपर जीवन बिताने वाले शिव के गण यहीं रहते हैं, तो आज का प्रभात शुभ रहा, स्वयं ही तुम प्रचण्ड दावाग्नि में पतंग के समान आ गये हो।

यवन युवक — अरे रे वाचाल ! कल रात्रि में तुम्हारी कुटिया में रोती हुई जो ब्राह्मण कन्या आई थी (उसे) तुरन्त दे दो, तब कदाचिद् दयावश तुमको जीवित भी छोड़ दूँ, अन्यथा क्षण भर में मेरी तलवार रूपी सर्पिणी के द्वारा डँस लेने पर तुम्हारी कथा मात्र ही बच जायेगी।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : आः = दुःख सूचक, यवन कुलकलङ्क = यवन वंश के कलङ्क, वयमपि = हम भी, प्रष्टव्याः = पूछना चाहिए, प्रच्छ+तव्य, भारतीय कन्दरिकन्दरेषु = भारतीय = भारत के, कन्दरि = पहाड़, कन्दरेषु = गुफाओं में अर्थात् भारत के पहाड़ों की गुफाओं में, श्रृंगलाङ्गूल विहीनानाम् = श्रृंग = सींग, लाङ्गूल = पूँछ, सींग और पूँछ से रहित, आखेट क्रीडया = शिकार के खेल से, रमामहे = आनन्द मनाता हूँ, स्वङ्कागतसत्त्ववृत्तयः = स्व = अपने, अङ्क = गोद, आगत = आये हुए, सत्व = जीव, वृत्ति = जीवन साधन, अपनी गोद में आये हुए जीवों के ऊपर जीवन यापन करने वाले, दीर्घदाव दहने = प्रचण्ड दावाग्नि में, पतङ्गायितोऽसि = पतङ्ग के सदृश आचरण कर रहे हो। रुदतीम् = रोती हुई, रुद्+शत्, समायाताम् = आयी हुई, सम्+आ+या+त (स्त्रीलिंग), प्रयच्छथ = दे दो, तत्कदाचित् = तो कदाचित्, त्यजेयम् = छोड़ देना चाहिए, मदसि भुजङ्गिन्या = मेरी तलवार रूपी सर्पिणी द्वारा, दंष्ट्राः = डंसे गये, दंश+क्त, क्षणात् = क्षण भर में, कथावशेषाः = मात्र बची हुई कथा वाले, संवत्स्यथ = रहोगे, सम्+वृत्तु+लृट् लकार, म.पु.ए.व।

समास : भारतीयकन्दरिकन्दरेषु = भारतीयाः कन्दरिणः तेषां कन्दरेषु (तत्पुरुष), स्वाङ्कागत सत्त्ववृत्तयः = स्वाङ्के आगताः सत्त्वाः एव वृत्तयः येषां ते (बहुव्रीहि), सुप्रभातम् = शोभनं प्रभातम् प्रादि समास।

अलंकार : 'पतङ्गायितोऽसि' में उपमा अलंकार, 'मदसिभुजङ्गिन्या' में असि पर भुजङ्गिणी का आरोप किया गया है, अतः रूपक अलंकार है।

कलकलमेतमाकर्ण्य श्यामबटुरपि कन्यासमीपादुत्थाय दृष्ट्वा च हन्तुमेतं यवनवराकं पर्याप्तोऽयं गौरसिंहः इति मा स्म गमदन्योऽपि कश्चित् कन्यकामपजिहीर्षुरिति वलीकादेकं विकटखड्गमाकृष्य त्सरौ गृहीत्वा कन्यकां रक्षन् तदध्युषितकुटीर निकट एव तस्थौ।

गौरसिंहस्तु "कुटीरान्तः कन्यकाऽस्ति, सा च यवनवधव्यसनिनि मयि जीवति न शक्या द्रष्टुमपि, किं नाम स्म्रष्टुम् ? तदयावत्तव कवोष्णशोणित-तृषित एष चन्द्रहासो न चलति, तावत् कूर्दनं वा उत्फालं वा यच्चिकीर्षसि तद्विधेहि" इत्युक्त्वा व्यालीढमर्यादाया सज्जः समतिष्ठत।

हिन्दी अनुवाद : इस कल कल ध्वनि को सुनकर श्यामबटु भी कन्या के पास से उठकर और देखकर इस क्षुद्र यवन को मारने के लिए गौर सिंह अकेला ही पर्याप्त है, यह सोचकर कोई दूसरा कन्या का अपहरण करने के लिए न आ जाय, अतः छज्जे से एक भयंकर तलवार खींचकर उसकी मुठिया पकड़कर कन्या की रक्षा करता हुआ कन्या से अधिष्ठित उसी कुटिया के निकट ही स्थित रहा। गौर सिंह ने 'कुटिया के भीतर कन्या है' और यवनों के वध के व्यसनी मेरे जीते जी उसे (कोई) देख नहीं सकता, छूने को कौन कहे ? इसलिए जब तक कुछ गर्म रक्त की प्यासी यह तलवार नहीं चलती है, तब तक ही जो भी उछल-कूद करना चाहते हो, वह कर लो। यह कहकर युद्ध विधान की मर्यादा से (पैंतरा बनाकर) तैयार हो गया।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : कलकलम् = कलकल ध्वनि (कोलाहल), कन्यासमीपात् = कन्या के समीप से, उत्थाय = उठकर उद्+स्था+क्त्वा+ल्यप्, हन्तुम् = मारने के लिए, हन्+तुमुन्, यवन वराकः = क्षुद्र यवन, पर्याप्तः = पर्याप्त हैं, परि+अप+क्त, मास्मगमत् = न पहुँच जाय (स्म के योग में लङ् लकार), अपजिहीर्षु = अपहरण करने के लिए इच्छुक, अप+ह्+सन्+उ, वलीकात् = छज्जे से, विकटखड्गम् = कठोर तलवार, त्सरौ = मुठिया को, गृहीत्वा = पकड़कर, रक्षन् = रक्षा करता हुआ, रक्ष्+शत्, अध्युषित कुटीर निकट = उस कन्या से अधिष्ठित के समीप (अधि+वस्+क्त), तस्थौ = स्थित हो गया, स्था+लिट् लकार, प्र.पु.ए.व.), कुटीरान्तः = कुटिया के भीतर, यवनवधव्यसनिनि = यवनों के वध का व्यसनी (मयि का विशेषण) सप्तमी ए.व., मयि =

मेरे, सप्तमी ए.व., जीवति = जीने पर, न शक्या = सम्भव नहीं है, शक्+यत्+टाप्, द्रष्टुम् = देखने के लिए, (दृश+तुमुन्), स्प्रष्टुम् = छूने के लिए (स्पर्श करने का प्रश्न ही नहीं), कवोष्णशोणित तृषितः = कवोष्ण = कुछ गर्म, शोणित = रक्त, तृषित = प्यासी अर्थात् कुछ गर्म रक्त की प्यासी, चन्द्रहासः = तलवार, कूर्दनम् = कूदना, उत्फालम् = उछलना, यत् = जो, चिकीर्षसि = करना चाहते हो, कृ+सन्+लट्, म.पु.ए.व., विधेहि = करो, व्यालीढमर्यादया = युद्धविधान के विशेष ढंग से (पैंतरे बाजी के साथ), सज्जः = तैयार हो गया, समतिष्ठत् = स्थित हो गया, सम्+स्था+लङ्, प्र.पु.ए.व.।

समास : कन्या समीपात् = कन्यायाः समीपात् (षष्ठी तत्पुरुष), विकट खड्गम् = विकटः चासौ खड्ग तम् (कर्मधारय), तदध्युषितकुटीर-निकटे = तया अध्युषितस्य कुटीरस्य निकटे (तत्पुरुष), यवनवधव्यसिनि = यवनानां वधः एव व्यसनम् यस्य सः तस्मिन् (बहुव्रीहि), कवोष्णशोणिततृषितः = कवोष्णस्य शोणितस्य तृषितः (तत्पुरुष), व्यालीढमर्यादया = व्यालीढस्य मर्यादया (तत्पुरुष)।

विशेष : इस गद्यांश में गौर सिंह एवं श्याम बटु की वीरता एवं विवेक का चित्रण किया गया है।

ततो गौरसिंहः दक्षिणान् वामांश्च परश्शतान् कृपाणमार्गानङ्गीकृतवतः, दिनकरस्पर्शचतुर्गुणीकृतचाकचक्यैः चञ्चच्चन्द्रहासचमत्कारैश्चक्षुषि मुष्णतः, यवनयुवकहतकस्य, केनाप्यनुपलक्षितोद्योगः, अकस्मादेव स्वासिना कलितक्लेदसंजातस्वेदजलजालं विशिथिलकचकुलभालं भग्नभ्रूभयानक भालं शिरश्चिच्छेद।

हिन्दी अनुवाद : उसके बाद गौर सिंह ने दाँये-बाँये सैकड़ों कृपाण मार्ग को स्वीकार करने वाले, सूर्य की किरणों के स्पर्श से चौगुनी किये गये चकमकाहट से चंचल कृपाण के चमत्कारों से चकाचौंध नेत्रों वाले उस दुष्ट यवन-युवक के श्रम के कारण उत्पन्न स्वेद बिन्दुओं से व्याप्त बिखरे हुए केशों वाले टेढ़ी-मेढ़ी भौंहों से भयंकर ललाट वाले शिर को अपनी तलवार से अचानक इस प्रकार काट दिया, कि किसी ने भी उसका (गौर सिंह का) प्रयत्न नहीं देख पाया।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : दक्षिणान् = दायें, वामान् = बायें, परश्शतान् = सैकड़ों, कृपाणमार्गान् = तलवार के मार्गों (तलवार चलाने के तीरकों को), अङ्गीकृतवतः = अङ्गीकार करने वाले (यवन-युवक का विशेषण) षष्ठी ए.व., दिनकर = सूर्य, कर = किरण, चतुर्गुणीकृतं चाकचक्यैः = चौगुनी किये जाते हुए चकमकाहटों से, चञ्चच्चन्द्रहास-चमत्कारैः = चलती हुई तलवार के चमत्कारों से, चन्द्रहास = तलवार, चक्षुषि = नेत्रों को, मुष्णतः = चुरा लेने वाले अर्थात् चौंधिया देने वाले, मुष्+तासिल् प्रत्यय, हतक = दुष्ट, स्वासिना = अपनी तलवार से, कलितक्लेदसंजातस्वेद जलजालम् = कलित = व्याप्त, कल्+क्त, क्लेद = परिश्रम, संजात = उत्पन्न, स्वेद जल = पसीने की बूँदे, जालम् = समूह अर्थात् परिश्रम के कारण उत्पन्न स्वेद बिन्दुओं से व्याप्त, विशिथिल-कच-कुल-मालम् = अस्त व्यस्त केश समूह की पंक्तियों वाले, विशिथिल = बिखरे हुए, कचकुल = केश समूह, मालम् = माला (पंक्ति), भग्नभ्रूभयानकभालम् = टेढ़ी-मेढ़ी भौंहों के कारण भयंकर ललाट वाले, अकस्माद = अचानक, शिरः = शिर को, चिच्छेद = काट दिया, छिद्+लिट् लकार प्र.पु. ए.व.।

समास : कृपाणमार्गान् = कृपाणस्य मार्गान् (तत्पुरुष), दिनकर स्पर्श चतुर्गुणीकृत चाकचक्यैः = दिनकरस्य कारणां स्पर्शेन चतुर्गुणीकृतं चाकचक्यं यैः तै (बहुव्रीहि), अनुपलक्षितोद्योगः = अनुपलक्षितः उद्योगः यस्य सः (बहुव्रीहि), कलितक्लेदसं जातस्वेद जलजालम् = कलितेन क्लेदेन संजातस्य स्वेदजलस्य जालः यस्मिन् तत् (बहुव्रीहि)।

अलंकार : चञ्चच्चन्द्रहास एवं भग्नभ्रूभयानक भालम् में अनुप्रास अलंकार।

अथ मुनिरपि दाडिम—कुसुमास्तरणाच्छन्नायामिव गाढरुधिरदिग्धयां
ज्वल—दङ्गारचितायां चितायामिव वसुधायां शयानं वियुज्यमानभारतभुवमालिङ्गन्तमिव
निर्जीवीभवदङ्गबन्धचालनपरं शोणितसङ्घातव्याजेनान्तः स्थितरजोराशिमि—वोदगिरन्तं
कलितसायन्तनघनाडम्बरविभ्रमं सततताम्रचूडभक्षणपातकेनेव ताम्रीकृत छिन्नकंधरं
यवनहतकमवलोक्य सहर्ष ससाधुवादं सरोमोद्गमञ्च गौरसिंहमाशिलष्य,
भ्रुभङ्गमात्राऽऽज्ञप्तेन भृज्येन मृतककञ्चुककटिबन्धोष्णीषा—दिकमन्विष्याऽऽनीतम्
पत्रमेकमादाय सगणः स्वकुटीरं प्रविवेश।

हिन्दी अनुवाद : इसके बाद मुनि भी, अनार के फूलों के बिछौने से ढकी हुई सी, गाढ़े खून से लिप्त एवं जलते हुए अंगारों से व्याप्त चिता के समान पृथ्वी पर सोते हुए, अलग होती हुई भारत—भूमि का मानो आलिङ्गन करते हुए, निर्जीव होते हुए शरीर के बन्धों को हिलाते हुए, रक्त समूह के बहाने से (शरीर के) भीतर स्थित रजोगुण के समूह को उगलते हुए से, सायङ्कालीन मेघाडम्बर के विलास को धारण किये हुए, मानो मुर्गा खाने के पास से लाल हुए और कटी हुई ग्रीवा वाले दुष्ट युवक को देखकर प्रसन्नतापूर्वक साधुवाद देते हुए रोमांचित होकर गौरसिंह को आलिङ्गन करके, भौहों के संकेत से आदेश दिये गये सेवक के द्वारा मृतक के कुर्ते, कटिबन्ध तथा पगड़ी आदि को ढूँढकर लाये गये एक पत्र को लेकर गणों के साथ अपने कुटिया में प्रवेश किया।

शब्दार्थ एवं व्याकरण : अथ = इसके बाद, मुनिरपि = मुनि भी, दाडिम = अनार, कुसुमास्तरण = फूलों का बिछौना, दाडिम कुसुमास्तरणाच्छन्नायाम् = अनार के फूलों के बिछौने से ढकी हुई सी, गाढरुधिरदिग्धायाम् = गाढ़े रक्त से लिप्त, दिग्ध = लिप्त, ज्वलदङ्गारचितायाम् = जलते हुए अङ्गारों से व्याप्त, ज्वलत् = जलते हुए, चितायाम् = व्याप्त, चितायाम् = चिता में, सप्तमी ए.व., शयानम् = सोते हुए शीङ्+शानच् प्रत्यय, वियुज्यमानभारतभुवम् = अलग होती हुई भारत भूमि को, वि+युज्+शानच्, आलिङ्गन्तम् = आलिङ्गन करते हुए (यवन युवक का विशेषण) निर्जीवीभवदङ्गबन्ध चालनपरम् = निर्जीव होते हुए अंग बन्धों को हिलाते हुए, अङ्गबन्ध = अंगों के जोड़ (गांठें), शोणितसंघातव्याजेन = रक्त समूह के बहाने से, अन्तःस्थित रजोराशिमि = हृदय में स्थित रजोगुण—समूह को, उदगिरन्तम् = गिराते हुए (उगलते हुए) उद+गिर्+शत्, कलितसायन्तनघनाडम्बरविभ्रम् = सायंकालीन मेघाडम्बर के विलास से व्याप्त, कलित = व्याप्त, सायन्तन = सायंकाल, विभ्रम = विलास, ताम्रचूडभक्षणपातकेन = मुर्गा खाने के पाप से, ताम्रचूड = मुर्गा, ताम्रीकृत = लाल हुये, छिन्नकन्धरम् = कटी हुई ग्रीवा वाले, ससाधुवादम् = साधुवाद के साथ (प्रशंसा करते हुए), सरोमोद्गमञ्च = रोमाञ्च के साथ, आशिलष्य = आलिङ्गन करके, आ+शिल्ष+ल्यप्, भ्रुभङ्गमात्राज्ञप्तेन = भौहों के संकेत मात्र से आदेश दिये गये, भ्रु = भौह, भङ्ग = भङ्गिमा, आज्ञप्तेन = आदिष्ट (आदेश दिये गये), मृतक कञ्चुक कटिबन्धोष्णीषादिकम् = मृतक (यवन युवक) के कुर्ते, कटिबन्ध, पगड़ी आदि को, कञ्चुक = कुर्ता, उष्णीष = पगड़ी, अन्विष्य = ढूँढकर, आदाय = लेकर, सगणः = गणों के साथ, स्वकुटीरम् = अपनी कुटी में, प्रविवेश = प्रवेश किया।

समास : दाडिमकुसुमास्तरणाच्छन्नायाम् = दाडिमस्य कुसुमानाम् आस्तरेण आच्छन्नायाम् (तत्पुरुष), ज्वलदङ्गारचितायाम् = ज्वलाद्भिः अङ्गारैः चितायाम् (तत्पुरुष), गाढरुधिरदिग्धायाम् = गाढेन रुधिरान् दिग्धायाम् (तत्पुरुष), शोणितसंघातव्याजेन = शोणितस्य संघातस्य व्याजेन (तत्पुरुष), कलितसायन्तनघनाडम्बरविभ्रमम् = कलितः, सायन्तनस्य घनाडम्बरस्य विभ्रमः येन सः तम् (बहुव्रीहि), छिन्नकन्धरम् = छिन्नं कन्धरं यस्य सः तम् (बहुव्रीहि)।

अलंकार : 'ज्वलदङ्गार—चितायां चितायामिव' में यमक एवं उत्प्रेक्षा अलंकार है। 'वियुज्यमान—भारतभुवमालिङ्गन्तमिव' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

अभ्यास प्रश्न

- 1-प्रश्न- पुत्र गौर सिंह ! मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, यह वाक्य किसने कहाँ?
- 2-प्रश्न-क्षुद्र यवन को किसने मारा?
- 3-प्रश्न- दुष्ट यवन को गौर सिंह ने किससे काट दिया?
- 4-प्रश्न- बीस वर्ष की अवस्था वाले यवन-युवक को किसने देखा?
- 5-प्रश्न- यवन-युवक की अवस्था कितनी वर्ष थी?

5.4 सारांश

इस इकाई में गौर सिंह की वीरता का वर्णन करते हुए उसके बाद गौर सिंह ने दौंये-बाँये सैकड़ों कृपाण मार्ग को स्वीकार करने वाले, सूर्य की किरणों के स्पर्श से चौगुनी किये गये चकमकाहट से चंचल कृपाण के चमत्कारों से चकाचौंध नेत्रों वाले उस दुष्ट यवन-युवक के श्रम के कारण उत्पन्न स्वेद बिन्दुओं से व्याप्त बिखरे हुए केशों वाले टेढ़ी-मेढ़ी भौंहों से भयंकर ललाट वाले शिर को अपनी तलवार से अचानक इस प्रकार काट दिया, कि किसी ने भी उसका (गौर सिंह का) प्रयत्न नहीं देख पाया। इन सबका वर्णन इस इकाई में किया गया है

5.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
अथ	इसके बाद
मुनिरपि	मुनि भी
दाडिम	अनार
कुसुमास्तरण	फूलों का बिछौना
दिग्ध	लिप्त
, ज्वलत्	जलते हुए
चितायाम्	व्याप्त
, चितायाम्	चिता में
शयानम्	सोते हुए

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- 1- शिवाजी ने 2- गौर सिंह ने 3- तलवार से 4- गौर सिंह 5- बीस वर्ष

5.7 सदर्थ ग्रन्थ सूची

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
शिवराजविजय	अम्बिकादत्तव्यास	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
2-संस्कृत साहित्य का इतिहास	बलदेव उपाध्याय	शारदा निकेतन कस्तूरवानगर

5.8 उपयोगी पुस्तकें

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
शिवराजविजय	अम्बिकादत्तव्यास	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

- 1-शिवाजी के विषय में परिचय दीजिये ।

खण्ड दो-(श्रीमद्भगवद्गीता) द्वितीय एवं तृतीय अध्याय

इकाई 1. श्रीमद्भगवद्गीता का परिचय एवं महत्व

इकाई की रूपरेखा

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 श्रीमद्भगवद्गीता का परिचय
 - 1.3.1 गीता का रचनाकाल
 - 1.3.2 महाभारत गीता में साम्य
 - 1.3.3 गीता की श्लोक संख्या
 - 1.3.4 गीता के प्रमुख टीकाकार
 - 1.3.5 गीता के अष्टादश अध्यायों का सार
- 1.4 गीता का महत्व
 - 1.4.1 श्रीमद्भगवद्गीता का दार्शनिक तत्त्वविवेचन की दृष्टि से महत्व
 - 1.4.2 त्रिविध योग
 - 1.4.3 निष्काम कर्म योग
 - 1.4.4 स्थित प्रज्ञ
 - 1.4.5 गीता में आत्मतत्त्व
 - 1.4.6 ब्रह्म या परमेश्वर
 - 1.4.7 जीव
 - 1.4.8 वर्णधर्म या स्वधर्म
 - 1.4.9 गीता की दैवी और आसुरी सम्पत्ति
 - 1.4.10 मोक्ष
- 1.5 सारांश
- 1.6 पारिभाषिक शब्दावली
- 1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 1.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

गीता संस्कृत साहित्य काल में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व का अमूल्य ग्रन्थ है। यह भगवान श्री कृष्ण के मुखारविन्द से निकली दिव्य वाणी है। इसमें 18 अध्याय और 700 श्लोक हैं। इसके संकलन कर्ता महर्षि वेद व्यास को माना जाता है। आज गीता का विश्व की कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। जिससे इसकी कीर्ति दिगदिगंतर तक व्याप्त है। श्रीमद्भगवद्गीता एक ऐसा विलक्षण ग्रन्थ है जिसका पार आज तक कोई नहीं पाया है। इसका अध्ययन मनन चिन्तन करने पर नित्य नये भाव उत्पन्न होंगे कहा जाता है कि गीता में जितना भाव भरा है उतना बुद्धि में नहीं आता है। बुद्धि की एक सीमा है, और जब बुद्धि में आता है तब मन में नहीं आता और जब मन में आता है तब फिर कहने में नहीं आता है। यदि कहने में आता है तो लिखने में नहीं आता है। इस प्रकार गीता असीम है। गीता में ज्ञान योग, कर्मयोग, और भक्तियोग का वर्णन किया गया है। प्रस्तावना के अन्तर्गत गीता के 18 अध्यायों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। गीता को सामान्य जन समझ नहीं सकता है तो उसकी विषय में लिखना तो दूर। किन्तु गीता के विषय में कोई कुछ कहता है तो वह वास्तव में अपने बुद्धि का ही परिचय देता है –

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई।

तदपि कहे बिनु रहा न कोई।।(मानस बालका० 13/९)

गीता की प्रस्तावना में प्रत्येक अध्याय का नाम और उसका संक्षिप्त प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार प्रस्तावना का परिचय जान लेने के बाद गीता के महत्व को जान पायेंगे गीता प्रस्थानत्रयी का ग्रन्थ है। प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषदे आते हैं। इसके बाद, स्मृति प्रस्थान, मोक्ष प्राप्ति, वर्ण व्यवस्था, गीता में ज्ञान कर्म भक्ति का समन्वय रूप, साधन की दो शैली, आदि के विषय में जानकारी प्राप्त होगी इसके बाद अभ्यास प्रश्न एवं इकाई का सारांश दिया गया है। तथा परिभाषिक शब्दावली के साथ अभ्यास प्रश्नों का उत्तर और सन्दर्भ ग्रन्थ सूची, निबन्धात्मक प्रश्न आदि का वर्णन किया गया है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के चश्चात् आप गीता का परिचय एवं महत्व निम्न बातें जान सकेंगे—

- गीता में आप देखेंगे कि श्री कृष्ण भगवान एक योगेश्वर थे जो मानव रूप में विराज मान थे। गीता में आत्मा का अमरत्व और अवतारवाद विशेष रूप से परिस्फूट मिलते हैं।
- धर्म साधना में उदार भाव से युक्त होना और निष्काम भाव से कर्म करते रहने की तथा सभी प्राणियों में ब्रह्म दृष्टि का भाव आपके अर्न्तमन में जागृत होगा।
- निष्काम कर्मयोग, भगवान ने कर्म फल सम्पर्ण तथा सर्व धर्म त्याग आदि को आत्मसात करने के लिए प्रयत्नशील होंगे।
- गीता का महत्व पढ़कर जान सकेंगे की ज्ञान-कर्म-भक्ति योग में से प्रत्येक ही मुक्ति का मार्ग है।
- आप जान पायेंगे कि आत्मा ही सत्य है। यज्ञ ही कर्म है और युद्ध-दैवी एवं आसुरी सम्पदाओं का संघर्ष युद्ध है। ये मानव मन में अन्तःकरण की दो प्रवृत्तियां हैं इन दोनों का मिटना परिणाम है।

1.3 श्रीमद्भगवद्गीता का परिचय

भगवद्गीता संस्कृत महाकाव्य का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में अत्यन्त समादर प्राप्त ग्रन्थ है। इसमें भगवान् कृष्ण द्वारा अर्जुन को कुरुक्षेत्र युद्ध में दिया गया द्विव्य उपदेश है यह गीता वेदान्त दर्शन का सार है। यह ग्रन्थ महाभारत की एक घटना के रूप में प्राप्त होती है। महाभारत में वर्तमान कलियुग तक की घटनाओं का विवरण मिलता है। इसी युग के प्रारम्भ में आज से लगभग 5000 वर्ष पूर्व भगवान् श्री कृष्ण ने अपने मित्र तथा भक्त अर्जुन को यह गीता सुनाई थी।

1.3.1 गीता का रचनाकाल –

गीता के रचनाकाल के सम्बन्ध में डा० रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर ने चर्तुव्यूह को आधार मानकर सिद्ध किया है कि भगवद्गीता की रचना सात्त्वत या भागवत सम्प्रदाय की सुव्यस्थित होने के पूर्व हुई है उनके मत में इसका काल चौथी ई०पू० का आरम्भ है तथा यह भक्ति सम्प्रदाय या ऐकान्तिक धर्म की प्राचीनतम व्याख्या है। यद्यपि गीता के काल निर्णय के बारे में भिन्न-भिन्न प्रकार की गवेषणाएँ भी हैं और आज भी हो रही है।

इसलिये गीता को महाभारत के भीष्म पर्व पर आधारित मानना उचित है महाभारत के भीष्म पर्व के 25 से 42 अध्याय के अन्तर्गत भगवद्गीता आती है फिर शान्तिपर्व और अश्वमेधपर्व में भी गीता का कुछ प्रसंग उल्लिखित मिलता है।

भगवद्गीता भागवत धर्म पर आधारित द्विव्य ग्रन्थ है इसकी रचनाकाल और सन्देश के विषय में विद्वानों में मतभेद है। पाश्चात्य विद्वानों का मानना है कि गीता में परस्पर विरोध विचारों का सामन्जस्य है। जो यह सिद्ध करता है कि एक व्यक्ति द्वारा रचित होना सम्भव नहीं है। बल्कि विभिन्न व्यक्तियों ने विभिन्न समयों में लिखा होगा। परन्तु भारतीय विचारक एवं चिन्तक मानते हैं कि भागवत धर्म का अभ्युदयकाल ई०सन् के 1400 वर्ष पहले रहा होगा और गीता कुछ शताब्दियों के बाद प्रकाश में आयी होगी मूल भागवत धर्म भी निष्काम कर्म प्रधान होते हुये भी आगे चलकर भक्ति प्रधान स्वरूप धारण कर विशिष्टा द्वैत का समावेश कर लिया तथा प्रचलित हुआ।

गीता महाभारत का ही अंश है और यदि महाभारत काल निर्धारण है तो गीता का भी उसी आधार पर सहज ही लगाया जा सकता है महाभारत लक्ष श्लोकात्मक ग्रन्थ है और शक के लगभग 500 पूर्व अस्तित्व में था—

गार्वे के अनुसार “मूल गीता की रचना 200 ई०पू० के लगभग हुई होगी जब विष्णु और कृष्ण का तादात्म्य स्थापित किया जा चुका था। हाँपकिन्स, कीथ, डाउसन और फर्कुआर आदि विद्वान इस श्वेताश्वतर उपनिषद् से मिलता जुलता मानते हैं। लेकिन समयानुसार कुछ बाद का उपनिषद् मानते हैं। ओटो और याकोबी मूलगीता ग्रन्थ को दार्शनिक या धार्मिक ग्रन्थ नहीं मानते हैं। इन लोगों का मानना है कि यह मूलतः महाकाव्य का सुन्दर अंश है जिसे बाद में दार्शनिकों ने वर्तमान कलेवर में सुसज्जित कर नया रूप प्रदान किया।

1.3.2 महाभारत गीता में साम्य –

महाभारत में 18 पर्व है जिनमें पूर्वार्द्ध में 6 पर्व है एवं उत्तरार्द्ध में 12 पर्व है। इस ग्रन्थ का महाभारत से बड़ा साम्य है महाभारत में 18 पर्व है वहीं गीता में 18 अध्याय है। जिसको 6-6 के क्रम से तीन भागों में बाटा जा सकता है पहले 6 अध्याय कर्मयोग पर आधारित है और 7-12 वें तक अध्याय भक्तियोग पर आधारित है और अन्तिम 6 अध्याय ज्ञान की पराकाष्ठा से ओत-प्रोत है और इस प्रकार पूरी गीता में महाभारत से कितना साम्य दिखलाई पडता है एक तरफ 7-7 अक्षौहिणी सेना थी तो दूसरी तरफ 11 अक्षौहिणी सेना ऐसे वातावरण में गीता कही गयी है, जो तत्व ज्ञान

ऋषि महात्मा लोग गुफा कन्दराओं में रहकर प्रदान किये हैं वह भी गीता के तत्त्वज्ञान के सामने कुछ भी नहीं है। सम्पूर्ण गीता ग्रन्थ अष्टादश अध्यायों में विरचित है। प्रत्येक अध्याय एक-एक योग है। गीता की पृष्ठ भूमि युद्ध क्षेत्र है। भगवान श्री कृष्ण का मुख्य प्रयोजन मानव अवतार रूप धारण करके अधर्म का नाश और धर्म का उत्थान करना था— जो कि स्वयं कहते हैं—

“ यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानम सृजाम्यहम् ।।” (गीता 4/7)

कुरु क्षेत्र में युद्ध की तैयारी चल रही थी इस युद्ध का कारण राज्य के अधिकार क्षेत्र को लेकर था। कौरव अपने राज्य से सूई के नोंक के बराबर जमीन देने को तैयार नहीं थे। जबकि पूर्व में ही सहमति दी गयी थी इस वचन से विमुक्त होने पर युद्ध की पृष्ठ भूमि तैयार होना तय हो गया था। दोनो पक्ष से श्रेष्ठ वीर युद्ध भूमि में उपस्थित थे शारीरिक बल प्रयोग से इस झगड़े का निपटारा होना है। कुरुक्षेत्र के युद्ध भूमि में एक तरफ पाण्डव सेना और दूसरी ओर कौरव सेना युद्ध के लिये सन्नद्ध खड़ी है। भगवान कृष्ण अर्जुन के सारथि हैं और रथ को दोनों सेनाओं के मध्य ले जाकर जब खड़ा कर देते हैं तब अर्जुन को मोह हो जाता है। क्योंकि सभी लोग युद्ध में अपने ही सगे सम्बन्धी थे अर्जुन को श्री कृष्ण समझाते हुये कहते हैं कि अपने स्वधर्म अर्थात् क्षत्रिय धर्म का पालन करो और अधर्म का नाश करके धर्म को विजयी बनाओ तर्क-वितर्क बुद्धि युक्त अर्जुन को बारम्बार श्री कृष्ण 'स्वधर्म' और अपने 'स्वभाव' के अनुसार निष्काम कर्म का पालन करने का उपदेश देते हैं। ध्यातव्य है कि गीता का उपदेश समाप्त होने पर श्री कृष्ण ने केवल यही कहा है कि “यथेच्छसि तथा कुरु” अर्थात् (गीता 18/63) जैसी तुम्हारी इच्छा हो वही करो और अर्जुन ने उत्तर दिया— आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है। अतः जैसा आपने कहा है वैसा ही करूंगा—

“करिष्ये वचनं तव” (गीता 18/73)

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण गीता में श्री कृष्ण परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित हैं। श्री कृष्ण अर्जुन को निष्काम कर्म का सदुपदेश देते हैं। गीता के “अष्टादश” अध्याय के विषय में अर्थात् 18 अंक को देखा जाय तो यह परिलक्षित होता है कि सम्पूर्ण चराचर जगत की सार्थकता 18 अंको में ही समाविष्ट है। क्योंकि जगत में 4 वेद, 4 युग, 4 वर्ण, 4 आश्रम इन्हीं सोलह शाखाओं रूपी वृक्ष के ऊपर जीवात्मा और परमात्मा रूपी दो पक्षियों का चिर निवास है जो मिलकर 18 हो जाते हैं—

“ द्वासुपर्णा सुयजासखाया समानं वृक्षं परिष्वजाते” (मु0 उप03/1/5)

महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास को 17 पूराणों की रचना के बाद भी आध्यात्मिक शान्ति नहीं प्राप्त हुई है। वे 18 वें महापुराण के रूप में श्री कृष्ण भक्ति भावना से ओत-प्रोत श्रीमद्भागवद्गीता महापुराण वर्णित किया। वेद व्यास महा पुरुष थे। उन्होंने महाभारत के लौकिक कौरव- पाण्डव के महाभारत के युद्ध को श्रीमद्भागवद्गीता में दैव तथा आसुर स्वभाव के अन्तर्द्वन्द का चित्र इस प्रकार चित्रित किया है कि विवेक और विचारपूर्वक मनन करके सम्पूर्ण चराचर जगत का एक मात्र स्वामी जीवात्मा मोह मयी निद्रा से जागृत होकर अधिभौतिक जगत कि नश्वरता को भली-भांति समझ लेता है और जरामृत्यु के भय से सर्वदा मुक्त हो जाता है महर्षि 18 अंको की प्रेरणा सम्भवतः यहीं से मिली हुई होगी। क्योंकि उन्होंने महाभारत ग्रन्थ को 18 पर्वात्मक ही रचा। और उसके महा संग्राम की अवधि 18 दिन तथा गीता रूप महायोग शास्त्र का ज्ञान और कर्म रूपी तत्व का वर्णन भी गीता के 18 अध्यायों में कहकर वर्णित किया गया है। जिससे प्राणियों को परमपद का मार्ग सुनिश्चित रूप से प्राप्त हो सके।

1.3.3 गीता की श्लोक संख्या —

गीता की श्लोक संख्या को लेकर विद्वानों में प्राचीन काल से लेकर आज तक

मतभेद विद्यमान है। आचार्य शंकर ने गीता पर अपना श्रीमद्भगवद गीता शांकरभाष्य लिखा है और साथ ही श्लोकों की संख्या 700 मानकर गीता भाष्य की रचना की थी। परवर्ती भाष्यकार, टीकाकार और व्याख्याकारों ने शंकर के ही मत को स्वीकार किया है। महाभारत के भीष्मपर्व के 43 अध्याय के चौथे और पांचवें श्लोकों में वैशम्पायन ने भगवदगीता की प्रशंसा करते हुये कहा है—

“षट्शतानि सर्विंशानि श्लोकानां प्राह केशवः।

अर्जुनः सप्तपंचाशं सप्तषष्टि च संजयः॥

धृतराष्ट्रः श्लोकमेकं गीतायाः मानमुच्यते।”

अर्थात् गीता में श्री कृष्ण के द्वारा कथित श्लोकों की संख्या 620 है, अर्जुन कथित 56 श्लोक है तथा संजय कथित 67 और धृतराष्ट्र कथित एक श्लोक है। इस प्रकार उपर्युक्त यदि सभी श्लोकों की संख्या परिगणित की जाय तो 745 हो जायेगी। आधुनिक विद्वानों में भी श्लोक संख्या को लेकर मतभेद उपस्थित है और आधुनिक लोग गीता के आकार को अपूर्ण मानते हैं। इस प्रकार कुछ लोग तो गीता की श्लोक संख्या 745 ही मानते किन्तु वर्तमान में प्रचलित गीता की श्लोक संख्या 700 ही मानी जा रही है। महाभारत के भीष्मपर्व के 25 से 42 अध्याय की भगवदगीता भी 700 श्लोकों में पूर्ण है। कहीं-कहीं पर श्री भगवानुवाच, संजयउवाच, अर्जुनउवाच, धृतराष्ट्रउवाच आदि कुल 58 उक्तियों में श्लोक संख्या नहीं दी गयी है इसी प्रकार दुर्गा सप्तशती भी 700 श्लोकों में पूर्ण है। उसमें मार्कण्डेयउवाच, वैश्यउवाच इत्यादि 56 उवाचात्मक वाक्यों को भी क्रमिक श्लोक संख्या के रूप में चण्डी के 700 श्लोकों के अन्तर्गत लिया गया है।

महाभारत में वैशम्पायन की उक्ति के अनुसार गीता की श्लोक संख्या 745 होती है। और वह भी धृतराष्ट्रउवाच 9, अर्जुनउवाच-20, श्री भगवानुवाच-28 ऐसी कुल 58 उक्तियों को महाभारत के 700 श्लोकों के अन्तर्गत नहीं किया गया है, और इसी कारण गीता की श्लोक संख्या में कुछ भेद परिलक्षित होता है। यथार्थ में भी जो मूल महाभारत है उसमें भी 700 श्लोक ही प्राप्त होते हैं और मूल महाभारत श्लोकों के अवलम्बन से ही आचार्य शंकर ने अपने भाष्य की रचना की थी।

1.3.4 प्रमुख टीकाकार

गीता हिन्दू धर्म का प्राचीन ग्रन्थ है और यह प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत समावेशित है। इसकी प्रमाणिकता उपनिषदों और ‘ब्रम्हसूत्र’ के बराबर मानी गयी है। भारत में जब बौद्ध धर्म का हरास हो गया था उस समय विभिन्न धर्म और उसके धर्मावलम्बी अपने-अपने मत को उत्कृष्ट रूप प्रदान करने के लिए उठ खड़े हुये जिनमें से प्रमुख-अद्वैतवाद, द्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि प्रमुख थे। गीता की विभिन्न टीकायें आचार्यों द्वारा एक ओर अपने मत के समर्थन, प्रोत्साहन और वृद्धि के लिए लिखी गयी तथा दूसरी ओर दूसरे सम्प्रदायों के खण्डन के लिए लिखी गई है।

शंकराचार्य की टीका (ई0 सन् 788-820) इस समय विद्यमान टीकाओं में सबसे प्राचीन है इससे भी पुरानी अन्य टीकायें की जिनका नाम निर्देश शंकराचार्य ने अपनी भूमिका में किया है। परन्तु वे इस समय प्राप्त नहीं होती हैं। शंकराचार्य के दृष्टिकोण का विकास आनन्दगिरि ने जो सम्भवतः 13 वीं शताब्दी में हुये तथा इनके बाद श्रीधर (1400ई0सन्) ने और मधुसूदन (16वीं शताब्दी) ने तथा अन्य परवर्ती लेखकों ने किया। रामानुज ने (11वीं शताब्दी ई0) ने अपनी टीका में संसार की अवास्तविकता और कर्म त्याग के मार्ग के सिद्धान्त का खण्डन किया उसमें यमुनाचार्य द्वारा अपने ‘गीतार्थ संग्रह’ में प्रतिपादित व्याख्या का अनुसरण किया रामानुज ने गीता पर अपनी टीका में एक प्रकार का वैयक्तिक रहस्यवाद विकसित किया है और ये भगवान विष्णु को ही एक मात्र सच्चा देवता स्वीकार करते हैं।

मध्व ने (ई०सन् 1199–1276) तक भगवद्गीता पर दो ग्रन्थ 'गीताभाष्य' और 'गीतातात्पर्य' लिखें उसमें गीता में से द्वैतवाद के सिद्धान्त को ढूँढ निकालने का प्रयास किया है। यह मानते हैं कि आत्मा और परमात्मा को एक तरह से तदनुरूप न मानकर भिन्न मानन चाहियें। 'वहतू है' अर्थात् 'तत्त्वमसि' का अर्थ करते हुये कहते हैं कि हमें मेरे तेरे के भेदभाव को त्याग देना चाहिये और समझना चाहिये कि प्रत्येक वस्तु भगवान के नियन्त्रण के अधीन है।

नीम्बार्क (1162ई०सन्) में द्वैताद्वैत के सिद्धान्त को अपनाया और ब्रम्हसूत्र पर टीका लिखी इनके शिष्य केशव कश्मीरी ने गीता पर एक टीका लिखी जिसका नाम "तत्त्वप्रकाशिका" है।

गीता पर अनेक टीका कारों ने अपने-अपने समय में बाल गंगाधर तिलक और अरविन्द, गांधी की टीकायें मुख्य हैं और सबके अपने-अपने विचार हैं।

सन्दर्भग्रन्थ

यदीयं तदीयम् इति भेदम आपहाय सर्वम् ईश्वराधीनम् इति स्थितिः।
(भागवत-तात्पर्य)।

डा० राधाकृष्णन लिखते हैं कि उपदेश देते समय कृष्ण के लिए युद्ध क्षेत्र में 700 श्लोकों को पढ़ना सम्भव नहीं हुआ होगा उन्होंने कुछ थोड़ी सी बातें कहीं होगी जिन्हें बाद के लेखकों ने विस्तारित कर दिया।

"भगवद्गीता उस महान आन्दोलन के बाद की, जिसका प्रतिनिधित्व प्रारम्भिक उपनिषद् करते हैं और दार्शनिक प्रणालियों के विकास और उनके सूत्रों में बंध जाने के काल से पहले की रचना है। इसकी प्राचीन वाक्य रचना और आन्तरिक निर्देशों से हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि यह निश्चित रूप से ई०पू० काल की रचना है इसका काल ई०पू० 5वीं शताब्दी कहा जा सकता है, हलांकि बाद में भी इसके मूल पाठ में अनेक हेर-फेर हुये हैं।"

1. हमें गीता के रचयिता का नाम मालूम नहीं है। भारत के प्रारम्भिक साहित्य की लगभग सभी पुस्तकों के लेखकों का नाम अज्ञात हैं यद्यपि गीता की रचना का श्रेय व्यास को दिया जाता है, जो महाभारत का पौराणिक संकलन कर्ता है। गीता के 18 अध्याय महाभारत के भीष्मपर्व के 23–40 तक के अध्याय हैं।

गर्वे मानते हैं कि गीता पहले सांख्य योग सम्बन्धी ग्रन्थ था। जिसमें बाद में कृष्ण वसुदेव पूजापद्धति आ मिली और ई०पू० तीसरी शताब्दी में इसका मेल-मिलाप कृष्ण को विष्णु का रूप मानकर वैदिक परम्परा के साथ बिठा दिया गया। मूल रचना ई०पू० 200 में लिखी गयी थी और इसका वर्तमान रूप ई० की दूसरी शताब्दी में किसी वेदान्त के अनुवायी द्वारा प्रस्तुत किया गया है। गर्वे के सिद्धान्त को दार्शनिक लोग समान्यतया अस्वीकार करते हैं।

'कीथ' मानते हैं कि मूलतः गीता श्वेताश्वतर उपनिषद् की तरह थी, बाद में उसे कृष्ण पूजा के अनुकूल बनाया गया होगा। **हौल्टजमन** गीता को सर्वेश्वरवादि कविता का रूप मानते हैं। जो बाद में विष्णु प्रधान हो गया है। रुडोल्फओटो के अनुसार "मूलगीता महाकाव्य का एक शानदार खण्ड थी और उसमें किसी प्रकार का कोई सैद्धान्तिक साहित्य नहीं था जैकोबी का ओटो से मतैक्य है।"

अपने प्रयोजन के लिये हम गीता के उस मूलपाठ को अपना सकते हैं जिस पर शंकराचार्य की टीकाएं एवं भाष्य उपलब्ध हैं। क्योंकि गीता की सबसे पुरानी टीका शंकरभाष्य ही अत्यन्त प्राचीन रूप में उपलब्ध है।

प्रो० काशीनाथ बाबू ने एक साम्प्रदायिक श्लोक के अधार पर श्री शंकराचार्य का जन्मकाल 845 विक्रमीसंवत् (शक् 710) निश्चित किया है। अतः आचार्य शंकर के जन्म से दो-तीन सौ वर्ष पूर्व ही गीता लगभग शक् 400 तक प्रकाश में आ चुकी थी।

पाश्चात्य विद्वान् तैलंग ने कालिदास और बाणभट्ट को गीता से परिचित बतलाया है। कालिदास कृत रघुवंश में (10-39) विष्णु की स्तुति में “अनवाप्तमवाप्तव्यं न ते किञ्चन विद्यते” इस श्लोक को गीता के (3.22) नान-वाप्तवाप्तव्यं” श्लोक से संभवतः ग्रहण किया गया होगा और बाणभट्ट के “महाभारतमिवावानन्तगीताकर्णना नन्दितरं” इस श्लेष प्रधान वाक्य में गीता की झलक दिखलाई पड़ती है। यह तथ्य और अधिक स्पष्ट हो जाता है जब एक 691 संवत् (शक 556) के शिलालेख में कालिदास और भारवि का नाम उल्लिखित प्राप्त होता है। और बाणभट्ट हर्ष के समकालिन माने जाते हैं। इन प्रमाणों से गीता का शक 400, 500 से कम से कम 200 वर्ष पहले ही महाभारत में भीष्मपर्व में होना निश्चित होता है।

भारतीय विद्वान् यह मानते हैं कि गीता में परस्पर विरोधी लगनेवाली विचारधाराओं का विवेचन अवश्यक किया गया है। परन्तु समस्त तत्त्व बिखरे न होकर आबद्ध हैं। इससे सिद्ध होता है कि गीता की रचना एक बार ही हुई होगी।

गीताकार में भागवत धर्म के प्रभाव को बढ़ता देखकर उपनिषदों के सिद्धान्तों का नये भक्ति आन्दोलन के साथ समन्वित करने का प्रयास किया है। इसी कारण गीता में विभिन्न विचार धारारयें मिलती हैं। डा० राधाकृष्णन ने इसे 5वीं शताब्दी ई०पू० की रचना माना है। जो सत्य के निकट सिद्ध होता है। गीता का प्रारम्भिक उपनिषदों ईश, केन, कठ से सम्बन्ध था और वेदों के प्रति भी दृष्टिकोण उपनिषदों के समान ही था। गीता में बौद्ध धर्म का परिचय न मिलना यह सिद्ध करता है कि उस समय प्रचार प्रसार नहीं रहा होगा। षड्दर्शनों में से केवल सांख्य और योग का ही विशद वर्णन मिलता है इससे यह स्पष्ट होता है कि गीता की रचना दार्शनिक सम्प्रदायों के अभ्युदय पूर्व ही हो चुकी थी।

1.3.5 गीता के अष्टादश अध्यायों का सार संक्षेप

सम्पूर्ण गीता ग्रन्थ अष्टादश अध्यायों में रचित है प्रत्येक अध्याय ही एक-एक योग है। गीता के प्रथम अध्याय का नाम अर्जुन विषाद योग है। गीता की पृष्ठ भूमि युद्ध क्षेत्र है। भगवान् कृष्ण अपनी अवतार लीला में अधर्म का नाश और धर्म उत्थान करने के लिए अवतरित हुये हैं। कौरव और पाण्डवों में राज्य के अधिकारी को लेकर युद्ध होना अवश्य सम्भावी हो गया है। कौरव पक्ष में 11 अक्षौहिणी और पाण्डव पक्ष में सात अक्षौहिणी सेना सुसज्जित होकर कुरुक्षेत्र के मैदान पर खड़ी है। शारीरिक बल प्रयोग से ही इस युद्ध का निपटारा होना है और दोनों तरफ की सेनाओं के बीच में अर्जुन खड़े होते हैं और जब नजर उठाकर देखते हैं तो सभी सगे सम्बन्धी दिखाई देते हैं और अर्जुन का मन क्षुब्ध हो जाता है कि भिक्षा वृद्धि करके जीवन यापन कर लूंगा लेकिन अपनों को नहीं मारूंगा तब भगवान् श्री कृष्ण किंकर्तव्य विमूढ अर्जुन को गीता का उपदेश देते हैं जो अष्टादश अध्याय वाली श्री मदभगवद्गीता में वर्णित है। अर्जुन का शरीर कांपने लगा, गला सूख गया, शरीर शिथिल होने से गाण्डीव धनुष हाथ से नीचे गिर पड़ा प्रश्न उठता है कि अर्जुन ने इस परिवर्तन के लिए उत्तर दायी कौन है। फिर यह भी सोचने पर विवश हो जाता है कि जब स्वयं भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन के सारथि हैं तो इस प्रकार की जड़ता और तामसिकता कैसे अर्जुन जैसे महावीर को आच्छादित कर लेती है। श्री कृष्ण अर्जुन को भरी बातों से ही समझाते हैं कि— “तुम शोक करने के अयोग्य व्यक्तियों के लिये शोक कर रहे हो, और पण्डितों की तरह बात कर रहें हो। अतः युद्ध के लिए तुम दृढ़ प्रतिज्ञा होकर उठ खड़े होओ।”

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रजावादांश्च भाषसे।

तस्माद् उत्तिष्ठ कौन्तेय, युद्धाय कृत निश्चयः।।

श्री कृष्ण के समझाने पर भी अर्जुन की दुर्बलता और कायरता कम होने का नाम नहीं ले रही हैं कैसा दुर्योग है। श्री कृष्ण को लगभग दो घण्टे तक 18 अध्याय

वाली गीता का उपदेश देना पड़ा तथा अनेक प्रकार के वचनों का आश्रय लेना पड़ा इस अध्याय में देखेंगे कि श्री कृष्ण परमात्मा रूप होते हुये भी अर्जुन के मन के भी सारथि बन गये हैं और उनको क्षत्रियोचित कर्तव्य याद दिलाकर कल्याण मार्ग में परिचालित किये हैं। यथार्थ में श्री कृष्ण 'भवरोग-वैद्य' थे गीता में अर्जुन के माध्यम से समूची मानव जाति की मनोवृत्तियों का विश्लेषण हुआ है।

गीता के द्वितीय अध्याय का नाम 'सांख्य योग' है इसमें 72 श्लोक समाविष्ट है। सांख्य शब्द का अर्थ है ज्ञान और योग का अर्थ है कर्म ज्ञान और कर्म पर सम्मिलित रूप से विशेष चर्चा होने के कारण इस अध्याय का नाम सांख्य योग रखा गया है। अर्जुन का विषाद दूर करने के लिए इस अध्याय में विशेषतया श्री कृष्ण द्वारा आत्मतत्व का उपदेश दिया गया है आत्मा और शरीर की नित्यता-अनित्यता का वर्णन किया गया है। उसके पश्चात् श्री कृष्ण ने निष्काम कर्म योग के सम्बन्ध में भी उपदेश दिये हैं। निष्काम कर्म योग नामक उपदेश यद्यपि अर्जुन को भले ही लक्ष्य करके प्रकट किया गया है। तब भी समस्त बुद्धिजीवी सदसद विवेकी मनुष्य जाति के लोग इनसे विशेष रूप से उपकृत होंगे ज्ञान और कर्म का विरोध सनातन युग से चला आ रहा है कि ज्ञान श्रेष्ठ है कि कर्म श्रेष्ठ है। इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर देने में इस अध्याय का महत्व पूर्ण योग दान है। निष्काम कर्म योग के साथ ज्ञान का मेल करके निष्काम भक्ति रूप से अमृत रस से सिंचित होकर यह अध्याय मंगल मय दीपशिखा की तरह मनुष्यों के जीवन को अवलोकित कर सुशोभित हो रही है निष्काम कर्म, भक्ति, ज्ञान तीनों के संयोग के परिणाम स्वरूप भी परम लक्ष्य 'स्थितप्रज्ञ' एवं आत्मस्वरूप साक्षात्कार रूपी अवस्था को प्राप्त होता है। इसी को ब्राह्मी स्थिति कहते हैं। ब्राह्मी स्थिति ही मोक्ष है। ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कर लेने के पश्चात् मनुष्य निष्काम भाव से अपने वर्ण और आश्रम के शास्त्रविहित कर्म करके अन्त में ब्रह्म निर्वाण या 'मोक्ष' को प्राप्त करता है। इस अध्याय में 20 वें श्लोक के बाद ही श्री कृष्ण अर्जुन संवाद आरम्भ होता है।

तृतीय अध्याय का नाम 'कर्मयोग' है। इसमें मात्र 43 श्लोक वर्णित है शोक मोह ग्रस्त अर्जुन के प्रश्न पूछने पर श्री भगवान ने ज्ञान और कर्म का मेल करके इस अध्याय में विशेष रूप से कर्म माहात्म्य और स्वधर्म पालन का उपदेश दिया है। सन्यासियों के लिए ज्ञान योग और अन्य के लिए कर्म योग का उपदेश दिये हैं। अनाशक्त भाव से ईश्वरार्पित बुद्धि से कर्म करना ही कर्मयोग है। कर्मयोगी फल सहित सभी कर्म श्री भगवान को अर्पित कर देता है। तथा कर्तृत्वभिमान का त्याग कर देता है। दोनों ही कठिन साधनायें हैं। श्री मदभगवद्गीता मनुष्य मात्र के अनुभव पर आधारित ग्रन्थ है। मनुष्य ही परमात्मा प्राप्ति का एक मात्र अधिकारी है। इस प्रकरण में भगवान ने कहीं भी बुद्धि शब्द का प्रयोग नहीं किया है। क्योंकि नित्य और अनित्य, सत् और असत्, अविनाशी और विनाशी, शरीर और शरीर को अलग-अलग समझने के लिए 'विवेक' की ही आवश्यकता है। 'बुद्धि' की नहीं विवेक बुद्धि से परे है विवेक बुद्धि में प्रकट होता है, बुद्धि विवेक में नहीं कर्मयोग प्रकरण में बुद्धि के विशेषता बतलाई गयी है कि "व्यवसायित्मका बुद्धिरेकेह" अर्थात् बुद्धि में निश्चय कि प्रधानता होती है। इस तरह कर्मयोग में निश्चययात्मिका बुद्धि की अत्यन्त आवश्यकता बताने के बाद भगवान अर्जुन को समभाव पूर्वक कर्तव्य कर्म करने के लिए विशेष रूप से कहते हैं— जैसे कर्मण्येवाधिकारस्ते (2/47) 'योगस्थः कुरु कर्मणि (2/48) बुद्धोशरणमन्विच्छ (2/49), योगः कर्मसुकौशलम् (2/50)

आदि श्लोकों में भगवान अर्जुन को समभाव पूर्वक कर्तव्य कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं इसी अध्याय में जनकादि का उदाहरण सम्मुख रखकर अर्जुन को लोकसंग्रह का महत्व बतलाते हैं, इसकी सार्थकता सिद्ध करते हैं। समबुद्धि रूपी कर्मयोग के द्वारा

परमेश्वर को प्राप्त हुये स्थितप्रज्ञ सिद्ध पुरुष के लक्षण, आचरण और महत्व का भी प्रतिपादन इसी अध्याय में किया गया है।

श्री मदभगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय का नाम 'ज्ञानयोग' है। इसमें 42 श्लोक वर्णित हैं इस चतुर्थ अध्याय में भगवान ने अपने अवतरित होने के रहस्य और तत्व के सहित कर्म योग तथा सन्यास योग का अर्थ इन सबके फलस्वरूप जो परमात्मा के तत्व यथार्थ ज्ञान है। उसका वर्णन किया है इसलिये इसका नाम ज्ञानकर्मसन्यासयोग भी कहा जाता है इसमें प्रारम्भ में कर्मयोग की प्रशंसा की गयी है इसी अध्याय में चतुर्थ वर्णों की उत्पत्ति, जन्म कर्मरूप लीलातत्व, कर्म अकर्म और विकर्म का विश्लेषण, ज्ञान क्या है, ज्ञान लाभ का उपाय, फल और अधिकारी का विचार, वर्ण भेद, कर्मभेद, ज्ञान लाभ के बहिरंग और अन्तरंग साधन आदि अनेक आध्यात्मिक विषयों का उपदेश दिया है। निष्काम कर्म योग के माध्यम से ही 'ज्ञानयोग' को प्राप्त किया जा सकता है। क्योंकि भगवान स्वयं कहते हैं— "सर्वकर्माखिलंपार्थज्ञानंपरिसमाप्यते— हे अर्जुन, समस्त कर्म ज्ञान उत्पन्न होने पर समाप्त हो जाते हैं कर्म, योग, भक्ति और ज्ञान अलग-अलग न होकर परस्पर एक दूसरे के सहायक हैं। और अन्ततः श्री भगवान के स्वरूप परमधाम की प्राप्ति करा देते हैं। उस अध्याय में वर्ण विभाग का भी वर्णन किया गया है— 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः'। मानव समाज को धर्म समाज परिवर्तित करने के लिए वर्ण विभाग की व्यवस्था की गयी इससे यह संकेत मिलता है कि श्री भगवान भी जिनके लिए कुछ भी अप्राप्त नहीं है वह भी निर्लिप्त होकर कर्म का सम्पादन करते हैं। इससे कर्म करने की पद्धति का यथार्थ संकेत मिलता है। इसके अनन्तर वाह्य कर्म, विविध लाक्षणिक यज्ञों की विशेषता, ज्ञान यज्ञ की श्रेष्ठता, ज्ञान क्या है, ज्ञान लाभ का उपाय क्या है। इसके फल और अधिकारी का विचार आदि अनेक तत्त्वों की आलोचना इस अध्याय में की गयी है। यज्ञों का वर्णन करके इसके भेद बताये गये हैं तथा इसमें द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान यज्ञ को उत्तम बतलाया गया है।

29 श्लोक युक्त इस गीता के पंचम अध्याय में कर्म योग निष्ठा और सांख्य योग निष्ठा का वर्णन हुआ है। सांख्य योग को ही सन्यास नाम से अभिहित किया जाता है इसलिये अध्याय का नाम कर्म सन्यास योग रखा गया है। इसमें अर्जुन भगवान से पूछते हैं कि सांख्य योग और कर्म योग में कौन श्रेष्ठ है। इसके उत्तर में भगवान स्पष्ट करते हैं कि दोनों ही श्रेष्ठ और कल्याण कारक हैं। परन्तु कर्म सन्यास की अपेक्षा कर्मयोग भी श्रेष्ठ है इस अध्याय के 10वें और 11वें श्लोक में भगवत् दर्पण बुद्धि से कर्म करने वाली की और कर्म प्रधान कर्म योगी की प्रशंसा करके कर्मयोगियों के कर्मों को आत्मशुद्धि में हेतु बतलाया गया है। आगे कहा गया है कि अज्ञान के द्वारा जब ज्ञान आवृत्त हो जाता है तब जीव को मोह माया घेर लेती है। इसलिये ज्ञान का महत्व बतलाया गया है और ज्ञान योग के एकान्त साधन का भी वर्णन किया गया है इस अध्याय में 22वें श्लोक में भोगों को दुःख का कारण और विनाश शील बतलाया गया है तथा विवेकी व्यक्ति को इससे आसक्त ना होने की बात कही गयी है। योगी के विषय में कहा गया है जो काम क्रोध के वेग को सहन कर लेता है वही पुरुष योगी और सुखी है इस अध्याय में यह ध्यान देने योग्य है कि भगवान ने यह कहीं भी नहीं कहा है कि कर्म, अकर्म, विकर्म सब कुछ छोड़कर सन्यासी हो जाओ यथार्थ रूप में यह कहा है कि पूर्णतया कर्म फल का परित्याग करके कर्मयोगी या नित्य सन्यासी होने का ही आदेश दिया है। कर्म त्याग या स्वधर्म त्याग गीता का उपदेश नहीं है अपितु स्वधर्म पालन और कर्म फलत्याग गीता का उपदेश है क्योंकि कर्म त्याग करके संसार में रहना सम्भव नहीं है। केवल वैराग्य सम्पन्न व्यक्ति ही कर्म त्याग करके सन्यासी हो सकते हैं। श्री भगवान ने स्वयं कहा है कि— 'न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत' इत्यादि अर्थात् किसी भी अवस्था में क्षण भर भी ज्ञानी या अज्ञानी कोई भी कर्म बिना

किये रह नहीं सकता है क्योंकि प्रकृति से उत्पन्न गुण, राग, द्वेष आदि बाध्य करके कर्म कराते हैं। इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य यह है कि फलाशक्ति ही बन्धन का कारण है, फल का त्याग ही यथार्थ सन्यास और आसक्ति त्याग ही मोक्ष है। इसी प्रकार सत्य तक का निर्णय किया गया है।

गीता के षष्ठ अध्याय में 46 श्लोक हैं और इस अध्याय का नाम "ध्यानयोग" है। ध्यानयोग में शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि का संयम करना परमावश्यक है तथा शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि इन सबको आत्मा के नाम से कहा जाता है। और इस अध्याय में इन्हीं के विशेष संयम का वर्णन है इसलिये इस अध्याय का नाम "आत्मसंयमयोग" रखा गया है ध्यानयोग बहुत कठिन है। इसलिये इसके लिये विविध प्रकार के प्रयत्न की आवश्यकता होती है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के माध्यम से ही ध्यानयोग के ब्राह्मी स्थिति की अवस्था प्राप्त होती है। इन योगांगों के माध्यम से तथा अभ्यास और वैराग्य का आलम्बन लेकर चंचल मन और इन्द्रियों को वश में किया जा सकता है इस अध्याय में भगवान ने एक आशा की वाणी सुनाई है शुभ कर्म करने वालों को कभी दुःख नहीं होता है

"न हि कल्याणकृतकश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति" और भी "स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्" अर्थात् धर्म कर्म का अति अल्प अनुष्ठित होने पर भी वह अन्त में हमें मृत्यु भय और नरक भय से मुक्त करके ब्रह्मपद की या चरम लक्ष्य की प्राप्ति करा देता है किन्तु वह धर्म कर्म निष्काम भाव से ही करना चाहिये इस अध्याय के 46वें श्लोक में योगी की महिमा बतलाकर अर्जुन को योगी बनने की आज्ञा दी गयी है और 46वें श्लोक में सब योगियों में से अनन्य प्रेम से श्रद्धा पूर्वक भगवान का भजन करने वाले योगी की प्रशंसा करके इस अध्याय का उपसंहार किया गया है निष्कामकर्मी, निष्कामयोगी, निष्कामज्ञानी और निष्कामभक्त सभी श्री भगवान के परमपद को प्राप्त होते हैं ऐसा कहकर भगवान ने ज्ञान, कर्म, योग और भक्ति का समन्वय स्थापित किया है।

गीता के सप्तम अध्याय का नाम 'ज्ञानविज्ञानयोग' है इस अध्याय में कुल 30 श्लोक वर्णित हैं। इस अध्याय की संज्ञा से प्रतीत होता है कि जिस विशेष आयोग के आलम्बन से ज्ञान और विज्ञान का विकास होता है उसी का विस्तृत वर्णन किया गया है श्री कृष्ण ने आगे कहा है कि जो मनुष्य केवल इतना जान गया है कि 'ईश्वर है' वह ज्ञानी है और लकड़ी में आग है, इसको जो जाने वह भी ज्ञानी है किन्तु लकड़ी जलाकर रसोई पकाना और खाना तथा पूर्ण परितृप्त हो जाना, जिसको इसका ज्ञान होता है उसे विज्ञानी कहते हैं। अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि ब्रह्म को शब्द और अर्थ से जानने का नाम 'ज्ञान' है और ब्रह्म को विशेष रूप से जानकर उसमें निरन्तर विलास करना, ब्रह्मानन्द में डूबा रहना विज्ञान है उन्होंने विज्ञानी के लक्षण में बताया है कि विज्ञानी के 8पाश (बन्धन)खुल जाते हैं केवल काम क्रोध आदि का आकार मात्र रहता है विज्ञानी सदा ईश्वर का (ब्रह्म)दर्शन करता रहता है ये कभी नित्य आंखे खोलकर या लीलाभाव में भी दर्शन करते रहते हैं

जो योगी निरन्तर ईश्वर चिन्तन करते हुये श्री भगवान वसुदेव को विशेष रूप से जान सके हैं वही "युक्ततम" है स्वरूप तत्व का वर्णन करते हुये भगवान कहते हैं कि मेरी दो प्रकृतियाँ हैं अपरा और परा। अपरा प्रकृति आठ भागों में विभक्त है, जैसे बुद्धि, अहंकार, मन, क्षिति, अप, तेज, मरुत, व्योम और परा प्रकृति समस्त प्रपंच जगत को धारण करती है। इन दोनों प्रकृतियों के संयोग से इस संसार की सृष्टि होती है। भगवान ही इस संसार के मूल कारण हैं प्रलयकाल में स्थावर जंगम रूपी समस्त सृष्टि लय को प्राप्त कर भगवान में ही समा जाती है। इसी को छन्दोग्य उपनिषद् में भी कहा गया है।

“तत् जलान् इति शान्त उपासीत्”(3/14/1)

गीता का अष्टम अध्याय 28 श्लोकों से सुशोभित है ‘अक्षर’ और ब्रह्म दोनों शब्द भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों ही स्वरूपों के वाचक हैं। तथा भगवान का नाम ओम भी है, इसे भी अक्षर और ब्रह्म कहते हैं इस अध्याय में भगवान के सगुण निर्गुण रूप और ओंकार का वर्णन किया गया है इसलिये इस अध्याय का नाम “अक्षरब्रह्मयोग” रखा गया है इस अध्याय में परमेश्वर के स्वरूप का वर्णन के प्रसंग में ब्रह्मतत्त्व, ब्रह्मोपासना और अन्तकाल में ईश्वरचिन्ता की विशेष रूप से आलोचना हुई है। भगवान ने ईश्वर परायण होने का उपदेश दिया है।

श्री भगवान ने समझाते हुये कहा है कि मृत्युकाल में व्यक्ति जिस भाव को स्मरण करके अपनी देह छोड़ता है उसी भाव को प्राप्त होता है अतः अन्तिम समय में जो मुझे याद करता है वह मुझे ही प्राप्त कर मुक्ति लाभ को प्राप्त कर लेता है अर्जुन के प्रति श्री भगवान का स्पष्ट आदेश है। ‘मामनुस्मर युध्य च’— यह भाव केवल भगवान की भक्ति से ही होना संभव है। श्री कृष्ण ने ही कहा है— “अन्य विषय की चिन्ता छोड़कर जो भक्त सदा भगवान का स्मरण करता है उसे अनायास उनका लाभ होता है और उसे पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता।” उसके अनन्तर श्री भगवान ने कहा है— “इन्द्रिसंयम के द्वारा प्राण को भ्रू-युगल के बीच में स्थापित करके मन को संयमित रखते हुये और समतत्त्व की चिन्ता करते हुये देहत्याग करता है तो परमगति प्राप्त होती है। अष्टम अध्याय का अन्तिमश्लोक विशेष भावपूर्ण और गंभीर है— ‘वेदेषु यज्ञेषु’ योग की महिमा सुनो। उत्तम रूप से वेद का अध्ययन करने से, यज्ञानुष्ठान, दान, तीव्र, तपस्या करने से पुण्य कल का उदय होता है और सुख की प्राप्ति होती है। इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य—सदा ईश्वर चिन्तन करना उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

गीता के नवमोऽध्याय का नाम ‘राजीवद्वाराज गुह्ययोग’ है। इस अध्याय में भगवान ने जो उपदेश दिया है उसको उन्होंने समस्त विद्याओं और समस्त गुप्त रखने योग्य भावों का राजा बतलाया है। इस अध्याय में 34 श्लोक हैं। इस अध्याय में विशेष रूप से ‘ईश्वरीय योग’— सामर्थ्य, भगवान के भक्त, देवी सम्पदा सम्पन्न और अभक्त आसुरी सम्पदा मुक्त, ईश्वर का विश्वानुगत भाव, योगक्षेम और भगवदभक्ति के फल का स्वरूप, श्री भगवान भक्ति के लिये इच्छुक, ईश्वर में एकान्त शरणगति ही भक्ति लाभ का श्रेष्ठ उपाय आदि विषयों पर विस्तृत विवेचना हुई है। इस अध्याय में श्रेष्ठ विद्या और उसकी प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन वर्णित है। इस अध्याय के अन्त में भगवान कहते हैं कि मेरी शरणगति से स्त्री, वैश्य—शुद्र और चाण्डाल आदि किसी को भी परमगति की प्राप्ति संभव हो सकती है। 33वें और 34वें में पुण्यशील ब्राह्मण और राजर्षि भक्तजनों की बड़ाई करके शरीर की अनित्यता स्पष्ट किया गया है।

गीता के ‘दशमोऽध्याय’ में प्रधान रूप से भगवान की विभूतियों का ही वर्णन है इसलिये इस अध्याय का नाम “विभूतियोग” रखा गया है। इस अध्याय में 42 श्लोक हैं। इस अध्याय में विशेष रूप से ‘ईश्वरीय’ विभूतियों का वर्णन किया गया है। श्री भगवान की बड़ी विभूति यह है कि वह विश्वानुगत होकर भी विश्वातीत है, निर्गुण होते हुए भी सगुण की तरह प्रतीत होता है। एक होकर भी अनेक रूपों में प्रतीत होता है। वेदों में— ‘अपाणिपादो जवनो ग्रहीता ष्यत्यक्षः स श्रुणोत्यकर्णः’ कहा गया है। पुरुष सुक्त में ‘सहर्षशीर्षा’ पुरुष है। इस विभूति अध्याय के प्रारम्भ में ही भगवान ने स्वयं कहा है कि मेरा स्वरूप तत्त्व देवता भी नहीं जानते क्योंकि मैं उनका भी आदि कारण हूँ, सभी महर्षि, चतुर्दश मनु आदि समस्त भगवान से ही उत्पन्न है। अर्जुन के द्वारा पूछे जाने पर भगवान कहते हैं कि मेरी विभूतियों का अन्त नहीं है। मैं प्राणीवर्ग का आदि, मध्य और अन्त हूँ। आदित्यों में मैं विष्णु, ज्योतिषों में मैं सूर्य, नक्षत्रों में मैं चन्द्र, देवताओं में मैं इन्द्र, रुद्रों में मैं शंकर वायुओं में मैं मरीचि हूँ.....। इस प्रकार

भगवान ने कृपा करके अर्जुन को निर्देशित कर जगतवासियों को स्वयं प्राप्ति का सुगममार्ग बता दिया है— जो लोग मुझमें चित्त अर्पण कर भक्ति से मेरी उपासना करते हैं वे मुझे पाने में समर्थ होते हैं। गीता के चालीसवें श्लोक में अपनी दिव्य विभूतियों के विस्तार को अनन्त बतलाकर इस प्रकरण की समाप्ति की है।

गीता के एकादशोऽध्याय का नाम 'विश्वरूप दर्शन योग' है। 55 श्लोकों में यह अध्याय समाप्त है। इस अध्याय में अर्जुन ने भगवान से कातर भाव प्रार्थना किये हैं कि हे भगवान आप अपने विश्वरूप का दर्शन मुझको करवा दें। इसलिये इस अध्याय में विश्वरूप का और उसके स्तवन का ही प्रकरण है। इसलिये इस अध्याय का नाम 'विश्वरूप दर्शन योग' रखा गया है। इस अध्याय में पहले से चौथे श्लोक में अर्जुन ने भगवान की और उनके उपदेश की प्रशंसा करके विश्वरूप के दर्शन कराने के लिये भगवान से अनुनय-विनय की है। इसके बाद प्रसन्न होकर भगवान ने अपना ईश्वरीय रूप दिखलाया है। किन्तु स्थूल नेत्रों से भगवान के चिन्मय स्वरूप का दर्शन नहीं हो सकता है केवल इससे सांसारिक पदार्थ ही देखे जा सकते हैं। इस कारण भगवान ने दिव्यचक्षु या भाव नेत्र अर्जुन को प्रदान किये थे। और इन दिव्य चक्षुओं से अर्जुन ने भगवान के विश्वरूप का दर्शन किया जिसको देखकर लोग परमगति को प्राप्त होते हैं। दसवें से तेरहवें तक अर्जुन को कैसा रूप दिखलायी दिया, इसका वर्णन किया गया है। यह संसार ब्रह्म का विराट शरीर है वेद में 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहास्रपात्..... ...। से वर्णन किया गया है। यह विश्वब्रह्माण्ड उन्हीं का विराट रूप है इसी कारण वह विश्वरूप है। इस प्रकार इस विराट रूपी भगवान का दर्शन करने से—

भिद्यते हृदय ग्रन्थिशिच्छद्यन्ते सर्वसंशयाः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

ऐसी अवस्था प्राप्त होती है। श्री भगवान ने अर्जुन को जिस दिव्य रूप का दर्शन कराया था वह यथार्थ में ही अद्भुत, अनिर्वचनीय और अदृष्ट पूर्व है। वह विश्व रूप सभी ओर पूर्ण, सर्वव्यापी, आदि-अन्त-मध्य रहित तथा ज्योतिर्मय है फिर विश्व के जन्म-स्थिति लय भी उन्हीं में हो रहें हैं। भगवान के विश्वरूप को देखकर अर्जुन भय से कांपने लगे तब भगवान के शान्त मूर्ति धारण कर अर्जुन को आश्वासन देते हुये कहा— "जिस विश्वरूप का तुमने दर्शन किया है वह देवताओं के लिये भी दुर्लभ है। केवल एक निष्ठ भक्ति के बिना मेरा यह विश्वरूप कोई देख नहीं सकता है तुम मेरे प्रिय भक्त हो इसलिये मेरे इस विश्वरूप का दर्शन तुमको प्राप्त हो सका। मैं ही तुम्हारा परमगति हूँ और समस्त कर्मों का कर्ता मैं ही हूँ और सारे कर्म मेरे ही हैं। ऐसा समझकर तुम अनासक्त चित्त से युद्धादि समस्त कर्म करते रहो" यही श्री भगवान का उपदेश है। कुछ प्राप्त करना अभीष्ट हो तो मांगना अति आवश्यक होता है। जब तक अर्जुन ने पुरुषोत्तम के पास— 'द्रष्टुमिच्छामि ते रूपं ऐश्वरम्' ऐसी प्रार्थना नहीं की थी तब तक भगवान ने अपना अव्यय आत्मास्वरूप प्रगट नहीं किया था।

गीता का द्वादश अध्याय 20 श्लोकों में ही समाप्त है। किन्तु यह अध्याय भक्ति साधन के पथ निर्देश के लिये विशेष महत्वपूर्ण है। भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, राजयोग के साधनों सहित भगवान की भक्ति का वर्णन एवं भगवद् भक्तों का लक्षण बतलाया गया है। इस अध्याय का उपक्रम और उपसंहार भगवद् भक्ति में ही हुआ है। केवल तीन श्लोकों में ज्ञान के साधन का वर्णन है वह भी भगवद्भक्ति और ज्ञानयोग की परस्पर तुलना करने के लिये ही है। अतएव इस अध्याय का नाम "भक्तियोग" रखा गया है। इस अध्याय के प्रारम्भ में अर्जुन का प्रश्न है— सगुण-साकार, निर्गुण-निराकार के उपासकों में कौन सहज या श्रेष्ठ है ? इसके उत्तर में भगवान कहते हैं कि यद्यपि दोनों ही मार्गों का उद्देश्य एक ही है तो भी सगुण ब्रह्मोपासना या भक्ति का मार्ग श्रेष्ठ है। इस भक्ति मार्ग के भी अनेक उपाय हैं उनमें **भक्तियुक्त निष्काम कर्म ही श्रेष्ठ**

है। जो मनुष्य भक्ति मार्ग का अवलम्बन लेकर, इन्द्रिय संयम करते हुये तथा सर्वत्र समत्व बुद्धि युक्त होकर सम्पूर्ण प्राणियों में आत्म दर्शन करता है वे भी परमात्मा को प्राप्त करता है। इस अध्याय में विशेष रूप से भक्ति मार्ग का सहारा लेकर ईश्वरोपासना का उपदेश दिया गया है। इस कारण इस अध्याय का नाम भक्ति योग रखा गया है। भगवान ने अर्जुन को उपदेश दिया है कि सब कर्मों को मुझमें अर्पण करके अनन्य भावों से मेरा ही चिन्तन करो और ऐसा करने पर भक्तों का उद्धार मैं स्वयं करता हूँ।

इस अध्याय के तेरहवें से उन्नीसवें तक भगवान ने अपने प्रिय ज्ञानी महात्मा भक्तों के लक्षण बतलाये हैं और बीसवें में उन ज्ञानी महात्मा भक्तों के लक्षणों को आदर्श मानकर श्रद्धापूर्वक वैसा ही साधन करने वाले भक्तों को अत्यन्त प्रिय बतलाया है।

गीता का त्रयोदश अध्याय 35 श्लोकों में वर्णित है। इस अध्याय का नाम “क्षेत्रक्षेत्रज्ञ” अथवा “प्रकृतिपुरुष विभाग योग” है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीर और आत्मा दोनों अत्यन्त विलक्षण हैं। अज्ञान के कारण ही दोनों में एकता दिखाई देती है। क्षेत्र (शरीर) जड़, विकारी, नाशवान और क्षणिक है वहीं क्षेत्रज्ञ इसके विपरीत चेतन, अविकारी, निर्विकार नित्य और अविनाशी है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों के स्वरूप का भेद वर्णन किया गया है। इसलिये इसका नाम “क्षेत्रक्षेत्रज्ञ विभाग योग” रखा गया है। इस अध्याय के अन्तिम श्लोक के विषय में आचार्य शंकर ने लिखा है कि इस श्लोक से अध्याय का सारमर्म सूचित हुआ है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीर और आत्मा के भेद दर्शन से ही मुक्ति है। देहात्म अभेद ही सारे बन्धनों का कारण है और इसका भेद ही आत्मज्ञान है। “जब तक देह बुद्धि है, तभी तक सुख-दुख जन्म-मृत्यु, रोग-शोक है ये सब देह को ही होता है आत्मा को नहीं। “आत्मज्ञान” की प्राप्ति होने के बाद सुख-दुख, जन्म-मृत्यु आदि स्वप्न की तरह मिथ्या प्रतीत होते हैं। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का यह भेदज्ञान ही “यथार्थज्ञान” है। वही परमेश्वर का ज्ञान ब्रह्मज्ञान है। योग मार्ग के अवलम्बन से ध्यान, धारणा और समाधि और अनात्मा के विचार द्वारा ही आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है और इसी से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

गीता का चतुर्दश अध्याय 27 श्लोकों में रचित है। इस अध्याय में प्रकृति के त्रिगुण (सत, रज, तम) के स्वरूप और उनके कार्य, कारण और शक्ति का वर्णन हुआ है। सांख्य में भी “गुणानां साम्यावस्था प्रकृतिः” कहा गया है। जीवात्मा को बन्धन और अज्ञान से आवृत्त करने का मुख्य कार्य में त्रिगुण ही करते हैं। इन त्रिगुणों से जब मनुष्य छूट जाता है तभी वह परमपद को प्राप्त होता है। सत, रज, तम इन तीन गुण और त्रिगुणों से अतीत त्रिगुणातीत अवस्था ही इस अध्याय में विशेष रूप से आलोचित हुये हैं। इस लिये इस अध्याय का नाम “गुणत्रय विभाग योग” है। तीन गुणों से अतीत होकर परमात्मा को प्राप्त मनुष्य के क्या लक्षण हैं ? इन्हीं त्रिगुण सम्बन्धी बातों का विवेचन इस अध्याय में किया गया है। श्री कृष्ण ने कहा है— “मेरी एक निष्ठ भाव से भक्ति योग के द्वारा सेवा करने से ही त्रिगुणातीत होकर ब्रह्मभाव प्राप्ति होती है, क्योंकि मैं ही ब्रह्म की प्रतिष्ठा हूँ”। फिर आगे कहते हैं कि पराभक्ति और ब्रह्मभाव एक ही है। क्योंकि दोनों से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

यह सम्पूर्ण दृश्यमान- अदृश्यमान ब्रह्माण्ड प्रकृति का ही परिणाम है। प्रकृति और पुरुष के संयोग से ही सृष्टि का विकास होता है। परमेश्वर को प्राणियों का पिता और प्रकृति को माता कहा जाता है। 11वें से 13वें तक बढ़े हुये सत, रज, तम तीनों गुणों का क्रम से लक्षण बतलाया गया है। जिस मनुष्य में जो गुण ज्यादा मात्रा में होता है उसी के अनुरूप उसका स्वरूप निर्धारित होता है। सत्वगुण श्वेत रंग का होता है। और सुख्या उत्पन्न करता है। रजोगुण ऋणात्मक होता है। इसकी बृद्धि से लोभ, काम

प्रवृत्ति, विषय-वासना आदि उत्पन्न होती है। यह लाल रंग का होता है। त्रयोगुण की वृद्धि होने पर विवेक का नाश, उद्यम का अभाव तथा बुद्धि का विपर्यय होता है। जिससे यह गुण ज्यादा होता है। उसे तामसिक प्रवृत्ति का मनुष्य कहते हैं।

सत्त्वगुण से ज्ञान का उदय होता है रजोगुण से कर्म में प्रवृत्ति और त्रयोगुण से अज्ञान और बुद्धि-विषय होता है। तीनों गुणों के एकत्र होने पर जो गुण एक दूसरे को दबाकर प्रबल हो जाता है उसी गुण की प्रबलता मानी जाती है। श्री भगवान ने अर्जुन को निस्त्रैगुण्य होने का आदेश देकर नित्यसत्त्ववस्थ होने के लिये कहते हैं। इसका आशय यह है कि तीनों गुणों का समाहार होने से ही विशुद्ध सत्ता का उदय होता है।

इस अध्याय के अन्त में श्री भगवान ने जो त्रिगुणातीत अवस्था के लक्षण बताये हैं वह अति दुर्लभ है। त्रिगुणातीत होना या मायातीत होना या ब्रह्मभाव प्राप्ति सब एक ही है इस प्रकार स्थित प्रज्ञ और त्रिगुणातीत एक ही अवस्था है। अनन्तर अन्तिम सत्ताइसवें श्लोक में ब्रह्म, अमृत, अव्यय आदि भगवान के स्वरूप होने से अपने को इन सबकी प्रतिष्ठा बतलाकर अध्याय का उपसंहार करते हैं। मनुष्य का स्वधाम है परमब्रह्म। त्रिगुणातीत न होने से ब्रह्मज्ञान नहीं होता है।

गीता का पंचदश अध्याय 20 श्लोकों में रचित है। इस अध्याय का नाम "पुरुषोत्तम योग" है। इस अध्याय में सम्पूर्ण गीता शास्त्र का भाव व्यक्त किया गया है। सम्पूर्ण जगत के कर्ता-धर्ता-हर्ता, 'सर्वशाक्तिमान' सबके नियन्ता, सर्वव्यापी अर्न्तयामी, परमदयालु शरण लेने योग्य, सगुण परमेश्वर परम पुरुषोत्तम भगवान के गुण-प्रभाव और स्वरूप का वर्णन किया गया है। इसी अध्याय में क्षर पुरुष (क्षेत्र) अक्षर पुरुष (क्षेत्रज्ञ) और पुरुषोत्तम तीनों का वर्णन किया गया है। 'क्षर' और 'अक्षर' से भगवान किस प्रकार श्रेष्ठ है और सब में कैसे उत्तम है, क्यों पुरुषोत्तम कहे जाते हैं? पुरुषोत्तम कहने के पीछे क्या माहात्म्य है। इस सबका उत्तर इसी अध्याय में विस्तृत रूप से मिलता है। और इतना ही नहीं समस्त वेदों का अर्थ भी इस अध्याय में संक्षेप में बताया गया है। "जो उन्हें जानता है, वही वेदज्ञ है", 'समस्त वेदों का मैं ही प्रतिपाद्य अर्थ हूँ। श्री भगवान ने स्वयं कहा है- "मैं क्षर से परे और अक्षर (कूटस्थ) से भी उत्तम हूँ। इसी कारण इस लोक तथा वेद में मैं पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ। अस पुरुषोत्तम को जानने से ही मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है। उसको यह ज्ञान हो जाता है। कि वह सगुण और निर्गुण भी है। साकार और निराकार भी है और जब भक्तों पर दुःख पड़ता है तब भगवान अतवार रूप में अवतीर्ण होते हैं। इस अध्याय में आगे यह कहा गया है कि यह पुरुषोत्तम तत्त्व अत्यन्त गोपनीय है और बिना ईश्वर की कृपा के कोई इसे समझ नहीं सकता है।

श्री भगवान कहते हैं कि- जीव मेरा ही सनातन अंश है। वह कर्म फल के अनुसार सत् या असत् योनियों में जन्म ग्रहण करके सुख-दुखादि भोगता है। जो ब्रह्मवित् है वह जानते हैं कि ब्रह्म त्रिगुण से परे है और इन त्रिगुणों से निर्लिप्त है। पुरुषोत्तम को श्रुतियां भी परम ब्रह्म, परम पुरुष और पूर्व भगवान मानती हैं। इनके दर्शन से ही मनुष्य चिरमुक्त हो जाता है। मुण्डकोपनिषद् में लिख है-

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे पराडवरे।।

अर्थात् आत्म स्वरूप भगवान का दर्शन करते ही आत्मज्ञानी का अहंकार रूप हृदयग्रन्थि छिन्न हो जाती है और समस्त संदेह दूर हो जाते हैं और जन्म-जन्मान्तर के समस्त कर्म क्षय को प्राप्त हो जाते हैं। उस पुरुषोत्तम के सम्बन्ध में ऋग्वेद के पुरुषसुक्त का मंत्र है-

"सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सह स्रपात्।

स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठ दशांगुलम्।।”

श्रीमद्भगवत् में भी इन्हीं पुरुषोत्तम की उपासना की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में कहा गया है—

वसुदेव परा वेदा, वसुदेव परा मुखाः।

वसुदेव परा योगा, वसुदेव पर क्रियाः।।

वसुदेव परं ज्ञानं, वासुदेव परं तपः।

वसुदेव परो धर्मो वासुदेव परा गतिः।।

इस प्रकार वासुदेव ही मनुष्यों की परम गति है। और यही समस्त वेदों का एक मात्र प्रतिपाद्य विषय है।

गीता का षोडश अध्याय 24 श्लोकों में समाप्त है। इस अध्याय में दैव तथा आसुरी सम्पत्तियों का विभाग किया गया है। इस कारण इस अध्याय का नाम “दैवासुरसम्पद विभाग योग” है। श्री भगवान ने पहले दैवीय सम्पदा के अन्तर्गत 26 सात्विक गुणों का वर्णन किया है जैसे— चिन्तशुद्धि, आत्मज्ञान में निष्ठा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शांति, जीवों पर दया, लज्जा चंचलता का अभाव, क्षमा, धैर्य, शौच, अहिंसा, अहंकार, शून्यता आदि दैवी सम्पदाएं हैं। और जो लोग पूर्व जन्म के शुभ कर्मों के फलस्वरूप दैवी सम्पदा के अधिकारी पात्र होकर जन्में हैं वे ही इन 26 सात्विक गुणों के अधिकारी हैं। उसी प्रकार दर्प, दम्भ, अभिमान, क्रोध, निष्ठुरता, अज्ञान आदि आसुरी सम्पदा लेकर जो जन्मे हैं वे ही दुःख सदैव भोगते रहते हैं। ये लोग दुर्गुण और दुराचार ज्यादा करते हैं। जो लोग दैवी सम्पदा से युक्त होते हैं वे मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होते रहते हैं और जो आसुरी सम्पदा से युक्त मनुष्य हैं उसके लिये संसार ही बन्धन का कारण है। आसुर प्रकृति वाले मनुष्यों को पुण्य—पाप—धर्म—अधर्म है तथा कामोपभोग को ही जीवन का परम पुरुषार्थ समझते हैं और प्राणियों का अनिष्ट करते हैं। इस प्रकार आसुर स्वभाव वाले लोग अधर्म का आचरण करके भूयशः अधोगति को प्राप्त होते हैं और उनकी मुक्ति का कोई उपाय नहीं रहता है। इस प्रकार अर्जुन को लक्ष्य करके भगवान मानों सम्पूर्ण सृष्टि को यह बता देना चाह रहें हैं कि काम, क्रोध, लोभ यह तीनों ही आसुरी स्वभाव का मूल कारण है। तथा सभी अनर्थों का यह मूल द्वार है। इसलिये काम, क्रोध, लोभ इन तीनों का परित्याग कर श्रेय मार्ग को अपनाना चाहिये और शास्त्र विहित कर्तव्य करके अपने स्वधर्म का पालन करना चाहिये। इस प्रकार भगवान ने षोडश अध्याय के पहले नवें अध्याय के बारहवें श्लोक में भी “राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः” से आसुरी सम्पदा वालों का और तेरहवें श्लोक में दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः मां भजन्ते” पदों से दैवी सम्पदा वालों का वर्णन किया है।

गीता का सप्तदश अध्याय मात्र 28 श्लोकों में ही रचित है। अर्जुन के प्रश्न करने पर श्री भगवान ने यहां विविध श्रद्धा का विशेष वर्णन किया है, इस कारण इस अध्याय का नाम “श्रद्धात्रय विभाग योग” है। त्रिविध श्रद्धा के अतिरिक्त इसमें त्रिविध आहार, त्रिविध यज्ञ, त्रिविध तपस्या, त्रिविध दान आदि के विषय में विशेष रूप से आलोचना हुई है। इस अध्याय के आरम्भ में अर्जुन ने श्रद्धायुक्त पुरुषों की निष्ठा पूछी है, उसके उत्तर में भगवान ने तीन प्रकार की श्रद्धा बतलाकर श्रद्धा के अनुसार ही निष्ठा पूछी है फिर पूजा, यज्ञ, तप आदि में श्रद्धा का सम्बन्ध बताते हुये इसके अन्तिम श्लोक में श्रद्धारहित पुरुषों के कर्मों को असत् बतलाया गया है। सत्व आदि त्रिगुणों के भेद से मनुष्य की त्रिविध प्रकृति या अन्तःकरण वृत्ति उत्पन्न होती है। इस कारण प्रकृति भेद से उनकी श्रद्धा भी सात्विक, राजासिक और तामसिक होती है। सात्विक श्रद्धा से युक्त साधक देवताओं की पूजा करते हैं। राजसिक प्रकृति वाले मनुष्य कामना युक्त चित्त से यक्ष, राक्षस आदि की पूजा करते हैं। फिर तामसिक मनुष्य रोग मुक्ति आदि की कामना करके भूत, प्रेत आदि की उपासना करते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है कि इस नियम का व्यतिक्रम कभी नहीं होता कि शुभ कर्म का शुभ फल और

अशुभ कर्म का अशुभ फल प्राप्त होना अनिवार्य है। कर्म की गति अति दुर्जेय है। आचार्य शंकर ने अपने विवेक चूडामणि ग्रन्थ में लिखा है –

“नाभुक्तं श्रीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।।”

अर्थात् जो शुभाशुभ कर्म किया गया है उसका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। भोग किये बिना शत कोटिकल्प में भी कर्म का क्षय नहीं होता। इन कर्मों की त्रिविध स्थितियों का वर्णन शास्त्रों में भी मिलता है—

1—प्रारब्ध जिसका भोग चल रहा है।

2—क्रियमाण—जो भोगकाल में किया जा रहा है।

3—संचित— जो अभी फल देने में प्रवृत्त नहीं हुआ है। प्रत्येक जीव को इन तीनों कर्मों का क्षय भोग करके ही करना पड़ता है। श्रुति कहती है— पुण्या वै पुण्येन कर्मणा भवति, पापः पापेन” (बृहदा 3/2/13)।

अर्थात् पुण्य कर्म से ही पुण्य की उत्पत्ति होती है और पाप कर्म से पाप की उत्पत्ति होती है। कर्म क्षय का एक उपाय भी है— श्री भगवान कहते हैं—

“ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा।।”

अर्थात् ब्रह्मज्ञान रूपी अग्नि (प्रारब्ध कर्म को छोड़कर) समस्त शुभाशुभ कर्मों को भस्म कर देती है। प्रत्येक मनुष्य को अपने-अपने प्रारब्ध कर्मों के भोग के लिये जन्म-ग्रहण करना पड़ता है। इस प्रकार भगवान केवल मनुष्य के कर्म फल भोग की व्यवस्था कर देते हैं जिससे वे अपने-अपने कर्मों का फल भोग करके मुक्ति के मार्ग में अग्रसर हो सकें।

गीता का अष्टादश अध्याय 78 श्लोको में रचित है यह गीता का अन्तिम महत्व पूर्ण अध्याय है। समस्त गीता में श्लोक संख्या की दृष्टि से यह अध्याय सबसे बड़ा है। इस अध्याय के 73 श्लोक तक श्रीमद् भगवद्गीता या श्री कृष्ण-अर्जुन संवाद है। बाकी 5 श्लोक संजय के वाक्य हैं। इस प्रकार आलोचित विषय वस्तु की दृष्टि से भी श्रेष्ठ है। इस अध्याय में समस्त गीता शास्त्र की आलोचना का उपसंहार करके मानव जीवन का चरम आदर्श और मोक्ष लाभ कैसे हो सकता है इसका वर्णन किया गया है। इस कारण इस अध्याय का नाम “मोक्षयोग” है। अर्जुन सन्यास और त्याग के तत्व को पृथक-पृथक जानना चाह रहे हैं। इसके उत्तर में भगवान कहते हैं कि काम्य कर्म का त्याग ही सन्यास है और सारे कर्मों के फल मात्र का त्याग ही यथार्थ सन्यासी है। कर्म फल त्याग करके स्वधर्म का अनुष्ठान ही मुख्य विषय है। श्री भगवान अपना अन्तिम उपदेश देते हुये कहते हैं

कि “मन से समस्त धर्म-कर्म मुझमें सौंप कर सर्वदा मुझमें मन रखों और अपने अधिकार के अनुसार स्वधर्म का पालन करो, उसी से मेरी प्रसन्नता पाकर मुक्त हो सकोगे। क्योंकि बिना ईश्वर की कृपा के मनुष्य माया मुक्त हो ही नहीं सकता है। भक्त अर्जुन को श्री भगवान गीता का गुह्यतम उपदेश देकर कहते हैं— “तुम एक मात्र मेरी ही चिन्ता करो मेरी ही भक्ति करो, पूजा करो, मुझे ही नमस्कार करों। मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि तुम मुझे ही पाओगे। सब धर्मों का परित्याग कर तुम मेरी ही शरण लो, मैं माया-बन्धन से तुम्हें चिरकाल के लिये मुक्त करूंगा।” श्री भगवान ने एक छोटी बात से सारे उपदेशों का उपसंहार कर दिया— अहं त्वाम्सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः। यही शरणागति योग है। “तुम केवल मेरी शरण लो, मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त करूंगा।” इस प्रकार श्री कृष्ण की करुणामय मूर्ति को देखकर अर्जुन का संदेह दूर हो गया है और उन्होंने विनम्रता एवं कृतज्ञता के साथ कहा है— हे भगवान— “ मेरे अन्तर के सारे संदेह दूर हो गये हैं, मैं तुम्हारे आदेश का पालन करूंगा, तुम्हारी कृपा से मैं धन्य हो गया हूँ।” ब्रह्मज्ञान के बाद जो अवस्था प्राप्त होती है अर्जुन को सहज

ही प्राप्त हो गयी हैं।

अभ्यास प्रश्न ।

बहुविकल्पीय प्रश्न

सही विकल्प पर निशान लगायें—

प्रश्न 1— 'भवरोग वैद्य' किसको कहा गया है—

- (अ) अर्जुन (ब) श्री कृष्ण
(स) आत्मा (द) मन

प्रश्न 2— गीता में कितने अध्याय हैं—

- (अ) तीन (ब) पांच
(स) 24 (द) अष्टादश

प्रश्न 3— गीता पर सर्वाधिक प्राचीन टीका एवं भाग्य किसका है—

- (अ) शंकराचार्य (ब) मध्वाचार्य
(स) निम्बार्क (द) श्री राधाकृष्णन

प्रश्न 4— गीता के प्रथम अध्याय का नाम क्या है—

- (अ) सांख्य योग (ब) कर्मयोग
(स) अर्जुनविषादयोग (द) सन्यासयोग

प्रश्न 5— "गीतार्थ संग्रह" किसका ग्रन्थ है—

- (अ) रामानुज (ब) शंकराचार्य
(स) यामुनाचार्य (द) आनन्दगिरि

प्रश्न 6— गीता को श्लोक संख्या वर्तमान में कितनी मानी गयी है—

- (अ) 700 (ब) 645
(स) 250 (द) 620

प्रश्न 7— 'निष्काम कर्मयोग' का प्रतिपादन गीता के किस अध्याय में किया गया है—

- (अ) द्वितीय (ब) तृतीय
(स) चतुर्थ (द) पंचम

प्रश्न 8— आत्मा और शरीर में 'नित्य' कौन है—

- (अ) आत्मा (ब) शरीर

प्रश्न 9— "ममैवांशो जीवलोके जीवभूत सनातन" किस अध्याय में वर्णित है—

- (अ) 15 (ब) 13
(स) 11 (द) 16

प्रश्न 10— गीता के त्रिविध मार्ग के अन्तर्गत कौन नहीं आता है—

- (अ) ज्ञानमार्ग (ब) कर्म मार्ग
(स) भक्ति मार्ग (द) मोक्षमार्ग

प्रश्न 11— आचार्य शंकर किस मार्ग के पक्षपाती थे—

- (अ) ज्ञानमार्ग (ब) कर्म मार्ग
(स) भक्ति मार्ग (द) योग मार्ग

प्रश्न 12— गीता के चतुर्दश अध्याय में श्लोकों की संख्या कितनी है ?

- (अ) 35 (ब) 78
(स) 27 (द) 25

प्रश्न 13— गीता का 20 श्लोकों वाला सर्वाधिक छोटा अध्याय कौन सा है ?

- (अ) पञ्चदश (ब) अष्टादश
(स) द्वादश (द) द्वितीय

प्रश्न 14— गीता के अन्तिम अध्याय का नाम क्या है ?

- (अ) पुरुषोत्तम योग (ब) मोक्षयोग
(स) कर्मयोग (द) सन्यासयोग
- प्रश्न 15— श्लोकों की दृष्टि से सबसे बड़ा अध्याय कौन सा है ?
(अ) द्वितीय (ब) अष्टादश
(स) षोडश (द) प्रथम
- प्रश्न 16— कर्म कितने प्रकार के होते हैं—
(अ) 2 (ब) 3
(स) 4 (द) 5
- प्रश्न 17— अर्जुन युद्ध क्यों नहीं करना चाह रहे हैं—
(अ) पाप एवं अपयश के भय से (ब) कायरता से
(स) अहिंसा (द) पुण्य
- प्रश्न 18— कर्मण्येवाधिकारस्ते या — यह उक्ति किसकी है—
(अ) अर्जुन (ब) श्री कृष्ण
(स) धृतराष्ट्र (द) संजय
- प्रश्न 19— “योगस्थः कुरु कर्माणि” किस अध्याय में आया है—
(अ) द्वितीय (ब) तृतीय
(स) चतुर्थ (द) प्रथम
- प्रश्न 20— हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्ग— किसके द्वारा कहा गया है—
(अ) अर्जुन (ब) श्री कृष्ण
(स) वेदव्यास (द) संजय
- प्रश्न 21— “योगः कर्मसु कौशलम्” किस अध्याय में वर्णित है—
(अ) 2 (ब) 3
(स) 1 (द) 5
- प्रश्न 22— “योगक्षे वहाम्यहम्” यह किसकी उक्ति है—
(अ) अर्जुन (ब) श्री कृष्ण
(स) दुर्योधन (द) संजय

1.4 गीता का महत्व

गीता तात्पर्य — श्रीमद्भगवद्गीता विश्व के सबसे बड़े महाकाव्य महाभारत के “भीष्मपर्व” का एक अंश है। भगवद्गीता भगवान कृष्ण द्वारा कुरुक्षेत्र युद्ध में दिया गया दिव्य उपदेश है जब अर्जुन मोहग्रस्त होकर किंकर्तव्यविमूढ़ कि स्थिति में पहुँच चुके थे। इस प्रकार अर्जुन को केन्द्र में रखकर दिया गया यह भगवान का गीता अमृत रूपी वाणी से समन्वित उपदेश है। इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता भगवान की साक्षात् दिव्य वाणी होने से इसके श्लोकों को मंत्र का दर्जा प्राप्त है।—

“सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।

पार्थोवत्सः सुधीभोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्”।।

अर्थात् यह गोपालनन्दन श्री कृष्ण के द्वारा अर्जुन को बछड़ा बनाकर उपनिषद रूपी गायों से दुहा गया अमृतमय दूध है जिसे सुधीजन पीते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता संसार के अति महत्वपूर्ण ग्रन्थों में अपना विशेष स्थान रखती है। श्रीकृष्ण भगवान स्वयं इसके वक्ता हैं और उनका कहना है ‘गीता मे हृदयं पार्थ’ अर्थात् हे अर्जुन गीता मेरा हृदय है इस प्रकार गीता को ‘सर्वशास्त्रमयी’ कहा गया है क्योंकि सभी शास्त्रों में मंथन करके अमृतमयी गीता का उदय या प्रकटीकरण हुआ है। इसका दिव्य संदेश किसी जाति — विशेष सम्प्रदाय के लिये नहीं है बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति के लिये है जो सर्वभौम है। विभिन्न मत मतान्तरों को यदि ध्यान न दिया जाय तो अधिकांश विद्वान इस मत पर

सहमत हैं कि गीता में 18 अध्याय है और 700 श्लोक है इसके संकलनकर्ता स्वयं वेदव्यास जी हैं वेद भगवान के निःश्वास हैं किन्तु गीता भगवान की वाणी है निःश्वास तो स्वभाविक होते हैं, इसमें कोई अतिरिक्त श्रम नहीं करना पड़ता है। किन्तु गीता को भगवान ने योग में स्थित होकर अपने श्री मुख से कही है अतएव गीता को वेदों की अपेक्षा भी श्रेष्ठ कहा गया है। प्रसथानत्रयी के अन्तर्गत ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषद आते हैं। इसमें गीता का महत्व और अधिक बढ़ जाता है कि गीता में ब्रह्मसूत्र और उपनिषद दोनों का ही तात्पर्य आ जाता है गीता एक परम रहस्यमय ग्रन्थ है इसमें सम्पूर्ण वेदों का सारसंग्रह किया गया है। स्वयं भगवान वेदव्यास ने कहा है कि –

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैःशास्त्रसंग्रहैः।

या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपदमाद्विनिःसृता ॥ (महा० भीष्म० 43/1)

अर्थात् गीता का ही भली प्रकार से श्रवण मनन, किर्तन, पठन— पाठन, और धारण करना चाहिये, अन्य शास्त्रों के संग्रह की क्या आवश्यकता है ? क्योंकि वह स्वयं पद्मनाभ भगवान के साक्षात् मुख—कमल से निकली हुई है। भगवान ने स्वयं गीता के विषय में कही है कि —मैं गीता के आश्रम में रहता हूँ, गीता मेरा श्रेष्ठ घर है। गीता के ज्ञान का सहारा लेकर ही मैं तीनों लोकों का पालन करता हूँ।

गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि गीता मे चोत्तमं गृहम्।

गीताज्ञानमुपश्रित्य त्रील्लोकान्पालयाम्यहम् ॥ (वाराहपुराण)

गीता की महिमा बतलाते हुये भगवान कहते हैं कि गीता गंगा से भी बढ़कर है शास्त्रों में गंगा स्नान का फल मुक्ति बताया गया है परन्तु गंगा में स्नान करने वाला स्वयं मुक्त तो हो सकता है किन्तु दूसरे को तारने की सामर्थ्य नहीं रखता है किन्तु गीता रूपी गंगा में गोता लगाने वाला स्वयं मुक्त तो होता ही है और दूसरे को तारने में भी सामर्थ्यवान होता है एक तरफ से उद्गम देखा जाय तो गंगा भगवान के श्री चरणों से निकली हुई है गंगा में जाकर जो स्नान करेगा गंगा उसी को मुक्त करती है किन्तु गीता धर धर में जाकर उन्हें मुक्ति का मार्ग दिखलाती है इन्ही सब कररणों से गीता को गंगा से भी बढ़कर भगवान बतलाते हैं—

गंगा गीता च सावित्री सीता सत्या पतिव्रता ।

ब्रह्मावलिर्ब्रह्मविद्या त्रिसंध्यया मुक्तिगोहिनी ॥

गीता का महत्व बतलाते हुये कहा गया है कि गीता अर्धमात्रा, पिदानन्दस्वरूपिणी, भवरोगनाशिनी, भ्रान्ति का नाश करने वाली त्रिवेदमयी, परमानन्दस्वरूपिणी तत्त्वार्थ ज्ञान देने वाली है जो मनुष्य प्रतिदिन स्थिर चित्त से इन नामों का जप करता है, उसे इस लोक में नित्य ज्ञान की सिद्धि तथा जीवन का अन्त होने पर परमपद की प्राप्ति होती है सम्पूर्ण गीता का पाठ करने में असमर्थ होने पर अर्धर्दाश का पाठ करना चाहिये

उसे गोदान का पुण्य फल मिलता है इसमें सन्देह नहीं है तृतीयांश का पाठ करने से गंगा स्नान का फल मिलता है जो व्यक्ति गीता के दो अध्यायों का पाठ करता है वह इन्द्रलोक जाता है और वहाँ एक ब्रह्मा के कल्प तक निवास करता है अन्तिम में गीतार्थ का पाठ या श्रवण करने से महापापी भी मुक्तिभागी हो जाता है। आगे गीता की महिमा बतलाते हुए कहा गया है कि—

गीता पुस्तक संयुक्तः प्राणास्त्याक्त्वा प्रयाति यः ।

बैकुण्ठ सम्वाप्नोति विष्णुना सह मोदते ॥

अर्थात् जो व्यक्ति गीता की पुस्तक लिए हुए, प्राणत्याग कर देता है वह बैकुण्ठ धाम जाकर विष्णु के साथ आनन्द भोग करता है। इस प्रकार गीतासार ईश्वर साक्षात्कार का दर्शन है। जिसे भी ईश्वर दर्शन की इच्छा होगी, उसे गीता से बढ़कर कोई ग्रन्थ नहीं मिलेगा—

“गीताभाष्यं पुनः कृत्वा लभते मुक्ति मुत्तमाम” ॥ (वाराहपुराण)

गीताशास्त्र की एक अप्रतिम विशेषता है कि यह किसी वाद को लेकर नहीं चली है अर्थात् द्वैत, अद्वैत, विशिष्टताद्वैत, विशुद्धाद्वैत, अचिन्त्य भेदाभेद आदि किसी भी वाद को या किसी के सिद्धान्त को लेकर नहीं चली है। गीता का मुख्य उद्देश्य है कि व्यक्ति किसी भी वाद मत सिद्धान्त को मानने वाला क्यों न हो उसका प्रत्येक परिस्थिति में कल्याण हो जाय। वह किसी भी परिस्थिति परमात्म प्राप्ति से वंचित न रह जाय। क्योंकि मनुष्य योनि ही एक ऐसी योनि है जिसमें जन्म केवल अपने कल्याण के लिए ही हुआ है। गीता की अद्वैतवादी टीकाओं भगवद्गीता को वस्तुतः गीतोपनिषद् के रूप में ही स्वीकार किया है और श्रुति प्रस्थान का स्थान दे दिया गया है। अधिकांश आचार्य मानते हैं कि गीता में जहां-जहां श्रीभगवानुवाच है वह श्रुति है, स्मृति प्रस्थान तो वह है ही। पुनः इन दोनों प्रस्थानों से बढ़कर उसी ब्रह्मसूत्र का भी प्रकाय कर दिया है। अधिकांश अद्वैतवादी सन्यासी का गीता का ही अध्ययन करते हैं, जो गृहस्थ अद्वैतवेदान्ती हैं, वे भी भागवत्पुराण, रामायण, राम चरित मानस, दुर्गासप्तशती आदि ग्रन्थों की अपेक्षा गीता का ही स्वाध्याय करते हैं। इसलिए कहा जाता है कि गीता ने अद्वैतवेदान्त के प्रचार-प्रसार में जितना योगदान दिया है उतना किसी अन्य ग्रन्थ ने नहीं दिया है। इस प्रकार गीता का माहात्म्य प्रतिपादित करते हैं। स्वयं भगवान् कृष्ण ने कहा है—

“जो कोई मेरे इस गीता रूप आज्ञा का पालन करेगा वह निःसंदेह मुक्त हो जायेगा।”
(गीता 3/31)

यही नहीं भगवान् यह भी कहते हैं कि जो इसका अध्ययन भी करेगा, उसके द्वारा मैं ज्ञान यज्ञ से पूजित होऊँगा। (गीता 18/70)

जब गीता का अध्ययन मात्र का माहात्म्य है तब जो मनुष्य इसके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करता है और इसके आदर्श को जीवन में उतार कर चलता है, तब उसकी बात ही क्या? ऐसे भक्तों के लिए भगवान् कहते हैं वह मुझे सबसे प्रिय होते हैं और ऐसे भक्तों के अधीन मैं स्वयं हो जाता हूँ।

इस प्रकार गीता भगवान् का प्रधान रहस्यमय आदेश है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के उपदेश का कितना ही अंश श्लोकों में, पद्यों में कहा था और कुछ गद्यों में, पद्यों का अंश ज्यों का त्यों वेद व्यास जी ने रख दिया किन्तु गद्यात्मक भाग को स्वयं श्लोकबद्ध कर लिया और इस सात सौ श्लोक और अठ्ठारह अध्याय वाली ग्रन्थ गीता को महाभारत के अन्दर मिला लिया, जो आज हमें इस अपने विशद् और मनोरम् कलेवर में प्राप्त होती है। इस प्रकार गीता शास्त्र ब्रह्म विद्या है। उसमें ब्रह्म विद्या के साध्य और साधन दोनों का वर्णन प्राप्त होता है जबकि और अन्य ग्रन्थों में या तो साध्य का या साधन का वर्णन होता है। इस दृष्टि से गीता सर्वशास्त्रमयी, सर्वधर्ममयी है। विश्व में गीता जैसा कोई ग्रन्थ नहीं है जिसमें सर्वधर्म का सार संग्रह हो, जिसमें ईश्वर और ईश्वर प्राप्ति दोनों के विधान किये गये हैं। इस दृष्टि से गीता के व्यवहारिक दर्शन को भली भांति रेखांकित किया जा सकता है। इसमें कर्तव्य पालन पर बल दिया गया है, वर्णाश्रम व्यवस्था को ईश्वर प्राप्ति का केन्द्र बिन्दु माना गया है, जिससे परार्थवाद या परोपकार की प्रासंगिकता सिद्ध होती है। इस प्रकार गीतासार ईश्वर साक्षात्कार का दर्शन है।

1.4.1 गीता का दार्शनिक तत्त्वविवेचन की दृष्टि से महत्त्व

गीता की ज्ञान मीमांसा में ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता ये तीनों विषय महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि यही तीनों कर्म प्रवृत्ति हेतु हैं और इन तीनों के अभाव में कर्म सम्पन्न नहीं हो सकता है। जब मनुष्य को जीवन मुक्ति की अवस्था प्राप्ति होती है, तब यह त्रिपुटी एक हो जाती है तब मनुष्य में कर्म प्रवृत्ति का उदय नहीं होता है। इस प्रकार गीता का महत्त्व तत्त्व मीमांसीय दृष्टि से हो या ज्ञान मीमांसीय दृष्टि से या आचार मीमांसा की

दृष्टि से देखा जाय तो तीनों ही दृष्टि से गीता का वर्ण्य विषय महत्वपूर्ण हो जाता है। गीता के महत्व के अन्तर्गत निम्नलिखित दार्शनिक तत्व सिद्धान्त मुख्य हैं उन मुख्य बिन्दुओं पर हम प्रकाश डालेंगे— जो इस ईकाई की विषयवस्तु होगी।

1— त्रिविधयोग— एवं 2 निष्कामकर्मयोग। 3— स्थितप्रज्ञ 4—आत्मा 5—ब्रह्म या परमेश्वर 6—जीव 7— वर्ण, धर्म या स्वधर्म 8— दैवासुर—सम्पद 9— मोक्ष

1.4.2 त्रिविधयोग

वास्तविक अर्थ में श्रीमद्भगवद्गीता को 'योगशास्त्र' की संज्ञा दी गई है इसके प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका में "ब्रह्म विद्यायां योगशास्त्रे" ऐसा कहा गया है। अतः गीता का 'योग' सम्बन्धी विचार बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। 'योग' शब्द वस्तुतः सम्बन्धवाचक है अर्थात् आत्मा का परमात्मा के साथ समन्वित सम्बन्ध को जो द्योतित करता है वह 'योग' है। 'योग' शब्द के अर्थ को तीन रूपों में देख सकते हैं—

1. 'युजिर् योगे' धातु से बना 'योग' शब्द जिसका अर्थ है समरूप परमात्मा के साथ नित्य सम्बन्ध जैसे—'समत्वंयोगउच्यते' (2/48) आदि। यही अर्थ गीता में मुख्यतः से आया है।
2. "युज् समाधौ" धातु से योग शब्द निष्पन्न है जिसका अर्थ है— समाधि में स्थित चित्त की स्थिरता।
3. 'युज् संयमने'— धातु से बना 'योग' शब्द जिसका अर्थ है संयमन, सामर्थ्य और प्रभाव जैसे—'पश्य मे योगमेश्वरम् (9/5) आदि।

गीता में जहां भी योग शब्द आया है उसमें तीनों अर्थों में से एक अर्थ की मुख्यता और शेष दो अर्थों की गौणता है। जैसे 'युजिरयोगे' वाले 'योगशब्द' में समता (सम्बन्ध) की मुख्यता है परमात्मा आने पर स्थिरता और सामर्थ्य भी स्वतः आ जाती है।

पातंजल्ययोग दर्शन में चित्त वृत्तियों के निरोध को 'योग' नाम से कहा गया है— "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" (1/12) और उस योग का परिणाम बताया है— 'द्रष्टा की स्वरूप में स्थित हो जाना— 'तदा दृष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्' (1/3) इस प्रकार पातंजल्ययोग दर्शन में जो 'योग' का परिणाम बतलाया गया है उसी को गीता में 'योग' के नाम से अभिहित किया गया है।

"योगशब्दस्य गीतायामर्थस्तु त्रिविधो मतः। सामर्थ्ये चैव सम्बन्धे समाधौ हरिणा स्वयम् ॥"

आत्मा का परमात्मा के साथ नित्य सम्बन्ध स्थापित करने के लिये तीन योग मार्ग बतलाये गये हैं— जिन्हें 1— कर्मयोग, 2— ज्ञान योग और 3— भक्तियोग से जाना जाता है। इन्हीं तीन योगों की त्रिपुटी गीता है। यद्यपि 'योग' की प्राप्ति के लिये भगवान ने मुख्य रूप दो निष्ठाएं बतायी गयी हैं— कर्मयोग और सांख्य योग। जैसा कि गीता में वर्णित है—

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ। ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ (3/3)

अर्थात् असत् से सम्बन्ध विच्छेद करना ही कर्मयोग है और सत् के साथ योग होना सांख्य योग है परन्तु ये दोनों निष्ठाएं साधकों की अपनी हैं— भक्तियोग साधक की अपनी निष्ठा नहीं है अपितु यह भगवद् निष्ठा है। जो भक्त भगवान के लिए स्वयं को समर्पित कर दे उसे 'भक्ति योग' कहते हैं। इन तीनों योगों को सिद्ध करने के लिये या मनुष्य को अपना उद्धार करने के लिए ईश्वर से तीन शक्तियों प्राप्त हैं—

- 1— कर्म करने की शक्ति (कर्म), 2— जानने की शक्ति (ज्ञान), 3— मानने की शक्ति (विश्वास)

करने की शक्ति निःस्वार्थ भाव से संसार की सेवा करने के लिए है जो 'कर्म योग'

है। जानने की शक्ति से तात्पर्य है अपने स्वरूप को वास्तविक रूप में जानना और मानने की शक्ति से तात्पर्य है अपने को भगवान के लिए समर्पित कर देना भक्ति योग है। ये तीनों ही मार्ग परमात्मा प्राप्ति के स्वतंत्र साधन हैं और अन्य साधन इन तीनों के ही अन्तर्गत आ जाते हैं। इन तीनों का पृथक-पृथक वर्णन तो अन्य शास्त्रों में भी प्राप्त होता है किन्तु तीनों के समन्वय का गौरव गीता को ही प्राप्त है। इन तीनों योगों से कर्मों (पापों) का नाश सम्भव है—

कर्मज्ञान भक्तियोगाः सर्वेऽपि कर्मनाशकाः ।
तस्मात् केनापि युक्तः स्यान्निष्कर्मा मनुजो भवेत् ॥

1 कर्मयोगः

‘कर्मयोग’ वह योग है जिसमें कर्म की ही प्रधानता होती है। इसको मुख्य रूप से मानने वाले लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जी भी जो अपने ग्रन्थ ‘गीता रहस्य’ में गीता का मुख्य विषय कर्मयोग मानते हैं। ज्ञातव्य है कि सकाम और निष्काम के भेद से कर्म दो प्रकार के होते हैं। इनमें सकाम कर्म ही बंधन का कारण है जबकि निष्काम कर्म मोक्ष का कारण है। जो साधक केवल कर्तव्य कर्म यज्ञ की परम्परा को सुरक्षित रखने के लिए, लोक संग्रह के लिए सृष्टि चक्र की परम्परा चलाने के लिए ही कर्तव्य कर्म का पालन करता है, अर्थात् कर्मों के लिए केवल दूसरों के लिए ही करता है अपने लिए नहीं वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है—

“यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ॥” (3/13)

2 ज्ञान योगः

‘ज्ञान योग’ को गीता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय मानने वाले सर्वप्रमुख विद्वान आचार्य शंकर हैं। इनके अनुसार संसार को असार मानना तथा आत्मा को परमात्मा के रूप में समझना ही ‘ज्ञानयोग’ है। ज्ञानी के लिए जो कुछ भी दृश्य पदार्थ है वह मृग तृष्णा या रज्जू में सर्प की प्रतीति की भांति मिथ्या है। क्योंकि आचार्य शंकर का प्रमुख सिद्धान्त है— “ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः”।

अर्थात् ब्रह्म ही सत्य है और जगत मिथ्या है। जीव तथा ब्रह्म एक ही है। सबकुछ ब्रह्म ही है। यह ब्रह्म एक, अद्वैत तथा शुद्ध ज्ञान स्वरूप है। ब्रह्म ही आत्मा है और आत्मा ही ब्रह्म है। यही एकत्व की प्रतीति ही “ज्ञानयोग” है। गीता में कहा गया है कि— “सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। ईक्षते योगमुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः” ॥ (गीता 6/29)

अर्थात् समाधि योग में अवस्थित पुरुष सर्वत्र ब्रह्म का दर्शन कर अविद्या से उत्पन्न शरीरादि की सीमा रहित आत्मा को सब प्राणियों में अवस्थित और सब प्राणियों को अभिन्न रूप में आत्मा में कल्पित देखते हैं। इसी विषय को और स्पष्ट करते हुये आगे कहा गया है कि—

‘यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति’ ॥ (गीता 6/30)

अर्थात् जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में सबके आत्म रूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक रूप से देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिए अदृश्य नहीं होता है। गीता में ज्ञानयोगी को समदर्शी बताया गया है। ज्ञान रूपी सूर्य के उदय होने पर अज्ञान रूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है। वैसी स्थिति ज्ञानयोगी की होती है। ज्ञानयोगी समस्त प्राणियों को समान भाव से देखता है—

“विद्या-विनय-सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः” ॥ (गीता 5/18)

अर्थात् ज्ञानी लोग विद्या और विनय युक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी और कुत्ते तथा चाण्डाल में भी समदर्शी ही होते हैं। तात्पर्य यह है कि ज्ञान योगी का विषयभाव सर्वथा नष्ट हो जाता है। उसकी दृष्टि में एक मात्र सच्चिदानन्द परमात्मा की सत्ता है। अतः उसकी दृष्टि सर्वत्र समभाव वाली हो जाती है तथा परमात्मा में ही सम्पूर्ण भूतों का विस्तार जब देखता है तभी उसी क्षण वह सच्चिदानन्द ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है—

‘यदा भूत पृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति । तत् एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा’ ॥ (गीता 13/30)

क्योंकि जैसे प्रज्वलित अग्नि ईधनों को जलाकर भस्म कर देती है वैसे ही ज्ञान रूपी अग्नि समस्त कर्मों का भस्म कर देती है—

“ यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन । ज्ञानाग्निः सर्वकमाणि भस्मसात्कुरुते तथा”
॥ (गीता 4/37)

इसीलिए गीता में जोर देकर ज्ञान की महत्ता को प्रतिपादित किया गया है और कहा गया है कि इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसंदेह कुछ भी नहीं है— “नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते” । इसी बात को उपनिषदों में भी कहा गया है कि “ज्ञानात् ऋते न मुक्तिः” अर्थात् बिना ज्ञान के मुक्ति सम्भव नहीं है। गीता के 10/10 में कहा गया है कि जो भक्त सदा मेरी चिन्ता करते हुए श्रद्धा से मेरी अराधना करते हैं उन्हें मैं अपने सम्बन्ध का सम्यक ज्ञान प्रदान करता हूँ जिससे वो मुझको प्राप्त कर सकें— “ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते” । आगे 4/33) जो पुरुष जितेन्द्रिय, साधन परायण और श्रद्धावान होते हैं वह ज्ञान को शीघ्र ही प्राप्त कर लेते हैं तथा ज्ञान प्राप्ति के बाद भगवत् प्राप्ति रूप परम आनन्द को प्राप्त हो जाता है— “श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः । ज्ञानं लब्ध्वा परा शांतिमचिरेणधि गच्छति” ॥ (5/39) भक्तों में ज्ञानी भक्त को भगवान से श्रेष्ठ कहा है। (7/17) गीता के ज्ञानयोगी को ‘स्थितप्रज्ञ’ भी कहा गया है। क्योंकि स्थितप्रज्ञ व्यक्ति केवल एक मात्र परमात्मा को ही सत्य मानता है और जागतिक पदार्थों को जो ब्रह्म से अतिरिक्त है, को मिथ्या मानता है। गीता की ज्ञानयोग की सबसे बड़ी विशेषता: यह है कि संसार का त्याग न करके संसार के प्रति आसक्ति कर त्याग करने की बात कहते हैं।

3— भक्ति योगः—भक्ति शब्द ‘भज्’ धातु से निष्पन्न है जो सेवा करने के अर्थ में प्रयुक्त होती है अपने उपस्य देव की श्रद्धापूर्वक सेवा करना ही ‘भक्ति’ है। जो संसार से विमुख होकर केवल भगवान की शरण में शरणागत हो जाता है, उसे भगवान सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर देते हैं। क्योंकि भगवान अर्जुन से कहते हैं कि तू सम्पूर्ण धर्मों का आश्रय छोड़कर एक मेरी शरण हो जा, मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा । तू चिन्ता मत कर —

सर्व धर्मान् परित्यज मामेकं शरणं ब्रज ।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ (गीता 18/66)

भक्तियोग को सर्वश्रेष्ठ साधन मानने श्री रामानुजाचार्य ने गीता में भक्तियोग का प्रतिपादन किया है भक्ति का तात्पर्य ध्यान, भजन, कीर्तन, मनन, उपासना आदि से है । परमात्मा के अतिरिक्त किसी अन्य का भाव मन में न लाना ही अनन्य भाव कहा जाता है । यही अनन्यभाव ही भक्ति योग है —

अनन्याश्चिन्तयतो मां ये जनाः पर्युपासते ।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ (गीता 9/22)

अनन्य भक्ति को ही गीता में ‘अनन्यचित्त’ भी कहा गया है । इस अनन्यचित्त वाले व्यक्ति को ईश्वर की प्राप्ति दुर्लभ नहीं होती । जैसा की भगवान श्री कृष्ण कहते हैं —

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।

तस्यां सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ (गीता 8/14)

अर्थात् जो व्यक्ति मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तम को स्मरण करता है। उस योगी के लिए मैं सर्वथा सुलभ हूँ अर्थात् उसे मैं सहजता से प्राप्त हो जाता हूँ आगे 18/65 में भगवान कहते हैं कि—

मन्मना भव मदभक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।

मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ (गीता 18/65)

अर्थात्—तुम मुझमें हृदय अर्पण करो, मेरे भक्त हो जाओ, मेरी पूजा करो और मुझे नमस्कार करो, मैं सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, इससे मेरे प्रसाद लब्ध ज्ञान के द्वारा तुम मुझे ही पाओगे, क्योंकि तुम मेरे अति प्रिय हो इस प्रकार भक्ति द्वारा ही भक्त सभी सांसारिक अज्ञान जनित बन्धनों को तोड़कर भगवान को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार ईश्वर का सर्व श्रेष्ठ साधन भक्ति है ईश्वर के प्रति निष्काम भाव से अनन्य अनुराग को भक्ति कहा गया है। गीता मैं भगवान ने बारम्बार इस प्रकार आश्वासन दिये हैं— मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता है—

“न मैं भक्तः प्रणश्यति” (गीता 9/31)

ज्ञान कर्म तथा भक्तियोग का समन्वय—

समस्त शास्त्रों के मन्थन से अमृत मयी गीता का आविर्भाव हुआ है। इस लिये गीता को ‘सर्व शास्त्रमयी’ कहा गया है। इसमें सभी मतों, दृष्टियों, सिद्धान्तों और विचारों का जो युक्ति युक्त समन्वय देखने को मिलता है। वह अन्यत्र दुर्लभ है। ज्ञान, कर्म और भक्ति ये तीनों मोक्ष के ही साधन बताये गये हैं। इनमें से किसी एक का आश्रय लेकर साधक आसानी से अपने साध्यों (मोक्ष) को प्राप्त कर सकता है। जैसे वामदेव, शुकदेव, आदि ज्ञानियों ने ज्ञान रूपी साधन से ईश्वर रूपी साध्य को प्राप्त किया जनक आदि महा पुरुषों ने अपने निष्काम कर्म के द्वारा ईश्वर को प्राप्त किया तथा भक्त प्रह्लाद ने आदि ने भक्ति के द्वारा ईश्वर को प्राप्त किया अतः तीनों मार्ग समयक और उचित है। तीनों में से कोई किसी मार्ग को अपना सकता है। मार्ग भले ही अलग-अलग हैं लेकिन तीनों का मन्तव्य एक ही है— ईश्वर प्राप्ति। किसी भी मार्ग का किसी के साथ कोई विरोध नहीं है। इन तीनों का समन्वय गीता के 9/34 में करते हुये भगवान कहते हैं—

मन्मना भव मदभक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।

मामेवैष्यसि युक्तै वमात्मानं मत्पराणय ॥ (गीता 9/34)

अर्थात् मुझमें मन लगाने वाला होओ, मेरा भक्त बनो— (भक्तियोग), मेरा पूजन कर, तथा मुझे प्रणाम कर (कर्मयोग) इस प्रकार आत्मा को मुझमें निश्चय करके (ज्ञानयोग) मेरे परायण होकर तुम मुझको ही प्राप्त होगा। अर्थात् कहने का तात्पर्य है कि भगवान के नामरूप, गुण आदि का श्रवण कीर्तन आदि भक्ति है, निष्काम भाव से यज्ञ आदि का अनुष्ठान करना निष्काम कर्म है और ईश्वर के विषय में यह जान लेना कि ईश्वर ही कर्ता, धर्ता विधाता है और एक मात्र यही सत्य है, सर्वव्यापी है, सर्वज्ञ है, परम पुरुष पुरुषोत्तम है, यही ज्ञान है, इस प्रकार गीता में तीनों मार्गों का समन्वित प्रतिपादन देखने को मिलता है।

1.4.3 निष्काम कर्म योग

कर्म योग वह है जिसमें कर्म की प्रधानता होती है। सकाम और निष्काम के भेद से कर्म दो प्रकार के होते हैं— सकाम कर्म बन्धन के हेतु होते हैं तो निष्काम कर्म मोक्ष के हेतु होते हैं। गीता को मुख्य प्रतिपाद्य विषय निष्काम कर्म है। यह वह कर्म है जिसमें कामनाओं का सर्वथा अभाव रहता है क्योंकि इसका उपदेश कर्म से पलायित अर्जुन को कर्मरत् करने के लिए उस समय दिया गया है। जब कुरुक्षेत्र में सगे सम्बन्धियों को देखकर अर्जुन मोह ग्रस्त हो जाते हैं और किं कर्तव्य विमूढ़ की अवस्था

को प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार अर्जुन युद्ध नहीं करने का निश्चय करते हैं। ऐसे समय में गीता का उपदेश श्री कृष्ण के द्वारा दिया गया है। कर्मयोगी कर्म फल के प्रति अनासक्त होता है क्योंकि आसक्त कर्म जीव को बन्धन में डालते हैं जिससे मनुष्य विभिन्न योनियों में भटकता हुआ अधोगति को प्राप्त होता है निष्काम कर्म योगी अनासक्त भाव के कारण सुख, दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय सबमें समभाव रहता है यथा—

**सुख-दुःखे समेकृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैव पापं वाप्स्यसि।। (गीता 2/38)**

अर्थात् अर्जुन को जय-पराजय, लाभ-हानि आदि से ऊपर उठकर क्षत्रिय धर्म रूपी स्वकर्तव्य पालन का उपदेश देते हैं। आसक्ति के कारण ही अर्जुन के मन भया रुद्ध वैराग्य उत्पन्न हुआ। ऐसा वैराग्य स्वभाविक न होकर बन्धन का हेतु बन रहें थ। इसी लिये श्री कृष्ण ने निष्काम कर्म करने का उपदेश दिया है। क्योंकि इस प्रकार के कर्मों का कोई शुभा-शुभ फल नहीं होता है। अतः व्यक्ति ऐसे कर्मों की माध्यम से जन्म और मृत्यु के चक्र को तोड़कर सदा के लिये अपने को परमेश्वर में विलीन कर लेता है यही निष्काम कर्म ही 'कर्मयोग' है।

गीता के द्वितीय अध्याय के 47 श्लोक में निष्काम कर्म की व्याख्या करते हुये भगवान श्री कृष्ण ने कहा है—

**कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म फलहेतुर्भूमा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।**

अर्थात् " तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलो में कभी नहीं इसलिये तुम कर्मों के फल का हेतु मत बन तथा कर्म न करने में भी तेरी आसक्ति न होवे "

यहां निष्काम कर्म के बन्धन में एक स्वाभाविक प्रश्न मन में उठता है कि कोई भी मुख्य व्यक्ति भी किसी प्रयोजन के बिना कार्य में प्रवृत्त नहीं होते हैं— " प्रयोजनमनूदिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते " इस न्याय के अनुसार निष्काम कर्म तो असम्भव है। क्योंकि यदि कोई कामना ही नहीं होगी तो हम कर्म क्यों करें ? क्योंकि कर्तापन और आसक्ति, निष्काम कर्म के दो अंग बताये गये हैं इन दोनों का अभाव असम्भव है अतः निष्काम कर्म भी असम्भव है। इस समस्या का समाधान करते हुये स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने कहा है—

**प्रकृते क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकार विमूढात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते।। (3/26)**

अर्थात् कर्तापन का अभाव तभी सम्भव है, जब व्यक्ति यह भलि-भांति समझ ले कि इसका कर्ता मैं नहीं हूँ कर्म तो प्रकृति की गुणों द्वारा किये जाते हैं। अतः जो ज्ञानी व्यक्ति है वह यह जानता है कि सभी कर्म प्रकृति जनित गुणों द्वारा ही किया जाता है अर्थात् समस्त मनुष्य प्रकृत जनित गुणों द्वारा परवश होकर कर्म करने के लिये बाध्य होता है— "कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः" (गीता 3/5)। इसलिये जो ज्ञानी मनुष्य होता है वह यह जानता है कि जो कर्ता कर्म का अभिमान वह केवल अज्ञानता के कारण है। इस प्रकार निष्काम कर्म ही वास्तविक कर्म योग है। गीता में निष्काम कर्म का उद्देश्य दो रूपों में बताया गया है— (1) आत्मशुद्धि और (2) ईश्वर के प्रयोजन को पूरा करना। पहला कर्म केवल योगी करता है। अपने समूह के लिये जिसका वह अंग होता है लेकिन दूसरे के अनुसार ईश्वर के लिए कर्म किया जाता है। और जिसका फल ईश्वर को अर्पित किया जाता है। परस्पर एक दूसरे के प्रति कर्तव्य का बोध है। और दूसरे में लोक की सेवा वह ईश्वर के लिए करता है परन्तु ध्यान देने की बात यह है कि कर्म चाहे कर्तव्य के लिये किया जाय या ईश्वर सेवा के लिए वह

सम्पूर्ण अर्थों में निष्काम नहीं कहा जा सकता है। गीता में भी निष्काम का अर्थ लक्ष्यविहीनता न होकर कर्म फल के प्रति आसक्ति से विरत होने में है। गीता अपने सामाजिक और आध्यात्मिक दोनों अर्थों में लक्ष्य विहीन न होकर निष्काम कर्म योग का अनुपालन करती है। इस लिये श्री कृष्ण अर्जुन को अपने दायित्व निर्वाह करने का तथा सामाजिक दायित्व के रूप में स्वधर्म पालन करने का तथा निष्काम कर्म योगी बनने का उपदेश देते हैं। निष्काम कर्मयोगी के विषय में गीता में कहा गया है कि जो कर्म योगी अपने स्वधर्म का पालन निष्काम या अनासक्त भाव से करता है वह सांसारिक भव बन्धन से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार गीता के 'ब्राह्मी' स्थिति को प्राप्त हो जाता है। गीता के निष्काम कर्म का उपदेश कर्तव्य के लिये कर्तव्य करने जैसा है। (Duty for Duty) व्यक्ति की श्रेष्ठता फल प्राप्ति में नहीं है बल्कि फल त्याग में है, कर्म करने की कुशलता भी योग है— 'योगः कर्मसु कौशलम्' वर्ण व्यवस्था के किसी भी वर्ण का शूद्र व्यक्ति क्यों न हों यदि वह स्वधर्म का पालन कर्तव्य निष्ठ भाव से करता है तो वही स्थिति वह भी प्राप्त करेगा। जिस स्थिति को ब्राह्मण प्राप्त करता है। क्योंकि वर्ण व्यवस्था का निर्धारण व्यक्ति के गुण और कर्म के अनुसार ही है— "चार्तुवर्ण्यं मया सृष्टम गुणः कर्म विभागशः" इस प्रकार निष्काम रूप में कह सकते हैं कि गीता कर्मयोग नैषकर्म्य या कर्म निषेध नहीं है किन्तु कामना का त्याग है, अर्थात् कामना के त्याग से तात्पर्य कर्म फल के त्याग से है। गीता 18/2 में कहा गया है "काम्यानाम कर्मणा न्यासं सन्यासं कवयो विदुः" इस प्रकार निष्काम कर्म अकर्मण्यता की शिक्षा नहीं देता है अपितु कर्म फल के त्याग की शिक्षा देता है, तथा सिद्धि असिद्धि समस्त स्थितियों में कर्तापन के अभिमान से रहित समत्व बुद्धि को उत्पन्न करता है—

"सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते"। (गीता 2/48) इस प्रकार कह सकते हैं कि निष्काम कर्म ईश्वरार्थ कर्म है और ईश्वरार्थ कर्म ही अनासक्त कर्म है। जो बन्धन का बाधक तथा मोक्ष का साधक है गीता में वर्णित है—

"ब्रह्मण्यधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोतियः।

लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।।" (गीता 5/10)

1.4.4 स्थित प्रज्ञ

जिसकी प्रज्ञा या बुद्धि आत्मा या ईश्वर में प्रतिष्ठित है वह 'स्थित प्रज्ञ' है। भगवान कहते हैं कि जब निष्काम कर्म योगी की बुद्धि मोह या अज्ञान रूपी पाप को छोड़ देगी तब सुनने योग्य और सुने हुये विषयों तुम्हें वैराग्य प्राप्त होगा अर्थात् वे विषय तुम्हारे सामने निरर्थक प्रतीत होंगे। इसके पश्चात् तुम्हारी बुद्धि समाधि में स्थित हो जायेगी और इसके बाद भी समबुद्धि की योगावस्था को प्राप्त हो जाओगे। अर्थात् बुद्धि तत्व ज्ञान में प्रतिष्ठित हो जायेगी इस प्रकार जिसे कुछ भारतीय दर्शनों में "जीवनमुक्त" नाम से जाना जाता है। वही गीता में "स्थित प्रज्ञ" है। इस प्रकार स्थित प्रज्ञ गीता में समत्व योगी को या समाधि में पहुंचे साधक के लिए प्रयुक्त हुआ है। "स्थित प्रज्ञ" की अवस्था निष्काम कर्म योगी की चरमावस्था का समन्वित रूप होता है यह कर्म का अपितु कर्म फल का त्याग करता है। वह संसार का नहीं अपितु संसार के प्रति अपनी आसक्ति का त्याग कर देता है। "स्थित प्रज्ञ" प्राप्त व्यक्ति सब प्राणियों में ईश्वर को और ईश्वर में सब प्राणियों को देखता हुआ सर्वेश्वरवादि हो जाता है। स्थित प्रज्ञ रूपी समाधि में पहुंचना ब्रह्म ज्ञानी के ही वश की बात है।

'स्थिर बुद्धि' और स्थित प्रज्ञ दोनों को कुह लोभ भ्रम से एक मान बैठतें है किन्तु दोनों में सूक्ष्म अन्तर है गीता में भेद करते हुये स्पष्ट रूप से कहा गया है— कि स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति इन्द्रियों द्वारा विषयों को ग्रहण तो नहीं करता है अर्थात् इन्द्रियों को उनके विषयों से विमुख कर लेता है। किन्तु उन विषयों से रागात्मक निवृत्ति नहीं मिल पाती है। जबकि स्थित प्रज्ञ व्यक्ति का राग परमात्मा का साक्षात्कर

करके निवृत्त हो जाता है—

“विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।

रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्टता निर्वतते।। (गीता 2/59)

इस प्रकार विषयों से इन्द्रियों का हटा लेना ही केवल स्थित प्रज्ञ का लक्षण नहीं हो सकता है। बल्कि रागात्मक विकारों से मुक्त होकर शुद्ध बुद्धि रूप आत्म प्रकाश में प्रतिष्ठित होना ही प्रज्ञा कहलाती है। ऐसी प्रज्ञा से युक्त व्यक्ति मन की अपनी चंचलता को वश में करके ‘स्थित प्रज्ञ’ हो जाता है।

स्थित प्रज्ञ की अवस्था ध्यान जन्य समाधि की अवस्था से भिन्न है क्योंकि स्थित प्रज्ञ की अवस्था जगता अवस्था की सहज समाधि की अवस्था है। जबकि ध्यान जन्य समाधि की अवस्था में एकाग्रता की स्थिति सप्रयास प्राप्त की जाती है और इस अवस्था में मन की वृत्तियों में भी परिवर्तन होता रहता है जबकि स्थित प्रज्ञ की अवस्था जाग्रत अवस्था होते हुये भी ईश्वर ने समाधिस्थ होने के कारण स्थिर होती है गीता के द्वितीय अध्याय में अर्जुन के द्वारा ‘स्थित प्रज्ञ’ का लक्षण जानने की जिज्ञासा (उत्सुकता) बढ़ जाती है और वह भगवान से पूछते हैं कि—

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।

स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्।।

अर्थात् अर्जुन ने पूछा कि हे केशव समाधि युक्त स्थित प्रज्ञ व्यक्ति का क्या लक्षण है, स्थित बुद्धि होने पर वह किस प्रकार की बातें करता है, किस तरह रहता है, और किस तरह विचरण करता है ?

इस प्रकार अर्जुन द्वारा स्थित प्रज्ञ का लक्षण पूछे जाने पर श्री कृष्ण ने स्थित प्रज्ञ की निम्नलिखित लक्षण बताये हैं—

1. स्थित प्रज्ञ सभी प्रकार की सात्विक, तामसिक और राजसिक कामनाओं वासनाओं पर विजय प्राप्त किये रहता है तथा आत्मा को वाह्य विषयों से हटाकर स्वरूपानन्द में संतुष्ट रहता है उसे स्थित प्रज्ञ कहते हैं।

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान पार्थ मनोगतान्।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थित प्रज्ञस्यतदोच्यते।।

अर्थात् जो सभी प्रकार के विषय—चिन्तन को छोड़कर सदा श्री भगवान में चित्त को लगाये रखते हैं उनको ही ईश्वर के दर्शन प्राप्त होते हैं।

2. स्थित प्रज्ञ भक्त को काम—क्रोध आदि विकार ग्रस्त नहीं कर पाते हैं केवल नाम—मात्र के ही रह जाते हैं जैसे— जली हुई रस्सी में ऐंठन दिखता है, रस्सी का आकार तो है किन्तु फूंक देने से वह उड़ जाती है। इसी प्रकार ईश्वर को प्राप्त करने से और उसमें समाधिस्थ होने से ज्ञान—विचार नहीं रह जाता है। ब्रह्म ज्ञान होने पर संसारसक्ति नहीं रह जाती है क्योंकि ईश्वर के समीप जितना अधिक पहुंच जायेंगे उतनी ही अधिक शान्ति मिलेगी।
3. विभिन्न प्रकार के दुःखों में जिसका मन उद्विग्न नहीं होता है, सुखों में भी जो आंकाक्षा रहित है तथा जो भय—क्रोध से रहित है, ऐसे व्यक्ति को ‘स्थित प्रज्ञ’ मुनि कहते हैं। (गीता 2/56)।

अतः सुख—दुःख, आसक्ति भय, क्रोध आदि के पीछे कामना या वासना ही है। वासना रहित होने से ‘स्थित प्रज्ञ’ की अवस्था प्राप्त होती है।

4. स्थित प्रज्ञ अनीह होने से राग, द्वेष और क्रोध से मुक्त होता है।

5. स्थित प्रज्ञ सभी विषयों से अनासक्त होकर ईश्वर में लीन होता है।

6. स्थित प्रज्ञ व्यक्ति का मुख्य लक्षण यह होता है कि वह अपनी इन्द्रियों को अपने वश में किये रहता है अर्थात् जितेन्द्रिय बन जाता है। जिस प्रकार कछुआ विविध अंगों को अपने अन्दर समेट लेता है उसी प्रकार जब यह जितेन्द्रिय योगी इन्द्रियों को

विषयों से पूर्णतया अपने भीतर लौटा लेता है तब उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित मानी जाती है—

यदा संहरते चायं कुर्मोऽगांनीव सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ (गीता 2/58)

स्थित प्रज्ञ प्राप्त साधक इन्द्रियों को विषय भागों से हटा तो लेता है और शब्दादि विषय दूर हो जाते हैं किन्तु उसकी रस या आसक्ति रह जाती है स्थित प्रज्ञ का यह रस भी परमात्मा का साक्षात्कार करने से निवृत्त हो जाता है— (गीता 2/59) भगवान् अर्जुन को समझाते हुये आगे कहते हैं कि कुन्ती पुत्र अर्जुन निश्चय ही बलवान् इन्द्रियां यत्नशील विवेकी पुरुष के भी मन का बल पूर्वक हरण कर लेती है— 'इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभमं मनः' अन्तिम श्लोक जो स्थित प्रज्ञ से सम्बन्धित है उसमें भगवान् कहते हैं कि मेरे एकान्त भक्त या आत्मनिष्ठ योगी को उन इन्द्रियों को संयत करके समाहित होकर अवस्थित रहना चाहिये क्योंकि जिसकी इन्द्रियां वश में उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित है। (गीता 2/61) स्थित प्रज्ञ व्यक्ति में सम्पूर्ण भोग विषय उसी प्रकार विकार उत्पन्न नहीं कर पाते जिस प्रकार चलायमान नदियां सागर में गिर कर भी सागर को चलायमान नहीं कर पाती हैं। स्थित प्रज्ञ पुरुष सभी कामानाओं को त्याग कर ममता रहित और अहंकार रहित, स्त्रीहा रहित हुआ, वर्तता हुआ शान्ति को प्राप्त करता है। 'स्थित प्रज्ञताः' की स्थिति ब्रह्म को प्राप्त हुये पुरुष की स्थिति है। इस स्थिति को प्राप्त होकर पुनः मोहित नहीं होता है। और अन्तकाल में ब्रह्मलोक को प्राप्त हो जाता है। उदाहरण के रूप में— याज्ञवल्क्य, जनक, कबीर, नानक, तुलसी, शंकराचार्य, स्वामी रामकृष्ण परमहंस आदि स्थित प्रज्ञ कहे जाते हैं।

स्थित प्रज्ञ प्राप्त सिद्ध पुरुषों का कोई स्वार्थ नहीं होता है उनका कार्य लोकसंग्रह या लोककल्याण के लिये होता है, ब्रह्म ज्ञान के बाद कोई ज्ञानतव्य, कोई पातव्य और कोई कर्तव्य से शेष नहीं रह जाता है। लोक कल्याण की कामना से कोई कर्म नहीं करता अपितु उसके द्वारा सम्पादित कार्यों से स्वतः लोक कल्याण होता है।

1.4.5 गीता में आत्मतत्त्व

गीता में आत्मतत्त्व को मुख्य रूप से प्रतिपादित किया गया है। गीता में आत्मतत्त्व के लिये नित्य, अविनाशी, अज, अव्यय, सर्वगत, अचल, सनातन, अव्यक्त, अचिन्त्य और अविकार्य आदि पद प्रयुक्त हुये हैं। 'नित्य' उसे कहा जाता है जिसकी सत्ता त्रैकालिक हो। त्रिकाल से तात्पर्य भूत, वर्तमान और भविष्य से है। क्योंकि आत्मा के अतिरिक्त और कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो तीनों कालों में नित्य रह सके अतः आत्मा ही नित्य सिद्ध होती है। 'अविनाशी' से तात्पर्य है जिसका विनाश न हो अर्थात् विनष्ट न हो। शरीर नश्वर है आत्मा नित्य है, शरीर नष्ट हो जाता है और पंच महाभूतों में विलीन हो जाता है किन्तु आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करती रहती है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति पुराने जीर्ण वस्त्रों को उतारकर दूसरे नये वस्त्रों को पहन लेता उसी प्रकार आत्मा भी पुरानी शरीरों को छोड़कर नये शरीर को धारण करती है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय।

नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ॥

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा।

न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ (2/22)

'आत्मा को सत् भी कहा गया है क्योंकि जो सत् उसी का भाव है और जो असत् है उसका भाव नहीं हो सकता है और जो सत् है उसका अभाव नहीं हो सकता—

'नासतो विद्यते भाव ना भावो विद्यते सतः' (गीता 2/16)

अर्थात् सत् वही हो सकता है जो त्रिकाला बाध हो अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्य में जो तीनों कालों में सदा सर्वदा नित्य एक रस और अपरिवर्तन शील रहे यह लक्षण शुद्ध आत्मतत्त्व या ब्रह्म का है। और वही 'सत्' है।

गीता में भगवान श्री कृष्ण ने आत्मा के स्वरूप के विषय में कहा है कि आत्मा सदैव एक रूप है। उसमें कभी विकार उत्पन्न नहीं होता है। इसलिये आत्मा को अविकारी कहा जाता है। आत्मा देह आदि उपाध्यों से युक्त होता है जो औपाधिक है वास्तविक नहीं। जीवात्मा पहले कुमारवस्था पुनः युवावस्था और फिर वृद्धावस्था को प्राप्त होता है। अर्थात् पहले स्थूल शरीर को प्राप्त करता है और पुनः सूक्ष्म शरीरों में प्रवेश करता है। विनाश तो शरीर का होता है आत्मा का नहीं जिस तरह जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में जीव हमेशा सत्य एवं नित्य रहता है। उसी तरह आत्मा की सत्यता एवं नित्यता है। अर्थात् उत्पत्ति एवं विनाश देह आदि का होता है, आत्मा का नहीं है।

“देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कोमारं यौवनं जरा।

यथा देहान्तर प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ (2/13)

भगवान आत्मा का स्वरूप समझाते हुये कहते हैं कि यह दृष्टिगोचर होने वाला जगत अविद्या से उत्पन्न है यह जिस अत्यन्त सूक्ष्म, व्यापक, सद्रूप, ब्रह्म से व्याप्त है उसे सत् कहते हैं कोई भी इस नित्य आत्मा का विनाश करने में समर्थ नहीं होता।

“अविनाशी तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।

विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्तुमर्हति ॥ (2/17)

आत्मा के अतिरिक्त जो कुछ भी दिखायी पड़ता है किसी की पृथक सत्ता नहीं है। ब्रह्म या आत्मा ही एक मात्र सत् है, सुख-दुःख आदि अन्तःकरण के धर्म है आत्मा के नहीं मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकार इन चार वृत्तियों की समष्टि अन्तःकरण है। और इसी से सुख-दुःख आदि का अनुभव होता है जो हम यह समझते हैं कि हम सुखी या दुःखी हैं इस भ्रम का कारण है 'अज्ञान' अर्थात् सत् और असत् वस्तुओं के ज्ञान का अभाव मैं चेतनमय, ज्ञान स्वरूप आनन्दमय आत्मा हूँ इस सत् तत्त्व को भूलकर जीव, शरीर, मन, बुद्धि, चित्त अहंकार आदि को अपना स्वरूप समझता है, फलस्वरूप उसे जीवन भर दुःख ही भोगना पड़ता है।

गीता के अनुसार यह आत्मा अविनाशी एवं अतुलनीय है जो व्यक्ति इसे अर्थात् आत्मा को मारने वाला जानता है तथा जो व्यक्ति इसे मृत समझता है वे दोनों ही नहीं जानते हैं यह न मरता है और न ही मारा जाता है—

“य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।

उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ (गीता 2/19)

आत्मा को गीता में शरीरी, देही, भी कहा गया है। और आगे भगवान अर्जुन को यह उपदेश देते हैं कि शरीरी नित्य है शरीर नाशवान है इसे जानकर स्वधर्म पालन के लिए हे अर्जुन ! तुम युद्ध करो, यथार्थ में किसी की मृत्यु नहीं होती है केवल अवस्थान्तर होकर सब कुछ आत्मा में लीन हो जाता है। आत्मा सर्वव्यापी है और परमसूक्ष्म है, इस कारण वह हत्या नहीं कर सकता और न हत् ही होता है—

“न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ (2/20)

इसलिये हे अर्जुन! इस आत्मा को अविनाशी, नित्य, त्रिकाल में परिणाम शून्य, जन्मरहित, क्षयशून्य जानता है। हे पार्थ, वह व्यक्ति किस प्रकार किसका वध कराता है या किसका वध करता है ? इस प्रकार इस अग्रिम श्लोक में भगवान आत्मा का ही प्रकारान्तर से वर्णन करते हुये कहते हैं कि—

“नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ (2/23)

अर्थात् इस आत्मा को नहीं काट सकते हैं अग्नि इस आत्मा को नहीं जला सकती तथा जल इसे गीला नहीं कर सकता वायु इस आत्मा को नहीं सुखा सकती है। इस प्रकार यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, निश्चल, और सनातन है— “नित्यः सर्वगतः स्थानुरचलोऽयं सनातनः।” आत्मा के स्वरूप के विषय में और वर्णन किया गया है कि यह आत्मा वाणि से व्यक्त नहीं किया जा सकता, मन से इसका विचार नहीं किया जा सकता और यह आत्मा विकार रहित कहा जाता है। अतः इसे इस प्रकार का जानकर हे अर्जुन! तुम्हें शोक करना नहीं चाहिये और आगे भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन यदि तुम यह मान भी लो कि यह आत्मा सदा उत्पन्न और मरणशील है तो भी तुमको इसके लिये शोक नहीं करना चाहिये क्योंकि जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है मृत व्यक्ति का पुर्नजन्म लेना निश्चित है। इस कारण ऐसे अवश्य समभावी विषय में तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।

तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ (गीता 2/27)

भगवान शरीरी या आत्मा के विषय में अर्जुन को साधारण दृष्टि से समझाते हैं कि हे अर्जुन सभी प्राणी जन्म के पूर्व अव्यक्त या अज्ञात थे, बीच में कुछ समय के लिये दिखाई पड़ रहे हैं और जो विनाश के बाद अज्ञात हो जायेंगे उनके लिए शोक करना अनुचित है जिन सगे सम्बन्धियों के लिए तुम चिन्ता कर रहे हो व जन्म के पूर्व तुम्हारे कौन थे और मृत्यु के बाद इनसे तुम्हारा क्या सम्बन्ध रहेगा, उसे तुम नहीं जानते यह जो कुछ समय के लिए तुम्हारा इनके साथ परिचय हुआ है मानों रात भर के लिए धर्मशाला के यात्रियों के मिलन की तरह है। प्रातः काल होते ही सब लोग उस धर्मशाला को छोड़कर अपने-अपने गन्तव्य स्थान को चले जायेंगे। अतः इस संसार में यह मेरा पुत्र है पत्नी है, पति है, ऐसा सम्बन्ध मानकर मोहित होकर शोक करना उचित नहीं है—

“ अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्त मध्यानि भारत ।

अव्यक्त निधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ (गीता 2/28)

भगवान आगे कहते हैं कि हे अर्जुन यह आत्मा सबके शरीर में सदा अवध्य है, इसलिये तुम्हें किसी भी प्राणी के निधन से शोक करना उचित नहीं। इसलिये हे अर्जुन अपने क्षत्रिय धर्म को देखकर अपने स्वधर्म से विचलित होना शोभा नहीं देता है, क्योंकि धर्म युद्ध के अतिरिक्त क्षत्रिय के लिये कुछ भी कल्याणकारी नहीं है। इसलिये अपने स्वधर्म का पालन करते हुये तुम्हें युद्ध करना चाहिये क्योंकि यदि युद्ध नहीं करोगे तब आपकी अपकीर्ति पूरे विश्व में फैल जायेगी जो मृत्यु से भी बढ़कर दुख दायी होती है— और आगे समझाते हुये कहते हैं कि युद्ध करने से क्या लाभ है ? यदि युद्ध में मारा जायेगा तो स्वर्ग की प्राप्ति होगी और यदि युद्ध में जीत जायेगा तो पृथ्वी का राज्य भोगेगा। इसलिये हे अर्जुन युद्ध से विचलित न होकर युद्ध के लिये कृत निश्चय करके उठ खड़े होओ। सुख—दुःख, लाभ—हानि, जय—पराजय को समान समझकर फिर तुम युद्ध के लिये सन्नद्ध हो जाओ इस प्रकार कर्तव्य कर्म करने से तुम्हें पाप स्पर्श नहीं करेगा। इस प्रकार भगवान ने गीता के द्वितीय अध्याय में आत्मा की अमरता से सम्बन्धित मुख्य उपदेश दिये हैं। इस प्रकार आत्मतत्व बड़ा ही गहन है और अत्यन्त मूढ़ विषय है जो व्यक्ति अज्ञानी है, मोह, माया से ग्रस्त है उसे आत्मतत्व समझ में नहीं आता है।

1.4.6 ब्रह्म या परमेश्वर

गीता की तत्व विवेचन में ब्रह्म या परमात्मा का महत्वपूर्ण एवं विशद वर्णन किया गया है गीता ब्रह्म की सगुण निर्गुण दोनो रूपों को मानती है। और यह भी

मानती है कि दोनों रूप एक ही अभिन्न तत्व के हैं ब्रह्म जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है, वह शुद्ध चैतन्य और अखण्ड आनन्द स्वरूप है। वह निर्विकल्प, निरुपाधि और विश्वातीत भी है। ब्रह्म अन्तर्यामी के रूप में सारी प्रकृति और समस्त प्राणियों में वास करता है। जिस प्रकार सूत में मणि पिरोई रहती है उसी प्रकार मणियों की तरह यह समस्त जगत मुझमें अनुस्यूत है। ब्रह्म या ईश्वर ही विश्वात्मा होते हुये भी वह विश्व में सीमित नहीं है, वह विश्वातीत भी है, अज्ञानी लोग भी मेरा अक्षय, सर्वश्रेष्ठ महानभाव अर्थात् स्वरूप न जानकर अव्यक्त, संसार से परे मुझे मनुष्य रूप में आविर्भूत समझते हैं। ब्रह्मनिर्विकार, निराकार, निर्गुण, निविशेष है। वह अपनी माया की सहायता से भी संसार के कल्याण के लिए लीलावश सविशेष गुणमय, साकाररूप धारण करते हैं और संसार में अवतीर्ण होते हैं। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में वर्णन करते हुये कहते हैं कि हे अर्जुन इस पूरे श्रृष्टि में मुझसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। मैं जल में रस, चन्द्र सूर्य में ज्योति, समस्त वेदों में ओंकार स्वरूप, आकाश में शब्द और मनुष्यों में पुरुषाकार हूँ, जीव में जो शुद्ध चैतन्य प्रकाशित हो रहा है वही ब्रह्म रूप से इस समस्त वाह्य जगत में भी व्यापत है। अखण्डचिदानन्द स्वरूप परमतत्व को आत्मा या ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्म या ईश्वर स्वतः शुद्ध चैतन्य एवं स्वयं प्रकाश है। गीता में श्री भगवान ने क्षर, अक्षर पुरुषोत्तम इन तीन प्रकार के पुरुषों का उल्लेख किया है। जहाँ सांख्य दर्शन पुरुष को एक मानता है। वही गीता में पुरुषनाना है। और उनके साथ प्रकृति नाना मानी गयी है जैसे— 'क्षेत्रज्ञच्चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत'। तथापि वेदान्त के एकात्मवाद के समान गीता में भी एकात्मवाद समर्थित हुआ है जैसे—

मन्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रं मणिगणा इव ॥ (गीता 7/7)

हे अर्जुन और जो कुछ समस्त प्राणियों का बीज कारण है, वह मैं ही हूँ मेरे अतिरिक्त इस चराचर जगत में कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो मेरे बिना रह सके इस प्रकार सब कुछ ब्रह्म है— "सर्वखल्विदं ब्रह्म" यह श्रुति वाक्य समर्थित होता है जो वेदान्त दर्शन का मुख्य आधार स्तम्भ है। ब्रह्म ही समस्त भूतों और प्राणियों की स्थिति है तथा ब्रह्म में ही सब कुछ लय प्राप्त हो जाता है। अतः ब्रह्म को अलग कर देने से ब्रह्माण्ड की कोई यथार्थ सत्ता ही नहीं रह जायेगी। ब्रह्म आत्मा रूप से रहने के कारण ही सब प्राणी जीवित है। जैसे— कुम्हार घट का निमित्त कारण है और मिट्टी घट का उपदान कारण है। उसी प्रकार ब्रह्म भी निमित्त और उपदान कारण हैं। गीता के सातवें अध्याय के छठे श्लोक में भगवान कहते हैं कि चेतन और अचेतन स्वरूप समस्त भूत इन दो प्रकार की प्रकृतियों से उत्पन्न इसे धारणा करों अथार्थ जानलो मैं ही समस्त जगह की उत्पत्ति और प्रलय का कारण हूँ—

एतद् योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥

योग दर्शन कहता है कि— "क्लेश कर्म विपाकाश यैर परामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः" अर्थात् क्लेश, कर्म विपाक और आशय ये चारो जीव मात्र में सतत् वर्तमान रहते हैं। इनके ही द्वारा पुरुष भोक्तृत्व रूप को प्राप्त होता है। ये चारो जिसमें नहीं होते हैं। अथवा जिसे स्पर्श नहीं कर पाते वही ईश्वर है। जीव के साथ ईश्वर का इतना ही भेद है जीव के कर्म होते हैं। अतएव उस कर्म के संस्कार भी होते हैं। ईश्वर का कोई कर्म नहीं होता है। अतएव उनका कोई संस्कार नहीं होता है इस कारण ईश्वर स्वभावतः चिरमुक्त है। ईश्वर को "पुरुषविशेष" भी कहा गया है। इसका कारण यह है कि पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—

1— क्षर पुरुष 2— अक्षर पुरुष और पुरुषोत्तम है। पुरुषोत्तम ही ईश्वर है वह अन्य दो पुरुषों से विशेष या विलक्षण है—

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।

यो लोकत्रय भाविश्य तिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ (गीता 15/17)

अर्थात् उन क्षर और अक्षर से भिन्न एक उत्तम पुरुष है जिन्हें 'परमात्मा' कहते हैं। जो अक्षर ब्रह्म सर्वज्ञ, नारायण तीनों लोकों में अपनी शक्ति से प्रविष्ट होकर उनका पालन करते हैं। भगवान आगे कहते हैं कि क्योंकि मैं क्षर से परे और अक्षर से भी अतीत तथा श्रेष्ठतम हूँ। इस कारण लोक व्यवहार या पुराण आदि में और वेदों में मैं पुरुषोत्तम नाम से प्रख्यात हूँ—

यस्मात्क्षमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ (गीता 15/18)

गीता परमेश्वर की दो प्रकृतियों का वर्णन करती है। (1) अपरा (2) परा। 'अपरा' प्रकृति को 'क्षेत्र और 'क्षर' 'पुरुष' भी कहा गया है इसे जड़ प्रकृति भी कहते हैं क्योंकि इसके अन्तर्गत समस्त भौतिक पदार्थ विद्यमान हैं। 'परा प्रकृति' के अन्तर्गत चेतन जीव आते हैं। इसका अन्य नाम क्षेत्रयज्ञ और 'अक्षर' पुरुष भी है। 'क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।' (15/16)। इस प्रकार संसार में दो प्रकार के पुरुष हैं। 1— विनाशशील 2— अविनाशी। उनमें जीव—जगत विनाशशील है और कूटस्थआत्मा अविनाशी कहलाता है। जीव चैतन्य रूप होने से उत्कृष्ट या पराप्रकृति या विभूति है। जीव 'कूटस्थ' और 'अक्षर' है। भगवान जीव को अपना अंश कहते हैं—

'ममैवांशो जीव लोके जीवभूतः सनातनः।' (गीता 15/7) क्षर पुरुष (जड़ प्रकृति) और अक्षर पुरुष (जीव) इन दोनों के ऊपर उत्तम पुरुष या पुरुषोत्तम है— (गीता 15/17) यह पुरुषोत्तम ही परमतत्व है जो जड़ प्रकृति और चेतन जीव दोनों से ऊपर की कोटि का है और यह इन दोनों की 'आत्मा' भी है। और यह दोनों में अन्तर्यामी रूप में रहकर दोनों का नियमन करता है फिर भी इसे विश्वतीत पुरुषोत्तम कहा गया है। इस प्रकार गीता भी सगुण ईश्वर और निर्गुण ब्रह्म का अत्यधिक सुन्दर समन्वय दृष्टिगोचर होता है जिसका वर्णन श्रुतियों एवं वेदों में भी किया गया है। सगुण ब्रह्म ही सोपाधिक और सविकल्पक होकर ईश्वर बन जाता है। ईश्वर ही समस्त विश्व के कर्ता—धर्ता, नियन्ता और आराध्य है और पर ब्रह्म निर्गुण, निर्विशेष, निर्विकल्पक, निरुपाधिक, निष्प्रपञ्च, अनिर्वचनीय और अपरोक्षानु—भूतिगम्य है। निर्गुण ब्रह्म का केवल निषेध मुख "नेतिनेति" से ही वर्णन सम्भव है। तैत्तरीय उपनिषद में कहा गया है— 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत प्रयन्त्याभिसं विशन्ति तद् ब्रह्म'— अर्थात् "ब्रह्म वह है जिससे इस जगत के समस्त पदार्थ उत्पन्न होते हैं। जिसमें स्थित और जीवित रहते हैं और जिसमें पुनः विलीन हो जाते हैं। निर्गुण ब्रह्म ही गीता दर्शन के अनुसार कभी—कभी अपने आपको माया शक्ति द्वारा सीमित करके अवतार ग्रहण करता है। यही ईश्वर का सगुण स्वरूप होता है इस सम्बन्ध में स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि—

यदा—यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानम सृजाम्यहम् ॥ (गीता 4/7)

इस प्रकार सगुण ब्रह्म की उपाशना पर गीता में विशेष बल दिया गया है किन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि निर्गुण ब्रह्म की उपासना को महत्वहीन समझा गया है। पूर्ण विश्वास और श्रद्धा से की गयी किसी भी तरह उपासना ईश्वर प्राप्ति का यथोचित मार्ग है। इस प्रकार गीता में ब्रह्म का ज्ञान करना ही परम साध्य तत्व माना गया है। ईश्वर प्राप्ति के लिए त्रिविध मार्ग निर्दिष्ट किये गये हैं। जो ज्ञान कर्म और भक्तियोग नाम से जाने जाते हैं। गीता वर्णित विश्व रूप दर्शन का एक मात्र लक्ष्य ईश्वर साक्षात्कार है। गीता में ईश्वर जीव माया प्रकृति विश्व उत्पत्ति, विनाश, आत्मा तथा जरा—मरण आदि समस्त लौकिक तथा पारलौकिक दृष्टियों से वैज्ञानिक तथा मनो

वैज्ञानिक रूप से सम्यक विवेचन किया गया है। यही कारण है कि भगवद्गीता आज समस्त विश्व की प्रदर्शिका के रूप में प्रतिदिन आगे बढ़ रही हैं। और इसकी कीर्ति दिग-दिगान्तर तक व्याप्त है। गीता का अमर संदेश आज के अशान्त जगत में विक्षुब्ध मानव समाज को परम शान्ति प्रदान करने वाला है।

1.4.7 जीव

गीता में भगवान कहते हैं कि यह जीव जो है यह मेरा ही अंश है—

ममैवांशो जीवलोकं जीवभूतः सनातनः।

मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। (गीता 15/7)

अर्थात् मुझ परमेश्वर का ही अनादि एक अंश संसार में जीव बनकर प्रकृति अवस्थित होकर मन के साथ पांच इन्द्रियों को आकर्षित करता है। परमेश्वर की दो प्रकृतियां हैं अपरा प्रकृति और परा प्रकृति। 'अपरा प्रकृति' जहां जड़ है इसमें सभी भौतिक पदार्थ विद्यमान होते हैं वहीं परा प्रकृति चेतन जीव है। इस चेतन जीव को 'अक्षर' और 'क्षेत्रज्ञ पुरुष भी कहते हैं 'जीव' ईश्वर का सूक्ष्म शरीर है तो जगत स्थूल शरीर है। ईश्वर जीवों के और जगत की आत्मा है। इस सृष्टि से मेरे सनातन अंश जीव रूप में प्रकृति में विद्यमान मन सहित छः इन्द्रियों को आकर्षित करता है। जब जीव शरीर रूप को धारण करता है और पुनः उसका त्याग करता है तब जैसे वायु, अपने स्थल से गन्धों को साथ लिये चलता है यह जीव भी उसी प्रकार इन्द्रियों के वशीभूत हो जाता है। समस्त ज्ञानेन्द्रियों तथा मन के योग से जीव विषयों का सेवन करता है। प्रत्येक अवस्था में स्थित इस जीव आत्मा को ज्ञानी लोग ही पहचान सकते हैं। मलिन अन्तःकरण युक्त अज्ञानी के लिए जानना असम्भव है।

यथा प्रकाशत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।

क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।। (गीता 13/35)

इस श्लोक का तात्पर्य है कि जिस प्रकार एक ही सूर्य समस्त पृथ्वी को प्रकाशित करता है उसी प्रकार आत्मा भी जीव के सम्पूर्ण शरीर प्रकाशित करती है। भगवान ने गीता में जीव की मुख्य रूप से तीन गतियों का वर्णन किया है। 1— ऊर्ध्वगति 2— अधोगति 3— मध्यगति। जो मनुष्य सत्व गुण में स्थित रहने वाला है उसको ऊर्ध्वगति प्राप्त होती है। (गीता 14/14, 18) तमोगुण की तात्कालिक वृत्ति के बढ़ने पर मरने वाला और तमोगुण में स्थित रहने वाला मनुष्य अधोगति में जाता है— (14/15, 18) रजोगुण के तात्कालिक वृत्ति के बढ़ने पर मरने वाला और रजोगुण में स्थित रहने वाला मनुष्य अधोगति को प्राप्त होता है— "जीवात्मा" किस भाव से सत्त्वादि गुणों से युक्त होकर शरीर में अवस्थित रहता है विषयों का भोग करता है या किस भाव से शरीर छोड़कर चला जाता है उसे अज्ञानी लोग नहीं देख सकते हैं क्योंकि उनका मन विषयों के आकर्षण से बहिर्मुख रहता है किन्तु इसके विपरीत ज्ञानियों का मन अन्तर्मुख रहता है। इसी कारण ज्ञानी लोग ही आत्मा का दर्शन कर पाते हैं भगवान जीवात्मा का वर्णन करते हुये कहते हैं कि इस संसार में दो प्रकार पुरुष हैं— विनाशशील और अविनाशी उनमें जीव, जगत विनाशशील है और इससे अलग कूटस्थात्मा अविनाशी है— 'क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थो अक्षरः उच्यते'। (गीता 15/16) वेदान्त दर्शन में जीव का वर्णन कुछ इस प्रकार किया गया है— शंकर के अनुसार अनादि अविद्या के कारण आत्मा अनेक रूपों प्रतिभासित होने लगती है। इसी को अद्वैत वेदान्त में 'जीव' कहते हैं। जीव अपने ईश्वर से भिन्न कर्ता है या भोक्ता समझने लगता है। जबकि जीव और ब्रह्म में कोई तात्त्विक भेद नहीं है— 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' पर व्यवहारिक दृष्टि से जीव और ईश्वर अलग है क्योंकि जीव माया का कार्य है। माया के कारण ही जीव अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं जान पाता है किन्तु गीता में भगवान जीव को अपना एक अंश स्वीकार करते हैं।

1.4.8— गीता में प्रतिपादित वर्ण धर्म या स्वधर्म—

समाज रूपी शरीर को सुचारु रूप से चलाने के लिए सृष्टि के प्रारम्भ में ही स्वर्ण धर्म की व्यवस्था स्वयं भगवान श्री कृष्ण वासुदेव द्वारा की गयी है। भगवान ने विविध गुण कर्मों के आधार पर ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सुद्र इन चार वर्णों को अविभूत किया था— चातुर्य वर्णनम “चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः॥ (गीता 4/13) इसमें सर्व प्रथम वर्ण का धर्म बताया गया है— अन्तःकरण का निग्रह, इन्द्रियों का दमन, क्षमाशीलता, धर्मार्थकष्ट अन्तः एवं वाह्य शुद्धि, वेदशास्त्र, ईश्वर, परलोक, श्रद्धा, आदि में अध्ययन—अध्यापन इत्यादि ब्राह्मण के स्वाभाविक धर्म हैं— शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिराज।

गीता में प्रत्येक वर्ण के कुछ विशेष वर्ण धर्म या कर्तव्य कर्म बताये गये हैं।

1— ब्राह्मण के कर्तव्य—

विराट पुरुष के मुख से उत्पन्न होने के कारण उसकी विशिष्टता स्वयं सिद्ध थी। प्राधान्यता ब्राह्मणों के छः कर्तव्य कर्म थे। 1— वेद पढ़ना, 2— वेद पढ़ाना, 3— यज्ञ करना, 4— यज्ञ कराना, 5— दान देना, 6— दान लेना

2— क्षत्रिय के कर्तव्य—

प्राचीन भारतीय समाज में क्षत्रियों की स्थिति, ब्राह्मणों के बाद की थी देश और समाज की सुरक्षा का भार क्षत्रियों पर ही था। चारो वर्णों को संरक्षण प्रदान करना क्षत्रियों का प्रमुख कर्तव्य था। क्षत्रियों के कर्मों का उपदेश करते हुये गीता 18/43 में स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने कहा है—

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।

दानमीश्वरभावश्च क्षत्रकर्म स्वभावजम्॥ गीता 18/43

3 वैश्य के कर्तव्य

व्यापारिक व्यवस्था और कृषि का समस्त भार वैश्यों के ही ऊपर निर्भर था। देश और समाज की आर्थिक स्थिति उसी के सत प्रयासों से सुदृढ़ होती थी। वैश्य कर्म का उल्लेख करते हुये भगवान श्री कृष्ण ने स्वयंमेव कहा है कि खेती, गो पालन और क्रय विक्रय रूपी सद व्यवहार ही वैश्यों के कर्तव्य कर्म हैं—

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्॥ गीता 18/44 पूर्वाद्ध।

4—शुद्र के कर्तव्य

प्राचीन भारत में सूत्रों की स्थिति अत्यन्त निम्न कोटि की थी विराट पुरुष के पैरों से इनकी उत्पत्ति बताकर समाज में इनकी निम्नतम अवस्था की घोषणा की गयी थी। ब्रह्मा ने सूत्रों को वृजवर्णों की सेवाशुश्रूषा के लिये उत्पन्न किया था, जो शुद्रों का स्वाभाविक धर्म का— “परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥ गीता 18/44 उत्तरार्द्ध।

विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति, भुजा से क्षत्रिय की, जंघा से वैश्य की, चरणों से शूद्र की उत्पत्ति मानी गयी है—

1 ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्.....॥ ऋग्वेद/पुरुषसूक्त/10/90/12॥

1.4.8 गीता की दैवी और आसुरी सम्पत्ति —

दैवी और आसुरी इन दोनों शब्दों में देव नाम देवताओं का नहीं है। अपितु यह ‘परमात्मा’ का वाचक है और ‘असुर’ नाम राक्षसों का न होकर प्राणों में रमण करने वालों का है। देव अर्थात् परमात्मा के जितने वाचक गुण हैं वे सभी ‘दैवी गुण’ कहलाते हैं ये दैवीगुण परमात्मा की प्राप्ति कराने वाली पूज्य होने से ‘दैवी सम्पत्ति’ कही जाती है। इसी सम्पत्ति का आश्रय लेकर भक्त लोग भगवान का भजन करते हैं। अर्जुन को संदेह हो रहा था कि पता नहीं मेरे अन्दर सत्वगुण है कि नहीं। मैं इस सत्वज्ञान का अधिकारी हूँ की नहीं तब भगवान ने आश्वासन देकर कहा है कि— ‘तुम भय को प्राप्त

मत् होओ' तुमनें दैवी सम्पद् का अधिकार लेकर जन्म लिया है इसलिये भगवत्प्रवणता तुम्हारे लिए स्वभाविक है दैवी सम्पद् का अधिकारी जिसको नहीं है वह साधन पथ में आना नहीं चाहता। आसुरं भावं (7/15) आसुरं (16/6), आसुर निश्चयान् आदि पद गीता में प्रयुक्त हुये हैं। 'असुर' से तात्पर्य— प्राणों में आसक्ति रखने वाला 'असु' का अर्थ है 'प्राण' प्राणों में ही जो रमण करने वाले है, प्राणों का भरण पोषण—रक्षा करना चाहते हैं, पे असुर कहलाते हैं। और उन असुरों का जो स्वभाव है, उनके जो गुण है वे आसुरी गुण कहलाते हैं। आसुरी गुण से युक्त लोग चौरासी लाख योनियों में भटकते रहते हैं और अधोगति को प्राप्त होते हैं। गीता के षोडश अध्याय में दैव तथा आसुरी सम्पत्तियों का विस्तृत वर्णन किया गया है। गीता के अनुसार मनुष्य दो प्रकार की समपदा से युक्त होता है— दैवी और आसुरी संसार के प्रत्येक धर्म में इन दोनों शक्तियों का वर्णन किया गया है। इन दोनों शक्तियों वाले व्यक्तियों में वाद—विवाद और युद्ध चलता रहता है। देव असुर, राम—रावण, कृष्ण—कंस, खुदा और शैतान आदि दैवी और आसुरी शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। भगवान ने बताया है कि जो दैवी सम्पदा से युक्त होते हैं। उनके अन्दर 26 सात्विक गुणों का विकास होता है। ये पूर्व जन्म के शुभ कर्मों के फलस्वरूप दैवी सम्पदा के अधिकारी होते हैं।

गीता में— दैवी सम्पदा सम्पन्न व्यक्तियों में निम्नलिखित गुण पाये जाते हैं— अभय, अन्तःकरण की स्वच्छता, तत्वज्ञान के लिये ध्यान योग में निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्विक दान, इन्द्रियों का दमन, भगवान, देवता और गुरुजनों की पूजा अग्निहोत्र यज्ञ आदि उत्तम कर्मों का आचरण एवं वेद शास्त्रों का पठन—पाठन, भगवान के नाम का कीर्तन, स्वधर्म का पालन, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, परनिन्दा का त्याग सब प्राणियों में दया, अनासक्त भाव, कोमलता निषिद्ध कुकर्म करने में लज्जा, चंचलता का अभाव, तेजस्विता, क्षमा, धैर्य शौच, अहंकार शून्यता, लोभ शून्यता, चित्त शुद्धि आदि दैवी सम्पदाये हैं। इस दैवी सम्पदाओं से युक्त व्यक्ति चिर शान्ति रूप मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी होता है। इसके विपरीत आसुरी सम्पदा प्राप्त व्यक्ति (पुरुष) के लक्षण निम्नलिखित प्रकार के होते हैं— पाखण्ड, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कटुवचन, परनिन्दा, अज्ञानता, कर्तव्य भाव का अभाव अशुद्ध अन्तःकरण, मिथ्या भाषण, अनीश्वर वादी, भौतिक वादी, आसुरी सम्पदा लेकर जो लोग जन्में वे सदा दुःख ही भोगते रहते हैं। आसुरी प्रकृति वाले मनुष्यों को धर्म अधर्म का ज्ञान नहीं रहता है वे शौच सदाचार नहीं जानते, सत्य धर्म, शास्त्र ईश्वर आदि को भी नहीं मानते और कर्म उपभोग को भी जीवन का परम पुरुषार्थ समझते हैं तथा काम क्रोध वशिभूत होकर समस्त प्राणियों का अनिष्ट करते हैं। इस प्रकार आसुरी प्रकृति वाले लोग अधर्म का आचरण करके बार—बार अधोगति को प्राप्त होते हैं। उनकी मुक्ति का कोई उपाय नहीं रहता है। जो आसुरी गुणों से युक्त होते हैं उनको हिंसा करने, बलात्कार करने, लूट—पाट—चोरी, अपहरण करने में कोई डर नहीं लगता क्योंकि वे धर्म, कर्म, पाप, पुण्य को नहीं मानते हैं। ऐसे व्यक्ति दिन रात भोगवासना में लिप्त रहते हैं। और इनके अन्तःकरण में कुसंस्कार की प्रवृत्ति का जन्म होता रहता है। भौतिक सुख सुविधाओं के पीछे मदमत्त होकर भागते रहते हैं। धनमान और अहंकार आदि से युक्त होते हैं। आज समाज में जितनी भी विसंगतियां दिखाई पडती है वह सब आसुरी गुणों से युक्त व्यक्ति की देन है। क्योंकि ऐसे व्यक्ति समाज के हित के विषय में न सोचकर, केवल अपने कल्याण के विषय में सोचते हैं। और इससे उनका मन कभी शान्ति को प्राप्त नहीं कर पाता है। भगवान कहते हैं कि इस प्रकार का बुद्धि का आश्रय करके विकृति मति छोटी बुद्धि वाले निष्ठुर कर्म कारी संसार का अहित करने वाले लोग इस जगत के विनाश के लिए ही उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार ये लोग निरीश्वरवादी होते हैं। और सैकड़ों आशारूप रस्सियों से आबद्ध होकर काम परायण लोग विषय भोग के लिए असत् उपाय के

आलम्बन से धन संग्रह करने की इच्छा करते हैं। गीता में आगे वर्णन करते हुये कहा गया है कि—

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।

ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥ (गीता 16/14)

अर्थात् यह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया, अन्य शत्रुओं को भी मैं मार डालूँगा, मैं प्रभु, मैं ही भोगाधिकारी, मैं कृतार्थ, मैं बलवान और सुखी हूँ, आसुरी स्वभाव वाले लोग, शास्त्र विधि को छोड़कर धार्मिक बनने का ढोंग रचते हैं— 'यजन्ते नामयज्ञेस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्' श्री कृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! अज्ञानी लोग हर जन्म में आसुरी योनि प्राप्त होकर मुझ परमेश्वर को न पाकर उससे भी अधिक अधोगति या कृमिकीट आदि घृणित योनि प्राप्त करते हैं—

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।

मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥ (गीता 16/20)

इस प्रकार भगवान समझाते हुये अर्जुन को उपदेश देते हैं कि काम, क्रोध, लोभ ये तीनों मनुष्य के परमशत्रु हैं जो मनुष्य को नरक के द्वार तक पहुँचा देते हैं। अतः आत्मा को अधोगति में न पहुँचाकर तीनों का त्याग कर देना चाहिये। इस प्रकार कहा गया है कि— त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ (गीता 16/21)

इसलिये हे अर्जुन इन तीनों के नरक के द्वारों से मुक्त होकर मनुष्य अपना कल्याण रूपी आचरण करता है तो वह श्रेष्ठ परमगति मोक्ष को प्राप्त होता है। इस कारण श्री भगवान ने अत्यन्त कृपा—परायण होकर अर्जुन को लक्ष्य करके जगत्वासियों को सदउपदेश देते हुये कहते हैं कि काम, क्रोध, लोभ आदि को वश में करके शास्त्रविहित कर्म करना हर एक मनुष्य का कर्तव्य है। स्वधर्म का पालन ही श्रेष्ठ उपाय है तथा धर्म अधर्म के निर्णय में शास्त्र ही प्रमाण है। इस कारण श्री भगवान इस अध्याय के अन्तिम श्लोक में उपदेश की परिसमाप्ति करके कहा है कि हे अर्जुन तुम शास्त्रोक्त व्यवस्था जानकर स्वधर्माचरण रूप कर्म करने में प्रवृत्त हो जाओ। दैव—आसुरी सम्पदा का विश्लेषण करते हुये गीता के कर्मवाद को स्पष्ट किया जा सकता है। कर्मवाद यह मानता है कि व्यक्ति जैसा कर्म करता है उसके अनुसार उसको फल मिलता है। दैवी सम्पदा वाले व्यक्ति अच्छे कर्म करते हैं तो शुभ फल प्राप्त कर मुक्ति को प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत जो अच्छा कर्म नहीं करते हैं अशुभ फल की प्राप्ति होती है। तथा ऐसे लोग निकृष्ट योनियों में जन्म लेकर अधोगति को प्राप्त होते रहते हैं। जब विश्व में समाज में, आसुरी स्वभाव वाले ज्यादा अव्यवस्था फैलाते हैं, अत्याचार, शोषण और अधर्म का सहारा लेकर अराजकता पैदा कर देते हैं तत्पश्चात् आसुरी स्वभाव की पराकाष्ठा बढ़ जाती है। तब इस प्रकार की प्रवृत्ति वालों के विनाश के लिए स्वयं ईश्वर को अवतार लेना पड़ता है—

“ यदा—यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानम सृजाम्यहम् ॥” (गीता 4/7)

1.4.9 मोक्ष

पुरुषार्थ सिद्धान्त में मनुष्य की सभी ईच्छाओं, आवश्यकताओं और उद्देश्यों को चार वर्गों में विभक्त किया गया है—धर्म, अर्थ काम, मोक्ष, मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य 'मोक्ष' है। मोक्ष प्राप्ति के लिये गीता कभी नहीं कहती है कि संसार त्याग करने से मोक्षप्राप्ति सम्भव नहीं है मोक्ष से तात्पर्य है 'आवागमन के बन्धन से मुक्ति पाना'। गीता में यह अन्तिम निष्कर्ष के रूप में वर्णित है, कि ईश्वर के प्रतिपूर्ण समर्पण की भावना ही परमपद प्रदान कर सकती है।

गीता में कहा गया है—

‘तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।

तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

अर्थात् “हे भारत ! तू सब प्रकार से उस परमात्मा की ही शरण में ही जा । उस परमात्मा का कृपा से ही तुम्हें परम शान्ति तथा सनातन परम धन प्राप्त होगा ” । गीता के अन्तिम अध्याय का नाम ही ‘मोक्षयोग’ है भगवान ने कहा है त्रिविधत्याग और सन्यास मुख्य है । काम्यकर्म का त्याग ही सन्यास है और सारे कर्मों के फल मात्र का त्याग ही यथार्थ त्याग है जो कर्मफल त्यागी है वही यथार्थ सन्यासी है । देहधरीजीव देह में वर्तमान रहते सभी कर्मों का त्याग नहीं कर सकता है क्योंकि श्वास प्रश्वास की स्वाभाविक वृत्ति भी कर्म है पूजा अर्चना भगवान का स्मरण मनन भी कर्म है स्वधर्म भी कर्म है इस कारण गीता कर्मत्याग का उपदेश नहीं देती है कर्मफल त्याग करके स्वधर्म का अनुष्ठान ही भगवान का स्पष्ट निर्देश है । भगवान कहते हैं कि जो अनन्य भाव से मेरी उपासना करते हैं और जो इसप्रकार नित्य मुझमें ही रत् रहते हैं उनके योगक्षेम का भर मैं स्वयं उठाता हूँ कहा भी गया है –

अनन्याश्चिन्तयतो मां ये जनाः प्युपासते ।

तेषां नित्यभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ (गीता 9/22)

इस प्रकार इस श्लोक में कहा गया है कि अपना आत्मसर्पण ईश्वर के सामने पूरी तरह से कर दो इस प्रकार मोक्ष, आत्मज्ञान के परमपुरुष के स्वरूप की अनुभूति है । ईश्वर या परमपुरुष नित्य शुद्ध चैतन्य एवं अखण्ड आनन्द स्वरूप है । आत्मा ज्ञान स्वरूप है और मोक्ष आत्मा का स्वरूप ज्ञान है । अविद्या के कारण ही जीव अहंकार और ममकार युक्त होकर स्वयं को शुभ-अशुभ कर्मों का कर्ता, भोक्ता मान बैठता है और जन्म मरण चक्र में संसरण करता रहता है । यही उसका ‘बन्धन’ है जब आत्मज्ञान द्वारा अविद्या निवृत्ति हो जाती है तो जीव नित्य, शुद्ध, ब्रह्म भाव को प्राप्त कर लेता है । यह उसकी बन्धन से मुक्ति है । किन्तु वास्तव में जीव का न तो बन्धन होता है और न ही मोक्ष होता है । केवल अविद्या ही आती और जाती है । इसलिये बन्धन और मोक्ष परमार्थतः मिथ्या है । केवल व्यवहारिक सत्यता है । परमात्मा पूर्ण आत्मसर्पण चाहता है । और उसके बदले में हमें आत्मा की वह शक्ति प्रदान करता है जो प्रत्येक स्थिति को बदल देती है—

सर्व धर्मानः परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।

अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ (गीता 18/66)

अर्थात् सब व्यक्तियों को छोड़कर तुम केवल मेरी शरण में आ जा, तू दुःखी मत हो मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूंगा इस प्रकार सर्वज्ञ, समदर्शी क्षेत्रज्ञ ही इन्द्रियों को देखता है जैसे— सूर्य रश्मि द्वारा हमको स्पर्श करता है, इन्द्रिय शक्ति भी उसी प्रकार विषयों को स्पर्श करती है । मन के द्वारा इन्द्रियां रश्मियां सम्यक नियमित होने पर दीप में जैसे ज्वाला प्रकाशित होती है आत्मा भी उसी प्रकार देह घट में प्रकाशित होता है । पाप कर्म का क्षय होने पर जीव को ज्ञान उत्पन्न होता है—

यथादर्शतल प्रख्ये पश्यत्यात्मान मात्मनि ।

इन्द्रियाणिन्द्रियार्थाश्च महाभूतादि पञ्च च ॥

मनो बुद्धिमहंकामव्यक्तं पुरुषं तथा ।

प्रसंख्यान परावाप्तौ विमुक्तो बन्धनैर्भवेत् ॥

अर्थात् जैसे दर्पण में अपने रूप का दर्शन किया जाता है उसी प्रकार जीव निर्मल बुद्धि में इन्द्रियां, इन्द्रियों के विषय, पंचमहाभूत, मन, बुद्धि, अहंकार प्रकृति तथा पुरुष को भी देखता है । तब प्रसंख्यानम या विवेक ज्ञान द्वारा देहन्द्रियादि से आत्मा का पार्थक्य निश्चय कर देह आदि बन्धन से विमुक्त होकर परमार्थ को प्राप्त होता है ।

जीव को जब यह ज्ञान हो जाता है कि मैं परमज्योति स्वरूप ब्रह्म हूँ इस

प्रकार की उपलब्धि प्राप्त करके मुक्त हो जाता है। चतुर्विंश तत्व से पृथक होकर पंचविंश रूप में जो प्रसिद्ध पुरुष है वह विवेक विचार द्वारा प्रकृति से पृथक होकर केवल लाभ प्राप्त करता है। और षड्विंश तत्व स्वरूप जो ब्रह्म है उसका साक्षात्कार करता है। गीता में वर्णित विश्वरूप दर्शन का एक मात्र लक्ष्य ईश्वर साक्षात्कार ही है। चाहे कर्मयोगी हो या ज्ञानयोगी अथवा भक्तियोगी सभी उस परश्रद्धेय की दृष्टि में एक हैं और मोक्ष प्राप्ति के योग हैं इस प्रकार भगवान ने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, और समाधि से अष्टांग योग विमुक्त के उपाय कहे गये हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

बहुविकल्पीय प्रश्न

सही विकल्प पर निशान लगायें—

प्रश्न 1— “पंचम वेद” किस को कहा गया है—

- | | |
|------------|------------|
| (अ) ऋग्वेद | (ब) सामवेद |
| (स) गीता | (द) उनिषद् |

प्रश्न 2— आसुरी सम्पदा युक्त मनुष्य को कौन सी गति प्राप्त होती है—

- | | |
|---------------|------------|
| (अ) परमगति | (ब) अधोगति |
| (स) कल्याणगति | (द) शुभगति |

प्रश्न 3— ‘जीव’ किसका अंश कहा गया है—

- | | |
|--------------|---------------|
| (अ) ईश्वर का | (ब) जगत का |
| (स) माया का | (द) ब्रह्म का |

प्रश्न 4— आत्मा की विशेषता क्या नहीं है—

- | | |
|-------------|------------|
| (अ) अव्यय | (ब) सत् |
| (स) अविनाशी | (द) व्यक्त |

प्रश्न 5— अन्तःकरण की वृत्ति कौन नहीं है—

- | | |
|---------------|------------|
| (अ) मन—बुद्धि | (ब) अहंकार |
| (स) चित्त | (द) भ्रम |

प्रश्न 6— त्रिविध कर्मों की श्रेणी के अन्तर्गत नहीं आता है—

- | | |
|--------------|--------------|
| (अ) प्रारब्ध | (ब) क्रियमाण |
| (स) शुभ—अशुभ | (द) संचित |

प्रश्न 7— नरक का द्वार कौन नहीं है—

- | | |
|----------|-----------|
| (अ) मूढ़ | (ब) काम |
| (स) लोभ | (द) क्रोध |

प्रश्न 8— “ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैवनाऽपरः” किसका सिद्धान्त है—

- | | |
|--------------------|-----------------|
| (अ) आचार्य रामानुज | (ब) आचार्य शंकर |
|--------------------|-----------------|

(स) वल्लभाचार्य

(द) निम्बाकाचार्य

प्रश्न 9— 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' किस अध्याय में वर्णित है—

(अ) प्रथम

(ब) द्वितीय

(स) पंचम

(द) तृतीय

प्रश्न 10— अभ्यास और वैराग्य के द्वारा किसको वश में किया जा सकता है—

(अ) चंचलमन को

(ब) बुद्धि को

(स) अहंकार

(द) इन्द्रियों को

प्रश्न 11— श्रद्धा कितनी प्रकार की होती है—

(अ) दो

(ब) तीन

(स) पांच

(द) चार

प्रश्न 12— 'कर्मयोग' को गीता का मुख्य दर्शन मानने वाले हैं—

(अ) शंकर

(ब) रामानुज

(स) बाल गंगाधर तिलक

(द) गांधी

प्रश्न 13— 'भक्तियोग' ही गीता का प्रमुख उपदेश है ऐसा कौन मानता है—

(अ) आचार्य शंकर

(ब) रामानुज

(स) तिलक

(द) विनोवाभावे

प्रश्न 14— 'निष्काम कर्म' से क्या तात्पर्य है—

(अ) आसक्त कर्म

(ब) इच्छारहित कर्म

(स) कर्म फल त्याग

(द) अकर्म

प्रश्न 15— 'अनीश्वरवादी दर्शन' किसे कहा गया है—

(अ) सांख्य

(ब) वेदान्त

(स) गीता

(द) उपनिषद्

प्रश्न 16— स्थितप्रज्ञ का मुख्य लक्ष्य क्या होता है—

(अ) ईश्वर साक्षात्कार

(ब) फलप्राप्ति

(स) ज्ञानप्राप्ति

(द) कर्म प्राप्ति

प्रश्न 17— ज्ञानयोगी का मुख्य उद्देश्य क्या प्राप्त करना होता है—

(अ) मोक्ष

(ब) कर्म फल

(स) विषयज्ञान

(द) इन्द्रियज्ञान

प्रश्न 18— शरीर को 'क्षेत्र' कहा गया है तो आत्मा को क्या कहा गया है—

(अ) क्षेत्रज्ञ

(ब) परमपुरुष

(स) परमात्मा

(द) जीव

प्रश्न 19— “ज्ञानात् ऋते न मुक्ति” किसमें कहा गया है—

- | | |
|-------------|-------------|
| (अ) महाभारत | (ब) गीता |
| (स) उपनिषद् | (द) वेदान्त |

प्रश्न 20— गीता में ज्ञानयोगी को क्या कहा गया है—

- | | |
|-----------------|----------------|
| (अ) स्थितप्रज्ञ | (ब) परमेश्वर |
| (स) जीवात्मा | (द) क्षेत्रज्ञ |

1.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान गये होंगे कि गीता एक विश्व दर्शन है गीता का महत्व वेदों से भी अधिक है इसलिये गीता को ‘पंचम वेद’ भी कहते हैं। गीता के वचनों को श्रुति के समान प्रामाणिक मानते हैं। ‘सत्यमेव जयते’ का आशावादी संचार भक्तों में प्रस्तुत किया है। सत्य के साक्ष्य के रूप में गीता का प्रयोग वर्तमान में भी न्यायालय आदि में किया जाता है। जैसे— गीता पर हाथ रखकर जो कहूँगा/कहूँगी सत्य कहूँगा/कहूँगी हर तरह के लोगों के लिए अनेक प्रकार की नैतिक उपदेश गीता में प्राप्त होते हैं। इस ग्रन्थ के अध्ययन से परम शान्ति एवं दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। इसके उपदेश को यदि मानव मात्र अपने आचरण में उतार ले और उसके अनुसार अपना जीवन यापन करे तो कहीं असन्तोष और दुःख नहीं रह जायेगा। भगवद्गीता का दार्शनिक विचार आज भी पूरे भारत में ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में प्रासंगिक है। क्योंकि यह कथा सागर है, इस पर शोध होते रहें हैं और आगे भी होते रहेंगे जितना अध्ययन करेंगे उतनी ही नवीनता भरे अर्थ दृष्टिगोचर होते हैं। भगवान अर्जुन को बार-बार यही समझाते हैं कि मृत्यु से भय करना सर्वथा अनुचित है यह उसका अज्ञान है। जो मृत्यु को सत्य मानता है भगवान श्री कृष्ण के उपदेशों के परिणाम स्वरूप अर्जुन का मोह नष्ट हो जाता है। और वह अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर हो जाते हैं। इस पर अर्जुन स्वयं कहते हैं कि— **नष्टोमोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युता। (गीता 18/37)**। इस प्रकार गीता में श्री कृष्ण अर्जुन संवाद को लक्ष्य करके मानव मात्र को सन्देश दिया गया है। अधर्म का नाश करो, और अपने कर्तव्य का पालन करो। इस प्रकार हम देखते हैं कि गीता के मूलगत दर्शन के पीछे विद्वानों में मतभेद है। आचार्य शंकर ने जहाँ गीता का मुख्य उपदेश ‘ज्ञानयोग’ माना है और वह गीता के भाष्य में लिखते हैं— ‘**केवलाद तत्त्वज्ञानादपि मोक्षप्राप्तिः न कर्म समन्वयात्**’ इसके विपरीत रामानुज ने ‘**भक्तियोग**’ को गीता का मुख्य उपदेश स्वीकार किया है वहीं बाल गंगाधर तिलक ने अपने ग्रन्थ ‘**गीतारहस्य**’ में गीता का मुख्य उपदेश—‘**कर्मयोग**’ को प्रतिपादित किया है। महात्मा गांधी भी गीता का मुख्य उपदेश ‘**भक्तियोग**’ को स्वीकार करते हैं। लेकिन कर्मयोग के समन्वय को भी स्वीकार करते हैं। गीता का मूल सिद्धान्त न तो कर्म को त्याग्य करने की शिक्षा देता है और न ही कर्म फलासक्ति की इस प्रकार गीता कर्म त्याग का उपदेश न देकर कर्म फल त्याग का उपदेश देती है। इस प्रकार मनुष्य को अपनी कर्तव्य का पालन चाहे वह उत्तम हो या अधम अवश्य करना चाहिये— क्योंकि गीता में कहा गया है— ‘**स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः (गीता 3/35)**’ गीता दर्शन में धार्मिक अन्धविश्वासों का पूरी तरह से खण्डन किया गया है। इसमें मानव जीवन की नित्य प्रति के आचार-विचार, जीवन-मृत्यु, सुख-दुःख, संयोग-वियोग, आत्माओं का परस्पर संबंध, आत्मा के अनश्वरता आदि मनो वैज्ञानिक विषयों का विशद विवेचन किया है गीता की सार्वभौमिकता का एक प्रामाणिक स्वरूप यही है कि गीता दर्शन के अध्ययन और अभ्यास के लिए सभी प्रमुख देशों में अथक प्रयत्न किया गया है। डा० रिचर्ड गार्व,

वर्टेण्ड रसेल, लाइवनिट्स, डेकार्ट आदि ने गीता को एक उत्कृष्ट दार्शनिक ग्रन्थ स्वीकार किया है विश्व की प्रत्येक मानव की सम्पूर्ण समस्याओं का सूक्ष्म तथा युक्ति युक्त विवेचन जैसा गीता में किया गया है वैसा अन्यत्र किसी दार्शनिक ग्रन्थ में दुर्लभ है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1—स्थित प्रज्ञ— जिसकी प्रज्ञा (बुद्धि) आत्मा या ईश्वर में स्थित है वही 'स्थित प्रज्ञ' है। 'स्थित प्रज्ञ' की स्थिति प्राप्त होने पर ही क्रमशः ईश्वर के दर्शन होते हैं।

2—ब्राह्मी स्थिति— इस पद से तात्पर्य है— ब्रह्मज्ञान में अवस्थान, समाधि में आत्मा से अभिन्न ब्रह्म की अपरोक्षानुभूति। समाधि भी दो प्रकार की होती है— 1— सविकल्पक, 2— निर्विकल्पक सविकल्पक से ऊपर की सीढ़ी निर्विकल्पक है क्योंकि इसमें कुछ भी विकल्प शेष नहीं रहता है। इसमें ही आत्मा को ब्रह्मज्ञान की अपरोक्षानुभूति होती है। इस ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त करने के बाद ही 'मोक्ष' या कैवल्य प्राप्त होता है।

3—शुभ और अशुभ कर्मों की त्रिविध स्थिति— जो शुभ कर्म (पुण्य कर्म) करता है उसका शुभ फल और जो बुरे कर्म करते हैं उनको अशुभ फल मिलता है— त्रिविध स्थितियों का वर्णन शास्त्रों में मिलता है—

1— प्रारब्ध— जिसका भोग चल रहा है।

2— क्रियमाण— जो भोग काल में किया जा रहा है।

3— संचित— जो अभी फल देने में प्रवृत्त नहीं हुआ है। प्रत्येक जीव को इन तीन कर्मों का क्षय भोग करके ही करना पड़ता है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न (1) की उत्तरमाला

प्रश्न 1— (ब) प्रश्न 2— (द) प्रश्न 3— (अ) प्रश्न 4— (स) प्रश्न 5— (स)
 प्रश्न 6— (अ) प्रश्न 7— (अ) प्रश्न 8— (अ) प्रश्न 9— (अ) प्रश्न 10— (द)
 प्रश्न 11— (अ) प्रश्न 12— (स) प्रश्न 13— (अ) प्रश्न 14— (ब) प्रश्न 15— (ब)
 प्रश्न 16— (अ) प्रश्न 17— (अ) प्रश्न 18— (ब) प्रश्न 19— (अ) प्रश्न 20— (ब)
 प्रश्न 21— (अ) प्रश्न 22— (ब)

अभ्यास प्रश्न (2) की उत्तरमाला

प्रश्न 1— (स) प्रश्न 2— (ब) प्रश्न 3— (अ) प्रश्न 4— (द) प्रश्न 5— (द)
 प्रश्न 6— (स) प्रश्न 7— (अ) प्रश्न 8— (ब) प्रश्न 9— (ब) प्रश्न 10— (अ)
 प्रश्न 11— (ब) प्रश्न 12— (स) प्रश्न 13— (ब) प्रश्न 14— (स) प्रश्न 15— (अ)
 प्रश्न 16— (अ) प्रश्न 17— (अ) प्रश्न 18— (अ) प्रश्न 19— (स) प्रश्न 20— (अ)

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- गीतातत्त्व चिन्तन – स्वामी आत्मानन्द प्रकाशन-अद्वैत आश्रम, 5 डिही एण्टाली रोड-कलकत्ता
- भगवद्गीता – चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य
- श्री मदभगवद् गीता – योगीराज श्री श्यामाचरणलोहिड़ी महाशय एवं भूपेन्द्र नाथ सान्याल।
- श्री मदभगवद् गीता – साधक संजीवनी – स्वामी राम सुख दास।
- 'गीता – स्वामी अङ्गदानन्द।
- श्री मदभगवद् गीता ' यथारूप – श्री श्रीमद ए0सी0 भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुवाद।
- श्री मदभगवद् गीता त्रयी – भगवान श्री कृष्णचन्द्र वासुदेव।
- श्री मदभगवद् गीता – तत्त्ववेचनी हिन्दीटीका – जयदयाल गोयन्दका गीता प्रेस गोरखपुर।
- श्री मदभगवद् गीता – स्वामी अपूर्वानन्द – रामकृष्ण मठ- नागपुर।
- युगगीता – डॉ प्रणव पाण्ड्या
- गीता रहस्य – लोक0 बाल गंगाधर तिलक नारायण प्रेस पूना।

1.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. श्रीमद भगवद्गीता – तत्त्ववेचनी (हिन्दी टीका) जयदयाल गोयन्दका, गीताप्रेस, गोरखपुर।
2. गीता तत्त्वचिन्तन – स्वामी आत्मानन्द प्रकाशन – अद्वैतआश्रम- कल।
3. श्रीमदभगवद्गीता – योगीराज श्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय एवं भूपेन्द्रनाथ सान्याल।
4. गीता रहस्य – लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक नारायण प्रेस, पूना।
5. भगवद्गीता- डॉ. सर्वेपल्लि राधाकृष्णन्- हिन्द पाकेट बुकस
6. गीता दर्पण- स्वामी रामसुखदास- गीता प्रेस।

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न-1 गीता का रचनाकाल निर्धारित कीजिये ?

प्रश्न-2 त्रिविध मार्ग क्या है, संक्षिप्त परिचय देते हुये इसमें समन्वय का प्रतिपादन कीजिये ?

प्रश्न-3 गीता का कौन सा एक अध्याय आपको सर्वाधिक रुचिकर लगा, उसका सारांश लिखिये ?

प्रश्न-4 निष्काम कर्मयोग से क्या समझते हैं, इसका विस्तृत वर्णन कीजिये ?

प्रश्न-5 दैवासुर –सम्पदा से आप क्या समझते हैं – वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसकी प्रासंगिकता क्या है ?

इकाई 2 .द्वितीय अध्याय श्लोक संख्या 1 से 24 तक

इकाई की रूपरेखा

2,1 प्रस्तावना

2,2 उद्देश्य

2,3 श्लोक संख्या 1 से 24 तक मूल पाठ,अन्वय, अर्थ एवं व्याख्या

2,4 सारांश

2,5 शब्दावली

2,6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2,7 उपयोगी पुस्तकें

2,8 सन्दर्भ ग्रन्थ

2,9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आपने गीता के महत्व को जाना कि गीता मनुष्य को जीवन का सही अर्थ समझाती है। गीता हमें ज्ञान, भक्ति और कर्म का पाठ पढ़ाती है।

गीता के प्रथम अध्याय में यह तथ्य प्रस्तुत होता है कि जो अर्जुन कुरुक्षेत्र के मैदान में अपने ताऊ (धृतराष्ट्र) के पुत्रों (कौरवों) से उनकी अनीति के कारण न्याय पाने की इच्छा से बड़े ही उत्साह से युद्ध करने गया था वहां अपने ही परिवारीजनों, गुरुजनों व इष्ट मित्रों को दूसरी ओर युद्ध के मैदान में देखता है तो मोहवश नाना प्रकार के नीतियुक्त तर्क देकर अपने सारथी भगवान श्रीकृष्ण से युद्ध न करने की बात कहता है और हताश होकर रथ के पिछले भाग में बैठ जाता है। अपने कर्तव्य से विमुख होने वाले लोगों को अर्जुन के माध्यम से तब योगेश्वर श्री कृष्ण ने गीता के माध्यम से जो तत्त्व ज्ञान व कर्तव्यबोध कराया था उसका शुभारम्भ गीता के द्वितीय अध्याय से होता है। प्रस्तुत इकाई में आप द्वितीय अध्याय सांख्ययोग के 1 से 24 तक के श्लोकों का अध्ययन करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप द्वितीय अध्याय के एक से चौबीस तक के श्लोकों का अन्वय सहित शब्दार्थ व भावार्थ तथा श्लोक का तात्पर्य भी समझा पायेंगे!

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- मोहग्रस्त अर्जुन की दशा का वर्णन कर सकेंगे।
- भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को क्या उपदेश दिया यह बता सकेंगे।
- क्षत्रिय का धर्म है युद्ध करना स्वधर्म रक्षा की व्याख्या कर सकेंगे।
- भगवान कृष्ण जैसे महान गुरु अर्जुन को सारथी के रूप में सहयोग के लिए समर्पित थे यह बता सकेंगे।
- आत्मतत्त्व का विश्लेषण कर सकेंगे।

2.3 श्लोक संख्या 1 से 24 तक मूल पाठ, अन्वय, अर्थ एवं व्याख्या

संजय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।

विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ 1 ॥

अन्वय सहित शब्दार्थ— तथा=उस प्रकार, कृपया= मोहयुक्त कायरता से, आविष्टम् =वशीभूत, अश्रुपूर्ण =आंसूभरे, आकुल= व्याकुल, ईक्षणम्= आंखों वाले, विषीदन्तम्=विषादयुक्त, तं= उस अर्जुन से, मधुसूदनः=मधुनामक दैत्य का वध करने वाले भगवान कृष्ण, इदम्=यह, वाक्यम् =वाक्य, उवाच=बोले।

अनुवाद व भावार्थ —संजय बोले— तब उस प्रकार मोह से ग्रसित, कायरता के वशीभूत हुए तथा अश्रुभरे नेत्रों वाले विषादयुक्त व युद्ध से विरत उस अर्जुन से भगवान मधुसूदन ने यह वचन बोले।

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ 2 ॥

अन्वय सहित शब्दार्थ— अर्जुन, विषमे= प्रतिकूल समय में, त्वा=तेरे को, कश्मलम्= मलिन करने वाला, इदम्=यह, अनार्य+जुष्टम् =अविवेकी, अस्वर्ग्यम् =स्वर्ग प्राप्ति में बाधक, अकीर्तिकरम्=अपयशकारक विचार कुतः=कहां से, सम+उपस्थितम्= उत्पन्न हो गया ।

अनुवाद व भावार्थ — श्रीभगवान बोले— हे अर्जुन! इस समय जबकि अपने कर्तव्य पालन हेतु तुम युद्ध के मैदान में युद्ध करने पहुंचे हो और इस समय तुम्हें बड़े उत्साह के साथ युद्ध में तत्पर होना चाहिए था तुम्हारे मन में यह युद्ध से विरत होने की कायरतापूर्ण मलिनता अनुचित समय पर कहां से आ गई? तेरे जैसे श्रेष्ठ क्षत्रिय वीर पुरुष के लिए ऐसा कायरतापूर्ण आचरण करना सर्वथा अनुचित है क्योंकि न तो यह मृत्यु के बाद स्वर्ग प्रदान करने वाला ही है और नहीं तुम्हें यश ही दिलाने वाला है।

तात्पर्य — क्षत्रिय का धर्म है युद्ध करना, यदि युद्ध में जय होती है तो उसे यश मिलता है, राज्य भोग का सुख मिलता है और युद्ध में मृत्यु हो जाती है तो वह मृत्यु स्वर्ग प्रदान करने वाली होती है।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥ 3 ॥

अन्वय सहित शब्दार्थ— परन्तप = बड़ी से बड़ी कठिनाई को सहन करने की क्षमता वाले, पार्थ = अर्जुन, त्वयि =तुझमें, एतत्=यह, क्लैब्यं = कायरता, उपपद्यते=उत्पन्न हुई है, स्म = तुम, (उसे) मा= नहीं, गमः =प्राप्त होओ, क्षुद्रं=तुच्छ, हृदयदौर्बल्यं=हृदय की दुर्बलता को, त्यक्त्वा =त्याग कर, उत्तिष्ठ = उठो।

अनुवाद व भावार्थ — बड़ी से बड़ी कठिनाई को भी सहन करने की क्षमता वाले हे परन्तप अर्जुन! इस समय जो यह अनुचित समय पर तुममें कायरता का दोष उत्पन्न हुआ है, हृदय को दुर्बल करने वाली इस क्षुद्र कायरता को त्याग कर तुम उठो और युद्ध के लिए तत्पर हो जाओ।

तात्पर्य— इस श्लोक में भगवान कृष्ण अर्जुन को एक ओर उसकी शूरवीरता व सहनशीलता की याद दिलाते हैं और दूसरी ओर उसे क्षुद्र, कायर, दुर्बलहृदय, आदि कह कर उसको झकझोरते हैं व उसके क्षत्रीय धर्म का कर्तव्य, बोध कराते हुए उसका दैहिक व पारिवारिक मोहभंग करने का प्रयास करते हैं।

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।

इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ 4 ॥

अन्वय सहित शब्दार्थ— अरिसूदन मधुसूदन= शत्रुओं का दमन करने वाले मधुसूदन, अहम्=मैं, सङ्ख्ये= युद्धक्षेत्र में, पूजार्हाव,= दोनों पूजनीय, भीष्मम्=भीष्म पितामह पर, च = और, द्रोणं= द्रोणचार्य पर, कथम्=कैसे, इषुभिः= बाणों का, प्रतियोत्स्यामि =प्रयोग कर सकूंगा?

अनुवाद व भावार्थ— अर्जुन बोले— हे शत्रुओं का दमन करने वाले मधुसूदन। मैं इस युद्धके मैदान में, भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य जैसे दोनों हमारे अति पूजनीयों पर किस प्रकार अपने बाणों से आघात कर पाऊंगा।

तात्पर्य— अपने पारिवारिक मोह व ममत्वय के कारण अर्जुन ने युद्ध करने के लिए स्वाभाविक ही जो अपनी असमर्थता दिखाई वह व्यवहारिक व धर्मानुकूल प्रतीत होती है लेकिन क्षत्रीय के लिए अन्याय के प्रति युद्ध करना ही उसका सर्वोच्च धर्म हुआ करता है।

गुरुनहत्वा हि महानुभावाञ्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।

हत्वार्थकामांस्तुगुरुनिहैव भुंजीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥ 5 ॥

अन्वय सहित शब्दार्थ— इह लोके = इस संसार में, महानुभावान् = महाअनुभवी, गुरुन् = गुरुओं को, हत्वा = मार कर, रुधिरप्रदिग्धान् = खून से सने हुए, अर्थकामान् = धनसंपदा और इच्छाओं की पूर्ति करने वाले, भोगान् = भोगों को, भुंजीय = भोगने से, तु = तो, भैक्ष्यम् = भिक्षा वृत्ति से, भोक्तुं = जीवनयापन करना, श्रेयः = अच्छा है।

अनुवाद व भावार्थ — युद्ध न करने का औचित्य समझाते हुए अर्जुन कहते हैं कि इस संसार में मेरे लिए अपने इन महान अनुभवी गुरुजनों की हत्या कर उससे प्राप्त होने वाली खून से रंगी हुई धन संपदा से अपनी सुखभोग की कामनाओं की पूर्ति करने से तो भिक्षा के अन्न से जीवनयापन करना

अधिक कल्याणकारी होगा।

तात्पर्य— अपने पारिवारिक मोह व ममत्व के कारण व अपने पूज्यजनों व गुरुजनों की हत्या करने के बजाय भिक्षा के अन्न से जीवन यापन करने का जो तर्क दिया वह व्यवहारिक व धर्मानुकूल प्रतीत होता है लेकिन क्षत्रीय के लिए अन्याय के विरुद्ध युद्ध करना ही उसका सर्वोच्च धर्म हुआ करता है चाहे वह युद्ध अपने ही स्वजनों के साथ ही क्यों न करना पड़े।

न चैतद्विद्यः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।

यानेव हत्वा न जिजीविषाम स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ 6 ॥

अन्वय सहित शब्दार्थ — न = नहीं, च = और, एतद = यह, विद्मः = जानते हैं, कतरत् = क्या (अनिश्चय), गरीयो = श्रेष्ठ यत् = कि, नो = हम, जयेम = विजयी होंगे वा = या, न जयेयुः = नहीं विजयी होंगे। यान = जिन्हें, हत्वा = मार कर, न = नहीं, जिजीविषामः = जीवित रहना चाहते हैं, ते = वे धार्तराष्ट्राः = कौरव, प्रमुखे = सम्मुख, अवस्थिताः = उपस्थित हैं।

अनुवाद व भावार्थ — जिनकी हत्या करके हम जीना नहीं चाहते, ऐसे जो हमारे ही आत्मीयजन हैं, वे धृतराष्ट्र के पुत्र व उनके पक्षधर कौरव, युद्ध के लिए हमारे सम्मुख आ खड़े हुए हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में समझ में नहीं आता कि हमारे लिए युद्ध करना उचित भी है या नहीं जबकि हमें यह भी पता नहीं कि हम इस युद्ध में जीतेंगे भी या नहीं।

तात्पर्य— प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अर्जुन की तरह इस प्रकार की ऊहापोह की विषम परिस्थिति यदा कदा आ ही जाती है जब व्यक्ति किंकर्तव्यमूढ़ हो जाता है।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ 7 ॥

अन्वय सहित शब्दार्थ— कार्पण्यदोषः = पारिवारिक मोह के कारण उत्पन्न कायरतादोष से, अपहत = हतोत्साहित, स्वभावः = मनस्थिति वाला, धर्मसम्मूढचेताः = धर्म के संबन्ध में विमूढ़ चित्त वाला, त्वां = तुमसे, पृच्छामि = पूछता हूँ, यत् = जो, श्रेयः = श्रेयस्कर, स्यात् = होवे, तं = उस, निश्चितम् = उचित, तत् = वह, मे = मुझे, ब्रूहि = बताओ, अहम् = मैं, ते = आपका, शिष्यः = शिष्य हूँ, त्वां = तुम्हारी, प्रपन्नम् = शरणागत हूँ मां = मुझे, शाधि = सहारा दो।

अनुवाद व भावार्थ — वर्तमान परिस्थिति में पारिवारिक मोह के कारण उत्पन्न, कायरतादोषसे हतोत्साहित स्वभाव वाला, क्या धर्म है क्या अधर्म है — इस विषय में विमूढ़ चित्त वाला मैं, एक शिष्य, के रूप में आपकी शरणागत होकर आपसे पूछता हूँ कि मेरे लिए इस समय क्या, श्रेयस्कर है आप कृपया निश्चय करके वही मुझे बतायें तथा अपना शिष्य समझकर मुझे अपना सहारा दें।

तात्पर्य— विषम परिस्थिति में जबकि जीने मरने का प्रश्न उपस्थित हुआ हो तब व्यक्ति को जो भी उसे सबल सहारा दिखता है उससे सहायता की भिक्षा मांगता ही है। भगवान कृष्ण जैसे महान गुरु अर्जुन को सारथी के रूप में सहयोग के लिए समर्पित

थे, उस समय उनसे बड़ा मार्गदर्शक गुरु और कौन हो सकता था? इसलिए अर्जुन उन्हें ही अपना गुरु मानकर उनके शरणागत होता है और उनका शिष्य बन कर उनसे उचित मार्गदर्शन हेतु प्रार्थना करता है।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद् यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।

अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं— राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् । 8 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— न= नहीं, प्रपश्यामि= देख रहा हूँ, मम= मेरे, अपनुद्याद्= प्राप्त हो जाने से, यत्=कि, शोकम्=शोक को, उच्छोषणम्= दूर करने वाला, इन्द्रियाणाम्=इन्द्रियों का, अवाप्य= न प्राप्त करके, भूमावसपत्नमृद्धं =भूमि व अन्य राज्य संपदा से समृद्ध, राज्यं=साम्राज्य को, सुराणाम् =देवताओं का, अपि =भी, च= और, अधिपत्यम्=शासन।

अनुवाद व भावार्थ — इस युद्ध में विजयी होने के बाद भले ही हमें न सिर्फ इस समस्त पृथ्वी का धन धान्य संपन्न राज्य ही बल्कि स्वर्ग में देवताओं पर भी शासन करने की शक्ति क्यों न मिल जाय, तो भी मुझे इस युद्ध के भयंकर परिणामस्वरूप आत्मीयजनों के विछोह से उत्पन्न सभी इन्द्रियों को संतप्त करने वाला जो असह्य शोक प्राप्त होने जा रहा है, उससे उबरने का कोई उपाय दिखने में नहीं आ रहा है।

तात्पर्य — सात्विक वृत्ति के सज्जन लोग अपने स्वजनों के हित व खुशी के लिए बड़ा सा बड़ा त्याग करने के लिए तैयार होते हैं चाहे उन्हें कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़ रहा हो। इसी सज्जनता के कारण अर्जुन अपने स्वजनों के साथ युद्ध नहीं करना चाहता है ।

संजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप ।

न योत्स्य इतिगोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव । 9 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— परन्तप = महातपस्वी (धृतराष्ट्र), हृषीकेशं=भगवान कृष्ण से, एवम् =इस प्रकार, उवाच =कहकर, गुडाकेशः=निद्राजयीअर्जुन, न=नहीं, योत्स्य=युद्ध करूंगा, गोविन्दम् =गोविन्द से, इति=यह, उक्त्वा= कहकर, तूष्णीम् = चुप, बभूव= हो गया।

अनुवाद व भावार्थ —संजय धृतराष्ट्र से बोले— हे परंतप ! हृषीकेश कृष्ण से निद्राजयी अर्जुन यह (पूर्व श्लोक में कही गयी बात) कह कर मैं युद्ध नहीं करूँगा पुनः गोविन्द से यह कह कर चुप हो गया ।

तात्पर्य— विषादयुक्त व्यक्ति जो सात्विक हो और विद्वान भी, विषाद के समय अपनी जिद व अपनी समझ को ही उचित समझा करता है। ऐसे व्यक्ति को समझाना बड़ा कठिन हुआ करता है।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।

सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदंतमिदं वचः । 10 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— भारत=धृतराष्ट्रम्, सेनयोरुभयोर्मध्ये=दोनों सेनाओं के बीच, तम =उस, विषीदंतम् =विषाद से भरे अर्जुन से, हृषीकेशः = भगवान कृष्ण, प्रहसन्निव = प्रहसन करते हुए(उसकी इन बातों को सुनकर हंसते हुए), इदम्= इस प्रकार, उवाच=बोले।

अनुवाद व भावार्थ — हे भरतवंशी धृतराष्ट्र! दोनों सेनाओं के बीच में इस प्रकार शोकसंतप्त हुए उस अर्जुन से, भगवान श्रीकृष्ण, हंसते हुए, मानो उसकी इस प्रकार की बातों की हंसी उड़ाते हुए, यह वचन बोले।

तात्पर्य — अर्जुन जैसा महान योद्धा व विद्वान व्यक्ति जो बड़े ही उत्साह से भरा हुआ युद्ध के लिए पूरी तैयारी करके युद्ध के मैदान में पहुंचा था और पहले से भलीभांति जानता भी था कि उसे अपने ही आत्मीयजनों व गुरुजनों से युद्ध लड़ना है और युद्ध

करना एक क्षत्रीय का धर्म है, यह सब जानते हुए भी, अब मोहवश युद्ध न करने की बात कह रहा है जो हास्यास्पद है। इसलिए भगवान कृष्ण को अर्जुन पर स्वाभाविक हंसी आ गई।

(सांख्ययोग का विषय)

श्री भगवानुवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।

गतासूनगतासूश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ।11।

अन्वय सहित शब्दार्थ— त्वम्= तुम, अशोच्यान= जिनके लिए शोक नहीं करना है, अन्वशोच =शोक करते हो, च=और, प्रज्ञावादां = प्रज्ञावानों की तरह, भाषसे =बातें कर रहे हो, गतासून= जो मर चुके हैं, च=और अगतासून=जो अभी जीवित हैं, पण्डिताः =पण्डित लोग न=नहीं, अनुशोचन्ति = शोक करते हैं।

अनुवाद व भावार्थ — श्री भगवान बोले, हे अर्जुन! तू बात तो विद्वानों की तरह कर रहा है लेकिन जिनके लिए शोक नहीं किया जाता ऐसे मनुष्यों के लिए शोक कर रहा है। पण्डितजन, न तो उन लोगों के लिए शोक करते हैं जो इस संसार से विदा हो चुके हैं और नही उनके लिए शोक करते हैं जो जीवित हैं और आगे चलकर मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे।

तात्पर्य . विद्वान व्यक्ति वह है जो यह भली भांति समझता है कि यह समस्त संसार एक सपने की तरह अस्थायी है, यहां हर प्राणी को, चाहे वह अपना हो या पराया, पूज्य हो या सामान्य, एक न एक दिन मरना ही है चाहे उसका कारण कुछ भी क्यों न हो। ऐसा समझने वाला व्यक्ति कभी भी अपने व पराये जो भी हों उनकी मृत्यु पर शोक संताप नहीं किया करते।

अभ्यास प्रश्न 1

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर अति संक्षेप में दीजिए —

- 1— युद्ध करना किसका धर्म है ?
- 2— युद्धक्षेत्र में अर्जुन के सारथि कौन थे ?
- 3— अर्जुन किसके साथ युद्ध नहीं करना चाहता था ?
- 4— संजय युद्ध का वर्णन किसको सुना रहे थे ?
- 5— विद्वान व्यक्ति किस विषय पर शोक नहीं करते ?

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।

न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ।12।

अन्वय सहित शब्दार्थ— न=नहीं, तु=तो, अहम्= मैं, न=नहीं, त्वं = तुम, न=नहीं, एव=ही, इमे=ये, जनाधिपाः= लोकनायक, नासं=नास को प्राप्त जातु= हुए, च=और, न=नहीं एव=ही, वयम सर्वे= हम सभी, अतः=अब, परम=मृत्यु के बाद, न=नहीं, भविष्यामः = होवेंगे

अनुवाद व भावार्थ — भगवान कृष्ण कहते हैं ऐसा नहीं है कि मैं, तुम अथवा ये बड़े बड़े लोकनायक व योद्धालोग, जो युद्ध के लिए सम्मुख उपस्थित हैं, इस जन्म से पहले कभी नाश को प्राप्त नहीं हुए थे अथवा अब मृत्यु के बाद आगे हम सब फिर नहीं होवेंगे।

तात्पर्य — सभी प्राणी इस जन्म से पहले भी हुए थे और इस जीवन की मृत्यु के बाद भी फिर से जन्म लेंगे।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ।13।

अन्वय सहित शब्दार्थ— यथा =जैसे, अस्मिन् =इस, देहे=शरीर में, कौमारं=कुमार अवस्था यौवनं=युवावस्था तथा जरा =वृद्धावस्था (एक के बाद एक आती रहती है) तथा=वैसे ही, देहान्तरप्राप्तिः=मृत्यु व मृत्यु के बाद देह की प्राप्ति (होती है) तत्र=ऐसा समझने पर, धीर=धैर्यवान या बुद्धिमान व्यक्ति, मुह्यति=मोह को प्राप्त न=नहीं होता।

अनुवाद व भावार्थ — जैसे प्रत्येक देहधारी के शरीर में क्रम से बाल्यकाल, युवावस्था और वृद्धावस्था आती है ऐसे ही इस शरीर की मृत्यु व उसके बाद दूसरे शरीर की प्राप्ति का क्रम भी चलता रहता है। इसलिए इस विषय में बुद्धिमान पुरुष मोहित नहीं होता और अपने कर्तव्य कर्म से विरत नहीं होता, अर्थात् अज्ञान को प्राप्त नहीं होता।

तात्पर्य — बुद्धिमान व विवेकी पुरुष किसी के जन्म व मृत्यु की घटना को देख कर उनके मोह में सुखी दुखी नहीं हुआ करता क्योंकि प्राणियों का जन्म व उनकी मृत्यु ईश्वर की एक निरंतर चलने वाली लीला है जिसमें सिवाय ईश्वर के किसी और का कोई बस नहीं चलता।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।

आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ।।14।

अन्वय सहित शब्दार्थ — कौन्तेय =कुंतीपुत्र अर्जुन, मात्रास्पर्शाः= इन्द्रियों का विषयों से संयोग, तु=तो, शीतोष्णसुखदुःखदाः=जाड़ा, गर्मी, सुखदुःख देने वाले होते हैं, नित्या = सदैव, आगमापायिनः=आने जाने वाले हैं, भारत= हे अर्जुन, तान्= उनको तितिक्षस्व= तुम सहन करो।

अनुवाद व भावार्थ — हे कुंतीपुत्र ! इन्द्रियों का विषयों से सदैव होने वाला संयोग तो सर्दी-गर्मी और सुख-दुःख प्रदान करने वाला होता ही है। (लेकिन यह सब विनाशशील होने के कारण अस्थाई हैं)। इसलिए हे भारत! सभी प्रकार की अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों को तू सहन कर।

तात्पर्य — प्रत्येक मनुष्य के जीवन में अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियां किसी न किसी रूप में समय समय पर आती जाती रहती हैं, उन्हें आने जाने से रोक सकने में कोई भी समर्थ नहीं होता। इसलिए उनसे जूझते हुए, उनके परिणामों को सहन करना ही मनुष्य का एक मात्र कर्तव्य है।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।

समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ।।15।

अन्वय सहित शब्दार्थ — पुरुषर्षभ= पुरुषश्रेष्ठ, हि =वस्तुतः, यं=जिस, धीरं=धैर्यशाली को, पुरुषं=पुरुष को, एते=यह (अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियां) न=नहीं, व्यथयन्ति=व्यथित करते, सः=वह, समदुःखसुखं= दुःख व सुख को समान समझकर उसे, अमृतत्वाय=मोक्षसुख के लिए, कल्पते=समझता है।

अनुवाद सहित भावार्थ — हे पुरुषश्रेष्ठ! जिस धैर्यवान पुरुष को ये इन्द्रियों और विषयों के संयोग व्याकुल नहीं करते, वह दुःख-सुख को समान समझता हुआ सदैव मोक्षसुख को प्राप्त करता है।

तात्पर्य — अपने लिए निर्धारित कर्तव्यों को पूरा करने में आने वाली कठिनाईयों व सुविधाओं तथा उनसे होने वाले सुख दुःख को ईश्वर प्रदत्त उपहार समझने वाले व्यक्ति को हर पल हर क्षण मोक्षसुख की अनुभूति होती है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।

उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ।।16।।

अन्वय सहित शब्दार्थ — न=नहीं, असतो =नाशवान (जड़ शरीर), भावो=स्थाई, विद्यते = रहता है, न=नहीं, सतः=सत्य, (आत्मा तत्त्व), अभावो=नाश, विद्यते=विद्यमान रहता है, तत्त्वदर्शिभिः=तत्त्वदर्शियों द्वारा, अनयोः=इन दोनों (जड़ शरीर व चैतन्य आत्मा) को, अन्ततः =अन्तर्दृष्टि से, ऐसा ही दृष्टः= देखा जाता है।

अनुवाद व भावार्थ – विनाशशील शरीर सदैव नहीं रहता और उसमें रहने वाले अविनाशी आत्मतत्त्व का कभी नाश नहीं होता। तत्त्वज्ञानी पुरुषों द्वारा विनाशशील शरीर व अविनाशी आत्मतत्त्व दोनों को अपनी अन्तर्दृष्टि से ऐसे ही देखा जाता है।

तात्पर्य— गीता के इस सांख्य योग नामक अध्याय में मुख्य रूप से आत्मा तथा आत्मज्ञानी स्थितप्रज्ञ (समाधिस्थ) व्यक्ति की विशेषतायें बताई गई हैं। सांख्ययोगी जिसे ज्ञानयोगी भी कहा जाता है, आत्मा व शरीर को किस दृष्टि से देखता है इस श्लोक में बताया गया है।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।

विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ।17

अन्वय सहित शब्दार्थ – अविनाशि= स्थाई ईश्वर तत्त्व, तु=तो, तत्= उसे, विद्धि=जान, येन=जिसके द्वारा, इदम्=यह, सर्वम् =सब कुछ, ततम् = विस्तार (सृष्टि) हुआ है। अस्या =इस, अव्ययस्य =अविनाशी का विनाशम्=नाश, न=नहीं, कश्चित्=कुछ भी, कर्तुम्=करने के, अर्हति=योग्य है।

अनुवाद व भावार्थ – जिसमें यह सम्पूर्ण विनाशशील भौतिक जगत स्थित है उस चैतन्य अव्यय ईश्वर तत्त्व को तू अविनाशी जान। उस अविनाशी तत्त्व का विनाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है। ऐसे ही इस पूरे विनाशशील शरीर में जो अविनाशी आत्मतत्त्व समाया हुआ है उसका नाश करने की शक्ति किसी में भी नहीं है।

तात्पर्य— इस शरीर में स्थित जो आत्म तत्त्व है, उसका नाश करने में कोई समर्थ नहीं है।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।

अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ।18 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— अनाशिनः=नाशरहित, अप्रमेयस्य=अद्वितीय, नित्यस्य= नित्य (आत्मा) के, शरीरिणः=शरीर, अन्तवन्तव=नाशवान, उक्ताः=कहे गये हैं। इमे=ये, युद्ध के लिए आये, देहा=शरीरधारी, तु=तो, अन्तवन्तम्=नाशवान हैं, तस्मात्=इसलिए, भारत=अर्जुन, युध्यस्व,=युद्ध करो।

अनुवाद व भावार्थ – नित्यस्वरूप, अद्वितीय, जीवात्मा द्वारा धारण किए गये सभी शरीर नाशवान कहे जाते हैं। हे भारत ! तेरे युद्ध न करने पर भी यह सभी देहधारी (कौरवपक्ष के योद्धा) एक न एक दिन मृत्यु को अवश्य प्राप्त होंगे ही। इसलिए युद्ध कर।

तात्पर्य— यहां पर आत्मा की नित्यता व शरीर की अनित्यता पर विशेष बल देते हुए कर्तव्य कर्म के प्रति तत्पर होने की प्रेरणा दी गई है।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।

उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ।19 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— य=जो, एनम्=इस आत्मा को, हन्तारं=हत्या करने वाला, वेत्ति=जानता है, च=और यः=जो, एनम्=इसे, हतम्=मरा हुआ, मन्यते=मानता है, उभौ=दोनों, तौ=तो, न=नहीं, विजानीतः=जानते हैं, न=नहीं, अयं=यह, हन्ति=मारता है, न=नहीं हन्यते=मारा जा सकता है ॥

अनुवाद व भावार्थ— जो इस आत्मा को मारने वाला समझता है तथा जो इसको मरा हुआ मानता है, वे दोनों ही सही नहीं जानते हैं क्योंकि वास्तविकता यह है कि न तो आत्मा को कोई मार सकता है और न आत्मा मारी ही जा सकती है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो-न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।20 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— अयम्=यह (आत्मा), न=नहीं, जायते=जन्म लेता है, न=नहीं, म्रियते=मरता है, वा=या, कदाचित्— कभी भी, न=नहीं, भविता= हुआ, न=नहीं,

भूत्वो=जन्म, लेकर, भूयः=हुआ है। अयम्=यह (आत्मा), अजो= अजन्मा है, नित्यः= नित्य है, शाश्वतः= शाश्वत है, पुराणो=सबसे पुराना है, शरीरे=शरीर के, हन्यमाने=मारे जाने पर, न=नहीं, हन्यते=मारा जाता है।

अनुवाद व भावार्थ— यह आत्मा न तो कभी जन्मता है और न मरता ही है तथा यह न जन्म लेकर फिर उत्पन्न होने वाला ही है क्योंकि यह आत्मा अजन्मा, नित्य, सनातन और सबसे पुराना है, शरीर के मारे जाने पर भी यह आत्मा मारा नहीं जाता।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।

कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् । 21 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— पार्थ=अर्जुन, य=जो, एनम्=इस आत्मा को, अविनाशिनम्=अविनाशी, अजन्मा=अजन्मा, अव्ययम्=अव्यय, नित्य=नित्य, वेद=जानता है, स पुरुष = वह पुरुष, कथं=कैसे, कं =किसको, घातयति=मरवाता है, कम्=किसको, हन्ति= मारता है।

अनुवाद व भावार्थ— हे पृथापुत्र अर्जुन! जो पुरुष इस आत्मा को अविनाशी, नित्य, अजन्मा और अव्यय जानता है, वह पुरुष कैसे किसको मरवाता है और कैसे किसको मारता है?

तात्पर्य— जब व्यक्ति आत्मतत्त्व की यह महिमा जान लेता है कि वह अविनाशी, नित्य, अजन्मा और अव्यय है तब यह भी समझ लेता है कि वह या कोई और न किसी को मार सकता है न मरवा सकता है। केवल शरीर का नाश हो सकता है आत्मा का नहीं और विनाशशील होने के कारण, शरीर का नाश तो, एक न एक दिन अवश्य होना ही है उसे भी कोई रोक नहीं सकता। इसलिए, जब तक विनाशशील शरीर अस्तित्व में है तब तक उससे अपने कर्तव्य कर्मों का यथासमय किया जाना ही धर्म है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा- न्यन्यानि संयाति देही । 22 ।।

अन्वय सहित शब्दार्थ— यथा =जैसे, नरः= मनुष्य, जीर्णानि=फटे पुराने, वासांसि=वस्त्रों को, विहाय=त्याग कर, अपराणि=अन्य, नवानि = नये वस्त्रों को, गृह्णाति =गृहण करता है, तथा =वैसे ही, देही =देहधारी जीव, जीर्णानि =पुराने, शरीराणि=शरीरों को, विहाय=त्याग कर, अन्यानि=अन्य, नवानि= नये शरीरों को, संयाति=ग्रहण कर लेता है।

अनुवाद व भावार्थ— जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नए वस्त्रों को धारण करता है, वैसे ही शरीरधारी जीवात्मा अपने पुराने अथवा जीर्ण शरीरों को त्यागकर दूसरे नए शरीरों को ग्रहण करता रहता है।

तात्पर्य—देही का देह धारण करना और उसे त्यागना एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः । 23 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— एनम्=आत्मा को, न=नहीं, शस्त्राणि=शस्त्र, छिन्दन्ति=छेदन कर सकते हैं, न = नहीं, एनम् = आत्मा को, पावकः=अग्नि जला सकती है, न =नहीं, एनम्=आत्मा को, आपः=जल, क्लेदयन्ति = गीला कर सकता है, च = और, न = नहीं, मारुतः = वायु, शोषयति =सुखा सकता है ।।

अनुवाद व भावार्थ— इस आत्मा का शस्त्र छेदन नहीं कर सकते, इसको आग जला नहीं सकती, इसको जल गीला नहीं कर सकता और न वायु ही इसे सुखा सकती है क्योंकि यह आत्मा, इन सबके प्रभाव से अछूता है।

तात्पर्य — आत्मा एक ऐसा विलक्षण तत्व है जिसे तीक्ष्ण शस्त्र, प्रचण्ड अग्नि, तरल

जल व वेगवान वायु अपने-अपने प्रचण्ड प्रभावी बल से प्रभावित नहीं कर सकते।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः । 24 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— अयम्=यह आत्मा, अच्छेद्यो = छेदा नहीं जा सकता, अयम्=यह आत्मा, अदाह्य = जलाया नहीं जा सकता, अक्लेद्यो=गीला नहीं किया जा सकता, च =और, एव =ही, अशोष्य=सुखायी नहीं जा सकती, अयम्= यह आत्मा, नित्यः=हमेशा विद्यमान है, सर्वगतः=सर्वत्रव्याप्त, स्थाणुः= स्थिर है, अचल=चलायमान नहीं है, सनातनः=अनादि अनंत है

अनुवाद व भावार्थ— इस आत्मा का छेदन नहीं किया जा सकता, इसे जलाया नहीं जा सकता, इसे गीला नहीं किया जा सकता, और इसे सुखाया नहीं जा सकता क्योंकि, यह आत्मा अविनाशी है, सर्वत्रव्याप्त है, स्थिर है, अचल है साथ ही अनादि और अनंत है।

तात्पर्य — गीता के सांख्य योग नामक इस अध्याय के 24वें व 25 वें दो मंत्रों में आत्मा की बारह विशेषतायें बतायी गई हैं। पाठक कृपया अगले मन्त्र के तात्पर्य को पढ़ें।

अभ्यास प्रश्न 2

निम्नलिखित में सत्य असत्य बताइए —

- 1— देही का देह धारण करना और उसे त्यागना एक निरंतर चलने वाली प्रकिया है।
- 2— आत्मा को शस्त्र से काटा जा सकता है ।
- 3— आत्मतत्व अविनाशी है ।
- 4— धैर्यवान पुरुष को इन्द्रियों और विषयों के संयोग व्याकुल नहीं करते ।
- 5— आत्मा को जल से गीला किया जा सकता है ।

2.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि युद्ध क्षेत्र में अपने पूजनीय और बन्धु-बान्धवों को देख कर अर्जुन युद्ध करने से मना कर देते हैं वह कहते हैं कि अपने गुरुजनों को मार कर उनके रक्त से सने हुए अर्थ और कामरूपी भोगों को ही तो भोगूंगा मोहवश नाना प्रकार के नीतियुक्त तर्क देकर अपने सारथी भगवान श्रीकृष्ण से युद्ध न करने की बात कहता है और हताश होकर रथ के पिछले भाग में बैठ जाता है। अपने कर्तव्य से विमुख अर्जुन को तब योगेश्वर श्री कृष्ण ने गीता के माध्यम से जो तत्व ज्ञान व कर्तव्यबोध कराया था उसका शुभारम्भ गीता के द्वितीय अध्याय से होता है। यह अध्याय सांख्ययोग के नाम से प्रसिद्ध है।

2.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
आकुल	व्याकुल
ईक्षणम्	आंखों वाले
सनातनः	अनादि, अनंत
मारुतः	वायु
हन्तारं	हत्या करने वाला
सुराणाम्	देवताओं का
देही	देहधारी जीव
शस्त्राणि	शस्त्र

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1- 1- क्षत्रिय का 2- भगवान श्रीकृष्ण 3- सम्बन्धियों के साथ 4- धृतराष्ट्र को 5- मृत्यु पर

अभ्यास प्रश्न 2- 1- सत्य 2- असत्य 3- सत्य 4- सत्य 5- असत्य

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गीतातत्व चिन्तन – स्वामी आत्मानन्द प्रकाशन-अद्वैत आश्रम, 5 डिही एण्टाली रोड-कलकत्ता
2. भगवद्गीता – चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य
3. श्री मद्भगवद् गीता – योगीराज श्री श्यामाचरणलोहिड़ी महाशय एवं भूपेन्द्र नाथ सान्याल।
4. श्री मद्भगवद् गीता – साधक संजीवनी – स्वामी राम सुख दास।
5. 'गीता – स्वामी अङ्गड़ानन्द।
6. श्री मद्भगवद् गीता ' यथारूप – श्री श्रीमद् ए०सी० भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुवाद।
7. श्री मद्भगवद् गीता त्रयी – भगवान श्री कृष्णचन्द्र वासुदेव।

2.8 उपयोगी पुस्तकें

1. श्रीमद् भगवद्गीता – तत्त्वविवेचनी (हिन्दी टीका) जयदयाल गोयन्दका, गीताप्रेस, गोरखपुर।
2. गीता तत्त्वचिन्तन – स्वामी आत्मानन्द प्रकाशन – अद्वैतआश्रम- कल।
3. श्रीमद्भगवद्गीता – योगीराज श्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय एवं भूपेन्द्रनाथ सान्याल।
4. गीता रहस्य – लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक नारायण प्रेस, पूना।
5. भगवद्गीता- डॉ. सर्वपल्लि राधाकृष्णन्- हिन्द पाकेट बुकस
6. गीता दर्पण- स्वामी रामसुखदास- गीता प्रेस।

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1- कर्तव्यविमुख अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण ने क्या उपदेश दिया ?

इकाई 3. द्वितीय अध्याय श्लोक संख्या 25 से 49 तक

इकाई की रूपरेखा

3,1 प्रस्तावना

3,2 उद्देश्य

3,3 श्लोक संख्या 25 से 49 तक मूल पाठ, अन्वय, अर्थ एवं व्याख्या

3,4 सारांश

3,5 शब्दावली

3,6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3,7 उपयोगी पुस्तकें

3,8 सन्दर्भ ग्रन्थ

3,9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आपने जाना कि मोहग्रस्त अर्जुन के द्वारा युद्ध करने से मना कर दिये जाने पर तब योगेश्वर श्री कृष्ण ने गीता के माध्यम से जो तत्व ज्ञान व कर्तव्यबोध कराया था उसका शुभारम्भ गीता के द्वितीय अध्याय से होता है।

प्रस्तुत इकाई में आप द्वितीय अध्याय के 25 से 49 तक के श्लोकों का अध्ययन करेंगे जिसमें भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि आत्मा अविनाशी है इसलिए उसके किसी शरीर में कुछ समय के लिए आने व चले जाने पर हर्ष या शोक करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता पायेंगे कि आत्मा क्या है युद्ध करना अर्जुन का धर्म है, अस्तु युद्ध करने से वह किसी प्रकार के पाप का भागी नहीं होगा।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- आत्मा की बारह विशेषताओं को बता सकेंगे,
- जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है इस शाश्वत सत्य को समझा पायेंगे,
- श्लोकों की व्याख्या कर सकेंगे,
- यह बता सकेंगे कि धर्म का पालन न करने से इस लोक में अपयश प्राप्त होता है,

3.3 श्लोक संख्या 25 से 49 तक मूल पाठ, अन्वय, अर्थ एवं व्याख्या

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।

तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि । 25 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— अयम्=यह आत्मा, अव्यक्त=वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता, अचिन्त्य=बुद्धि से चिंतन नहीं किया जा सकता, अयम्=यह आत्मा अविकार्यः=विकार रहित, उच्यते=कहा जाता है। तस्मात्= इसलिए, एवं=इस प्रकार विदित्वा=जानकर एनम् =इसको, अनुशोचितुम् =शोक करने के योग्य, न=नहीं, अर्हसि=हो।

अनुवाद व भावार्थ— इस आत्मा, को न तो वाणी से व्यक्त किया जा सकता है, न यह आत्मा बुद्धि के चिंतन में आ सकता है, यह पूर्ण रूप से विकाररहित कहा जाता है। इसलिए हे अर्जुन! आत्मा को इस प्रकार अति विशिष्ट जानते हुए तुझे शोकाकुल होने की आवश्यकता नहीं है।

तात्पर्य— गीता के सांख्य योग नामक इस अध्याय के 24वें व 25वें दो मंत्रों में आत्मा की बारह विशेषतायें बतायी गई हैं। वे बारह विशेषतायें हैं— 1. अच्छेद्य, 2. अदाह्य, 3. अक्लेद्य, 4. अशोष्य, 5. नित्य, 6. सर्वगत, 7. स्थाणु, 8. अचल, 9. सनातन, 10. अव्यक्त, 11. अचिन्त्य और 12. अविकार्य। प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपनी आत्मा की इन बारहों विशेषताओं को तत्व से समझने के उपरांत तदनुसार संसार में जीते हुए सदव्यवहार करना ही पूरे सांख्य योग का सार प्रतीत होता है। अपनी आत्मा की इन बारह विशिष्टताओं को तत्व से समझने के बाद व्यक्ति का शोकाकुल, शंकाकुल अथवा चिंताकुल होने की संभावना पूर्णरूप से क्षीण हो जाती है।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।

तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ।26 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ—महाबाहो=बड़ी भुजाओं वाले अर्जुन, च=और, अथ=अब, एनम्=इस आत्मा को, नित्यजातं = हमेशा जन्म लेने वाला, वा=या नित्यं मृतम्=हमेशा मरने वाला, मन्यसे=मानते हो, तथापि=तो भी, त्वं=तुम, एवम् = इस प्रकार, शोचितुम् =शोक करने के, न=नहीं, अर्हसि = योग्य हो।

अनुवाद व भावार्थ— हे महाबाहो ! यदि तुम इस आत्मा को सदा जन्मने वाला तथा सदा मरने वाला भी मानते हो तो भी तुम्हें इस प्रकार विषाद नहीं करना चाहिए।

तात्पर्य— जब व्यक्ति आत्मा को जन्म लेने वाला अथवा मरने वाला नहीं मानता तब किसी के शरीरांत होने पर उसे विषाद नहीं होता।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।

तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।27 । ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— जातस्य = जन्म लेने वाले की, हि=निश्चय ही, ध्रुवो=अवश्य, मृत्युः=मृत्यु होती है, मृतस्य=जिसकी मृत्यु हो चुकी, जन्म=जन्म होना, च =और, तस्मात् =इसलिए, अपरिहार्य= निश्चित होने से, अर्थे=कारण, न=नहीं, त्वम्=तुम शोचितुम् =शोक करने को, अर्हसि=योग्य हो।

अनुवाद व भावार्थ— जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है और जिसकी मृत्यु हो गई उसका जन्म भी निश्चित है। इसलिए जब किसी के जन्मने व मरने को कोई रोक नहीं सकता तो तुझे इस प्रकार युद्ध में किसी के मारे जाने पर शोक करने की आवश्यकता नहीं है।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।

अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिवेदना ।28 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— भारत =अर्जुन, आदीनि=जन्म से पहले, भूतानि=प्राणी, अव्यक्त= अदृश्य, व्यक्त = दृष्ट, मध्यानि= मध्य में, निधनानि=मृत्यु के बाद, एव=ही, अव्यक्त=अदृष्ट, तत्र=तब का=क्या परिवेदना= परेशानी या दुख है।

अनुवाद व भावार्थ— हे अर्जुन! सभी प्राणी जन्म से पहले अदृष्ट होते हैं, और मरने के बाद भी वह अदृष्ट हो जाते हैं, केवल कुछ समय के लिए बीच में ही दृष्ट रहते हैं, फिर ऐसी स्थिति में किसी के मरने या मारे जाने पर दुःखी होने की क्या बात है?

तात्पर्य— जब यह निश्चित है कि हर जीव जन्म से पहले दिखाई नहीं पड़ता और मृत्यु के बाद भी वह दिखायी नहीं देता केवल बीच में ही कुछ अनिश्चित समय के लिए दिखाई देता है तो उसके जन्मने व मरने पर दुःखी होने की क्या आवश्यकता है क्योंकि उसका मृत्यु को प्राप्त होना तो निश्चित ही है।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्बदति तथैव चान्यः ।

आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रुणोतिश्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् । 29 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ—कश्चित् =कोई, एनम् = इस आत्मा को, आश्चर्यवत् =आश्चर्य की तरह, पश्यति = देखता है, च = और, अन्य,= अन्यत कोई, एनम्=इस आत्मा के बारे में, आश्चर्यवत् = आश्चर्य की तरह, वदति= बताता है, च =और, अन्य,=अन्यत कोई, एनम्=इस आत्मा को, आश्चर्यवत्=आश्चर्य की तरह, श्रुणोति=सुनता है, एनम्=इस आत्मा को, श्रुत्वापि =सुनकर, अपि=भी, कश्चित् कोई, न = नहीं, वेद = जानता है।

अनुवाद व भावार्थ— यह आत्मतत्व ऐसा विलक्षण है कि इसे कोई तो आश्चर्य की भाँति देखता है, दूसरा कोई व्यक्ति इस आत्मतत्व का आश्चर्य की भाँति वर्णन करता

है, कोई अन्य व्यक्ति आश्चर्य की भाँति इसके बारे में सुनता है और सुनने के बाद भी कोई इसको ठीक से जान नहीं पाता।

तात्पर्य— आत्म तत्त्व को तत्त्व से समझना साधारण काम नहीं है।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।

तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ।30।

अन्वय सहित शब्दार्थ — भारत=अर्जुन, अयम्=यह, देही=शरीरधारी (आत्मा), सर्वस्य=सभी के, देहे=शरीरोंमें, नित्यम्=हमेशा रहने वाला, अवध्ये=नहीं मारा जा सकने वाला है, सर्वाणि भूतानि==सभी जीवों की यही स्थिति है, तस्मात्= इसलिए, त्वं=तुम, शोचितुम्=शोक करने के, अर्हसि=योग्य, न= नहीं हो।

अनुवाद व भावार्थ— हे भारत ! सभी प्राणियों के शरीरों में रहने वाली यह आत्मा नित्य (हमेशा जीवित रहने वाली) व अवध्या (अविनाशी) होती है क्योंकि सभी प्राणियों का शरीर विनाशशील होता है और उसमें वास करने वाली सभी की आत्मा अविनाशी होती है, इस कारण किसी की मृत्यु होने पर तू शोक करने योग्य नहीं है।

तात्पर्य— आत्मा अविनाशी है इसलिए उसके किसी शरीर में कुछ समय के लिए आने व चले जाने पर हर्ष या शोक करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि ऐसा होना निश्चित है, उसे रोक सकने की किसी को भी सामर्थ्य नहीं है।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।

धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ।।31।।

अन्वय सहित शब्दार्थ — स्वधर्मम् =अपने धर्म को, अपि=भी, आवेक्ष्य= देख व समझकर, विकम्पितुम्=कम्पायमान (चिंतित) होने, न=नहीं, अर्हसि=योग्य हो । च=और, क्षत्रियस्य =क्षत्रिय के लिए, धर्म्यात् =धर्मपूर्ण, युद्धात्=युद्धसे, श्रेयः=श्रेष्ठ, अन्यत् = और कुछ, न =नहीं, विद्यते=होता है।

अनुवाद व भावार्थ — हे अर्जुन ! अपने क्षत्रीय धर्म को ध्यान में रखते हुए भी तुझे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि क्षत्रिय के लिए धर्मयुक्त युद्ध करने से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है।

तात्पर्य— अन्याय के विरुद्ध युद्ध करना क्षत्रिय का धर्म है। अन्यायी चाहे अपने परिवार व नाते रिश्तेदारी का ही क्यों न हो, न्याय प्राप्त करने के लिए, उससे भी युद्ध करना क्षत्रिय के लिए परम कल्याणकारी धर्म है चाहे उसमें अपनी अथवा उस परिवारीजन की मृत्यु ही क्यों न हो।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।

सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् । 32 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— च=और, पार्थ! ईदृशम्= इस प्रकार का, यदृच्छया=बिना इच्छा किए स्वतः, उपपन्नम्=उपलब्ध हुआ, युद्धम्=युद्ध, स्वर्गद्वारम्=स्वर्ग के द्वार को, अपावृतम् =खोलने वाला है, सुखिनः= सुखी, सौभाग्यशाली, क्षत्रियाः =क्षत्रिय लोग, लभन्ते =प्राप्त करते हैं।

अनुवाद व भावार्थ— हे पार्थ! बिना अपनी इच्छा के स्वतः उपलब्ध हुए और स्वर्ग का द्वार खोलने वाले, इस प्रकार के युद्ध के अवसर सौभाग्यशाली, क्षत्रिय लोग ही पाते हैं।

तात्पर्य — न्याय पाने के लिए स्वतःप्राप्त युद्ध के अवसर सौभाग्यशाली क्षत्रियों को ही प्राप्त होते हैं। ऐसा कह कर भगवान कृष्ण, जीवन के यथार्थ का बोध कराते हुए, अर्जुन को उसके धर्मकार्य हेतु प्रोत्साहित करते हैं।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि ।

ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि । 33 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— अथ = अब, चेत् =यदि, इमम् = इस, धर्म्यम् = धर्मयुक्त ,

सङ्ग्रामं = युद्ध को, न = नहीं करिष्यसि = करोगे, ततः = तब, स्वधर्म = अपने धर्म को, च = तथा, कीर्तिम् = कीर्ति को, हित्वा = नाश कर, पापम् = पाप को, अवाप्स्यसि = प्राप्त करोगे।

अनुवाद व भावार्थ – हे अर्जुन ! अब यदि इस धर्मयुक्त युद्ध को तुम नहीं करोगे तो तुम एक ओर तो अपने धर्म से च्युत होकर अपयश के भागी बनोगे और दूसरी ओर पाप के भी भागी बनोगे।

तात्पर्य – अपने धर्म के अनुसार आचरण न करने वाले व्यक्ति को इस लोक में अपयश मिलने से घोर मानसिक कष्ट भोगना पड़ता है तथा परलोक में पाप का भागी होने से नाना प्रकार के नरक के कष्टों को भोगना पड़ता है।

अकीर्तिं चापि भूतानिकथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।

सम्भावितस्य चाकीर्तिं—मरणादतिरिच्यते ।34 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— च=और, भूतानि=लोग, ते=तेरी, अकीर्तिं=अपयश को, अपि=भी अव्ययाम्=हमेशा कथयिष्यन्ति=कहते रहेंगे, सम्भावितस्य=सम्मानित व्यक्ति के लिए, अकीर्तिं=अपयश – मरणात् =मृत्यु से भी, अतिः=अधिक, इच्यते=मानी या कही जाती है।

अनुवाद व भावार्थ— अर्जुन! युद्ध से विरत होने से इस प्रकार जो तेरी अपकीर्ति होगी, लोग उसकी चर्चा हमेशा करते रहेंगे और सम्मानित व्यक्ति के लिए उसका अपयश मरण से भी बढ़कर दुखदायी कहा जाता है।

तात्पर्य – भगवान कृष्ण अर्जुन को उसे स्वतःप्राप्त धर्मयुद्ध को न करने से इस लोक और परलोक दोनों में होने वाले कष्टों से अवगत कराते हुए युद्ध के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।

येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् । 35 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— महारथाः =महारथी लोग, येषां=जिनके लिए, त्वं=तुम, बहुमतो=बहुत सम्मानित भूत्वा=होकर, त्वां=तुमको, भयात्=भय से, रणात्=युद्ध से, उपरतम्=विरत, मंस्यन्ते=मानेंगे, च=और, लाघवम्=न्यूनता को, यास्यसि=प्राप्त होओगे।

अनुवाद व भावार्थ— हे अर्जुन! अपनी शूरवीरता के कारण जिन महारथियों की दृष्टि में तुम बहुत सम्मानित रहे हों अब युद्ध से पलायन करने पर वह महारथी लोग तुम्हें भय के कारण युद्ध से भागा हुआ क्षुद्र मानेंगे और इस प्रकार उनकी दृष्टि में तुम्हारे लिए कोई सम्मान नहीं रह जायेगा।

तात्पर्य— किसी भी महारथी योद्धा के लिए प्राणप्रण से अपने सम्मान की रक्षा करना उसका परम धर्म है।

अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः ।

निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ।36 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— तव=तुम्हारे, अहिताः = शत्रु, तव = तेरी, सामर्थ्यम् =तेरी शक्ति की, निन्दाः = निन्दाकरते हुए, बहून् = बहुत सारे, अवाच्यवादां=न कहने योग्य बातें, वदिष्यन्ति = कहेंगे, च = और, ततः = तब, किम् = क्या, दुःखतरं =उससे भी ज्यादा दुखनु = नहीं होगा।

अनुवाद व भावार्थ – हे अर्जुन! तेरा अहित चाहने वाले शत्रुलोग तेरी सामर्थ्य की निन्दा करते हुए तेरे संबंध में बहुत से अपशब्द बोलेंगे। तब तेरे लिए क्या यह और भी अधिक दुःख की बात नहीं होगी।

तात्पर्य— भगवान कृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि युद्ध के मैदान में पूरी तैयारी के साथ पहुंचने के उपरान्त मोहवश युद्ध से विरत होना उसके लिए बहुत बड़े संताप का कारण बनेगा।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।

तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ।37।

अन्वय सहित शब्दार्थ— कौन्तेय= कुंतीपुत्र अर्जुन! हतो=मारे जाओ, स्वर्गम् =स्वर्ग को, प्राप्स्यसि=प्राप्त करोगे, वा=या, जित्वा =युद्ध जीतने पर, महीम्=राज्य का, भोक्ष्यसे=सुख भोगोगे, तस्मात् = इसलिए, उत्तिष्ठ =उठो, युद्धाय =युद्ध के लिए, कृतनिश्चयः= दृढ़निश्चयी होओ।

अनुवाद व भावार्थ— हे कुंतीपुत्र ! यदि तू युद्ध में मारा गया तो तुझे स्वर्ग के सुख भोगने को मिलेंगे और यदि युद्ध जीत गया तो यहां पृथ्वी! में उपलब्ध साम्राज्य का सुख भोगेगा। इसलिए तू उठ और युद्ध के लिए दृढ़निश्चयी बन।

तात्पर्य— भगवान कृष्ण, जिन्हें अर्जुन अपना गुरु मान चुके हैं, के आदेशानुसार अर्जुन के लिए युद्ध करना ही सर्वोच्च कर्तव्य है, चाहे उसे मृत्यु मिले और चाहे हार या जीत।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ।38।

अन्वय सहित शब्दार्थ— सुखदुःखे=सुख दुःख में, लाभालाभौ = लाभ और हानि को, जयाजयौ = विजय और हार को, समे=समान, कृत्वा = करके, ततः=ऐसी स्थिति में, युद्धाय=युद्ध के लिए, युज्यस्व= तत्पर हो जाओ, एवं = इस प्रकार, न=नहीं, पापम् =पापको, न=नहीं, अवाप्स्यसि=प्राप्त होओगे।

अनुवाद व भावार्थ— अर्जुन! तू सुख-दुःख, लाभ-हानि और जय-पराजय को समान समझते हुए तेरा जो धर्मयुक्त निर्धारित कर्म है और इस समय युद्ध करना ही अपना परम कर्तव्य समझते हुए युद्धकर्म के लिए तत्पर हो जा।

तात्पर्य — युद्ध करना अर्जुन का स्वधर्मकर्म है, अस्तु युद्ध करने से वह किसी प्रकार के पाप का भागी नहीं होगा।

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे त्वाम् शृणु ।

बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि । 39।

अन्वय सहित शब्दार्थ— पार्थ=पृथापुत्र, एषा=यह, साङ्ख्ये बुद्धिः=ज्ञानयोग की बात, ते=तेरे लिए, अभिहिता=कही गयी, बुद्ध्या= बुद्धि से, युक्तः=साथ होकर, योगे=कर्मयोग, शृणु=सुनो, यया=जिसके द्वारा, कर्मबन्धं=कर्म के बन्धन को, प्रहास्यसि=समाप्त कर सकेगा।

अनुवाद व भावार्थ— हे पृथापुत्र ! यह आत्मा के विषय में जो बोध तुझे मैंने दिया यह ज्ञानयोग है। अब तू मुझसे कर्मयोग के विषय में सुन जिससे बोधयुक्त हुआ तू कर्मों के बंधन से अर्थात् पाप-पुण्य के भय से मुक्त हो जायेगा।

तात्पर्य — जब तक ज्ञानयोग से अपनी अविनाशी आत्मा के बोध से युक्त होकर संसार में अनासक्त कर्मयोग से जीवन नहीं जिया जायेगा तबतक मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ।40।

अन्वय सहित शब्दार्थ— इह=इस (अविनाशी आत्मा के बोध के साथ अनासक्त कर्म करने के) अभिक्रमः=प्रयत्न में, नाशः= हानि, न=नहीं, अस्ति = है, अस्य=इस,

धर्मस्य=धर्म का, स्वल्पम्=अंशमात्र पालन, अपि=भी, महतो=महान, भयात् =भय से, त्रायते=रक्षा करता है। प्रत्यवायो=उल्टा फल, न=नहीं, विद्यते=होता है।

अनुवाद व भावार्थ – इस जीवन में अपनी आत्मा के अविनाशी स्वरूप को ध्यान में रखते हुए विनाशशील शरीर द्वारा अनासक्त भाव से किये गये स्वधर्मरूप कर्म का अंशमात्र पालन भी महान से महान भय से रक्षा करता है। साथ ही ऐसे स्वधर्मरूप निष्काम कर्म का कोई कष्ट कारी उलटा फल भी नहीं भोगना पड़ता। जबकि अहं भावना से किये गये प्रत्येक अच्छे बुरे कर्म का फल भोगना ही पड़ता है।

तात्पर्य – अनासक्त भाव से किया गया थोड़ा सा भी स्व धर्म कर्म मोक्षदायक होता है।
व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।

बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् । 41 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— कुरुनन्दन = अर्जुन, इह=इस लोक में, व्यवसायात्मिका=निश्चयात्मिका, बुद्धिः= बुद्धि, एकः=एक ही, अव्यवसायिनाम्=अनिश्चित लोगों की बुद्धि, ही=निश्चित ही, बहुशाखा=अनेक धाराओं वाली, च=और, अनन्ताः=अन्तहीन।

अनुवाद व भावार्थ— हे कुरुनन्दन ! अनुकूल व प्रतिकूल दोनों प्रकार की परिस्थितियों में समता का भाव रखने वाले आत्मज्ञानी कर्मयोगी की बुद्धि विवेकपूर्ण व अपने लक्ष्य के प्रति निश्चयात्मिका होती है, जबकि अनेक धाराओं में बंटी अस्थिरबुद्धि वाले विवेकहीन मनुष्यों के जीवन का कोई निश्चित लक्ष्य न होने से उनकी बुद्धि कभी समाप्त न होने वाली कामनाओं में उलझी रहती है।

तात्पर्य— स्थिरबुद्धिवाला समत्व योगी ही सर्वोच्च सुख के लक्ष्य – मोक्ष को पाने में सफल हो सकता है।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।

वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः । 42 ।

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।

क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति । 43 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— पार्थ = हे अर्जुन! कामात्मानः = सांसारिक कामनाओं से युक्त , वेदवादाः=वेदों द्वारा बताई गई सकाम कर्मकाण्डीय पूजा में ही लगे रहने वाले, वादिनः=वाचक या वेदों के कर्मकाण्डक भाग की महत्ता पर बोलनेवाले, अविपश्चितः=अल्पज्ञानी लोग, भोग = विषयसुख, ऐश्वर्य = उच्च = सम्मान, गतिप्रति =स्थिति की ओर, क्रियाविशेषबहुलां=विशेष प्रकार के बहुत सारे धार्मिक अनुष्ठान की क्रियाओं को करने वाले, स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्=अगले जन्म में स्वर्ग आदि शुभ कर्मफलप्रदान करने वाले, याम = जिन, इमाम = ऐसे, पुष्पिताम् = खुशहाली प्रदर्शित करने वाले, वाचं= वचन, न = नहीं, अन्यत् =अन्य , अस्ति =है, इति = यही, प्रवदन्ति = बोलते हैं ।

अनुवाद व भावार्थ— हे अर्जुन! इस जन्म में भोग (विषय सुख) व ऐश्वर्य (उच्च सम्मान युक्त प्रशासकीय शक्ति) तथा अगले जन्म में स्वर्ग आदि शुभ कर्मफल के अतिरिक्त अन्य कुछ भी प्राप्ति करने योग्य नहीं है, ऐसे भौतिक खुशहाली प्रदर्शित करने वाले, इन वचनों को बोलने वाले, सांसारिक कामनाओं से युक्त , वेदों के कर्मकाण्ड भाग की महिमा का गुणगान करने वाले व वेदों द्वारा बताये गये सकाम कर्मकाण्डीय अनुष्ठानों की ओर प्रेरित करने वाले अल्पज्ञानी लोग, विशेष प्रकार के वैदिक अनुष्ठानों की क्रियाओं को करना ही परम कर्तव्य है, ऐसा बोलते हैं।

तात्पर्य— भौतिक सुखों की प्राप्ति ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मानने वाले लोग

उनकी प्राप्ति हेतु वैदिक कर्मकाण्डीय अनुष्ठानों को ही सबसे बड़ा धर्म समझते हैं।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।

व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ।44 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ- भोग= विषयभोग, ऐश्वर्य = उच्चसम्मान युक्त प्रशासकीय शक्ति, प्रसक्तानां=आसक्त लोगों को तया= उससे, अपहृतचेतसाम्= जिनकी सुमति देने वाली चेतना का हरण कर लिया गया है, व्यवसायात्मिका= अनेक प्रकार के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए लगी बुद्धि, समाधौ = समाधि को, न=नहीं, विधीयते=अपनाते हैं ।

अनुवाद व भावार्थ- जो लोग सांसारिक विषय भोगों तथा ऐश्वर्य प्राप्ति (उच्च सम्मान युक्त सामाजिक व प्रशासकीय शक्ति की प्राप्ति व उसके सुख भोग) में अत्यन्त आसक्त होते हैं और जिनका चित्त उन भोगों व ऐश्वर्य की प्राप्ति की प्रबल कामना द्वारा हर लिया गया है, उन पुरुषों की बुद्धि, जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य अर्थात् समाधि-प्राप्ति के लिए कभी भी प्रेरित नहीं होती।

तात्पर्य- मानव जीवन में समाधिलाभ (आत्मानुभव व उसमें स्थिति) सर्वोच्च उपलब्धि है लेकिन सांसारिक भोग और ऐश्वर्य के सुख में आसक्त लोग समाधि का महत्व नहीं समझते।

अभ्यास प्रश्न 1

निम्नलिखित श्लोकों का अर्थ लिखिए-

क- हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।

तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥

ख- सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।

निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ।45 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ- अर्जुन! वेदा= वेद, त्रैगुण्यविषया= सत, रज व तम इन तीन गुणों से युक्त विषयों की ओर प्रेरित करने वाले हैं, निस्त्रैगुण्यो= इन तीनगुणों से रहित, निर्द्वन्द्वो=दुख-सुख, हर्ष-शोक, हानि-लाभ यश-अपयश, अनुकूल-प्रतिकूल आदि द्वन्द्वों से अलग, नित्य=स्थिर, सत्त्वस्थो=बुद्धि में स्थित, निर्योगक्षेम=सांसारिक सुख सुविधाओं की प्राप्ति तथा उनकी सुरक्षा की चिंता से रहित, आत्मवान्=केवल आत्मा में स्थित, भव =हो जाओ।

अनुवाद व भावार्थ- हे अर्जुन! वेद जिन सत, रज व तम इन तीनों गुणों वाले विषयभोगों का प्रतिपादन करते हैं तू उन विषयभोगों में आसक्तिरहित, उनके मिलने व न मिलने से उत्पन्न हर्ष-शोकादि द्वंद्वों से अलग, सांसारिक भोगपदार्थों व ऐश्वर्य की

प्राप्ति (योग) की कामना से तथा प्राप्त हुए भोग व ऐश्वर्य की सुरक्षा (क्षेम) की चिंता से मुक्त होकर विशुद्ध आत्म स्थित वाला हो जा।

तात्पर्य— भोग और ऐश्वर्य सुख को सर्वोच्च लाभ समझने के बजाय आत्मदर्शन, आत्मस्थिति (ब्रह्म की प्राप्ति) को सर्वोच्च लाभ समझ कर उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना ही मनुष्य का सर्वोच्च धर्म है।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके ।

तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ।46।

अन्वय सहित शब्दार्थ— सर्वतः=सब ओर से, सम्प्लुतः=परिपूर्ण, उदक=सरोवर के होने पर, यावान=जितना, अर्थः= महत्व, उदपाने= कुएं का है, ब्राह्मणस्य=ब्रह्मज्ञानी के लिए, सर्वेषु=सभी, वेदेषु=वेदों को, विजानतः=जानने का, तावान=उतना ही महत्व है।

अनुवाद व भावार्थ— जैसे शुद्ध जलसे परिपूर्ण सरोवर के होते हुए बहुत कम जल वाले छोटे से कुएं से मनुष्य का जितना प्रयोजन रहता है (अर्थात् कोई प्रयोजन नहीं रहता) वैसे ही ब्रह्म को तत्व से जानने वाले ब्राह्मण का भी समस्त वेदों में उतना ही प्रयोजन रह जाता है।

तात्पर्य— ब्रह्म को जानने के बाद वेदों के अध्ययन का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता क्योंकि वेदों के ज्ञान का सर्वोच्च लक्ष्य ही ब्रह्म की प्राप्ति है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ।47।

अन्वय सहित शब्दार्थ — कर्मणि = कर्मों में, एव = ही, ते =तेरा, अधिकारः = अधिकार है, फलेषु = कर्म के फलों में कदाचन = कभी भी, मा=नहीं। मा= नहीं, कर्मफलहेतुः =वांछित कर्मफल के लिए, भूः=होवो, मा = नहीं ते =तेरी, अकर्मणि =कर्मों को न करने में, संगोः=भावना, अस्तु = होवे।

अनुवाद व भावार्थ— तेरा अधिकार तो कर्तव्य कर्मों को करने में ही है, कर्मों के फलों में कभी नहीं (क्योंकि कर्म का फल दैव के अधिकार में होता है, कर्म करने वाले के अधिकार में नहीं। कर्म करने वाला मन के अनुकूल कर्मफल की अभिलाषा तो कर सकता है लेकिन कर्मफल उसके अनुकूल ही हो, यह उसके अधिकार में कभी नहीं होता)। इसलिए हे अर्जुन! तू तेरे मन के अनुकूल ही कर्मफल की प्राप्ति हो, ऐसी अभिलाषा से कर्म करने वाला मत बन। साथ ही तू अकर्मण्य (कर्म से विरत) भी मत हो (बल्कि बड़े ही उत्साह व कर्तव्य बुद्धि से अपना स्वधर्म कर्म अवश्य कर)।

तात्पर्य— मन में कर्मफल की अनुकूलता का लक्ष्य लेकर पूर्ण मनोयोग से स्वधर्म कर्म करना तथा कर्मफल चाहे मन के अनुकूल मिले अथवा प्रतिकूल, उसे सहर्ष स्वीकार करना ही कर्मयोग है।

योगस्थः कुरु कर्माणि संग त्यक्त्वा धनंजय ।

सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।48।

अन्वय सहित शब्दार्थ — धनंजय =अर्जुन, योगस्थः=योग में स्थित होकर, संगम्=आसक्ति को, त्यक्त्वा=त्याग कर, सिद्धयसिद्धयोः = सफलता व विफलता में, समो=समान भाव वाला, भूत्वा=होकर कर्माणि=कर्मों को, कुरु=करो, समत्वं=अनुकूल व प्रतिकूल परिस्थिति में समभाव का होना, योग=योग, उच्यते=कहा जाता है।

अनुवाद व भावार्थ— हे धनंजय! तू कर्मफल की आसक्ति को त्यागकर (अर्थात् कर्म के लक्ष्य की प्राप्ति में सफलता अथवा असफलता हों ही स्थितियों में समान भाव वाला होकर) अपने स्वधर्म का पालन करते हुए कर्तव्य कर्मों को कर क्योंकि सिद्धि व असिद्धि में समभाव होकर जीना ही योग (जीवन की सर्वोच्च सुखद बौद्धिक स्थिति) है।

तात्पर्य— भगवान कृष्ण ने योग का अर्थ बताया है— सिद्धि व असिद्धि में समभाव होकर जीना और इसी को जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि माना है।

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।

बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः । 49 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ — धनंजय! हि = निश्चय ही, अवरं = मन के अनुकूल भोग व ऐश्वर्य रूप फलप्राप्ति की अभिलाषा से किये गये कर्म, बुद्धियोगात्= समत्वयोग की भावना से किए गये कर्म से, दूरेण= अत्यधिक दूरी के हैं अर्थात् बहुत कम मूल्य, के हैं। कृपणाः= भोग और ऐश्वर्य की प्रबल अभिलाषा से कर्म करने वाले लोभी लोग, फलहेतवः = भौतिक भोग व ऐश्वर्य रूपी फलप्राप्ति के लिए ही कर्म करने वाले होते हैं बुद्धौ = समता में स्थित बुद्धि की, शरणम्= शरण में, अन्वच्छ=जाने को तत्पर होवो, इच्छा करो।

अनुवाद व भावार्थ — हे अर्जुन ! मन के अनुकूल भोग व ऐश्वर्य रूप फलप्राप्ति की अभिलाषा से किये गये कर्म, निश्चय ही, समत्वयोग की भावना से किए गये कर्म से बहुत ही कम मूल्य के हैं। भोग और ऐश्वर्य की प्रबल अभिलाषा से कर्म करने वाले लोभी लोग सदैव सांसारिक भोग व ऐश्वर्य रूपी फलप्राप्ति के लिए ही कर्म करते हैं और उनकी अभिलाषायें कभी पूर्ण नहीं होती, एक के बाद एक सांसारिक कामना व उसकी प्राप्ति के लिए दौड़भाग बनी ही रहती है। इसलिए तू समता में स्थित बुद्धि (समत्वबुद्धि) की शरण में होकर कर्तव्य कर्म करने के लिए तत्पर हो जा।

तात्पर्य — अपने जीविकोपार्जन व समाज के हित के लिए जो कर्म निर्धारित हैं उनको ईश्वर की सेवा समझ कर अवश्य करना और उनका फल मन के अनुकूल अथवा प्रतिकूल चाहे जैसा भी मिले उसमें समत्वबुद्धि रखना ही जीवन का सर्वोच्च व सुखद धर्म है।

अभ्यास प्रश्न 2

सत्य असत्य बताइए—

1. समत्वबुद्धि रखना ही जीवन का सर्वोच्च व सुखद धर्म है।
2. कर्म का फल दैव के अधिकार में होता है, कर्म करने वाले के अधिकार में नहीं।
3. जीवन में आसक्ति से मोक्ष की प्राप्ति होती है।
4. आत्मा को वाणी से व्यक्त किया जा सकता है।
5. जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है।

3.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप यह जान पाये कि आत्मा क्या है उस आत्मतत्त्व की बारह विशेषतायें क्या हैं। वे बारह विशेषतायें हैं— 1. अच्छेद्य, 2.अदाह्य, 3.अक्लेद्य, 4. अशोष्य, 5.नित्य, 6.सर्वगत, 7.स्थाणु, 8.अचल, 9.सनातन, 10.अव्यक्त, 11.अचिन्त्य और 12. अविकार्य। प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपनी आत्मा की इन बारहों विशेषताओं को तत्व से समझने के उपरांत तदनुसार संसार में जीते हुए सद्व्यवहार करना ही पूरे सांख्य योग का सार प्रतीत होता है। अपनी आत्मा की इन बारह विशिष्टताओं को तत्व से समझने के बाद व्यक्ति का शोकाकुल, शंकाकुल अथवा चिंताकुल होने की संभावना पूर्णरूप से क्षीण हो जाती है। इसके साथ ही यह भी जाना कि व्यक्ति को निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए तथा समत्वबुद्धि रखना ही जीवन का सर्वोच्च व सुखद धर्म है।

3.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
हि	निश्चय ही
अविकार्यः	विकार रहित

नित्यजातं	हमेशा जन्म लेने वाला
नित्यं मृतम्	हमेशा मरने वाला
अवाप्स्यसि	प्राप्त करोगे
लाघवम्	न्यूनता को
त्रैगुण्य	सत, रज व तम यह तीन गुण
जातस्य	जन्म लेने वाले की

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1— उत्तर इकाई में ही देखें ।

अभ्यास प्रश्न 2— 1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. असत्य 5. सत्य

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गीतातत्व चिन्तन — स्वामी आत्मानन्द प्रकाशन—अद्वैत आश्रम, 5 डिही एण्टाली रोड—कलकत्ता
2. भगवद्गीता — चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य
3. श्री मदभगवद् गीता — योगीराज श्री श्यामाचरणलोहिड़ी महाशय एवं भूपेन्द्र नाथ सान्याल ।
4. श्री मदभगवद् गीता — साधक संजीवनी — स्वामी राम सुख दास ।
5. 'गीता — स्वामी अङ्गदानन्द ।
6. श्री मदभगवद् गीता ' यथारूप — श्री श्रीमद ए०सी० भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुवाद ।
7. श्री मदभगवद् गीता त्रयी — भगवान श्री कृष्णचन्द्र वासुदेव ।

3.8 उपयोगी पुस्तकें

1. श्रीमद भगवद्गीता — तत्त्वविवेचनी (हिन्दी टीका) जयदयाल गोयन्दका, गीताप्रेस, गोरखपुर ।
2. गीता तत्त्वचिन्तन — स्वामी आत्मानन्द प्रकाशन — अद्वैतआश्रम— कल ।
3. श्रीमदभगवद्गीता — योगीराज श्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय एवं भूपेन्द्रनाथ सान्याल ।
4. गीता रहस्य — लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक नारायण प्रेस, पूना ।
5. भगवद्गीता— डॉ. सर्वेपल्लि राधाकृष्णन्— हिन्द पाकेट बुकस
6. गीता दर्पण— स्वामी रामसुखदास— गीता प्रेस ।

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. समत्वं योग उच्यते की व्याख्या कीजिए ।
2. आत्मा की विशेषताओं का वर्णन कीजिए ।

इकाई 4. द्वितीय अध्याय श्लोक संख्या 50 से 72 तक

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 श्लोक संख्या 50 से 72 तक मूल पाठ,अन्वय, अर्थ एवं व्याख्या

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.7 उपयोगी पुस्तकें

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आपने द्वितीय अध्याय के 25 से 49 तक के श्लोकों का अध्ययन किया जिसमें भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि आत्मा अविनाशी है इसलिए उसके किसी शरीर में कुछ समय के लिए आने व चले जाने पर हर्ष या शोक करने की कोई आवश्यकता नहीं है। युद्ध करना अर्जुन का धर्म है, अस्तु युद्ध करने से वह किसी प्रकार के पाप का भागी नहीं होगा।

प्रस्तुत इकाई में आप द्वितीय अंक के 50 से 72 तक के श्लोकों का अध्ययन करेंगे और जानेंगे कि योग ही सभी कर्मों में कुशलतम कर्म है। समत्व बुद्धि से युक्त होकर कर्म करने से मानवजीवन के सर्वोच्च लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। स्थितप्रज्ञ के क्या लक्षण होते हैं।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेंगे कि कामनारहित, ममतारहित व अहंकाररहित व्यक्ति ही शाश्वत शांति का लाभ प्राप्त करता है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- श्लोकों की व्याख्या कर सकेंगे।
- स्थितप्रज्ञ का क्या लक्षण होता है यह समझ सकेंगे।
- स्थिरबुद्धि कौन कहलाता है यह बता पायेंगे।
- प्रतिष्ठित बुद्धि की व्याख्या कर सकेंगे।
- स्थितप्रज्ञ व्यक्ति मृत्यु के बाद मुक्तिलाभ करता है यह समझ सकेंगे।

4.3 श्लोक संख्या 50 से 72 तक मूल पाठ, अन्वय, अर्थ एवं व्याख्या

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् । 50।

अन्वय सहित शब्दार्थ— बुद्धियुक्तः=समत्वबुद्धि वाला व्यक्ति, जहाति=पार कर जाता है, इह=इस संसार को, उभे =दोनों अवस्थाओं में, सुकृत = पुण्य, दुष्कृते = पाप में, तस्मात् = इसलिए, योगाय =योग के लिए, युज्यस्व = प्रयत्न करो, योगः = समत्वतबुद्धि जिसे योग के नाम से जाना जाता है, कर्मसु=सभी कर्मों में, कौशलम् = कुशलता का परिचायक है।

अनुवाद व भावार्थ— कर्मफल (मन के अनुकूल अथवा प्रतिकूल जैसा भी हो) में समबुद्धि रखने वाला व्यक्ति पुण्यकर्म या पापकर्म के विचार से ऊपर उठा हुआ होता है। उसका प्रत्येक कर्म योगसिद्धि (मानवजीवन की परमसिद्धि) के लिए ही होता है। इसलिए तू योग के लिए युद्ध (स्वधर्म पालन कर्म) कर क्यों कि योग के लिए कर्म करना ही कार्यकुशलता है अथवा योग ही सभी कर्मों में कुशलतम कर्म है।

तात्पर्य. योग ही सभी कर्मों में कुशलतम कर्म है।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।

जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् । 51।

अन्वय सहित शब्दार्थ— कर्मजं =कर्म से उत्पन्न होने वाला, बुद्धियुक्ता =समत्व बुद्धि वाले, हि=निश्चय ही, फलं = फल को, त्यक्त्वा = त्याग कर, मनीषिणः =मननशील मनीषी लोग, जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः =जन्म मृत्यु के बंधन से मुक्तिपाकर, अनामयम्=स्वस्थ, रोग रहित, पदम्=ऐसे महान पद को, गच्छन्ति = चले जाते हैं अथवा पा जाते हैं

अनुवाद व भावार्थ— सांसारिक भोग व ऐश्वर्यरूप कर्मफल की अभिलाषा को त्यागकर व

समत्व बुद्धि से युक्त होकर कर्म करने वाले मनीषीगण, निश्चय ही, जन्ममृत्यु के बंधन से मुक्त, निर्विकार परम पद को (मोक्षको) प्राप्त कर जाते हैं।

तात्पर्य— समत्व बुद्धि से युक्त होकर कर्म करने से मानवजीवन के सर्वोच्च लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति होती है।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।

तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च । 52 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— यदा=जब, ते=तेरी, श्रोतव्यस्य= भविष्य में सुनने योग्य, च=और, श्रुतस्य=अब तक सुने हुए (वेद शास्त्रों के ज्ञान द्वारा) मोहकलिलंबुद्धिः=मोह के दलदल में फंसी हुई बुद्धि, व्युत्तरिस्येति=पार हो जायेगी, तदा=तब, निर्वेदं=वेदानुकूल कर्मकाण्डीय अनुष्ठान से वैराग्य को, गन्तासि=प्राप्त हो जायेगा।

अनुवाद व भावार्थ— अब तक सुने हुए और भविष्य में सुने जाने वाले वैदिक अनुष्ठानों से प्राप्त होने वाले सांसारिक भोगों व ऐश्वर्य की अभिलाषाओं के मोह के दलदल में फंसी हुई तेरी बुद्धि, जिस समय समत्व योग के ज्ञान से, भलीभाँति उबर जाएगी, उस समय तू इस लोक और परलोक संबंधी सभी प्रकार के भोगों व ऐश्वर्यों की इच्छाओं से वैराग्य को प्राप्त हो जाएगा।

तात्पर्य— भगवान् कृष्ण ने गीता के छठे अध्याय में मन की चंचलता को दूर कर योग में स्थित होने के लिए व्यक्ति की जीवनचर्या में अभ्यास व वैराग्य इन दो बातों का होना आवश्यक बताया है। इस मंत्र में वैराग्य की प्राप्ति हेतु भोग व ऐश्वर्य के प्रति आसक्त मन व बुद्धि द्वारा अनुकूल फल की प्राप्ति की कामना का त्याग कर, समत्व योग के अभ्यास का उपाय सुझाया गया है।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।

समाधवचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि । 53 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— यदा = जब, ते = तेरी, श्रुतिविप्रतिपन्ना = वेदशास्त्रों में वर्णित सांसारिक भोग व ऐश्वर्य संबंधी बातों को सुनने के परिणामस्वरूप लोभ लालच से मलिन, बुद्धि = बुद्धि, निश्चला = निश्चल, स्थास्यति = हो जायेगी, तदा = तब, समाधवचला = अविचल समाधि से, योगम् = योग को, अवाप्स्यसि = प्राप्त हो जायेगा।

अनुवाद व भावार्थ— वेद शास्त्रों के भाँति-भाँति के भोग व ऐश्वर्य प्राप्ति के वचनों को सुनने से विचलित हुई तेरी बुद्धि जब कर्मफल के संबन्ध में समत्वबुद्धिरूप समाधि से अचल हो जाएगी तब तू योग को प्राप्त हो जाएगा अर्थात् तेरा परमात्मा से स्थाई योग हो जाएगा।

तात्पर्य — जब भगवान् से बार बार स्थिरबुद्धि, अचल बुद्धि, समाधिस्थ, योगस्थ, समाधिस्थ, आदि शब्दों को अर्जुन सुनता है और ऐसी बुद्धि को श्रेष्ठतम मानने लगता है तो वह स्थितप्रज्ञ, समाधिस्थ या स्थितधीः पुरुष के लक्षण और उसकी महिमा का वर्णन सुनाने के लिए भगवान् कृष्ण से विनती करता है।

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।

स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत् व्रजेत किम् । 54 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— केशव ! स्थितप्रज्ञस्य = स्थितप्रज्ञ के, समाधिस्थस्य = समाधि में स्थित व्यक्तादि के, का = कैसे, भाषा = लक्षण, स्थितधीः = स्थिर बुद्धि वाला, किं = क्या या कैसे, प्रभाषेत = बोलता है, किम् = कैसे आसीत् = बैठता है, किम् = कैसे व्रजेत = चलता है,

अनुवाद व भावार्थ — अर्जुन बोले हे केशव! स्थितप्रज्ञ, समाधिस्थ व स्थितधीः कहलाने वाले पुरुष का क्या लक्षण है? वह स्थिरबुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है ?

तात्पर्य— जिज्ञासु प्रवृत्ति के व्यक्ति में हमेशा नित नये ज्ञान की प्राप्ति की पिपासा विद्यमान रहती है। अर्जुन पहले ही भगवान श्रीकृष्ण को अपना गुरु व स्वयं को उनका शिष्य घोषित करते हुए जो कुछ उसके लिए श्रेयस्कर हो उसका उपदेश देने को निवेदन कर चुके थे। भगवान श्रीकृष्ण के मुख से वह बार-बार स्थितप्रज्ञ, स्थितधीः समाधिस्थ, योगस्थ आदि गुणों से सम्पन्न व्यक्ति को मानवजीवन के सर्वोच्च गुण, सर्वोच्च लाभ व सर्वोच्च आनन्द की स्थिति वाला व्यक्तित्व सुन चुके थे इसलिए अब वह इन गुणों से युक्त व्यक्ति के लक्षण व उसके व्यवहार के बारे में विस्तार से जानने की जिज्ञासा करते हैं।

श्रीभगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।

आत्मनेवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते । 55 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— पार्थ=पृथापुत्र अर्जुन, यदा=जब, सर्वान्=सभी, मनोगतान्= मन में उत्पन्न होने वाले, कामान्=सांसारिक कामनाओं को, प्रजहाति=त्याग देता है, आत्मनि =अपनी, एव=ही, आत्मना=आत्मा से, तुष्टः=संतुष्ट तत्=वह, स्थितप्रज्ञः=स्थितप्रज्ञ, उच्यते=कहा जाता है ।

अनुवाद व भावार्थ— श्री भगवान् बोले— हे अर्जुन! जब कोई व्यक्ति उसके मन में उत्पन्न होने वाली सम्पूर्ण कामनाओं को भलीभाँति त्याग देता है और अपनी आत्मा से ही संतुष्ट रहता है, उस काल में वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

तात्पर्य — भगवान श्री कृष्ण अब आगे के मन्त्रों में अर्जुन को स्थितप्रज्ञ, स्थितधीः, समाधिस्थ, स्थिरबुद्धि आदि गुणों से युक्त व्यक्ति के लक्षणों की जानकारी दे रहे हैं।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते । 56 ।।

अन्वय सहित शब्दार्थ— मुनिः= जो मुनि, दुःखेषु= दुखों के आने पर, अनुद्विग्नमनाः=मन की उद्विग्नता से रहित, सुखेषु=सुखों में, विगतस्पृहः =उन सुखों के बने रहने की लालसा से रहित, राग=मोह, भय=डर, क्रोध=गुस्सा वीत=अलग, =स्थिर बुद्धि वाला, उच्यते =कहा जाता है।

अनुवाद व भावार्थ— जिस मुनिके मन में दुःखों की प्राप्ति होने पर अशांति नहीं होती, सुखों की प्राप्ति में जो सदा उन सुखों के बने रहने की लालसा न रखता हो, जिसका अपने शरीर या अन्य व्यक्तियों व वस्तुओं से किसी भी प्रकार का मोह नहीं हो, जो किसी भी बात, व्यक्ति या घटना से भयभीत नहीं होता हो, जिसे कभी भी क्रोध न आता हो, ऐसा मननशील व्यक्ति (मुनि) स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

तात्पर्य— इस मंत्र में भगवान ने अनुकूल व प्रतिकूल परिस्थितियों में मन को संतुलित बनाये रखना तथा मोह, डर, तथा क्रोध से रहित होना स्थितधी के अर्थात् स्थिर बुद्धि युक्त व्यक्ति के लक्षण बताये हैं।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।

नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता । 57 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— यः=जो, सर्वत्र = सब जगह, अनभिस्नेहः = मोह रहित हो, प्राप्य = प्राप्त करके, शुभ = लाभप्रद, अशुभम् = हानिप्रद, न = नहीं, अभिनन्दति = अभिनन्दन करता है, न = नहीं, द्वेष्टि = द्वेष करता है, तस्य = उसकी, प्रज्ञा = बुद्धि प्रतिष्ठिता = प्रतिष्ठित या स्थिर होती है।

अनुवाद व भावार्थ — जो व्यक्ति सब जगह और सब लोगों से मोह रहित हो, न लाभप्रद स्थिति होने पर उसका अभिनन्दन करता हो और नहीं हानिप्रद परिस्थिति आ जाने पर उससे द्वेष करता हो, उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित कहलाती है।

तात्पर्य — जिसकी बुद्धि अनुकूल व प्रतिकूल परिस्थितियों में संतुलित रहती है वह

प्रतिष्ठित बुद्धि होता है।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता । 58 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— यदा = जब, संहरते = समेट लेता है, च = और, अयम् = यह, कूर्मोऽङ्गानीव = कछुवे के अंगों की, इव = तरह सर्वशः = सब ओर से, इन्द्रियाणीनि = सभी इन्द्रियों को, इन्द्रियार्थेभ्यः = इन्द्रियों के विषयों से, तस्य = उसकी, प्रज्ञा = बुद्धि प्रतिष्ठिता = प्रतिष्ठित या स्थिर होती है ।

अनुवाद व भावार्थ— जैसे थोड़ी सी भी आहत होने पर कछुवा सब ओर से अपने अंगों को समेट लेता है, वैसे ही जब कोई व्यक्ति विभिन्न विषय भोगों के सम्मुख होने पर अपनी इन्द्रियों को उन विषयों से बिना किसी प्रकार के लालच के शीघ्र हटा लेता है, उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

तात्पर्य — कछुवे की तरह अपनी इन्द्रियों के विषयों से हटा लेने वाले संयमी व्यक्ति की ही बुद्धि स्थिर हो सकती है असंयमी की कभी नहीं चाहे असंयमी व्यक्ति कितना ही बड़ा ज्ञानी व प्रतिष्ठा प्राप्त क्यों न हो। असंयमी व्यक्ति का ज्ञान व प्रतिष्ठा दिखावे की व अहंकार से भरे होते हैं जो उसके लिए व समाज दोनों के लिए हानिकारक सिद्ध होते हैं।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।

रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते । 59 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— विषयाः=भोग की वस्तुएं, विनिवर्तन्ते = निवृत्त हो जाते हैं, निराहारस्य = जो उन्हें नहीं भोगता देहिनः = शरीरधारी, रसवर्जं=विषयभोगके रस का त्याग, रसः=भोगेच्छा की लालसा, अपि =भी, अस्य = इसके, परं = आत्मात या परमात्मा को, दृष्ट्वा=देखकर, निवर्तते=निवृत्त हो जाता है ।

अनुवाद व भावार्थ— अपनी इन्द्रियों द्वारा विषयों को ग्रहण न करने वाले व्यक्ति के केवल उस समय विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परन्तु उन विषयों में जिस रस की आसक्ति मन में बैठी होती है वह आसक्ति निवृत्त नहीं होती। कभी भी भोग की वस्तु के प्रस्तुत होने पर संबंधित इन्द्रिय उस विषय को भोगने के लिए तत्पर हो सकती है। मन में दृढता से जड़ जमाई हुई विषय-भोगों के रस की आसक्ति का त्याग तभी संभव हो पाता है जब व्यक्ति को सर्वरसों के परमश्रोत उस परमेश्वर के दर्शन का सर्वोच्च रस प्राप्त हो जाता है।

तात्पर्य — स्थितप्रज्ञ पुरुष ही परमात्मा का साक्षात्कार कर पाता है और तब ही उसकी विषयों से पूर्णरूप से आसक्ति निवृत्त हो जाती है।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः । 60 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— यततः = यत्न करता हुआ, हि=निश्चय ही, अपि =भी, कौन्तेय=कुंतीपुत्र, पुरुषस्य = पुरुष के, विपश्चितः = विवेकी, इन्द्रियाणि = इन्द्रियां, प्रमाथीनि = प्रबलता से अपनी ओर खींचने वाली, हरन्ति=बस में कर लेती हैं, प्रसभं = बल पूर्वक मनः = मन को ।

अनुवाद व भावार्थ— हे अर्जुन! व्यक्ति के मन को प्रबलता से अपनी ओर खींचने वाली प्रमथन स्वभाव वाली इन्द्रियां, साधारण व्यक्ति की तो बात ही क्या बल्कि अपनी इन्द्रियों को सदैव अपने नियन्त्रण में रखने का भलीभांति प्रयत्न करने वाले विवेकी पुरुष के मन को भी बलात हर लेती हैं।

तात्पर्य— बिना प्रतिष्ठित प्रज्ञा के कोई भी विद्वान से विद्वान व्यक्ति भी विषयों के प्रलोभन से प्रबल इन्द्रियों को रोकने में समर्थ नहीं हो पाता ।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता । 61 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— तानि =उन, सर्वाणि=सभी, इन्द्रियाणि =इन्द्रियों को, संयम्य=नियन्त्रित करके, मत्परः = मेरे परायण (मुझ में समर्पित), युक्त= जुड़ा हुआ, आसीत्=होता है, हि = निश्चय ही, यस्य = जिसकी इन्द्रियाणि = इन्द्रियां, वशे =वश में हैं, तस्य=उसकी, प्रज्ञा = बुद्धि, प्रतिष्ठिता =भलीभांति स्थिर ।

अनुवाद व भावार्थ— जो अपनी सभी इन्द्रियों को भलीभांति अपने नियन्त्रण में करके मेरे आश्रित होकर मुझसे जुड़ा होता है उसकी इन्द्रियां निश्चय ही उसके वश में होती हैं और ऐसे व्यक्ति की बुद्धि भलीभांति स्थिर होती है ।

तात्पर्य — हर समय आश्रित भाव से ईश्वर से जुड़े रहने वाले व्यक्ति की इन्द्रियां वश में होतीं तथा स्थितप्रज्ञता प्राप्त होती है ।

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।

संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ।62 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— विषयान्=विषय भोगों को, ध्यायतः=चिंतन करता हुआ, पुंसः=पुरुष, तेषु=उनमें, संगः=समीप जाने की इच्छा उपजायते=उत्पन्न होती है, संग्नात्= समीप जाने पर, कामः=भोग की प्रबल इच्छा, संजायते=उत्पन्न होती है, कामात्=प्रबल भोग इच्छा से क्रोधः= गुस्सा, अभिजायते= उत्पन्न होता है ।

अनुवाद व भावार्थ— विभिन्न इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करने पर व्यक्ति की उन उन विषयों के समीप जाने की इच्छा होती है, विषय के समीप जाने पर संबन्धित इन्द्रिय उस विषय को भोगने की इच्छा करती है, उस विषय के भोगने का अवसर मिल गया तो उसे भोगने के बाद यदि वह विषयभोग हानिकारक रहा तो ग्लानि उत्पन्न होने से स्वयं पर क्रोध आता है, यदि उस विषय का भोग करने में कोई बाधा आ गई तो भी गुस्सा आता है ।

तात्पर्य— विषय भोगों का चिंतन मनन व उनकी प्राप्ति के लिए लालच ही पतन का कारण है ।

अभ्यास प्रश्न 1 —

क— कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।

जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्

ख — ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।

संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति । 63 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— क्रोधात् = गुस्से से, सम्मोहः=अज्ञान का अंधकार, भवति=होता है, सम्मोहात् =अज्ञान के अंधकार से, स्मृतिविभ्रमः =विवेकहीनता होती है, स्मृतिभ्रंशाद्= विवेकहीनता से, बुद्धिनाशः = बुद्धि द्वारा ज्ञानार्जन की क्षमता का नाश, बुद्धिनाशात्=

बुद्धि की ज्ञानार्जन की क्षमता का नाश होने पर, प्रणश्यति =सर्वनाश (दुर्गति) को प्राप्त होता है ।

अनुवाद व भावार्थ – जब व्यक्ति को क्रोध आता है तो क्रोध से तुरंत मन पर अज्ञान का अंधकार छा जाता है, मन पर अज्ञान के अंधकार छा जाने से विवेकहीनता आ जाती है, विवेकहीनता से सही गलत को समझने की क्षमता कम हो जाने पर बुद्धि द्वारा ज्ञानार्जन की क्षमता का हास हो जाता है बुद्धि द्वारा ज्ञानार्जन की क्षमता का हास होने पर व्यक्ति सर्वनाश (दुर्गति) को प्राप्त होता है।

तात्पर्य— भोग व ऐश्वर्य की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न होने पर क्रोध आता है और क्रोध आगे चल कर सर्वनाश का कारण बनता है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति । 64 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ – रागद्वेषवियुक्तैः = काम व क्रोध से रहित होकर, विषयानिन्द्रियैश्चरन् = इन्द्रियों द्वारा विषयों का भोग करने पर भी, आत्मवश्यैः = मन व इन्द्रियों को बस में करने वाले, विधेयात्मा =विधिविधान से चलने वाला व्यक्ति, प्रसादम् = परम प्रसन्नता को, अधिगच्छति=प्राप्त होता है।

अनुवाद व भावार्थ— विधिविधान से अपने मन व इन्द्रियों को बस में रखने वाला व्यक्ति राग व द्वेष से रहित होकर अपनी इन्द्रियों से विषयों का नैतिक भोग करने पर भी अन्तःकरण की दिव्य प्रसन्नता को प्राप्त होता है।

तात्पर्य— अनासक्त भाव से किया गया नैतिक विषयों का भोग भी आन्तरिक प्रसन्नता प्रदान करता है।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते

प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते । 65 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— प्रसादे =अन्तःकरण की प्रसन्नता की स्थिति में, सर्वदुःखानां = सभी प्रकार के दुखों की हानिः = समाप्ति, उपजायते = उत्पन्न होती है, प्रसन्नचेतसः =प्रसन्न चित्त वाले की, हि=निश्चय ही, आशु=शीघ्र ही, बुद्धिः=बुद्धि, पर्यवतिष्ठते = भलीभांति स्थिर हो जाती है।

अनुवाद व भावार्थ—मन व इन्द्रियों के वशीभूत होन पर व्यक्ति के अन्तःकरण की जो सदा बनी रहने वाली प्रसन्नता होती है उससे व्यक्ति के सभी दुख समाप्त हो जाते हैं। हमेशा प्रसन्नचित्त रहने वाले उस व्यक्ति की बुद्धि शीघ्र ही सब विषय वासनाओं की ओर से हटकर परमात्मा में स्थिर हो जाती है।

तात्पर्य— आत्मसंयम मनुष्य को अविराम सुख व परामात्मा की प्राप्ति कराता है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।

न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ।66 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— अयुक्तस्य= जो ईश्वर से जुड़ा नहीं होता उसकी, बुद्धि=सदबुद्धि, न=नहीं, अस्ति=होती है, च=और न=नहीं, अयुक्तस्य= ईश्वर से न जुड़े हुए व्यक्ति की, भावना = सदभावना होती है, न=नहीं, च=और, अभावयतः=सदभावना से रहित व्यक्ति को, शान्तिः= मन की शान्ति नहीं होती, अशान्तस्य= अशान्त व्यक्ति के लिए, सुखम्=सुख है, कुतः=कहा।

अनुवाद व भावार्थ – जो ईश्वर से जुड़ा नहीं होता उसके पास सदबुद्धि नहीं होती, जिसके पास सदबुद्धि नहीं होती उसके पास सदभावना भी नहीं होती और जो सदभावना से रहित व्यक्ति होता है उसके मन में कभी भी शान्ति नहीं होती और जो शांत नहीं होता है उसे सुख कहां से प्राप्त हो सकता है? अर्थात् उसे कभी भी सुख नहीं मिल सकता। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को सुख की प्राप्ति के लिए मन वचन कर्म से सुख के परमश्रोत उस परमेश्वर से जुड़ना आवश्यक है।

तात्पर्य— बिना ईश्वर के साथ जुड़े शान्ति नहीं मिलती और बिना शान्ति के सुख नहीं मिलता। इसलिए सुख व शांति के लिए सदैव ईश्वर से योग होना अनिवार्य है।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।

तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि । 67 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— हि= निश्चय ही, इन्द्रियाणां= इन्द्रियों का, चरतां= भोगों में रत रहते हुए, यत्= जो, मनः = मन, अनुविधीयते = बार बार लगा रहता है, तत्= वह, अम्भसि = पानी में इव = जैसे वायुः = हवा, नावम्= नाव को, अस्य = इसकी, प्रज्ञां= सदबुद्धि को, हरति = हरण कर लेती है ।

अनुवाद व भावार्थ— क्योंकि जैसे जल में चलने वाली नाव को वायु अपने वेग के साथ बहा ले जाती है वैसे ही विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों में से मन जिस इन्द्रिय के साथ रहता है, वह एक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुष की बुद्धि को हर लेती है । 67 ।

तात्पर्य — मनुष्य की एक ही इन्द्रिय की दासता उसकी बुद्धि—हरण के लिए पर्याप्त होती है ।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता । 68 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— तस्मात्= इसलिए, महाबाहो=बड़ी भुजाओं वाले अर्जुन, यस्य =जिसकी, इन्द्रियाणि=इन्द्रिया, सर्वशः =सब प्रकार से, इन्द्रियार्थेभ्यः= इन्द्रियों के विषयों से, निगृहीतानि = संयम में होती हैं, तस्य=उसकी, प्रज्ञा=बुद्धि, प्रतिष्ठिता= पूर्ण स्थिर

अनुवाद व भावार्थ— इसलिए हे महाबाहो! जिस पुरुष की सभी इन्द्रियाँ अपने अपने विषयों के भोगों से सब प्रकार से वशीभूत होती हैं, उसी की बुद्धि पूर्णरूप से स्थिर होती है ।

तात्पर्य— स्थिर बुद्धि के लिए इन्द्रियों का पूर्णरूप से संयमित होना आवश्यक है ।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः । 69 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— सर्वभूतानां = सभी प्राणियों की, या =जो, निशा = रात्रि होती है, तस्यां = उसी में, संयमी = संयमशील, जागर्ति = जागता रहता है, यस्यां = जिसमें, जाग्रति = जागता है, सा = वह, निशा = रात्रि, पश्यतः देखता हुआ, मुनेः = व्यक्ति या मुनि ।

अनुवाद व भावार्थ— सभी प्राणी जिस रात्रि में स्वभावतः सोते हैं, उसमें संयमी मुनि जागता रहता है और जिस दिन में सभी प्राणी जागे हुए नाशवान सांसारिक सुखों की प्राप्ति हेतु नाना प्रकार के कार्यों में लगे रहते हैं, परमात्मा के तत्व को जानने वाले मुनि के लिए लोगों का वह जागना रात्रि के समान होता है अर्थात् वह स्थिर बुद्धि वाला मुनि नाशवान सांसारिक सुख की ओर से ऐसे मुंह मोड़े रहता है कि मानो वह सोया हो ।

तात्पर्य— सामान्य जीवन जीने वाले असंयमी व्यक्ति जागते हुए भी सोये हुए के समान होते हैं जबकि संयमी व्यक्ति रात दिन जगे हुए ही होते हैं ।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं—समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।

तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी । 70 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— यद्वत् =जिस प्रकार, प्रतिष्ठं = अपनी परिधि में स्थित, समुद्रम् = महासागर, आपः = जल, प्रविशन्ति = प्रवेश करते हैं, आपूर्यमाणम् = भरा जाता हुआ, अचलम् = स्थिर होता है, तद्वत् = उसी प्रकार, सर्वे= सब, कामा = कामनायें, यं = जिसमें, प्रविशन्ति = प्रवेश करते हैं, सः = वह, शान्तिम् =शान्ति को, आप्नोति = प्राप्त करता है, न = नहीं, कामकामी = सांसारिक कामनाओं वाला ।

अनुवाद व भावार्थ— जिस प्रकार असंख्य नदियों की अथाह जलराशि के निरंतर समुद्र

में प्रवेश करने के बाद भी समुद्र अपनी परिधि में अचल स्थित रहता है जैसे ही जिस पुरुष में, सभी कामनायें किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किए बिना ही, समा जाती हैं, वही स्थितप्रज्ञ पुरुष परम शान्ति को प्राप्त होता है, भोगों को चाहने वाला नहीं।

तात्पर्य— जिस संयमी व्यक्ति के मन में कोई भी सांसारिक कामनायें हलचल पैदा नहीं कर पाती वही व्यक्ति शाश्वत शांति का लाभ प्राप्त कर सकता है।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।

निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति । 71 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ— यः = जो, पुमान् = पुरुष, सर्वान् = सभी, कामान् = इच्छाओं को, विहाय = छोड़कर, निःस्पृह = निष्काम, चरति = जीता है, स = वह, निर्मम = ममतारहित, निरहंकारः = अहंकार रहित, शान्तिम् = शांति को, अधिगच्छति = प्राप्त होता है।

अनुवाद व भावार्थ — जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग कर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ जीता है, वही वह शान्ति को प्राप्त करता है।

तात्पर्य— कामनारहित, ममतारहित व अहंकाररहित व्यक्ति ही शाश्वत शांति का लाभ प्राप्त करता है।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।

स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति । 72 ।

अन्वय सहित शब्दार्थ — पार्थ = अर्जुन, एषा = ऐसी, ब्राह्मीस्थितिः = ब्रह्ममय बौद्धिक स्थिति, प्राप्य = प्राप्त करके, एनाम् = इसको, न = नहीं, विमुह्यति = मोहित होता है, अन्तकाले = मृत्यु के समय, अपि = भी, अस्याम् = इसमें, स्थित्वा = स्थितहोकरके ब्रह्मनिर्वाणम् = मुक्ति को, ऋच्छति = पा लेता है।

अनुवाद व भावार्थ— हे अर्जुन! पूर्व में कही गई अचल ब्रह्ममय बौद्धिक स्थिति से जो व्यक्ति कभी भी विचलित नहीं होता, मृत्यु के समय भी उसी ब्रह्ममय स्थिति में रहता हुआ वह ब्रह्ममय होकर मुक्ति लाभ प्राप्त कर लेता है।

तात्पर्य— स्थितप्रज्ञ व्यक्ति मृत्यु के बाद मुक्तिलाभ करता है।

अभ्यास प्रश्न 2 —

क — रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति

ख — या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि स्थिरप्रज्ञ का क्या लक्षण होता है तथा स्थिरधी किसे कहते हैं कछुवे की तरह अपनी इन्द्रियों के विषयों से हटा लेने

वाले संयमी व्यक्ति की ही बुद्धि स्थिर हो सकती है असंयमी की कभी नहीं चाहे असंयमी व्यक्ति कितना ही बड़ा ज्ञानी व प्रतिष्ठा प्राप्त क्यों न हो। असंयमी व्यक्ति का ज्ञान व प्रतिष्ठा दिखावे व अहंकार से भरे होते हैं जो उसके लिए व समाज दोनों के लिए हानिकारक सिद्ध होते हैं। स्थितप्रज्ञ पुरुष ही परमात्मा का साक्षात्कार कर पाता है और तब ही उसकी विषयों से पूर्णरूप से आसक्ति निवृत्त हो जाती है।

4.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
विहाय	त्यागकर
कामा	कामनायें
प्रज्ञा	बुद्धि
जहाति	पार कर जाता है,

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1— उत्तर इकाई में देखें ।

अभ्यास प्रश्न 2— उत्तर इकाई में देखें ।

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गीतातत्व चिन्तन — स्वामी आत्मानन्द प्रकाशन—अद्वैत आश्रम, 5 डिही एण्टाली रोड—कलकत्ता
2. भगवद्गीता — चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य
3. श्री मदभगवद् गीता — योगीराज श्री श्यामाचरणलोहिड़ी महाशय एवं भूपेन्द्र नाथ सान्याल ।
4. श्री मदभगवद् गीता — साधक संजीवनी — स्वामी राम सुख दास ।
5. 'गीता — स्वामी अङ्गदानन्द ।
6. श्री मदभगवद् गीता ' यथारूप — श्री श्रीमद ए0सी0 भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुवाद ।
7. श्री मदभगवद् गीता त्रयी — भगवान श्री कृष्णचन्द्र वासुदेव ।

4.8 उपयोगी पुस्तकें

1. श्रीमद भगवद्गीता — तत्त्वविवेचनी (हिन्दी टीका) जयदयाल गोयन्दका, गीताप्रेस, गोरखपुर ।
2. गीता तत्त्वचिन्तन — स्वामी आत्मानन्द प्रकाशन — अद्वैतआश्रम— कल ।
3. श्रीमदभगवद्गीता — योगीराज श्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय एवं भूपेन्द्रनाथ सान्याल ।
4. गीता रहस्य — लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक नारायण प्रेस, पूना ।
5. भगवद्गीता— डॉ. सर्वेपल्लि राधाकृष्णन्— हिन्दू पाकेट बुक्स
6. गीता दर्पण— स्वामी रामसुखदास— गीता प्रेस ।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्थितप्रज्ञ का क्या लक्षण होता है समझाइए ।

इकाई 5. तृतीय अध्याय श्लोक संख्या 01 से 10 तक

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 श्लोक संख्या 01 से 10 तक मूल, अन्वय, अर्थ, व्याख्या

5.3.1 श्लोक संख्या 11 से 20 तक मूल, अन्वय, अर्थ, व्याख्या,

5.4 इकाई का सारांश

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.8 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय साहित्य का नहीं अपितु विश्व साहित्य का एक अमर काव्य है। गीता भगवान की द्विव्य वाणी है यह सभी उपनिषदों का सार है— “सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा” इस अध्याय में नाना प्रकार के हेतु से विहित कर्मों की अवश्य कर्तव्यता सिद्ध की गयी है तथा यह बताया गया है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने-अपने वर्ण आश्रम के लिए विहित कर्म किस प्रकार करने चाहिये, क्यों करने चाहिये, इसके करने और न करने से क्या लाभ हानि है।

इस इकाई में यह समझाया गया है कि कौन से कर्म बन्धन कारक है और कौन से मुक्ति में सहायक है इस तृतीय अध्याय में कर्म योग का विशद वर्णन किया गया है। इस अध्याय के पहले और दूसरे श्लोक में अर्जुन भगवान के अभिप्राय को न समझ पाने के कारण मानो उलाहना दे रहें हैं, 3, 4 श्लोक में दो निष्ठा का वर्णन किया गया है पाँचवें श्लोक में बताया गया है कि क्षण मात्र भी कर्मों का सर्वथा त्याग सम्भव नहीं है। इसी क्रम में आगे श्लोकों में मिथ्याचारी का वर्णन है। आठवें और नौवें में कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ बतलाया गया है। 10 से 16 तक यज्ञ, और सृष्टिचक्र का वर्णन है इसी क्रम में आगे 17-18 में आत्मनिष्ठ ज्ञानी का वर्णन किया गया है। 19 वें में स्वधर्म का पालन निष्काम भाव से करना चाहिये तथा 20 वें श्लोक में लोकसंग्रह का वर्णन आदि इस इकाई में करने का प्रयास किया गया है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपके निम्न प्रयोजन की पूर्ति होगी—

- अर्जुन की शंका— ज्ञान और कर्म में कौन श्रेष्ठ है— इससे आप परिचित होंगे।
- नैष्कर्म्य मीमांसा (श्लोक 3/4-6) को जान सकेंगे।
- यज्ञार्थ कर्म का स्वरूप (श्लोक 3/7-9) क्या है इस विषय पर शोध करने की प्रवृत्ति का अंकुरण होगा।
- विराट यज्ञ ही संसारचक्र की धुरी है। इसकी आप समीक्षा कर सकेंगे और ज्ञानी व्यक्ति के लिये कर्तव्य का अभाव तथा लोकसंग्रह हेतु कर्म करने की प्रेरणा (3/20-25) आदि को पढ़कर आप गौरव बोध से युक्त होंगे।
- गीता जीवन जीने की कला सिखाती है। तथा इसको श्लोकों तक ही सीमित न मान कर आत्मसात् करने के लिये प्रयास करेंगे।

5.3 श्लोक संख्या 01 से 10 तक मूल, अन्वय, अर्थ, व्याख्या

अर्जुन उवाच

ज्यायसी चेत् कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।

तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ 1 ॥

अन्वय—अर्जुन: उवाच (अर्जुन बोले), जनार्दन (हे जनार्दन), चेत (यदि) कर्मणः (कर्मयोग की अपेक्षा) बुद्धिः (ज्ञान योग), ज्यायसी (श्रेष्ठ है) ते (तुम्हारा), मता (अभिप्राय है), तत्किं (तब क्यों), घोरे कर्मणि (युद्धरूपघोर कर्म में), केशव (हे केशव!), मां (मुझको), नियोजयसि (नियुक्त करते हो ?) ॥ 1 ॥

अर्थ—अर्जुन बोले हे जनार्दन ! यदि आपको कर्म की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ मान्य है तो फिर हे केशव ! मुझे भयंकर कर्म में क्यों लगाते हैं ?

व्याख्या— इस श्लोक में अर्जुन भगवान के अभिप्राय को ठीक से न समझ पाने के कारण (दुविधा) संदेह में है और एक तरह से उलाहना देते हुये कह रहे हैं कि यदि कर्मयोग की अपेक्षा बुद्धि ही मोक्ष का अन्तरंग साधन है और अधिकतर श्रेष्ठ है तो फिर आप क्यों मुझको "तस्मात् युद्धस्व", तस्मात् उत्तिष्ठ" इत्यादि बारम्बार कहकर घोर हिंसात्मक कर्म में लगा रहे हैं। अर्जुन श्री कृष्ण की बातों को न समझ पाने के कारण कहता है कि आपने ही, भगवन कहा है कि— दूरेण ह्यवरं (ह्यवरं) कर्म बृद्धियोगाद्धनंजय, बुद्धौ शरणमन्विच्छ (2/49)— अर्थात् कर्मयोग बुद्धि योग से बहुत तच्छ है इसलिये तुम्हें बुद्धि में शरण लेनी चाहिये आदि। अर्जुन समझ नहीं पाता है कि उसके लिये क्या करना श्रेयस्कर है क्योंकि अर्जुन यह सोच रहे हैं कि मेरे समक्ष भगवन ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं। युद्ध एक घोर कर्म है उसमें हिंसा है उसके द्वारा भला ब्राह्मी स्थिति कैसे प्राप्त हो सकती है और स्थित प्रज्ञ कैसे बन सकता है— यह सब शंका अर्जुन के मन में उठना स्वभाविक वह श्री कृष्ण से कहते हैं कि आप निश्चित कर लीजिये की मेरे लिए कौन सा पथ ज्ञान क या बुद्धि का कल्याणकारी सिद्ध होगा उसी का निश्चय करके आप उपदेश दीजिये यहां अर्जुन की उलझन बढ़ गयी है अर्जुन को जब कौटुम्बिक मोह जागृत हुआ तब अर्जुन की वृत्ति युद्ध कर्म की तरफ से उपरत् होकर ज्ञान कर्म की तरफ झुकती दिखाई दे रही है। क्योंकि जब अर्जुन कहते हैं कि अब आप मुझको घोर कर्म में क्यों लगा रहे हैं ? यहां जो अर्जुन का प्रश्न है वह भगवान के यर्थात् तात्पर्य को न समझ पाने के कारण है। क्योंकि 'बुद्धि' का 'ज्ञान' अर्थ अर्जुन ने समझ लिया है। यदि यही बुद्धि का अर्थ सम बुद्धि रूप कर्म योग समझ लेते तो इस प्रकार के प्रश्न का कोई औचित्य ही नहीं होता। इस श्लोक में जनार्दन और केशव आने से विद्वानों में भ्रम उत्पन्न होता है कि यह 'पुनरुक्तिदोष' होगा। किन्तु अर्जुन की मानसिक स्थिति को देखते हुये एकधिक सम्बोधन अनुकूल प्रतीत होता है जनार्दन का अर्थ होता है— 'दुष्ट जनों का नाश' और केशी दैत्य का वध करने के कारण केशव नाम से प्रसिद्ध है।

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव में।

तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ 2 ॥

अन्वय—व्यामिश्रेणइव (विशेष रूप से मिश्रित से), वाक्येन (वाक्य के द्वारा) में (मेरी) बुद्धि (बुद्धि को) मोहयसि इव(मानो मोहित कर रहे हो), येन (जिसके द्वारा) अहं (मैं) श्रेयः (कल्याण को) आप्नुयाम् (प्राप्त कर सकूँ) तत् (वह) एकं (एक) निश्चित्यवद (निश्चय करके बोला) ॥ 2 ॥

अनुवाद— आप अपने मिले हुये वचनों से (गोल-माल) मेरी बुद्धि को मानो मोहित कर रहे हैं। इसलिये आप कृपा करके निश्चय पूर्वक मुझे बतायें कि इनमें से मेरे लिये सर्वाधिक श्रेयष्कर क्या होगा ?

व्याख्या— अर्जुन आशंका करते हुये कहते हैं कि हे भगवन ! कभी आप कर्म की प्रशंसा कर रहे हैं और कभी ज्ञान की, इस संदेहात्मक बातों से मेरी बुद्धि विमोहित हो रही है। 'व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव में— इन पदों में अर्जुन का कहने का तात्पर्य यह है कि एक तरफ आप मुझको कहते हैं कि 'कर्म करो' 'कुरुकर्माणि' (2/48) और कभी आप कहते हैं कि 'ज्ञान का आश्रय लो' — 'बुद्धौ शरणमन्विच्छ' (2/49) आपके इन परस्पर विरोधी मिले जुले वचनों से मेरी बुद्धि मोहित सी हो रही है अर्थात् मैं स्पष्ट रूप से समझ नहीं पा रहा हूँ और मेरी स्थिति विमूढ़ की हो गई है मुझे कर्म करना चाहिये या ज्ञान की शरण में जाना चाहिये अर्जुन कहते हैं कि— 'तदेकं वदनिश्चित्य' अर्थात् मेरा कल्याण कर्म करने से होगा या ज्ञान से होगा इनमें से

एक निश्चित करके आप मुझको बतलाइए इस बात को अर्जुन पहले भी कह चुके हैं कि जिससे मेरा निश्चित कल्याण हो वह बात मेरे लिए कहिये— 'यच्छेयःस्यान्निश्चतं ब्रूहितन्मे' (2/7) और फिर मैं वही प्रार्थना कर रहा हूँ इस प्रकार के अर्जुन के प्रश्न का उत्तर भगवान आगे के 3,4,5 में क्रमशः दे रहे हैं।

श्रीभगवानुवाच

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।

ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥३॥

अन्वय—श्री भगवान् उवाच (श्री भगवान् बोले), अनघ (हे अनघ) अस्मिन् लोके (इस संसार में) द्विविधा निष्ठा (दो प्रकार की ब्रह्मनिष्ठा) मया (मेरे द्वारा) पुरा (पहले से) प्रोक्ता (कही गयी है), ज्ञानयोगेन (ज्ञानयोग द्वारा) सांख्यानां (ज्ञानाधिकारी लोगों का) कर्मयोगेन (निष्काम कर्म योग के द्वारा) योगिनां (योगियों की) (निष्ठा कही गयी है) ॥३॥

अर्थ— श्री भगवान् ने कहा — हे निष्पाप अर्जुन, इस संसार में दो प्रकार की ब्रह्मनिष्ठा मेरे द्वारा पहले ही कही गयी है, अर्थात् मैंने पहले ही दो प्रकार के कल्याण प्राप्ति के मार्गों के सम्बन्ध में कहा है कि ज्ञान योग के द्वारा ज्ञानियों की तथा निष्काम कर्मयोग के द्वारा कर्मयोगियों की निष्ठा सूचित हुई है।

व्याख्या— श्री भगवान् ने कहा— हे निष्पाप अर्जुन! मैं पहले ही बता चुका हूँ कि आत्मसाक्षात्कार प्रयत्न करने वाले दो प्रकार के पुरुष होते हैं। कुछ ऐसे ज्ञान योग के द्वारा समझने का प्रयत्न करते हैं का प्रयत्न करते हैं। और दूसरे योगी लोग निष्काम कर्मयोग से इसे समझने का या जानने का प्रयत्न करते हैं इस प्रकार दोनो ही मार्गों के अनुसार कर्म तो करना ही पड़ेगा। क्योंकि कर्म अनिवार्य हैं।

समभाव में स्थित एक ही निष्ठा है जिसे ज्ञान योग और कर्म योग नाम से दो प्रकार की कही गयी हैं। भगवान् कहते हैं कि जिस प्रकार दो तरह की निष्ठा होती है उसी प्रकार लोक में दो तरह के पुरुष भी होते हैं— ' द्वाविमौ पुरुषौ लोके' (गीता 15/16) इसी को 'क्षर' और अक्षर भी कहा गया है— क्षर (नाशवान या क्षणिक होता है) जबकि अक्षर से तात्पर्य अविनाशी स्वरूप से है। इस प्रकार 'क्षर' अर्थात् अविनाशी स्वरूप की सिद्धि असिद्धि या प्राप्ति-अप्राप्ति समभाव रहना कर्मयोग है। और 'अक्षर' को स्पष्ट करते हैं कि जब 'क्षर' से विमुख होकर अक्षर में स्थित हो जाता है तब यह साधक का ज्ञान योग है किन्तु क्षर से अक्षर से भी अतिरिक्त पुरुष है जिसे उत्तम पुरुष या परमात्मा नाम से कहा जाता है— 'उत्तमःपुरुस्त्वन्यः परामात्मैत्युदाहृतः' (15/17) ऐसा परमात्मा के सर्वथा सर्वभाव से शरण हो जाना 'भक्तियोग' कहा गया है इसलिये जहां 'क्षर' की प्रधानता होगी उसको कर्मयोग कहा जाता है और जहां 'अक्षर' की प्रधानता होगी उसको ज्ञान योग और जहां परमात्मा की प्रधानता होगी उसे भक्ति योग कहा जाता है। भगवान् ने जो दो निष्ठा सांख्य निष्ठा और ज्ञान निष्ठा की बात कही है उसमें 'ज्ञानना' (विवेक) तो मुख्य विषय होता है किन्तु इन दोनो निष्ठाओं से अलग भगवत् निष्ठा में 'मानना' (श्रद्धा-विश्वास) मुख्य है। भगवत् निष्ठा में साधक को पहले 'भगवान् है' इसका अनुभव न होकर विश्वास होता है कि स्वरूप और संसार से भिन्न विलक्षण कोई तत्त्व भगवान् है 'ज्ञानना' और 'मानना' दोनो ही संदेह रहित है सांख्य निष्ठा और योग निष्ठा में साधन-साध्य का सम्बन्ध में सांख्य निष्ठा 'साधन' है तो योग निष्ठा 'साध्य' है किन्तु भगवन्निष्ठा में साधन साध्य जैसा कुछ नहीं है। 'भगवन्निष्ठा' में साधक भगवान् और उनकी कृपा पर आश्रित रहता है। भगवन्निष्ठा या भक्ति योग का भी वर्णन जगह-जगह पर रहता है। जैसे गीता के 03/30 में कहा गया है— 'मयि

सर्वाणि कर्माणि सन्यस्य' – अर्थात् सभी कर्मों को मुझमें समर्पित कर दो इस वाक्य से भक्तियोग या भगवतनिष्ठा का वर्णन होता है 'ज्ञानयोगेन सांख्यानाम्' से तात्पर्य है कि प्रकृति से उत्पन्न सम्पूर्ण गुण ही गुणों में बरत रहें हैं सम्पूर्ण क्रियाएं गुणों में, इन्द्रियों में ही हो रही हैं, 'गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते' अर्थात् गुण और कर्म के विषय में जानने वाला तत्ववेत्ता ऐसा मानता है कि मेरा इन गुणों से, इन्द्रियों से कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसा यदि ज्ञात हो जाय और इसके बाद कर्तापन के अभिमान का भी त्याग कर दे तो इसे 'ज्ञानयोगनिष्ठ' कहते हैं।

'कर्मयोगेनयोगिनाम्' से तात्पर्य है कि कर्म तथा उसके फल में किसी प्रकार की कामना, ममता और आसक्ति का सर्वथा त्याग कर देना, तथा कर्म की सिद्धि और असिद्धि में सम रहना 'कर्मयोग' है।

अब प्रश्न एक स्वाभाविक उठेगा कि क्या कोई मनुष्य 'ज्ञानयोग' और 'कर्मयोग' का एक साथ सम्पादन कर सकता है यदि एक साथ सम्पादन करें तो उसको कौन सी निष्ठा कहेंगे— इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि दोनों निष्ठा एक साथ एक व्यक्ति नहीं कर सकता है क्योंकि सांख्य योग में आत्मा और परमात्मा में अभेद सम्बन्ध मानकर परमात्मा के निर्गुण— निराकार, सत्—चित् आनन्द स्वरूप का चिन्तन किया जाता है जबकि कर्मयोग में फलाकांक्षा रहित कर्म को करते हुये भगवान के सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान और सर्वेश्वर मानकर उपासना किया जाता है।

न कर्मणामनारम्भानैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।

न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ 4 ॥

अन्वय—पुरुषः (मनुष्य) कर्मणां (कर्मों के) अनारम्भात् (अनुष्ठान किये बिना) नैष्कर्म्यं (निष्क्रिय अवस्था को) न अश्नुते (प्राप्त नहीं कर सकता), संन्यसनादेव (केवल संन्यास ग्रहण या कर्मत्याग से) सिद्धिं (सिद्धि को) न अधिगच्छति (नहीं प्राप्त कर सकता) ॥ 4 ॥

अर्थ—कर्मों का अनुष्ठान न करके मनुष्य कर्मबन्धन से मुक्त या आत्मज्ञान में स्थिति नहीं प्राप्त कर सकता, फिर केवल कर्मत्याग से भी सिद्धि अर्थात् आत्मज्ञान में प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती।

व्याख्या — मनुष्य न (तो) कर्मों के न करने से निष्कर्मता को प्राप्त होता है और न कर्मों की त्यागने मात्र से भगवत् सिद्धि रुचि साक्षात्कार रूपी सिद्धि को प्राप्त होता है। अतएव सम्यक् चित्त शुद्धि के लिये ज्ञानोत्पत्ति पर्यन्त वर्णाश्रमोचित् कर्मादि करना चाहिये। अन्यथा चित्तशुद्धि के अभाव में ज्ञानोत्पत्ति न होगी। कर्मयोग का आचरण करने वाला मनुष्य कर्मों को करते हुये ही निष्कर्मता को प्राप्त होता है। निष्कर्मता से तात्पर्य जिस परिस्थिति में मनुष्य के कर्म अकर्म हो जाते हैं अर्थात् बन्धन कारक नहीं होते हैं उस स्थिति को 'निष्कर्मता' कहते हैं। जो मनुष्य निष्काम भाव से अपने कर्तव्यों को करता है उसके फल में आसक्ति नहीं रखता है तब वह कर्म बन्धनकारी नहीं होते हैं। इसलिये जो आसक्ति अर्थात् फलासक्ति के बिना कर्म होता है वही कर्म निष्काम कर्म कहा जाता है मनुष्य यदि कर्मों का आरम्भ न करें, तो निष्कर्मता की भी प्राप्ति सम्भव नहीं है भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन यदि तुम निष्काम कर्म करोगे तो उसका परिणाम कर्म बन्धन से मुक्त रहेगा क्योंकि सम्बुद्धि से युक्त ज्ञानी जन कर्मों से उत्पन्न होने फल को त्याग कर जन्म रूप बन्धन से मुक्त हो निर्विकार परमपद को प्राप्त हो जाते हैं— 'जन्म बन्ध विनिर्मुक्तः पदमं गच्छन्त्यनामयम्।' (2/51) श्री कृष्ण भगवान आगे स्पष्ट करते हैं कि इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाना चाहिये कि यदि मैं कर्म न करू तो अपने आप ही बन्धन से मुक्त हो जाऊँगा फिर कर्म करने की क्या आवश्यकता है। इसलिये ऐसा कोई भ्रम उत्पन्न न हो इसलिये कर्मयोग के प्रकरण के प्रारम्भ में भी

भगवान ने कहा कि— 'मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि' — अर्थात् तुम्हारा कर्म न करने में आसक्ति नहीं होनी चाहिये 'सिद्धि' से तात्पर्य है कि जब साधक को ब्रह्म ज्ञान प्राप्त हो जाता है तब एक ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता है जिसमें आत्मा-परमात्मा का किंचित मात्र भी भेद नहीं रहता है और वह स्वयं ही ब्रह्म रूप हो जाता है। इसलिये इस स्थिति को सिद्धि कहते हैं। समस्त कामना युक्त भोग पदार्थों ममता, आसक्ति, कर्तापन, आदि का अभिमान त्याग कर परमात्मा का निरन्तर चिन्तन करने से सिद्धि प्राप्त होती है केवल कर्मों के त्याग मात्र से सिद्धि प्राप्त नहीं होती है— न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति। इस प्रकार सिद्धि प्राप्त करने के लिए कर्तापन आदि का त्याग करके सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में अभेद भाव से अवस्थित हो जाना आवश्यक है इस प्रकार कर्मयोगी का 'नैष्कर्म्य' वह अवस्था है जहाँ वह तीव्र से तीव्र कर्म करता है। पर कर्तापन न रहने के कारण कर्म उसे क्षुब्ध नहीं कर पाता है यही गीता में वर्णित 'पद्मपत्रमिवांभसा' की स्थिति है कर्मयोगी के लिए सिद्धि का अर्थ है उसकी अपनी साधना में सफलता।

ज्ञानी और योगी दोनों को 'नैष्कर्म्य' और 'सिद्धि' की प्राप्ति होगी यदि वह अपने कर्म को बीच में नहीं छोड़ेंगे तब कर्म के पीछे किसी प्रकार की कामना नहीं होनी चाहिये क्योंकि कर्म बन्धन कारी होता है वह बन्धन में बांध लेता है उसमें विष होता है यह कर्ता के जीवन को विसाक्त कर देता है किन्तु निष्कामता से कर्म किया जाय तो बन्धन का डर नहीं रहता है कर्म बन्धन कारी पर अपरिहार्य है इस श्लोक का निष्कर्ष यह निकला है कि नैष्कर्म्य की अवस्था प्राप्त करने के लिए कर्म करों, निष्काम हो कर कर्म करों, कर्तापन और भोक्तापन का त्याग करो— यदि ज्ञानयोगी हो तो विवेक द्वारा और यदि कर्मयोगी तो समर्पण के द्वारा कर्मों से कोई मुक्त नहीं हो सकता है।

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ 5 ॥

अन्वय—हि (निश्चय ही) कश्चित् (कोई), जातु (कभी), क्षणम् अपि (क्षण काल भी), अकर्मकृत् (कर्म न करके), न तिष्ठति (नहीं रह सकता है) हि (क्योंकि) प्रकृतिजैर्गुणैः (प्रकृति जन्म गुणों के द्वारा) अवशः (अवश होकर), सर्वः (सब लोग) कर्म कार्यते (कर्म में प्रवर्तित होते हैं) ॥ 5 ॥

अर्थ— "कभी कोई क्षण भर के लिये भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता, क्योंकि प्रकृति से उत्पन्न गुण सबको विवश करके उनसे कर्म कराते रहते हैं।

व्याख्या— कोई भी पुरुष किसी भी अवस्था में क्षण मात्र के लिए भी, ज्ञानी हो या अज्ञानी कर्म किये बिना नहीं रह सकता है क्योंकि सभी पुरुष प्रकृति से उत्पन्न हुये गुणों के द्वारा विवश होकर कर्म करते हैं। कारण कि प्रकृति और प्रकृति से उत्पन्न गुण जब तक उत्पन्न गुण जब तक जीवित रहते हैं तब तक कोई भी पुरुष कर्म किये बिना नहीं रह सकता है। इसलिये जबतक शरीर रहता है तब तक मनुष्य अपनी प्रकृति के वशीभूत होकर किंचित कर्म करता रहता है। कोई ज्ञानी हो या अज्ञानी मूढ़ हो या विवेकी लेकिन सभी को अपना जीवन निर्वाह करने के लिए शरीर से ऐच्छिक या अनैच्छिक कर्म करना पड़ता है। भगवान कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो कर्म को छोड़कर एक क्षण के लिए भी रह सके। जब तक शरीर है तब तक उठना, बैठना, खाना, पीना, श्वास लेना, सोना आदि कर्म कभी रूक नहीं सकता है। 'क्षणम्' पद का प्रयोग करके यह बताने का प्रयास किया गया है कि जो ज्ञानी व्यक्ति है वह यदि कहता है कि शरीर से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, मैं कुछ भी कर्म नहीं करता हूँ फिर भी शरीर के निर्वाह के लिए उसे कर्म करना पड़ेगा जैसे, श्वास लेना, पलक झपकना आदि ऐसे कर्म हैं जो इच्छा करके भी व्यक्ति रोक नहीं सकता है। ये सब

अनैच्छक कर्म की श्रेणी में आता है और ऐच्छिक श्रेणी में वे कर्म आते हैं जो इच्छा पूर्वक विचार करके चिन्तन-मनन करके किया जाता है। इस प्रकार 'जातु' पद से यह बताने का प्रयास किया गया है कि व्यक्ति किसी भी अवस्था में हो, अवस्था से तात्पर्य जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति मुर्च्छा आदि किसी भी अवस्था से है। किसी भी अवस्था में व्यक्ति कर्म किये बिना नहीं रह सकता है। मनुष्य अपने पूर्व जन्मों के किये हुये कर्मों के संस्कार से उत्पन्न स्वाभाव को प्राप्त करता है और इसी स्वाभाव के अधीन होकर कर्मों में प्रवृत्त होता है। इस प्रकार गुणों के वश में होकर कर्म करने के लिए मनुष्य बाध्य होता है। 'प्रकृतिजैर्गुणैः' से तात्पर्य है प्रकृति जनित गुण। सांख्य दर्शन में गुणों की साम्यावस्था को प्रकृति कहा गया है— 'गुणानां साम्यावस्था प्रकृतिः'। परन्तु भगवान के मत में तीनों गुण प्रकृति के कार्य हैं, इस बात को और अत्यधिक प्रमाणित करने के लिए ही भगवान ने यहां 'गुणैः' पद के साथ 'प्रकृतिजैः' विशेषण को भी रखा है। इसी तरह गीता के 13/19 वें श्लोक में 'प्रकृति संभवाः' और कहीं 'प्रकृतिजान' 13/21 'कहीं प्रकृति संभवाः' (14/5) और कहीं प्रकृतिजैः (18/40) विशेषण देकर अन्यत्र भी जगह-जगह गुणों को प्रकृति का कार्य बतलाया है। 'कार्यते ह्यवशः कर्म' अर्थात् कर्म करने में हम परतंत्र हो सकते हैं किन्तु उनमें रागद्वेष करने में अथवा न करने में हम स्वतंत्र हैं। क्रिया मात्र केवल प्रकृति में ही होती है। मनुष्य प्रकृति के गुणों के अधीन तब हो जाता है जब वह गुणों के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है। तब वह प्रकृति की क्रियाओं के साथ सम्बन्ध स्थापित करके मनुष्य जाग्रत, सुषुप्ति, स्वप्न, मुर्च्छा, समाधि आदि अवस्थाओं में भी क्षणमात्र बिना कर्म किये नहीं रह सकता है।

कर्मन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।

इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ 6 ॥

अन्वय—यः (जो) कर्मन्द्रियाणि (कर्मन्द्रियों को), संयम्य (संयत कर के), मनसा (मन के द्वारा) इन्द्रियार्थान् (इन्द्रियों के विषयों को), स्मरन् (याद करते हुये) आस्ते (रहता है) विमूढात्मा (मूढ़बुद्धि) सः (वह) मिथ्याचारः उच्यते (कपटाचारी कहलाता है) ॥ 6 ॥

अर्थ—इस लिये जो मूढ़ बुद्धि पुरुष कर्मन्द्रियों को (वश में) संयत करके, मन के द्वारा इन्द्रिय विषयों का चिन्तन करता रहता है वह निश्चित रूप स्वयं को धोखा देता है और मिथ्याचारी कहलाता है।

व्याख्या— इस श्लोक में यह बताने का प्रयास किया गया है कि बहुत से लोग अपने को योगी बताते हैं, किन्तु स्वयं इन्द्रिय तृप्ति के विषयों में सदैव लगे रहते हैं। वह सबसे बड़ा धूर्त होता है। भले ही वह यदा-कदा दर्शन का उपदेश क्यों न दे, ऐसे धूर्त (दम्भी) पुरुष का चित्त सदैव अशुद्ध रहता है। कर्मन्द्रिय दसों इन्द्रियों का वाचक है, क्योंकि गीता में श्रोत्रादि पाँच इन्द्रियों के लिये कहीं भी 'ज्ञानेन्द्रिय' शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है और न तो वाणी आदि के लिये कर्मन्द्रिय शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसलिये 'कर्मन्द्रियाणि' से तात्पर्य है कि जिनके द्वारा कर्म किये जाय ऐसी सभी इन्द्रियों का वाचक मानना युक्तिसंगत है। इसलिये कर्मन्द्रियों के अन्तर्गत ही ज्ञानेन्द्रियां मानी गयी हैं। मन की क्रियाएँ संकल्प-विकल्प के रूप में होती हैं, इन क्रियाओं को भी कर्म मानती हैं— 'शरीरवांगमनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः' (18/59) क्योंकि यदि कारण प्रकृति क्रियाशील है तो उसका कार्य भी क्रियाशील होगा क्योंकि कारण के गुण कार्य में सम्मिलित होते हैं, कारण से ही कार्य का निर्धारण होता है 'संयम्य' पद से तात्पर्य है इन्द्रियों को हठपूर्वक बाहर से रोकना है। अर्जुन के मन में शंका होती है और श्री कृष्ण भगवान से वह पूछते हैं कि हे भगवन यदि कोई साधक भगवान का ध्यान करने के लिए अपनी इन्द्रियों को हठपूर्वक विषयों की तरफ जाने से रोकने का प्रयास करता है फिर भी उसका मन उस समय यदि वश में नहीं रहता और वह विषयों का चिन्तन

करता रहता है तो क्या उसे भी मिथ्याचारी कहेंगे ? इसका उत्तर देते हुये भगवान कहते हैं कि वह मिथ्याचारी नहीं कहा जायेगा क्योंकि उसका उद्देश्य मन से चिन्तन करने का नहीं है। वह मन को रोकने की चेष्टा करता है। किन्तु उसके मन में पूर्व जन्म की आदत, आसक्ति और संस्कार हैं उसके कारण मन विषयों की ओर बलात् चला जाता है। अतः उसमें उसका कोई दोष नहीं है, योग, ध्यान की प्रारम्भिक अवस्था में ऐसा होना स्वाभाविक ही है। सांसारिक विषय वासना के भोग ऐसे होते हैं जिनको बाहर से भी मनुष्य द्वारा भोगा जा सकता है। और मन द्वारा भी। बाहर से राग पूर्वक भोग भोगने से अन्तःकरण में जैसा संस्कार पड़ता है वैसा ही संस्कार मन के द्वारा भोग भोगने से या विषयों का चिन्तन करने से पड़ता है। मनुष्य वाह्य विषय भोगों का लोक व्यवहार आदि के भय से त्याग करता है किन्तु मन से भोगों का उपभोग करता रहता है, और मिथ्याभिमान करता रहता है। संसार को दिखाता है कि मैं बहुत बड़ा त्यागी हूँ ऐसे लोगों को 'मिथ्याचारी' कहा गया है। क्योंकि ऐसे लोग ठीक उसी तरह के होते हैं जैसे स्थिर भाव से खड़ा रहने वाले बगुला मछलियों को चुप-चाप पकड़ कर धोखा देता है क्योंकि कपटी लोगों के मन में दूसरा भाव रहता है, और दिखाने वाला बाहर दूसरा भाव रहता है। अर्थात् हम बोल चाल की साधारण भाषा में कहते हैं जो 'जैसा दिखता वैसा होता नहीं है' यही मिथ्याचारी का उदाहरण है। साधक को यह अति आवश्यक है कि जैसे वह अपने को वाह्य भोग पदार्थ आदि से निवृत्त (दूर) रखते हैं। वैसे ही मन से भी भोग पदार्थों आदि का त्याग कर दें, क्योंकि मन द्वारा भोगों के चिन्तन का सुख लेने से विशेष हानि होती है। वास्तव में मन से भोगों का त्याग कर देना और उसका चिन्तन न करना ही वास्तविक त्याग है। गीता 2/64 में कहा गया है कि— 'रागद्वेष नियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्' अर्थात् वशीभूत अन्तःकरण वाला कर्मयोगी साधक राग द्वेष से रहित अपने वश में की हुई इन्द्रियों के द्वारा विषयों का सेवन करता हुआ अन्तःकरण की निर्मलता को प्राप्त हो जाता है।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।

कर्मन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ 7 ॥

अन्वय—अर्जुन (हे अर्जुन !) यः तु (परन्तु जो) मनसा (मन के द्वारा), इन्द्रियाणि (इन्द्रियों को), नियम्य (संयत करके), असक्तः (अनासक्त भाव से) कर्मन्द्रियैः (कर्मन्द्रियों के द्वारा), कर्मयोगं (कर्म योग को) आरभते (अनुष्ठान करते हैं) सः (वह) विशिष्यते (श्रेष्ठ कहलाते हैं) ॥ 7 ॥

अर्थ—'हे अर्जुन ! जो (पुरुष) मन से इन्द्रियों को वश में कर के अनासक्त हुआ कर्मन्द्रियों से कर्मयोग का आचरण करता है, वह श्रेष्ठ है।'

व्याख्या— जो मन के द्वारा सारी ज्ञानेन्द्रियों को नियमित और ईश्वर परायण करके कर्मन्द्रियों के द्वारा कर्म रूपी योग या उपाय का अनुष्ठान करते हैं। फलाकांक्षा से रहित तथा चित्तशुद्धि के कारण ज्ञान वान होते हैं। अर्थात् जो लोग इन्द्रियों को मन के द्वारा क्रिया की परावस्था में रखकर सारे कर्म करते हैं और कर्मन्द्रियां सारे कर्म करती हैं अनासक्त रूप होकर वे ही श्रेष्ठ योगी है। 'तु' पद से स्पष्ट किया गया है कि जो अनासक्त होकर कर्म करते हैं। वह मिथ्याचारी और सांख्ययोगी दोनों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। 'मनसा' पद में मन, बुद्धि, अहंकार चित्त सभी का समावेश है। मन के द्वारा इन्द्रियों को वश में करने का अर्थ है कि विवेकवती बुद्धि के द्वारा मन और इन्द्रियों से स्वयं का कोई सम्बन्ध न स्वीकार करना मन के द्वारा ही इन्द्रियों पर लगाम लगाया जाता है क्योंकि इन्द्रियों को किस विषय से और कब हटाना है यह इन्द्रियां नहीं तय कर पाती है क्योंकि वह स्वतंत्र नहीं होती है और न ही स्वतंत्र रूप से उनका कोई आग्रह होता

है। जहां मन इन्द्रियों को प्रवृत्त करेगा वहां इन्द्रियां प्रसक्त हो जायेंगी जहां से हटाना चाहेगा वहां से इन्द्रियां हट जायेगी अर्थात् इन्द्रियां स्वतंत्र न होकर मन की गुलाम होती है इन्द्रियां वश में तभी हो सकती हैं जब इनके साथ ममता या 'मेरा पन' का अभाव हो जाता है गीता के 12/11 श्लोक में कर्मयोगी के लिए इन्द्रियों को वश में करने की बात आयी है। 'सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरुयतात्मवान्' अर्थात् वश में की हुई इन्द्रियों के द्वारा ही कर्म योग का आचरण होता है। श्लोक में 'असक्तः' पद प्रयुक्त हुआ है इससे तात्पर्य है कि समस्त दोष आसक्ति में ही प्रयुक्त होता है यह आसक्ति दो प्रकार की होती है।

- 1 . कर्मों में आसक्ति
- 2 . फलों में आसक्ति

यदि आसक्ति विद्यमान रहती है तो योग सिद्ध नहीं हो सकता है। आसक्ति के रहते योग सिद्ध नहीं हो सकता है। अतः साधक को कर्मों का त्याग न करके उसमें आसक्ति का ही त्याग करना चाहिये आसक्ति रहित होकर कर्म किये बिना कर्म से सम्बन्ध विच्छेद नहीं हो सकता है। जब कोई भी मनुष्य भी अपने लिए कर्म न करके लोकहित के लिए कर्म करता है तब उसकी फलासक्ति स्वतः समाप्त हो जाती है। कर्म योगी की वास्तविक परीक्षण आसक्ति रहित होने में ही है। कर्मों के फलों की इच्छा न करना और उसमें सर्वथा असंग हो जाना ही आसक्ति रहित होना है। यह देखने में आता है कि साधारण मनुष्य बिना फल को जाने कर्म में प्रवृत्त नहीं होता है परन्तु साधक कर्म योगी फलत्याग का उद्देश्य लेकर ही किसी कार्य में प्रवृत्त होता है।

यद्यपि ज्ञानयोगी और कर्मयोगी दोनों ही फलेच्छा: और आसक्ति का त्याग करते हैं फिर भी ज्ञान योग की अपेक्षा कर्म योग अधिक सुगम सिद्ध होता है। इसका कारण यह है कि कर्मयोगी को फिर किसी अन्य साधक की आवश्यकता नहीं रहती है जबकि ज्ञान योगी को देहाभिमान और क्रिया पदार्थ की आसक्ति मिटाने के लिए निष्काम भाव से किये गये 'कर्मयोग' की आवश्यकता रहती है। पाँचवें अध्याय में अर्जुन पूछते हैं कि सन्यास और योग में कौन श्रेष्ठ है। तब भगवान ने उत्तर में दोनों को ही कल्याण करने वाला बताकर 'कर्मसन्यास' की अपेक्षा 'कर्मयोग' को श्रेष्ठ कहा है। आपने अब तक देखा कि मिथ्याचारी की निंदा और कर्मयोग की प्रशंसा करके अब श्री कृष्ण अर्जुन को कर्म करने का उपदेश देते हैं—

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।

शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥ ४ ॥

अन्वय—त्वं (तुम) नियतं (नित्य) कर्म (कार्य) कुरु (करो) हि (क्योंकि) अकर्मणः (कर्म न करने की अपेक्षा) कर्म ज्यायः (कर्म करना श्रेष्ठ है), अकर्मणः (कर्म न करने पर) ते (तुम्हारी) शरीरयात्रापिच (शरीर यात्रा भी), न प्रसिद्ध्येत् (निर्वाह न होगा) ॥ ४ ॥

अर्थ— तू शास्त्रविहित स्वधर्म रूपी कर्तव्य कर्म को करो क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। तथा कर्म न करने से तेरा शरीर—निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा।

व्याख्या— हे अर्जुन ! जब कर्म किये बिना काम नहीं चल सकता तो तुम नित्यकर्म सन्ध्योपासनादि करो। क्योंकि कर्मों से शून्य होने पर तुम्हारी शरीर यात्रा का भी निर्वाह न होगा। इस प्रकार निरन्तर क्रिया की परावस्था में रहकर तथा फलाकांक्षा रहित होकर कार्य करना चाहिये। क्योंकि कर्तव्य कर्म करने से मनुष्य का अन्तःकरण शुद्ध होता है, और उसके पापों का प्रायश्चित भी होता है। तथा कर्तव्य कर्म न करने से पाप का वह

भागी होता है एवं निद्रा, आलस्य और प्रमाद में फंसकर अधोगति प्राप्त होता है। अतः कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना सर्वथा श्रेष्ठ है। “मोक्षयसेऽशुभात्” (4/16) अर्जुन ! इस कर्म को करके तू संसार बन्धन रूपी अशुभ से छूट जायेगा। ‘नियत’ की व्याख्या करते हुये शंकर अपने गीताभाष्य में लिखते हैं ‘नित्यं यो यस्मिन् कर्मणि अधिकृतः फलाय च अश्रुतं तद् नियतम्’ अर्थात् जो कर्म श्रुत के अनुसार कोई फल नहीं देता है ऐसे जिस कर्म का जो व्यक्ति अधिकारी है उसके लिए वह नियत कर्म हैं इसके करने से फल तो नहीं मिलता है लेकिन न करने से दोष अवश्य मिलता है।

गीता में मनुष्यों के लिए कर्तव्य बताये गये हैं जो उनके वर्ण धर्म, स्वभाव और परिस्थित के अनुकूल है। उन सभी शास्त्रविहित कर्तव्यों का पालन अवश्य ही सभी व्यक्ति को करना चाहिये ‘नियतमपद’ से भगवान ने अर्जुन के इस भ्रम को दूर किया है जिसके कारण अर्जुन को भगवान के वचन परस्पर विरोधी और मिले जुले से लग रहे थे भगवान अर्जुन को नियत कर्तव्य बता रहे हैं कि तुम क्षत्रिय हो और युद्ध करना तुम्हारे स्वधर्म है और यह तुम्हारे वर्णाश्रम स्वभाव के अनुकूल है। इसलिये तुम्हें शास्त्रविहित इस कर्तव्य कर्म का पालन अवश्य मेव करना चाहिये। इसलिये तुम इस कर्म का त्याग नहीं कर सकते हो यह देखने में हिंसात्मक और क्रूर अवश्य लगता है बल्कि निष्काम भाव से किये जाने पर वह कल्याण का हेतु बनता है। इसलिये हे अर्जुन तुम संसय छोड़कर युद्ध करने के लिए खड़े हो जाओ। अर्जुन का विचार युद्ध रूप घोर कर्म में लगाने का है। इसीलिये आगे 18/48 में कहते हैं कि दोष युक्त होने पर भी सहज (नियत) कर्म का त्याग नहीं करना चाहिये— ‘सहजं कर्म कौन्तेयसदोषमपि न त्यजेत्’ अर्थात् इसके त्याग से दोष लगता है एवं कर्मों के साथ अपना सम्बन्ध भी बना रहता है। अतः कर्म का त्याग करने की अपेक्षा नियत कर्म करना ही श्रेयस्कर है। और यदि आसक्ति रहित होकर कर्म किया जाय तो और भी श्रेष्ठ माना गया है क्योंकि इसमें कर्मों के साथ सर्वथा सम्बन्ध—विच्छेद हो जाता है। इस श्लोक में श्री कृष्ण भगवान यज्ञ की परिभाषा बताते हुये कहते हैं—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥ 9 ॥

अन्वय—यज्ञार्थात् (यज्ञ के लिये) कर्मणः (कर्मों से) अन्यत्र (भिन्न) अयं लोकः (यह संसार, ये लोग) कर्मबन्धनः कर्मबन्धन (कर्मबन्धन से युक्त हो जाता है) कौन्तेय (हे अर्जुन) तदर्थं (उसके लिये) मुक्तसङ्गः (निष्काम होकर) कर्म समाचर (कर्म का अनुष्ठान करो) ॥ 9 ॥

अर्थ — यज्ञ के लिये किये गये कर्मों के सिवाय अन्य कर्मों से इस संसार में व्यक्ति कर्म बन्धन से युक्त हो जाता है, अतः हे कौन्तेय, तू आसक्ति को छोड़कर यज्ञ के निमित्त कर्म कर।

व्याख्या— आसक्ति और स्वार्थ भाव से कर्म करने पर बन्धन होता है किन्तु जो कर्म फलाशा के बिना केवल यज्ञ के लिये किये जाते हैं उससे बन्धन नहीं होता है। बन्धन भाव से होता है, क्रिया से नहीं होता है। तैत्तिरीय संहिता (1/7/4) में यज्ञ का अर्थ विष्णु कहा गया है— यज्ञो वै विष्णुः अर्थात् हमारा कर्म ईश्वर समर्पित बुद्धि से होना चाहिये। इस प्रकार यज्ञ का अर्थ होम—हवन आदि न होकर व्यापक अर्थ है— “समर्पण करना”। अब प्रश्न यह है कि भगवान ‘यज्ञार्थ’ के साथ “मुक्तसंग” क्यों कहें। इसके उत्तर में भगवान बताते हैं कि हमारा मानस ऐसा होना चाहिये कि जब कर्म को त्यागने का समय आये तो त्याग दिया जाय, और जब तक करना हो तब तक यज्ञार्थ भाव से

किया जाय। फलासक्ति के साथ-साथ कर्मासक्ति का भी त्याग होना चाहिये— यही यज्ञार्थ कर्म का रहस्य है। यज्ञभाव से जो कर्म किया जाय वह सर्वदा त्रुटि रहित होना चाहिये क्यों कि कर्म को निर्दोष रूप से सम्पन्न करने में उद्यमी होना चाहिये तभी तो भगवान कृष्ण 'योग' की परिभाषा 'कर्म की कुशलता' करते हैं और कहते हैं— "योगः कर्मसु कौशलम्" ॥ गीता में 'यज्ञ' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया गया है। 'यज्ञ' शब्द के अन्तर्गत यज्ञ-दान-तप-होम, तीर्थ-सेवन, व्रत, वेदाध्ययन आदि आ जाती है। कर्तव्य मानकर जो भी कर्म किया जाता है जैसे व्यापार, नौकरी, अध्ययन, अध्यापन आदि सब शास्त्रविहित कर्मों का नाम भी यज्ञ है। और जिन कर्मों से दूसरों को सुख पहुँचाने तथा हित करने के लिये कर्म किया जाता है उसको 'यज्ञार्थ कर्म' कहते हैं। यज्ञार्थ कर्म करने से आसक्ति जल्दी मिट जाती है तथा कर्मयोगी के सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं गीता के 4/24 में कहा गया है— 'जिसकी आसक्ति सर्वथा मिट गयी है, जो मुक्त हो गया है और जिसकी बुद्धि स्वरूप ज्ञान में अवस्थित हो गयी है ऐसे केवल यज्ञ के लिये कर्म करने वाले मनुष्य के सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं'— 'यज्ञांयाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते' यज्ञार्थ कर्म करने से मनुष्य को बन्धन नहीं होता है और यह पूर्वसंचित कर्म समूह को भी नष्ट कर देता है। यज्ञार्थ कर्म का महत्व अधिक बढ़ जाता है। जब यह यज्ञार्थ कर्म, कर्मयोगी करता है तब उसका अपना एक उद्देश्य एवं एक लक्ष्य रहता है— यह लक्ष्य है परमात्मा की प्राप्ति और उसकी वृत्ति सदैव परमात्मा में ही रहती है। अयंलोकः से अभिप्रायः है कि मनुष्य का कर्म करने में ही अधिकार है। तथा मनुष्य योनि में किये हुये कर्मों का फल भोगने के लिये दूसरी योनियाँ मिलती हैं दूसरी योनियों में पुण्य-पाप रूप कर्म का सृजन नहीं होता है केवल मनुष्य योनि ही एक ऐसी योनि है जिसमें किये गये अच्छे-बुरे-पाप-पुण्य आदि कर्मों के फल को भोगना पड़ता है क्योंकि अन्य योनियों के कर्म बांधने वाले नहीं होते हैं केवल मनुष्य योनि में किये गये कर्म ही बन्धन कारक होते हैं इस प्रकार कर्तव्य कर्म करने का अधिकार केवल मनुष्य को है 'बन्धन' भाव से होता है क्रिया से नहीं मनुष्य कर्मों से नहीं बंधता है प्रत्युत कर्मों में वह जो आसक्ति और स्वार्थ भाव रखता है, उनसे ही वह बंधता है 'मुक्तसंग' से तात्पर्य है कि कर्मों में, पदार्थों में तथा जिनसे कर्म किये जाते हैं उन शरीर, मन, बुद्धि आदि सामग्री में ममता-आसक्ति होने से ही बन्धन होता है। आगे गीताध्याय 3, श्लोक 10-16 में बताया गया है कि यज्ञ ही संसार चक्र की धुरी है।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।

अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ 10 ॥

अन्वय—पुरा (पहले-सृष्टि के प्रारम्भ में), प्रजापतिः (ब्रह्मों ने), सहयज्ञाः (यज्ञ के साथ), प्रजाः (जीवों की), सृष्ट्वा (सृष्टि करके), उवाच (कहा था), अनेन् (इस यज्ञ के द्वारा), प्रसविष्यध्वं (उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होओ), एषः (यह), वः (तुम लोगों का), इष्ट कामधुक् (अभिष्ट कामनाओं को देने वाला), अस्तु (हो) ॥ 10 ॥

अर्थ— "सृष्टि के प्रारम्भ में प्रजापति ब्रह्मा ने यज्ञ के साथ प्रजा को उत्पन्न करके कहा कि इस यज्ञ के द्वारा तुम वृद्धि को प्राप्त होओ (करो), यह तुम्हारे लिये अभीष्ट कामनाओं की पूर्ति करने वाला बने।"

व्याख्या— इस श्लोक में प्रजापति ब्रह्मा ने मनुष्यों को आर्शीवाद दिया है। उनका अभिप्राय यह है कि तुम लोगों के लिये मैं ने इस स्वधर्म रूप यज्ञ की रचना कर दी है, इसका सांगोपांग पालन करने से तुम्हारी उन्नति होती रहेगी तुम्हारा पतन नहीं होगा। और तुम लोग वर्तमान स्थिति से ऊपर उठ जाओगे और यज्ञ तुम लोगों की इस लोक में समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक सिद्ध होगी। "यज्ञ" का तात्पर्य है "समर्पण"। अग्नि में आहुति डालना समर्पण का ही प्रतीक है। "यज्ञ" को "इष्ट

कामधुक" कहा गया है। जब भगवान ने सृष्टि की तब भगवान की आज्ञा से ब्रह्माजी ने प्रजा की रचना किये है। इससे यह सिद्ध होता है कि गीता भगवान को ही सृष्टि का रचायिता मानती है। और इस तथ्य की पुष्टि 4/13, 17/23 में किया गया है।

इस प्रकार यज्ञ के साधन सहित यज्ञ को रचकर भगवान ने अपनी समस्त प्रजा से कहा कि इस यज्ञ के द्वारा तुम लोग फलो-फूलों अर्थात् अपनी उन्नति करो। जैसे पिता अपने बालक को कुछ पूंजी देकर कहे कि इसे ले जाकर कुछ व्यापार करो और उससे अपनी वृद्धि करो। इसी प्रकार जगत्पिता भगवान ने भी अपनी प्रजा को आदेश दिया। इससे यह उपदेश देते हैं कि खेती व्यापार, नौकरी आदि कर्म करते हुये समय-समय पर यज्ञ भी करते रहना, तभी तुम्हारी उन्नति होगी। नही तो थोड़े दिन में जन-धन नष्ट हो जायेगा। यह यज्ञ तुम लोगों के लिये काम यानि परम पुरुषार्थ मोक्ष का और उसके साथ धन-पुत्र आदि समस्त इच्छित भोगों को पूर्ण करने वाला है। ब्रह्मा ने जो कहा है- 'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमावाप्स्यथ' यह कोई साधारण चीज नहीं है यह अत्यन्त सारगर्भित है। इन शब्दों के भीतर विश्वमानवता का संदेश छिपा हुआ है। ब्रह्म के इस निर्देश के अनुसार क्रमशः मनुष्यों में समाजतंत्र गठित हुआ है और इसी से प्रजा तंत्र गठित होने का संकेत मिलता है। संचित पदार्थों का आपस में आदान-प्रदान हो तथा उन सबको सभी लोगों में समान रूप से वितरण हो, केवल इसी उपाय से मानव समाज कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो सकेगा, दूसरों की अपेक्षा या वंचित करके नहीं।

अभ्यास प्रश्न 1

बहुविकल्पीय प्रश्न

सही विकल्प पर चिन्ह लगायें-

प्रश्न 1- जब कर्म हमें उस परमात्मा से युक्त कर दे तो उसे क्या कहा जाता है-

- (अ) ज्ञानयोग (ब) कर्मयोग
(स) भक्तियोग (द) समत्व योग

प्रश्न 2- 'व्यामिश्रेण इव' वाक्य से किसकी बुद्धि मोहित हो रही है-

- (अ) अर्जुन (ब) श्री कृष्ण
(स) संजय (द) धृतराष्ट्र

प्रश्न 3- इस संसार में कितने प्रकार की निष्ठा कही गयी है-

- (अ) 2 (ब) 3
(स) 4 (द) 5

प्रश्न 4- 'नैष्कर्म्य' शब्द का क्या अर्थ है-

- (अ) कर्मनिष्ठा (ब) ज्ञाननिष्ठा
(स) योगनिष्ठा (द) भक्तिनिष्ठा

प्रश्न 5- व्यक्ति को धर्म करने के लिये कौन विवश करता है-

- (अ) प्रकृति से उत्पन्न गुण (ब) राग
(स) ज्ञान (द) द्वेष

प्रश्न 6- कर्मेन्द्रियों को रोक कर मन से विषयों का चिन्तन करने वाले व्यक्ति को क्या कहा जाता है-

- (अ) पापी (ब) मिथ्याचारी
(स) कर्मयोगी (द) ज्ञानयोगी

प्रश्न 7- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये-

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्मज्यायो.....

- (अ) यदेकर्मणः (ब) ह्यकर्मणः
 (स) शरीर यात्रापि (द) कर्मन्द्रियैः
- प्रश्न 8— ज्ञानियों के लिये ज्ञानयोग की निष्ठा कही गयी है, तो कर्मयोगियों के लिये किस प्रकार की निष्ठा कही गयी है—
 (अ) सकाम कर्मयोग (ब) ज्ञाननिष्ठा
 (स) कर्मयोग (द) योगनिष्ठा
- प्रश्न 9— किस प्रकार के कर्म करने से व्यक्ति इस संसार में कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है—
 (अ) यज्ञार्थ कर्म (ब) फलासक्ति कर्म
 (स) विराट कर्म (द) अकर्म
- प्रश्न 10— यदि कर्म यज्ञ भावना से नहीं किया जाय तो उसके फल कैसे होंगे—
 (अ) बन्धनकारक (ब) आसक्ति रहित
 (स) फलाकांक्षा रहित (द) मुक्तिकारक
- प्रश्न 11— सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा ने यज्ञ के साथ किसको उत्पन्न किया—
 (अ) देवता (ब) भगवान्
 (स) प्रजा (द) अन्न को
- प्रश्न 12— यज्ञ के द्वारा किसको पुष्ट करने की बात कही गयी है—
 (अ) प्रजा को (ब) ब्रह्मा को
 (स) ईश्वर को (द) देवताओं को
- प्रश्न 13— 'इष्टकामधुक्' किसे कहा गया है—
 (अ) प्रजा को (ब) अन्न को
 (स) यज्ञ को (द) प्रजापति ब्रह्मा को
- प्रश्न 14— 'यज्ञ' का तात्पर्य क्या है—
 (अ) समर्पण (ब) बुद्धि
 (स) आहुति (द) प्रजा
- प्रश्न 15— यज्ञार्थ कर्म को कैसा कर्म कहते हैं—
 (अ) आसक्ति से रहित (ब) स्वार्थ सिद्धि
 (स) सकाम (द) बन्धनकारी

5.3.1 श्लोक संख्या 11 से 20 तक मूल, अन्वय, अर्थ, व्याख्या,

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ 11 ॥

अन्वय—अनेन (इस यज्ञ के द्वारा), देवान् (देव गण को), भावयत (पुष्ट करो) ते (वे), देवाः (देवता), वः (तुम लोगों को) भावयन्तु (पुष्ट करें), परस्परं (आपस में), भावयन्तः (पुष्ट करते हुये), परंश्रेयः (परम कल्याण), अवाप्स्यथ (प्राप्त करोगे) ॥ 11 ॥

अर्थ— " इस यज्ञ के द्वारा तुम देवताओं को पुष्ट करो और वे देवता तुम लोगों को पुष्ट करें। इस प्रकार परस्पर एक दूसरे का पोषण करते हुये परम कल्याण को प्राप्त होओगे।

व्याख्या— ब्रह्मा जी सम्पूर्ण प्राणियों की उन्नति के लिये मनुष्यों को अपने-अपने वर्णाश्रम के अनुसार कर्तव्य पालन रूपी यज्ञ कर्म का आदेश देते हैं। अपने-अपने कर्तव्य का पालन करने से मनुष्य का स्वतः कल्याण हो जाता है। कर्तव्यकर्म का पालन करने का मुख्य अधिकारी मनुष्य ही है क्योंकि मनुष्य ही विवेक-ज्ञान सम्पन्न है। इस कथन से ब्रह्मा जी ने यह भाव दिखलाया है कि स्वार्थ और फलासक्ति का त्याग करके

एक-दूसरे को उन्नत बनाने के लिये अपने कर्तव्य का पालन करने से तुम लोग इस सांसारिक उन्नति के साथ-साथ परम कल्याण रूप मोक्ष को भी प्राप्त हो जाओगे। भगवद् गीता में कहा गया है कि भगवान कृष्ण स्वयं सभी प्रकार के यज्ञों के भोक्ता हैं— “भोक्तारं यज्ञतपसाम्” अतएव सभी प्रकार के यज्ञों का मुख्य प्रयोजन यज्ञपति को प्रसन्न करना है। जब यज्ञ भली-भांति विधि से सम्पन्न किये जाते हैं। तो विभिन्न विभागों के अधिकारी देवता प्रसन्न होते हैं और प्राकृतिक पदार्थों का अभाव नहीं रहता है। ब्रह्मा जी का देवताओं के लिये स्पष्ट आदेश है कि मनुष्य यदि तुम लोगों की यज्ञ, सेवा, पूजादि न करे तो भी तुम लोगों की अपना कर्तव्य समझकर उनकी उन्नति करो और मनुष्यों के प्रति आदेश है कि देवताओं की उन्नति और पुष्टि के लिये ही स्वार्थत्याग पूर्वक यज्ञ-पूजादि कर्म करो। यज्ञ से सारे कर्म पवित्र हो जाते हैं— जैसा कि श्रुतियों में कहा गया है — “आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृति लम्बे सर्व ग्रन्थीनां विप्रमोक्षः”। मनुष्य योनि बहुत दुर्लभ है चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के बाद जीव मानव शरीर पाता है। इस सृष्टि में मनुष्य से ही कर्तव्य पालन की अपेक्षा भी की गयी है। क्योंकि यही बुद्धिमान प्राणी है। मनुष्यके कर्म ही बन्धन कारी और मुक्तिकारी होते हैं और किसी के नहीं। मुक्ति स्वाभाविक है और बन्धन अस्वाभाविक है। इसलिये जो मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन करता है उसका कल्याण स्वभाविक होता है— ‘परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ’ निष्काम भाव से अपन कर्तव्य का पालन करने से स्वर्गादि की प्राप्ति होती है। ब्रह्मा जी ने देवताओं और मनुष्यों के लिये परस्पर एक दूसरे का हित-परोपकार-भलाई आदि करने की बात कही है। चतुर्वर्ण की सृष्टि भी इसी उद्देश्य से ही की गयी है जिससे एक वर्ण की निर्भरता परस्पर दूसरे वर्ण पर निर्भर होती है। चारो वर्ण परस्पर एक दूसरे के हित के लिये अपना-अपना कर्तव्य कर्म करें तो वे पर कल्याण को प्राप्त हो जायेंगे। यह बहुत ध्यातव्य तथ्य है कि पूरे सृष्टि में अपने लिये कुछ भी नहीं है। सब दूसरों के लिये है — जैसे इदं अग्नये इदं न मम्— इदं ब्रह्मणे न मम् आदि। इसका अर्थ है स्वयं सुख न ले दूसरे को भी सुख दें। सृष्टि की रचना भोग के लिये नहीं अपितु उद्धार के लिये हुई है। इस प्रकार प्रजापति ब्रह्मा ने यज्ञानुष्ठान का आदेश देकर मानवता के हित में महान कार्य किया है। इस प्रकार ब्रह्मा ने जो कहा है “परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ’ इन शब्दों के भीतर विश्व मानवता को महान उपदेश छुपा हुआ है क्योंकि परस्पर की सहायता एवं मनोभावों के आदान-प्रदान के माध्यम से हम लोग आत्म केन्द्रित न बनकर, समाजकेन्द्रित, देशकेन्द्रित और विश्व केन्द्रित होने की शिक्षा प्राप्त करते हैं।

इष्टान्भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।

तैर्दत्तनप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥ 12 ॥

अन्वय — हि (निश्चय ही), यज्ञभाविताः (यज्ञ द्वारा सर्वोद्भूत), देवाः (देवता लोग), वः (तुमको), इष्टान् (वाञ्छित), भोगान् (भोगों को), दास्यन्ते (देंगे), तैः (उनके द्वारा), दत्तान् (प्रदत्त भाग), एभ्यः (उनको) अप्रदाय (न देकर), यः भुङ्क्ते (जो भोग करता है), सः (वह), स्तेन एव (निश्चय ही चोर है) ॥ 12 ॥

अर्थ — “निश्चय ही देवतागण यज्ञ से संतुष्ट और पुष्ट होकर तुम लोगों को अभीष्ट भोग्य वस्तुएं प्रदान करेंगे। इसलिये उनके द्वारा प्रदत्त भोगों को उन्हें बिना दिये जो भोग करता है, वह चोर ही है।”

व्याख्या — यज्ञ से संतुष्ट हुये देवता लोग तुम्हें सदा-सर्वदा सुखभोग और जीवन-निर्वाह के लिये आवश्यक वाञ्छित भोग पदार्थ प्रदान करते रहेंगे, इसमें सन्देह की बात नहीं है क्योंकि देवगण अपना कर्तव्य पालन करने के लिये बाध्य है। इसका

तात्पर्य यह है कि जो भी भोग हमें प्राप्त होता है वह सूक्ष्म शक्तियों की कृपा से ही प्राप्त होता है। अतः हम मनुष्यों का परम कर्तव्य हो जाता है कि हम प्राप्त भोगों का अग्र भाग देवताओं को अर्पित करें और फिर हम स्वयं लें। यदि हम ऐसा नहीं करते हैं, तो हम चोर हैं। "स्तेन" (चोर) शब्द का प्रयोग किया गया है। वस्तुतः चोर वह होता है जो दूसरों की वस्तु बिना बतलाये ले लेता है, यहां पर "कृतघ्न" शब्द का प्रयोग अधिक उर्जित होता है। प्राप्त भोग में से देवताओं का भाग स्मरण करके आदर पूर्वक न अलग करना ही "कृतघ्नताः" है।

"चोर" इस अर्थ में कहा गया है कि देवों द्वारा प्रदत्त भोग बिना उनके स्मरण के ही भोगते हुये वास्तविक स्वामी का स्मरण नहीं करना "चोरी" है। गीता शांकर भाष्य में उद्धृत है— "यो भुङ्क्ते स्वदेहो इन्द्रियाणि एव तर्पयति, स्तेन एव तस्कर एव सः देवादिस्वाः पहारी" अर्थात् जो केवल अपने शरीर और इन्द्रियों को ही तृप्त करता है, वह देवताओं के स्वत्व को हरण करने वाला 'चोर' ही है। जो मनुष्य दूसरों का भाग हिस्सा भी स्वयं उपभोग कर जाता है वह चोर है— 'स्तेन एव सः' शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि जो कुछ भी हमारे पास है वह सबका सब हमें संसार से मिला है। संसार से मिले वस्तु केवल अपनी स्वार्थ सिद्धी में लगाना इमानदारी नहीं है जो मनुष्य चोर होता है। उसका अन्तःकरण भी कभी शुद्ध नहीं रहता है। जैसे देवता लोग अपने कर्तव्य का पालन करते हैं। वैसे ही मनुष्यों को भी अपने सामर्थ्य अनुसार करना चाहिये, नहीं तो सृष्टि में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। गीता के 3/23, 24 में भगवान् ये कहते हैं कि यदि मैं सावधानी पूर्वक कर्तव्य का पालन न करू तो समस्त लोक नष्ट भ्रष्ट हो जाय। प्रजापति ब्रह्मा जी ने सृष्टि के समय देवताओं और मनुष्यों दोनों को अपने-अपने कर्तव्य का पालन करने की आज्ञा दी थी।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ 13 ॥

अन्वय—यज्ञ शिष्टाशिनः (यज्ञ का बचा हुआ खाने वाले), सन्तः (साधु लोग), सर्वकिल्बिषैः (समस्त पापों से), मुच्यन्ते (मुक्त हो जाते हैं), तु (परन्तु), ये पापाः (जो पापात्मा लोग), आत्मकारणात् (अपने ही लिये), पचन्ति (पकाते हैं), ते (वे), अधं (पाप को), भुञ्जते (भोजन करते हैं) ॥ 13 ॥

अर्थ— "यज्ञ का बचा हुआ खाना खाने वाले सन्तजन समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं किन्तु जो केवल अपने लिये पकाते हैं, वे पापीजन तो पाप ही खाते हैं।"

व्याख्या— संसार चक्र की धुरी में यह यज्ञ विद्यमान हैं। यह संसार चक्र ही एक विराट यज्ञ है, जिसमें सूर्य, चन्द्रमा, तारे, वायु, अग्नि, वरुण, पृथ्वी, पशु-पक्षी आदि सभी अपनी-अपनी आहुतियां दे रहे हैं। अतः विवेकी मनुष्य का भी यह कर्तव्य हो जाता है कि वह इस विराट यज्ञ में अपनी भी आहुति दे। 'यज्ञ' से तात्पर्य समर्पण से है। जाने अनजाने में गृहस्थ लोगों से पाप हो जाता है ये पाप पांच श्रेणियों का होता है—

कण्डनी पेषणी कुल्ली उदकुम्भी च मार्जनी।

पंचसूचना गृहस्थस्य वर्तन्तेऽहरहः सदा ॥

अर्थात् ओखली, चक्की, चूल्हा, जल का घड़ा और झाड़ू इन वस्तुओं का व्यवहार प्रत्येक गृहस्थ को प्रतिदिन करना पड़ता है। जिससे छोटे-2 कीड़े मौकेड़े नष्ट हो जाते हैं— इन पापों से मुक्त होने के लिए पंचमहायज्ञ का विधान किया गया है। मनु स्मृति के अनुसार ये पंचमहायज्ञ है—

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तपर्णम्।

होमोदैवो बलिभौति नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ (3/17) ॥

ये पांच प्रकार उपर्युक्त पंचमहायज्ञ को प्रत्येक गृहस्थ को करना चाहिये क्योंकि शास्त्रों में पांच प्रकार के ऋण कहे गये हैं उन ऋणों से उऋण होने के लिये पंचमहायज्ञ करना चाहिये क्योंकि मनुष्य का केवल अपने और अपने परिवार के प्रति ही कर्तव्य नहीं है बल्कि समाज और समाज के सभी प्राणियों के प्रति भी है। जो मनुष्य सबको खिलाकर फिर स्वयं खाता है वह मानो यज्ञ का उच्छिष्ट खाता है। इसलिये उसको संत कहा जाता है। यज्ञांशुष्ट खाने से वह सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। पाप कर्म से तो बन्धन होता ही है किन्तु सकाम भाव से किये गये पुण्य कर्म भी बन्धनकारक होते हैं। यज्ञ शेष का अनुभव करने पर पाप और पुण्य दोनों ही नहीं रहते— “बुद्धियुक्तो जहातीह उभेसुकृत दुष्कृतेः” (गीता 2/50)। भगवान् यज्ञशिष्टाशिनः समझाते हुये कहते हैं कि— जो यज्ञ से बचे हुये अन्न को खाता है अर्थात् जो अपनी कमाई का हिस्सा यथायोग्य देकर फिर बचे हुये को स्वयं काम में लाता है, ऐसे स्वार्थ त्यागी कर्मयोगी का वाचक यज्ञशिष्टाशिनः पद है।

पूर्वापर सम्बन्ध—

इस अगले श्लोक में सृष्टि चक्र को सुरक्षित रखने के लिये विराट यज्ञ चक्र की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ 14 ॥

अन्वय—भूतानि (प्राणी), अन्नात् (अन्न से), भवन्ति (उत्पन्न होते हैं), पर्जन्याद (मेघ से), अन्नसंभवः (अन्न की उत्पत्ति होती है), यज्ञात् (यज्ञ से), पर्जन्यः (मेघ), भवति (होता है), यज्ञः (यज्ञ), कर्मसमुद्भवः (कर्म से उत्पन्न होता है) ॥ 14 ॥

अर्थ— “अन्न से प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति मेघ से होती है। मेघ यज्ञ से होता है, और यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता है।”

व्याख्या— “अन्न” शब्द का आशय अनाज से न होकर व्यापक अर्थ में है। सृष्टि के समस्त प्राणी अन्न से ही उत्पन्न होते हैं— इसका तात्पर्य यह है कि खाद्य पदार्थों से ही समस्त प्राणियों के शरीर में रज और वीर्य आदि बनते हैं और इसी से भिन्न—2 प्राणियों की उत्पत्ति होती है। उत्पत्ति के बाद पोषण भी उसी अन्नादि से होता है। इस प्रकार प्राणियों की उत्पत्ति, बुद्धि और पोषण अन्न से ही होता है। तैत्तरीय उपनिषद् में भी कहा गया है— “अन्नाद्धयेव खलिवैमानि भूतानि जायन्ते अन्नेन जातानि जीवन्ति” अर्थात् ये सब प्राणी अन्न से ही उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होकर अन्न से ही जीते हैं। फिर आगे कहा गया है कि अन्न मेघ से वर्षा के कारण उत्पन्न होता है यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है। तदन्तर मेघ यज्ञ से होता है — मनुस्मृति (3/76) में उल्लेख मिलता है कि— ‘अग्नि में विधिपूर्वक दी हुई आहुति सूर्य में स्थित होती है, सूर्य से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न होता है और अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है।’ “गीताशांकर भाष्य यज्ञः अपूर्व स च यज्ञः कर्मसमुद्भवो यस्य यज्ञस्य अपूर्वस्य स यज्ञः कर्म समुद्भवः।” अर्थात् ऋत्विक् और यजमान के व्यापार का नाम कर्म है और उस कर्म से जिसकी उत्पत्ति होती वह अपूर्व रूप यज्ञ कर्मसमुद्भव है। अर्थात् वह अपूर्व रूप रुद्र कर्म से उत्पन्न होता है।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।

तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ 15 ॥

अन्वय—कर्म (कर्म को), ब्रह्मोद्भवं (वेद से उत्पन्न), विद्धि (जानो), ब्रह्म (वेद), अक्षर समुद्भवं (अक्षर से उत्पन्न होता है), तस्मात् (इसलिये), सर्वगतं (सर्वव्यापी), ब्रह्म (परब्रह्म) यज्ञे (यज्ञ में), नित्य (सर्वदा), प्रतिष्ठितम् (प्रतिष्ठित रहते हैं) ॥ 15 ॥

अर्थ— “ कर्म को वेद से उत्पन्न हुआ जानो और वेद को अक्षर से इसलिये सर्वव्यापी वेद नित्य यज्ञ में प्रतिष्ठित है।”

व्याख्या— मनुष्य को कर्तव्य कर्म करने का ज्ञान वेद से ही होता है। इसलिये कर्मों को वेद से उत्पन्न कहा गया है। परमात्मा ही वेदों के ज्ञान को प्रकाशित करता है 'यस्य निःश्वासितम् वेदाः' कर्तव्य कर्मों के पालन से यज्ञ होता है और यज्ञ से वर्षा होती है वर्षा से अन्न होता है अन्न से प्राणी होते हैं और उन्हीं प्राणियों में से मनुष्य कर्तव्य—कर्मों के पालन से यज्ञ करते हैं। इस तरह यह सृष्टि चक्र चलता रहता है। भगवान कृष्ण कहते हैं गीता में— अपना कर्म यज्ञ बना लो, इस यज्ञ चक्र में भागी होओ। परमात्मा एक देशीय न होकर सर्वत्र है, सर्वव्यापी है इसीलिये “सर्वगत” कहा गया है। सर्वव्यापी होने पर भी परमात्मा विशेष रूप से 'यज्ञ' (कर्तव्य कर्म), में सदैव विद्यमान रहते हैं। अर्थात् निष्काम भाव से कर्तव्य कर्म का पालन करते हुये मनुष्य परमात्मा को सुगमता से प्राप्त कर सकता है— 'स्वकर्मणातमभ्यर्च्य सिद्धिम बिंदति मानवः' (गीता 18/46) यज्ञ में ही परमात्मा को नित्य प्रतिष्ठित कहने का भाव यह है कि यज्ञ ही परमात्मा का उपलब्धि स्थान है। जैसे जमीन सभी जगह जल रहने पर भी केवल कूआं आदि से ही प्राप्त होता है, सब जगह नहीं इस प्रकार सर्वगत होने पर भी परमात्मा यज्ञ से ही प्राप्त होते हैं अर्थात् यज्ञ साक्षात् परमेश्वर की मूर्ति है।

गीता शांकरभाष्य में— 'यस्मात् साक्षात् परमात्माख्याद अक्षारात् पुरुष निःश्वासवत् समुद्भूतं ब्रह्म, तस्मात् सर्वार्थं प्रकाशकत्वात् सर्वगतम्' अर्थात् वेद रूप ब्रह्म साक्षात् परमात्मा नामक अक्षर से पुरुष के निःश्वास की भांति उत्पन्न हुआ है। इसलिये वह सब अर्थों को प्रकाशित करने वाला होने के कारण सर्वगत है। 'सर्वगतम्ब्रह्म' विशेषण सर्वशक्तिमान परमेश्वर का वाचक है। परमेश्वर या यज्ञ में नित्य प्रतिष्ठित रहता है। यज्ञों की विधि वेद में बतलायी गयी है वेद भगवान की वाणी है इसलिये यज्ञ साक्षात् परमेश्वर की मूर्ति है इसलिये प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्तव्य का विशेष रूप से पालन करते हुये भगवत् प्राप्ति करना चाहिये। इस श्लोक में यज्ञ की अनिवार्यता पर बल दिया गया है — इस श्लोक में देखेंगे कि यज्ञ के दो भाग स्पष्ट होते हैं एक भाग का नाम भावना रखा गया है तो दूसरे का क्रिया।

श्लोक में आया है “यज्ञःकर्म समुद्भवः” अर्थात् यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता है लेकिन मन में शंका यह उत्पन्न होती है कि यज्ञ तो स्वयं एक कर्म है फिर कर्म से कर्म की उत्पत्ति कैसे हो सकती है क्योंकि कारण से ही कार्य कि उत्पत्ति मानी गयी है जो वैज्ञानिक भी और तार्किक भी प्रमाणित होती है लेकिन कार्य से कार्य की उत्पत्ति (कथमपि) किस प्रकार हो सकती है इसके कहने का तात्पर्य यह है कि यज्ञ समर्पण कि एक प्रतीकात्मक क्रिया के रूप में प्रतिस्थापित है इसमें जब आहुति दिया जाता है तब मानो आहुति के माध्यम से अपने ही “अहं” की बलि दिया जाता है इस यज्ञ का सूर्यादि देवताओं पर सुप्रभाव पड़ता है और प्रसन्न होते हैं और हमें यथोचित मात्रा में पर्जन्य आदि प्रदान करते हैं यह सर्वविदित है और विज्ञान के हिसाब से भी माना जाता है कि सूर्य के कारण ही मेघ बनता है। और यदि सूर्य तथा सूर्य में अवस्थित देवता प्रसन्न हो गये तो पर्याप्त मात्रा में वर्षा आदि ही सकेगी इस प्रकार यह विदित होता है कि यह संसार भावना पर ही टिका है। इस प्रकार यज्ञ कम माध्यम से सूक्ष्म से सूक्ष्म शक्तियों को भी, जो विश्व में व्याप्त है उसको अपने वश में कर लेते हैं यज्ञ की तीव्र समर्पण भावना का प्रभाव है पर इस यज्ञ में जो भावना है वह 'कर्म'के विना प्रभावी नहीं हो सकती है यज्ञ की भावना और क्रिया दोनों ऐसे भाग होते हैं जिसके विना यज्ञ पूर्ण हो नहीं सकती है। 'भावना' से जो शक्ति उपजती है उसे पूर्वमीमांसा में 'अपूर्व' नाम दिया

गया है पूर्वमीमांसा दर्शन मानता है कि अपूर्व ही वह शक्ति प्रदान करती है और यज्ञ का दूसरा भागक्रिया कर्म से सम्पन्न होता है इसीलिये कहा गया है कि यज्ञ कर्म से उपजता है "यज्ञः कर्मसमुद्भवः" अर्थात् ऋत्विजों और यजमानों कम कर्म संयुक्त रूप से यज्ञ के कार्य को सम्पन्न कराते हैं यज्ञों का ज्ञान हमें वेदों से होता है ये वेद अक्षर या परमात्मा से निकले हैं। और परमात्मा ही यज्ञ के ज्ञान को प्रकाशित करता है—

‘यस्य निःश्वासितं वेदाः’—इस प्रकार इश्वर से वेद, वेद से कर्म, कर्म से यज्ञ, यज्ञ से पर्जन्य, पर्जन्य से अन्न और अन्न से प्राणी। और फिर प्राणियों को परमात्मा से जोड़ दिया जाता है मनुष्य रूपी प्राणी परमात्मा से जुड़ने के बाद यज्ञ चक्र का अनिवार्य अंग बनता है और इस सृष्टि में मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो यज्ञ आदि करके अपना अगला जन्म अच्छा बना सकता है इसलिए भगवान कहते हैं अपने कर्म करे यज्ञ इना लो और इस चक्र में भागीदार बनों 'तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म' से तात्पर्य है कि यह वेद सर्वव्यापी है और सब में व्याप्त है ऐसा कहने का तात्पर्य है कि वेद निर्दिष्ट कर्मों से यज्ञ होते हैं यज्ञ से पर्जन्य, और पर्जन्य से अन्न, और अन्न से प्राणी अत्यन्त होते हैं इसलिये सभी स्तरों में वेद ही व्याप्त होकर स्थित है और यह वेद यज्ञ में नित्य प्रतिष्ठित है यज्ञ चक्र से प्रकृति की वृद्धि पोषण होती है इसलिए प्रकृति को भी यज्ञ में नित्य प्रतिष्ठित माना गया है अर्थात् यज्ञ ही प्रकृति की प्रतिष्ठा है। इस प्रकार संसार को चलाने के लिये यज्ञ की अनिवार्यता पर बल दिया गया है। इस श्लोक में यज्ञ की अनिवार्यता पर बल दिया गया है—

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।

अधायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ 16 ॥

अन्वय— यः (जो), इह (इस लोक में), एवं (इस प्रकार), प्रवर्तितं (प्रवर्तित), चक्रं (कर्म चक्र को), न (नहीं), अनुवर्तयति (अनुसरण करता), पार्थ (अर्जुन), सः (वह), अधायुः (पापी है), इन्द्रियारामः (इन्द्रियों में रमने वाला है), मोघं (व्यर्थ), जीवति (जीवन—धारण करता है) ॥ 16 ॥

अर्थ— " जो इस लोक में इस प्रकार प्रवर्तित यज्ञ चक्र के अनुसार व्यवहार नहीं करता वह पापी और इन्द्रिय परायण है तथा व्यर्थ ही जीवन धारण करता है।

व्याख्या— परमेश्वर ने ही जीव के पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये यज्ञकर्मादि चक्र का प्रवर्तन किया है और जो इस कर्म चक्र का अनुसर नहीं करते हैं उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है। आप यह जान गये हैं कि द्वितीय अध्याय में भगवान ने केवल कर्म का नाम लिया लेकिन तृतीय अध्याय में कहते हैं कि नियत कर्म करो। यज्ञ की प्रक्रिया ही कर्म है और इसके अतिरिक्त जो भी कर्म किया जाता है वह इसी संसार में बन्धन है।

भगवान श्री कृष्ण ने यज्ञ की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुये कहते हैं कि यज्ञ की उत्पत्ति ब्रह्मा से हुई है। प्रजा (प्रवृत्त होती) सक्रिय होती है। 'कर्मब्रह्मोद्भवः विद्धि' अर्थात् कर्म ब्रह्मा से उत्पन्न जानो 'ब्रह्मा' का अर्थ 'वेद' भी किया जाता है इस प्रकार कर्म अपौरुषेय वेद से उत्पन्न सिद्ध हुआ जबकि वेद मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि ही थे "ऋषयःमन्त्रद्रष्टारः" इसलिये वेद परमात्मा से उत्पन्न है— 'यस्यनिःश्वासितं वेदाः' इस प्रकार यज्ञचक्र क्रम इस प्रकार है— परमात्मा से वेद, वेद से कर्म, कर्म से यज्ञ, यज्ञ से पर्जन्य, पर्जन्य से अन्न और अन्न से प्राणी जो मनुष्य इस संसार चक्र को चलाने वाले यज्ञ कर्म का अनुष्ठान नहीं करता है केवल इन्द्रियों के द्वारा भोग भोगता वह पापी है, तथा मनुष्य पशु से भी नीचा है क्योंकि पशु नये पाप नहीं करते अपितु पूर्व में किये गये पापों का फल भोगकर निर्मलता की ओर जाता है। किन्तु इन्द्रिय परायण मनुष्य नये

पाप करके पतन की ओर जाता है और सृष्टि चक्र में बाधा उत्पन्न करता है और मनुष्य जन्म पाना वृथा हो जाता है। इसलिये विवेकी मनुष्य को चाहिये की वह अज्ञार्थ कर्म करें। जिससे कर्म बन्धन में न फसे तथा सांसारिक दुखों से मुक्ति मिल सके सृष्टि चक्र के अनुसार चलने से तात्पर्य है कि अपने-अपने वर्ण, आश्रम, स्वभाव और परिस्थिति के अनुसार जिस मनुष्य का जो स्वधर्म है उसका पालन करना उसका कर्तव्य है अपने कर्तव्य का यदि हर व्यक्ति सावधानी से और जिम्मेदारी से निर्वहन करे तो सृष्टि चक्र अनुकूल परिचालित होगा और सभी को सृष्टि चक्र का पालन करना चाहिये जिससे सृष्टि व्यवस्था सुचारु रूप से चलती रहें। स्वयं ही भगवान (वृ० उ० ३/५/१) सृष्टि के अर्थ को समझाने के लिये कहते हैं कि 'यह जो प्रसिद्ध आत्मा है उसको जानकर जिनका मिथ्याज्ञान निवृत्त हो चुका है ऐसे जो महात्मा ब्राह्मण गण अज्ञानी द्वारा अवश्य की जाने वाली पुत्र आदि की इच्छाओं से रहित होकर केवल शरीर निर्वाह के लिए भिक्षा आचरण करते हैं, उनका आत्मज्ञान निष्ठा से अतिरिक्त अन्य कुछ भी कर्तव्य नहीं रहता ऐसा श्रुति का तात्पर्य गीता को भी अभिष्ट है।' 'मोघमपार्थ सः जीवति' इस वाक्य को भगवान ऐसे मनुष्यों के लिए प्रयुक्त किये हैं जो अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते हैं वह इस संसार व्यर्थ ही जीवित रहते हैं इस वाक्य का विश्लेषण यदि किया जाय तो साफ स्पष्ट होता है कि ऐसे लोगों की निंदा भगवान स्वयं कर रहे हैं और कह रहे हैं कि यदि ऐसे लोग अपने कर्तव्य पालन रूपी कर्म से संसार के लोगों को सुख नहीं दे पा रहे तो वह दुःख भी न पहुंचाये ऐसे मनुष्यों का जीवन पापमय होता है।

यस्त्वात्मारतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।

आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७ ॥

अन्वय—तु (परन्तु), यः (जो), मानवः (मनुष्य), आत्मरतिः (आत्मा में रमण करने वाला), च (और), आत्मतृप्तः एव (आत्मा में ही तृप्त), च (तथा), आत्मनि एव संतुष्टः (आत्मा में ही संतुष्ट), स्यात् (रहते हैं), तस्य (उनका), कार्यं (कर्तव्य कर्म), न विद्यते (नहीं रहता) ॥ १७ ॥

अर्थ — "परन्तु जो व्यक्ति आत्मतत्त्व में ही रमण करने वाला है और आत्मा में ही तृप्त तथा आत्मा में ही संतुष्ट है उसका कोई कर्तव्य (करने के लिये) नहीं रहता है।

व्याख्या— आप तृतीय अध्याय के प्रारम्भ में जान-चुके हैं कि श्री कृष्ण भगवान ने लोक में दो प्रकार की निष्ठा बताई है। (१) कर्म योगियों की कर्मयोग से (२) ज्ञानयोगियों की ज्ञान योग से। अब तक कर्मयोग की निष्ठा (३-१६) तक बतलायी गयी है। अब उपर्युक्त (३/१७) श्लोक में ज्ञानयोग की निष्ठा बतलाते हैं। ज्ञाननिष्ठ का लक्षण बताते हुये कहते हैं कि जिनके होने पर ही कर्म की कर्तव्यता समाप्त हो जाती है उससे पूर्व नहीं होती है तो जबतक ये लक्षण मनुष्य के जीवन में न आये तबतक यज्ञचक्र में भाग लेना ही चाहिये ये लक्षण है — आत्मरति, आत्मतृप्ति और आत्मसंतुष्टि। जो ज्ञाननिष्ठ होते हैं वह आत्मा में ही रमण करते हैं— 'आत्मनि एव रतिः न विषयेषु' (शांकरभाष्य) उसे आत्मा से ही तृप्ति मिलती है — 'आत्मना एव तृप्तो न अन्नरसादिनाः' (शांकरभाष्य) और वह आत्मा में ही संतुष्ट रहता है।

शंकराचार्य लिखते हैं कि — 'य ईदृश आत्मवित् तस्य कार्यं करणीयं न विहाते न अस्ति— जो कोई ऐसा आत्मज्ञानी है, उसके लिये कुछ भी कर्तव्य नहीं है। मनुष्य का परम लक्ष्य यही है कि वह आत्मा में रत, आत्मतृप्त और आत्मा में संतुष्ट रहे जब अव्यक्त, स्नातन, अविनाशी आत्मतत्त्व प्राप्त हो गया तो आगे अब प्राप्त करने के लिये बचा ही क्या है ? ऐसे पुरुष के लिये किसी भी कर्म को करने की आवश्यकता नहीं है। जो पुरुष परमात्मा को प्राप्त कर लेगा उसके लिये यह जगत स्वप्नवत् दिखाई देता है। क्योंकि उसके लिये संसार की कोई भी वस्तु परमात्मा से महत्वपूर्ण नहीं है।

मनुष्य को सांसारिक विषय वस्तुओं में प्रीति, तृप्ति और संतुष्टि का केवल प्रतीति मात्र होती है वास्तव में नहीं होती अगर विद्यमान होती तो पुनः अरति; अतृप्ति एवं असंतुष्टि नहीं होती। स्वरूप से प्रीति, तृप्ति और संतुष्टि सदैव स्वतः सिद्ध है। स्वरूप सत् है। सत् में कभी कोई अभाव नहीं होता है ना भावों विद्यते सतः (गीता 2/16) और अभाव के बिना कोई कामना पैदा नहीं होती। इसलिये स्वरूप में निष्कामता स्वतः सिद्ध है। परन्तु जब जीव अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर संसार के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। तब वह प्रीति, तृप्ति और संतुष्टि को संसार में ढूँढ़ने लगता है और इसके लिये सांसारिक वस्तुओं की कामना करने लगता है कामना के बाद जब मिल जाती है वस्तु तब दूसरी कामना करने लगता है तब पहली निष्काम हो जाती है और ऐसे निरन्तर चलता रहता है और उससे प्राप्त सुख को ही प्रीति, तृप्ति और संतुष्टि नाम से कहता है। परन्तु अच्छे साधक को सुख का मूल कारण निष्कामता को और दुःख का मूल कारण कामना को स्वीकार करना चाहिये। सकाम मनुष्यों को कर्म योग का अधिकारी कहा गया है— 'कर्मयोगस्तु कामिनाम्' (श्रीमद्भगद 11/20/7) अर्थात् सकाम मनुष्यों की प्रीति, तृप्ति और संतुष्टि संसार में होती है। अतः कर्म योग द्वारा सिद्ध निष्काम महा पुरुषों के स्थिति का वर्णन करते हुये भगवान स्वयं कहते हैं उनकी प्रीति, तृप्ति और संतुष्टि सकाम मनुष्यों की तरह संसार में न होकर अपने आप (स्वरूप) में ही हो जाती है। इसी बात को गीता में 2/55 में भी कहा गया है— 'हे अर्जुन जिस काल में यह पुरुष मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को भलि-भांति त्याग देता है और आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट रहता है उस काल में वह "स्थित प्रज्ञ" कहा जाता है'।

इस प्रकार स्पष्ट करते हैं कि भगवान कहते हैं कि जो प्रीति, तृप्ति और संतुष्टि अलग-2 प्रतीत होती है वह अलग न होकर केवल संसार के सम्बन्ध से अलग प्रतीत होती है। और जब संसार से सम्बन्ध विच्छेद हो जायेगा तब तीनों एक ही स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। आगे के श्लोक में भगवान बतलाते हैं कि ज्ञानी के लिए कर्तव्यता क्यों आवश्यक नहीं है।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।

न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ 18 ॥

अन्वय—इह (इस लोक में), तस्य (उसका), कृतेन (कर्मानुष्ठान से), कश्चित् (कोई), अर्थः (प्रयोजन), न एव (नहीं है), अकृतेन चं (कर्म न करने से भी), कश्चन (कोई), न (प्रत्यवाय—नहीं है), सर्व भूतेषु (सब प्राणियों में), अस्य (इसका), कश्चित् (कोई), अर्थव्यपाश्रयः (प्रयोजन सम्बन्ध भी), न (नहीं है), ॥ 18 ॥

अर्थ —“ उस ज्ञाननिष्ठ व्यक्ति का इस संसार में न तो कुछ करने से प्रयोजन है और न नहीं करने से ही। इस मनुष्य का समस्त प्राणियों में कोई भी मतलब अटका नहीं है। अर्थात् उसका संसार में किसी से कोई लेना-देना नहीं है।

व्याख्या —जो मनुष्य ज्ञाननिष्ठ होगा उसके लिये किसी भी प्रकार की कोई कर्तव्यता शेष नहीं रह जाती है क्योंकि जो मुक्त (ज्ञानी) पुरुष है उन्हें अपने लिये लौकिक या पारलौकिक किसी भी विषय वस्तु की आवश्यकता नहीं होती है। जिस प्रकार परमात्मा सब भूतों में अवस्थित है उसी प्रकार वह भी सब भूतों में अवस्थित है जैसा कि पहले ही बताया गया है कि नित्य और नैमित्तिक कर्म न करने से पुण्य तो प्राप्त नहीं होता है किन्तु न करने से प्रत्यवाय (पाप) अवश्य होता है इसीलिये यह शंका की गयी है कि ज्ञानी तो आत्मरति, आत्मतृप्त और आत्मसंतुष्ट होने के कारण समस्त विधि-निषेधों के

परे चला जाता है फिर उसके लिए प्रत्याय कहां से उत्पन्न होगा क्योंकि कहा गया है— 'निस्त्रैगुण्यो पार्थ विचरतः को विधिः को निषेधः' अर्थात् जो त्रिगुण से परे रहकर परिव्रजनशील है उसके लिये विधि कैसे निषेध कैसा ? लोकमान्य तिलक भी मानते हैं कि लोक संग्रह हेतु कर्म करना चाहिये ऐसे ज्ञानी के लिये कोई कर्तव्यता नहीं रह जाती लेकिन स्वयं के लिये कोई कर्म न करके दूसरों के हित के लिये कर्म करना चाहिये जिससे जगत का कल्याण हो सके लोक संग्रह हेतु कर्म को कर्म की श्रेणी में नहीं रखा गया है क्योंकि इन कर्मों से कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता है तीनों लोकों की अर्थात् स्वर्गलोक, मृत्युलोक, पाताल लोक की मर्यादा को स्थायी रखने के लिये कर्म करना लोकसंग्रह है।

यह लोकसंग्रह पूर्ण रूप से मनुष्य के अधीन रहता है क्योंकि मानव शरीर में किये गये कर्मों के फल रूप में ही ये स्वर्ग, मृत्यु और पाताल तीनों लोक होते हैं। लोकसंग्रहकर्ता को सभी लोग आदर की दृष्टि से देखते हैं और सम्मान करते हैं। इनके आचरणों से, व्यवहारों से तथा वचनों से लोग कुमार्ग से हटकर सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित होते हैं। ऐसा लोकसंग्रहकर्ता पुरुष साधक, सिद्ध या भगवान भी हो सकते हैं। भगवान अर्जुन को 3/20 में अनासक्त भाव से कर्म करने के लिये प्रेरित करते हुये जनकादि का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। और कहते हैं कि लोकसंग्रह को देखते हुये तू भी अनासक्त भाव से कर्म करने के योग्य है। लोकसंग्रह साधक, सिद्ध और भगवान तीनों के द्वारा ही होता है किन्तु साधक भाव सर्वथा निष्काम नहीं होता है जबकि सिद्ध पुरुष और भगवान का शुद्ध और सर्वथा निष्काम होता है। क्योंकि उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं होता है साधक भी शास्त्रविहित कर्म करके मर्यादा का ही पालन करता है और उसके द्वारा भी लोकसंग्रह होता है पर वैसा लोकसंग्रह नहीं होता है क्योंकि साधक में अपने कल्याण का प्रयोजन ही नहीं रहता है। लोकसंग्रह करने वाला कर्मनिष्ठ व्यक्ति अपने कल्याण के भाव को सर्वथा त्याग कर देता है और केवल संसार मात्र के कल्याणकारी भाव रखना उचित होता है इसलिये कर्मयोग से सिद्ध महापुरुष में कोई भी कामना न रहने के कारण उसका किसी भी कर्तव्य से किंचिन्मात्र भी सम्बन्ध नहीं रहता है। उसके द्वारा निःस्वार्थ भाव से समस्त सृष्टि के हित के लिये स्वतः कर्तव्य कर्म होते हैं। 'न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः' अर्थात् सम्पूर्ण प्राणियों में कामना—निवृत्ति कर्मयोगी का कुछ भी स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं रहता है उसके द्वारा निःस्वार्थ भाव से समस्त सृष्टि की हित के लिये स्वतः कर्तव्य कर्म होते रहते हैं। इनके द्वारा केवल संसार के लिए ही कर्म करना है, अपने लिये नहीं करना है जो मनुष्य समष्टि की अपेक्षा व्यष्टि को महत्व देता है वह ठीक नहीं करता है और उसी से उसे अशान्ति प्राप्त होती है। अगर वह शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, पदार्थ आदि का समष्टि के लिये उपयोग करे तो उसे महान शान्ति प्राप्त हो सकती है। कर्म योग से सिद्ध महापुरुष की यही विशेषता रहती है कि वह अपने शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि का उपयोग संसार की भलाई के लिये करता है अर्थात् कहने का तात्पर्य है कि उसका शरीरादि की क्रियाओं से कोई प्रयोजन नहीं रहता है। प्रयोजन न रहने पर उस महा पुरुष से स्वतः ही उत्तम कर्म होंगे और ऐसे कर्मों से स्वतः दूसरों का हित होगा। ऐसे महापुरुष का जो अपना कहलाने वाला शरीर भी अपने कर्म में न लगकर दूसरे के कर्म में लगा रहता है। इस प्रकार ऐसे लोगों की सम्पूर्ण भाव और क्रियाएं या चेष्टाएँ संसार के हित के लिये ही होती हैं। ऐसे महापुरुषों में किंचित मात्र भी स्वार्थ प्रत्युपकार अथवा अभिमान का भाव नहीं आता है। इस श्लोक के पूर्व श्लोक 3/17 में भगवान कहते हैं कि इस संसार में सिद्ध महापुरुषों के लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता है— 'तस्य कार्यं न विद्यते' और अब इसका हेतु बताते हुये भी इस श्लोक में तीन बातें कहीं गयी हैं। जो सिद्ध महापुरुष पर चरितार्थ होती हैं —

1—कर्म करने से उसका कोई प्रयोजन नहीं रहता है।
 2—कर्म न करने से भी कोई प्रयोजन नहीं रहता है।
 3—किसी भी प्राणी और पदार्थ से उसका किंचिन्मात्र भी स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं रहता है। अर्थात् कुछ पाने से भी उसका कोई प्रयोजन नहीं रहता वस्तुतः स्वरूप में करने अथवा न करने का कोई प्रयोजन विद्यमान नहीं रहता है और किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता है। इसका कारण है कि शुद्ध स्वरूप के द्वारा कोई क्रिया होती ही नहीं है जो भी क्रिया होती है वह प्रकृति और प्रकृतिजन्य पदार्थों के सम्बन्ध से ही होती है। इसलिये अपने लिये कुछ करने का विधान ही नहीं है।

जिस स्थिति में कोई भी कर्तव्य शेष नहीं रहता उस स्थिति को साधारण से साधारण मनुष्य भी प्रत्येक अवस्था में तत्परता एवं लगन पूर्वक निष्काम भाव से कर्तव्य करने पर प्राप्त कर सकता है। क्योंकि उसकी प्राप्ति में सभी स्वतंत्र और अधिकारी है। मनुष्य शास्त्रविहित कर्तव्य तथा निष्काम कर्म करके परमशान्ति की अवस्था को प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार मुक्त पुरुष के लिये न तो आत्म साक्षात्कार के लिये तत्सम्बन्धी साधन करने का कोई प्रयोजन है और न आत्मसाक्षात्कार के लिये साधन न करने से ही कोई हानि है।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।

असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ 19 ॥

अन्वय— तस्मात् (इसलिये), असक्तः (अनासक्त होकर), सततं (सदा), कार्यं (कर्तव्य), कर्म (कर्म को), समाचर (सम्पादन करो) हि (क्योंकि), पूरुषः (मनुष्य), असक्त (आसक्ति शून्य होकर), कर्म आचरन (कर्म करता हुआ), पूरुषः (मनुष्य), परम् (परमपद), आप्नोति (पा लेता है) ॥ 19 ॥

अर्थ—“इसलिये तू अनासक्त होकर सदैव अपने कर्तव्य कर्म का सुचारु रूप से सम्पादन करो, क्योंकि आसक्ति छोड़कर कर्म करता हुआ मनुष्य परमपद को प्राप्त कर लेता है।”

व्याख्या— आत्मरति, आत्मतृप्ति और आत्मसंतुष्टि ये ज्ञानी के ही लक्षण हैं जैसे—कर्मनिष्ठा कर्मयोगियों के लिये स्वतंत्र मार्ग है वैसे ही ज्ञाननिष्ठा ज्ञान मार्गियों के लिये स्वतंत्र मार्ग है। ज्ञानी पुरुष (मुक्त पुरुष) को लोकसंग्र निमित्त वर्णाश्रम धर्मानुसार विहितकर्मों को करना चाहिये। ज्ञानी पुरुष (ज्ञानयोगी) को कर्म करने की बाध्यता नहीं है लेकिन कर्म करने से भी कोई लाभ या हानि नहीं है तो वह कर्म क्यों छोड़े, उसे अपना स्वभावतः प्राप्त कर्म को करना चाहिये। ज्ञान लाभ के पश्चात् भी तो उसे अपने प्रारब्ध का भोग करना ही पड़ेगा। भले ही ज्ञान द्वारा संचित और क्रियमाण (आगामी) कर्म संस्कार जल जाते हैं पर प्रारब्ध कर्म का नाश (क्षय) तो भोग द्वारा ही होता है। इसी तथ्य को आचार्य शंकर अपने ग्रन्थ ‘विवेकचूणामणि’ में स्पष्ट कहते हैं।

प्रारब्धं बलवत्तरं खलु विदां भोगेन तस्यक्षयः।

सम्यग् ज्ञानहुताशनेन विलयः प्राक्संचितागाभिनाम् ॥

इस प्रकार भगवान् कृष्ण कहते हैं कि जब तक मनुष्य को परमात्मा का आत्म साक्षात्कार न हो जाय अर्थात् क्रिया की परावस्था की प्राप्ति न हो जाय तबतक अपने वर्णधर्मानुसार विहित कर्मों का अनुष्ठान निष्काम भाव से करना चाहिये। अर्थात् क्रिया की परावस्था ही ‘परमपद’ है। मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है कि परमपद की प्राप्ति के लिये पूर्ण प्रयत्न करें। इस प्रकार हे अर्जुन ! समस्त कर्मों में और उनके समस्त भोगों में आसक्ति का त्याग करके फलाकांक्षा रहित होकर कर्म करना चाहिये। वे ही कर्म तुम्हें करना चाहिये जो कर्तव्य कर्म हैं, परधर्म के कर्म, निषिद्ध कर्म और व्यर्थ या काम्य

कर्म नहीं करना चाहिये। इससे भगवान ने यह भाव दिखलाया है कि जिन-जिन कारणों से स्वधर्म पालन करने की आवश्यकता पर बल दिया है भगवान ने अर्जुन को समझाते हुये कहते हैं कि स्वधर्म का पालन करने में ही तुम्हारा हित है। इसलिये तुम्हें वर्ण धर्म के अनुसार कर्म करना ही चाहिये 'असक्तः' पद से भगवान अर्जुन को समस्त कर्मों में और उसके फलरूप समस्त भोगों में आसक्ति का त्याग करने की आज्ञा देते हैं। 'आसक्ति' का अर्थ व्यापक है क्योंकि इसमें ही कामना आ जाती है। यदि आसक्ति का त्याग किया जाय तो कामना का त्याग स्वतः ही हो जाता है। इसलिये 'फलेच्छा' या आसक्ति का कामना लगभग समानार्थी है। भगवान 3/5 में पहले ही कह चुके हैं कि निःसन्देह कोई मनुष्य किसी भी काल में क्षण मात्र भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता है। क्योंकि सारा मनुष्य समुदाय प्रकृतिजनित गुणों के द्वारा परवश हुआ कर्म करने के लिये बाध्य किया जाता है। 'न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्ः' 'सततमं' पद से भगवान ने यही भाव व्यक्त किया है कि निरन्तर कुछ न कुछ कर्म मनुष्य को करते रहना चाहिये तुम सदा सर्वदा जितने भी कर्म करो उन समस्त कर्मों में और उनके फल में आसक्ति से रहित होकर उनको करो किसी समय कोई भी कर्म आसक्ति पूर्वक न करो क्योंकि आसक्ति ही सीमा अनर्थों की जड़ है और फिर परिणाम स्वरूप कर्म बन्धन होता है, और व्यक्ति इसमें फसता जाता है। फिर इसके बाद वह अधोगति को प्राप्त हो जाता है। गीता का सन्देश बड़ा स्पष्ट है 'कभी भी कर्म किये बिना नहीं रहो, समाज सेवा करो, राष्ट्र का गौरव बढ़ाओ, मानव मात्र के कष्टों की निवृत्ति हेतु कर्म करो। गीता जीवन जीने की कला सिखाती है' एवं 'कुर्वन्नेह कर्माणि जिजिवेष्छतं समाः' इस उपनिषद् की उक्ति के अनुसार कर्म करते हुये सौ वर्ष तक जीते रहने की इच्छा प्रबल बनाये रखने की बात करती है।

इस आगे के श्लोक में लोकसंग्रह हेतु कर्म करने को कहा गया है—

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ 20 ॥

अन्वय—जनकादयः (जनक आदि), कर्मणा (कर्म के द्वारा), एव (ही), हि (सचमुच), संसिद्धिम् (सिद्धावस्था को), आस्थिताः (प्राप्त हुये हैं), लोकसंग्रहम् (लोकसंग्रह को), एव (ही), संपश्यन् (देखते हुये), अपि (भी), कर्तुम् (करने के), अर्हसि (तुम योग्य हो), ॥ 20 ॥

अर्थ— " सच पूछो तो जनक आदि कर्म के द्वारा ही सिद्धावस्था को प्राप्त हुये हैं। लोकसंग्रह को देखते हुये भी तुम कर्म ही करने के योग्य हो। "

व्याख्या— भगवान ने अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन तुम अनासक्त होकर कर्म करो, क्योंकि अनासक्त कर्म करने से ही परमतत्व की प्राप्ति हो सकती है। इस पर अर्जुन के मन में दो प्रकार की शंकायें उत्पन्न होती हैं—

1— क्या अनासक्त कर्म सम्भव है।

2— कर्म से क्या मोक्ष मिल सकता है।

अर्जुन के इन दोनो शंकाओं के समाधान के लिये भगवान कृष्ण राजा जनक आदि का उदाहरण देते हैं— देखो, राजा जनके थे, वे अनासक्त होकर कर्म करते थे और कर्म से ही उन्हें सिद्धि (मोक्ष) प्राप्त हुई "कर्मणाएव" कहकर 'करणीयता' पर ज्यादा बल दे रहे हैं भगवान के कहने का तात्पर्य है कि ज्ञानी जनक भी जब कर्म के द्वारा ही ज्ञान की उच्चकोटि तक पहुँचते हैं तब हे अर्जुन, तू हीं कर्म क्यों छोड़ना चाहता है ? यज्ञचक्र के सन्दर्भ में जैसे यज्ञार्थ कर्म करने से बन्धन नहीं होता है। वैसे ही "लोकसंग्रह" के लिये भी कर्म करना चाहिये लोक संग्रह से तात्पर्य है कि तीनों लोकों की मर्यादा को स्थायी रखने के लिए कर्म करना। लोक संग्रह साधक, सिद्ध और भगवान इन तीनों के द्वारा होता है— जैसे—

- 1— साधक के द्वारा लोक संग्रह जनकादि।
- 2— सिद्ध के द्वारा लोकसंग्रह—सिद्ध महापुरुष जो—जो आचरण करता है अन्य मनुष्य भी वैसा ही आचरण करता है वे यदि अपनी वाणी से कुछ कह देते हैं तो लोग वैसा ही अनवर्तन कहते हैं।
- 3— भगवान के द्वारा लोकसंग्रह— भगवान स्वयं कहते हैं कि मेरे लिये तीनों लोकों में कुछ भी प्राप्त करने योग्य और अप्राप्त नहीं है फिर भी मैं कर्तव्य कर्म में लगा रहता हूँ, 'न मे पार्थास्तिकर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन' (3/22)।

यदि मैं निरालस्य होकर कर्तव्य कर्म न करूँ तो लोग मेरा ही अनुवर्तन करेंगे अर्थात् वे भी अपना कर्तव्य कर्म छोड़ देंगे, जिससे उनका पतन हो जायेगा अर्थात् यदि मैं कर्तव्य कर्म न करूँ तो मैं संकर्ता को उत्पन्न करने वाला और प्रजा का नाश करने वाला बन जाऊंगा (3/22/24) वास्तव में लोक संग्रह भगवान और सिद्ध के द्वारा ही ठीक से होता है क्योंकि बिना स्वार्थ के कर्म होता है किन्तु साधक कर्म कल्याण का प्रयोजन रहता है इसलिये साधक का भव सर्वथा निष्काम नहीं होता है सम्पूर्ण सृष्टि को सुरक्षित रखने का सभी प्राणियों के भरण—पोषण—रक्षण का दायित्व मनुष्य पर है अतः अपने वर्ण, आश्रम, स्वाभाव और परिस्थिति के अनुसार कर्तव्य कर्मों का भलि—भांति आचरण करके जो दूसरों लोगों को अपने अदार्श के द्वारा दुर्गुण दुराचार्य से हटाकर स्वधर्म में लगाये रखना है यही लोकसंग्रह है। भगवान अर्जुन को इसलिये समझाते हैं कि हे अर्जुन तुम लोकसंग्रह को देखते हुये कर्म करो क्योंकि राजा जनक आदि की उदाहरण को देखो जो कि गृहस्थ आश्रम में रहकर निष्काम भाव से सब कर्म करते हुये परम सिद्धि को प्राप्त हुये और ऐसा केवल राजा जनक अकेले ही नहीं थे बल्कि उनके पहले तथा बाद में भी अनेक लोग हो चुके हैं। गीता 4/1-2 में भगवान स्वयं कहते हैं कि मैंने इस अविनाशी योग को सूर्य से कहा था, सूर्य ने अपने पूत्र वैवस्वत मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा इस प्रकार यह योग परमपरा से प्राप्त राजर्षियों ने धारण किया किन्तु उसके बाद वह योग बहुत काल से इस पृथ्वी लोक में लुप्त प्राय होगा इस प्रकार यह कर्म योग बहुत पुरातम है जिसके द्वारा राजा जनक जैसे महापुरुष परमात्मा को प्राप्त हो चुके हैं।

केवल कर्म करने से मनुष्य कर्म बन्धन रूपी की जाल में फसता है— 'कर्मणावध्यतेजन्तुः' (महा0 शान्ति0 241/7) लेकिन आसक्ति रहित होकर कर्म करने से ही मनुष्य कर्म बन्धन से मुक्त होता है केवल कर्म करने से नहीं इसी प्रसंग में भगवान आगे समझाते हुये कहते हैं कि लोकसंग्रहार्थ कर्म परमात्मा का साक्षात्कार प्राप्त कर चुके ज्ञानी लोग भी कर सकते हैं। और साधक भी कर सकते हैं। क्योंकि ज्ञानी के लिये तो कोई भी कर्तव्य शेष नहीं रहता है उसके सारे कर्म लोकसंग्रहार्थ होता है जिससे और अज्ञानी लोग भी अनुकरण कर लोकसंग्रहार्थ कर्म करें और इस प्रकार इस ज्ञानी को आदर्श मानकर साधक भी लोकसंग्रहार्थ कर्म कर सकता है किन्तु उसके कर्तव्य में वह बात नहीं आ पाती है जो कि ज्ञानी में होती है, क्योंकि जबतक अज्ञान और आसक्ति पूरी तरह से निवृत्त नहीं हो जाती है और जब तक स्वार्थ का तनिक भी सम्बन्ध रहेगा तब तक लोकसंग्रहार्थ कर्म नहीं हो सकता है। अब अर्जुन प्रश्न करते हैं कि जब ज्ञानी के लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं है। तब क्या वह लोगों को दिखाने के लिये कर्म करता है ? भगवान कहते हैं कि दिखावा के कर्म तो वे करते हैं जो दम्भी लेकिन जो ज्ञानी है वह दम्भी नहीं हो सकता है अतएव वह जो कुछ करता है, लोकसंग्रहार्थ आवश्यक और महत्वपूर्ण समझकर ही करता है, उसमें न दिखाऊपन है, न आसक्ति है, न कामना है, और न अहंकार ही होता है। ज्ञानी के कर्म भाव को केवल ज्ञानी जान सकता है। दूसरा नहीं जान पायेगा इसीसे ज्ञानी के कर्म अत्यन्त विलक्षण माने जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

बहुविकल्पीय प्रश्न

सही विकल्प पर चिन्ह लगायें—

प्रश्न 1— गीता के तृतीय अध्याय का नाम क्या है—

- (अ) कर्मयोग (ब) सन्यासयोग
(स) ज्ञानयोग (द) विषादयोग

प्रश्न 2— रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये—

‘कर्म ब्रह्मोदीवं विद्धि’.....

- (अ) तस्मात्सर्वगतं (ब) ब्रह्म
(स) ब्रह्माक्षर समुद्भवम् (द) यज्ञ

प्रश्न 3— कर्म को किससे उत्पन्न माना गया है—

- (अ) वेद से (ब) वर्षा से
(स) यज्ञ से (द) अक्षर से

प्रश्न 4— अन्न से क्या उत्पन्न होते हैं—

- (अ) मेघ (ब) प्राणी
(स) यज्ञ (द) कर्म

प्रश्न 5— जो इस लोक में प्रवर्तित यज्ञचक्र का अनुसरण नहीं करता है उसको क्या कहा गया है—

- (अ) कर्मयोगी (ब) ज्ञानयोगी
(स) जीवनमुक्त (द) पापी (इन्द्रियाराम)

प्रश्न 6— किस प्रकार के व्यक्ति का संसार से कोई लेना देना नहीं है—

- (अ) इन्द्रियपरायण (ब) आत्मतृप्त
(स) ज्ञानी (द) आत्मरति

प्रश्न 7— अनासक्त कर्म करने से मनुष्य को क्या प्राप्त होता है—

- (अ) ज्ञान (ब) कर्म
(स) भक्ति (द) परमपद

प्रश्न 8— गुण को किससे उत्पन्न कहा गया है—

- (अ) कार्य (ब) प्रकृति
(स) पुरुष (द) कर्म

प्रश्न 9— यज्ञ का अवशिष्ट खाने वाले सन्त किससे मुक्त हो जाते हैं—

- (अ) समस्त पापों से (ब) समस्त कर्मों से
(स) सभी फलों से (द) समस्त ज्ञान से

प्रश्न 10— आत्मरति, आत्मतृप्त और आत्मसंतुष्ट किसका लक्षण है—

- (अ) ज्ञाननिष्ठ का (ब) कर्मनिष्ठ का
(स) प्रकृति (द) पुरुष का

प्रश्न 11— किस प्रकार के व्यक्ति का कोई प्रयोजन इस संसार में शेष नहीं रहता है—

- (अ) स्वार्थबोध (ब) ज्ञाननिष्ठ
(स) कर्मनिष्ठ (द) निष्ठ योग

प्रश्न 12— संचित और क्रियमाणकर्मसंस्कार किसके द्वारा जल जाते हैं—

- (अ) ज्ञान के द्वारा (ब) मंत्र के द्वारा
(स) कर्म के द्वारा (द) भोग के द्वारा

प्रश्न 13— भगवद्गीता किस ग्रन्थ का अंश है—

- (अ) महाभारत (ब) वेद

- (स) पुराण (द) आरण्यक
 प्रश्न 14— निष्काम कर्म से चित्तशुद्धि होने के उपरान्त साधक को क्या प्राप्त होता है—
 (अ) कर्म (ब) भक्ति
 (स) असूया (द) मोक्षलाभ
 प्रश्न 15— पांच ऋणों से अऋण होने के लिये कौन सी यज्ञ करनी चाहिये—
 (अ) पंचमहायज्ञ (ब) षडभतायज्ञ
 (स) अश्वमेध यज्ञ (द) राजसूय यज्ञ
 प्रश्न 16— यज्ञशेष का अनुभव करने पर क्या नहीं रहता है—
 (अ) पुण्य—पाप (ब) हर्ष—विषाद
 (स) जय—पराजय (द) लाभ—हानि
 प्रश्न 17— संसारचक्र की धुरी किसे कहा गया है—
 (अ) पाप (ब) पुण्य
 (स) यज्ञ (द) मोक्ष
 प्रश्न 18— प्रारब्ध कर्म का क्षय किसके द्वारा होता है—
 (अ) कर्म (ब) भोग
 (स) ज्ञान (द) मोक्ष

5.4 इकाई का सारांश

श्रीमद्भगवद गीता के तृतीय अध्याय का नाम 'कर्मयोग' इसमें कर्मयोग है, इसमें 43 श्लोक है 'योग' से तात्पर्य 'जुड़ना' से है आध्यात्मिक दृष्टि से उसका अर्थ है "जीवात्मा का परमात्मा से जुड़ाव" ईश्वर के साथ जीवों का जुड़ना विभिन्न उपायों या साधनों से हो सकता है। जब जीव अपने विषाद के माध्यम से ईश्वर से युक्त होता है तब वह 'विषादयोग' है। इसी प्रकार जब वह अपनी क्रिया शक्ति के माध्यम से युक्त होता है तब वह 'कर्मयोग' है। स्वभावतः कर्म बन्धनकारक होता है और मोह माया के जाल में फंसा देता है किन्तु एक ऐसा भी साधन है जिसमें कर्म बन्धन कारक नहीं होता है और इतना ही नहीं पूर्वकृत कर्मों के बन्धन को ही समाप्त कर देता है। यह उपाय 'कर्मयोग' के नाम से जाना गया है। जब अर्जुन किंकर्तव्य विमूढ़ की स्थिति पहुंच गये हैं और युद्ध न करने का निश्चय करते हैं ऐसे समय में भगवान श्रीकृष्ण ने गीता का उपदेश अर्जुन को केन्द्र में रखकर दिया है। भगवान ने अर्जुन के उस प्रश्न का उत्तर इस अध्याय के प्रारम्भ में ही देते हैं। जब अर्जुन कहते हैं कि हे केशव! यदि आपके मत में ज्ञान कर्म की अपेक्षा श्रेष्ठतर है तो मुझे इस भयंकर कर्म में क्यों प्रवृत्त कर रहें हैं। आप अपने परस्पर विरोधी वचनों से मेरी बुद्धि को मोहित सा कर रहें हैं। इसलिये कृपा करके मुझे एक मार्ग का उपदेश दीजिये जिसमें मैं कल्याण को प्राप्त करूँ तब भगवान कृष्ण उत्तर देते हैं कि —

**'लोकेऽस्मिन् द्विधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
 ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥'**

अर्थात् "हे निष्पाप अर्जुन ! इस संसार में दो प्रकार की निष्ठा या स्थिति मेरे द्वारा पहले ही बतलायी गयी है— ज्ञानियों के लिये ज्ञान योग और कर्मयोगियों के लिये कर्मयोग की।"

दो निष्ठाओं की बात कहकर परमार्थ की दो पथों का निर्देश करते हैं, और स्पष्ट करते हैं कि ये दोनों पथ परमार्थ लाभ के स्वतंत्र साधन हैं। उनमें एक सांख्यों की अर्थात् निवृत्ति मार्गियों की ज्ञानयोग के द्वारा और दूसरे योगियों की अर्थात् प्रवृत्ति मार्गियों की कर्म द्वारा बतायी गयी है। इसी क्रम में आगे भगवान कहते हैं कि— 'न

कर्मणामनारम्भा न नैष्कर्म्यः पुरुषोऽस्नुतेः' अर्थात् केवल का प्रारम्भ न करने से ही मनुष्य नैष्कर्म्य की अवस्था को नहीं पा लेता है और न ही कर्म का त्याग कर देने मात्र से सिद्धि को पाता है, इस संसार में कोई भी प्राणी कर्म शून्य होकर क्षण मात्र भी नहीं रह सकता है। 'न हि कश्चित् क्षणमपि जात् तिष्ठत्य कर्मकृत्' इस अध्याय में अर्जुन के माध्यम से मानो भगवान सभी मानव मात्र को सावधान कर देते हैं कि मिथ्यचार से बचो, प्रदर्शन की वृत्ति मन से निकाल दो जो भी कर्म करो निष्काम भाव से करो अर्थात् उसमें फलाकांक्षा की आसक्ति नहीं होनी चाहिये क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना ही श्रेष्ठ है। 'नियतंकुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः' इसीलिये भगवान आसक्ति से रहित होकर यज्ञ के निमित्त कर्म करने के लिये कहते हैं क्योंकि जो कर्म यज्ञनिमित्तक होते हैं। श्री कृष्ण ने इसी अध्याय में ज्ञानी अज्ञानी का भेद भी बताते हैं— भगवान कहते हैं कि ज्ञानी वह है जो आसक्ति रहित होकर लोकसंग्रह की भावना से कर्म करता है। और इसके विपरीत अज्ञानी वह है जो कर्म में आसक्ति भाव रखकर काम करता है। श्री कृष्ण यह कहना चाहते हैं कि ज्ञानी व्यक्ति को चाहिये कि कर्म में आसक्ति वाले अर्थात् कर्माधिकारी अज्ञानियों में बुद्धि भेद अर्थात् कर्म में ग्लानि न उत्पन्न करें किन्तु ज्ञानी को स्वयं चाहिये कि वह स्वयं उचित आचरण करता हुआ अज्ञानियों के लिये उदाहरण प्रस्तुत करें जिससे वह भी अनुकरण करके वैसा ही करो इस प्रकार गीता में कर्मयोग का विशेष महत्व है। कर्मयोग का आश्रय लेकर व्यक्ति सांसारिक बन्धनों से मुक्ति पा सकता है।

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

- 1—**यज्ञार्थकर्म**—जिन कर्मों से दूसरों के सुख पहुंचाने में तथा हित करने के लिये कर्म किया जाता है। उसे 'यज्ञार्थ कर्म' कहा जाता है।
- 2—**नैष्कर्म्य**—'नैष्कर्म्य' का अर्थ टीकाकारों ने 'ज्ञाननिष्ठा' से लिया है। वह वैय्याकरणों ने 'नैष्कर्म्य' का अर्थ कर्मराहित्य यानि कर्म का अभाव माना है जब अन्तःकरण में प्रकाश इतना तीव्र हो जाय कि सारा जगत निःसार एवं प्रपंच प्रतीत होने लगे तो कर्म की प्रेरण स्वतः ही कुण्ठित होने लगती है यही "ज्ञाननिष्ठा" है।
- 3—**लोकसंग्रह**—तीनों लोको की मर्यादा को स्थायी रखने के लिये कर्म करना "लोकसंग्रह" है।

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न (1) की उत्तरमाला

- | | | | | |
|----------------|----------------|----------------|----------------|----------------|
| प्रश्न 1— (इ) | प्रश्न 2— (अ) | प्रश्न 3— (अ) | प्रश्न 4— (ब) | प्रश्न 5— (अ) |
| प्रश्न 6— (ब) | प्रश्न 7— (ब) | प्रश्न 8— (स) | प्रश्न 9— (अ) | प्रश्न 10— (अ) |
| प्रश्न 11— (स) | प्रश्न 12— (द) | प्रश्न 13— (स) | प्रश्न 14— (अ) | प्रश्न 15— (अ) |

अभ्यास प्रश्न (2) की उत्तरमाला

- | | | | | |
|----------------|----------------|----------------|----------------|----------------|
| प्रश्न 1— (अ) | प्रश्न 2— (स) | प्रश्न 3— (अ) | प्रश्न 4— (ब) | प्रश्न 5— (द) |
| प्रश्न 6— (स) | प्रश्न 7— (द) | प्रश्न 8— (ब) | प्रश्न 9— (अ) | प्रश्न 10— (अ) |
| प्रश्न 11— (ब) | प्रश्न 12— (स) | प्रश्न 13— (अ) | प्रश्न 14— (द) | प्रश्न 15— (अ) |
| प्रश्न 16— (अ) | प्रश्न 17— (स) | प्रश्न 18— (ब) | | |

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गीतातत्व चिन्तन — स्वामी आत्मानन्द प्रकाशन—अद्वैत आश्रम, 5 डिही एण्टाली रोड—कलकत्ता

- 2— भगवद्गीता — चक्रवर्ती राजगोपालाचार्यश्री मदभगवद् गीता — योगीराज श्री श्यामाचरणलोहिड़ी महाशय एवं भूपेन्द्र नाथ सान्याल ।
- 3—श्री मदभगवद् गीता — साधक संजीवनी — स्वामी राम सुख दास ।
- 4—'गीता — स्वामी अडगडानन्द ।
- 5—श्री मदभगवद् गीता ' यथारूप — श्री श्रीमद् ए0सी0 भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुवाद ।
- 6—श्री मदभगवद् गीता त्रयी — भगवान श्री कृष्णचन्द्र वासुदेव ।
- 7— श्री मदभगवद् गीता — तत्त्विवेचनी हिन्दीटीका — जयदयाल गोयन्दका गीता प्रेस गोरखपुर ।
- 8—श्री मदभगवद् गीता — स्वामी अपूर्वानन्द — रामकृष्ण मठ— नागपुर ।
- 9— युगगीता — डॉ प्रणव पाण्डया
- 10—गीता रहस्य — लोक0 बाल गंगाधर तिलक नारायण प्रेस पूना ।
- 11—संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास दशम—खण्ड वेदान्त, पद्माभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय ।

5.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- 1.श्रीमद् भगवद्गीता — तत्त्वविवेचनी (हिन्दी टीका) जयदयाल गोयन्दका, गीताप्रेस, गोरखपुर ।
- 2.श्रीमद् भगवद्गीता — स्वामी अपूर्वानन्द— रामकृष्ण मठ नागपुर ।
- 3.गीता तत्त्वचिन्तन — स्वामी आत्मानन्द प्रकाशन — अद्वैतआश्रम— कल ।
- 4.श्रीमद्भगवद्गीता — चक्रवर्ती राजगोपलचारी
- 5.श्रीमद्भगवद्गीता —योगीराजश्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय एवं भूपेन्द्रनाथ सान्याल ।
- 6.यथार्थ गीता — स्वामी अड.गडानन्द ।
- 7.गीता रहस्य — लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक नारायण प्रेस, पूना ।

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

- प्रश्न-1 "लोकेऽस्मिन् द्विधा निष्ठा" की व्याख्या कीजिये ?
- प्रश्न-2 यज्ञ की परिभाषा दीजिये — इसे क्यों करना चाहिये इसके न करने से क्या हानि है ?
- प्रश्न-3 विराट यज्ञ चक्र का वर्णन कीजिये ?

इकाई 6. तृतीय अध्याय श्लोक संख्या 21 से 31 तक

इकाई की रूपरेखा

- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 उद्देश्य
- 6.3 श्लोक संख्या-21 से 31 तक मूल, अन्वय, अर्थ, व्याख्या
 - 6.3.1 श्लोक संख्या-32 से 43 तक मूल, अन्वय, अर्थ, व्याख्या,
- 6.4 इकाई का सारांश
- 6.5 पारिभाषिक शब्दावली
- 6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 6.8 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री
- 6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

भगवद्गीता प्रस्थान त्रयी क अत्यधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। भगवद्गीता विश्व के सबसे महाकाव्य महाभारत के 'भीष्मपर्व' का एक अंश है। भगवद्गीता भगवान श्री कृष्ण द्वारा कुरुक्षेत्र युद्ध में दिया गया अर्जुन को दिव्य उपदेश है। इसमें 18 अध्याय और 700 श्लोक हैं जब अर्जुन मोहग्रस्त होकर किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं। तब भगवान ने अर्जुन को केन्द्र में रखकर अपने श्रीमुख से दिव्य वाणी से समन्वित उपदेश दिया है। श्री मदभागवद्गीता के इस तृतीय अध्याय का 21 से 43 श्लोक की व्याख्या इस इकाई -06 में यथोचित रूप से करने का प्रयास किया गया है। इसमें पहले मूल श्लोक को दिया गया है फिर उसका अन्वय-अर्थ-अनुवाद और फिर मार्मिक व्याख्या को विस्तृत रूप से लिखने का प्रयास किया गया है। भगवद्गीता साक्षात् भगवान की दिव्य वाणी होने से इसके श्लोकों मन्त्र का दर्जा प्राप्त है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप लोकसंग्रह हेतु कर्म को अच्छी तरह से समझ सकेंगे। श्री मदभागवद्गीता संसार के अति महत्व पूर्ण ग्रन्थों में विशेष स्थान रखती हैं और यह कारण है कि श्री मदभागवद्गीता का विश्व की कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

श्री कृष्ण भगवान स्वयं इसके वक्ता है और उनका कहना है कि- 'गीता में हृदयं पार्थ' अर्थात् हे अर्जुन गीता मेरा हृदय है। इस प्रकार गीता में 'सर्वशास्त्रमयि' कहा गया है क्योंकि सभी शास्त्रों का मन्थन करके अमृतमयि गीता का उदय या प्रकटीकरण हुआ है। गीता को पढ़ने के बाद इसके विचारों को आप अपने जीवन में उतारने की कोशिश करेंगे। आप यह देखेंगे कि इसका दिव्य संदेश किसी जाति, विशेष सम्प्रदाय के लिए नहीं है। बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति के लिये है। जो सार्वभौम है इसमें किंकर्तव्य विमूढ़ अर्जुन का स्वधर्मयुद्ध, श्रद्धा और अनसूया वृत्ति को जान सकेंगे अपने जीवन में काम को मार सकने में समर्थ हो पायेंगे इस सबका उत्तर एवं व्याख्या इस इकाई में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। अनासक्त और फलासक्त कर्म, ज्ञानी और मूढ़ राग और द्वेष आदि का वर्णन किया गया है।

इसमें व्याख्या को सरल और सुबोध गम्य बनाने के लिए प्रयास किया गया है फिर बीच-बीच में प्रश्न माला दी गई है और इसके साथ निबन्धात्मक प्रश्न-प्रश्नोत्तर माला और उपयोगी पाठ्य सामाग्री का परिचय भी इस इकाई में दिया गया है।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप के निम्न प्रयोजन की पूर्ति होगी -

- 1-लोक संग्रह हेतु अनासक्त होकर कर्म करना चाहियें। (इसमें आप परिचित होंगे)।
- 2-भगवान स्वयं मानवरूप में लोकसंग्रह कर्म का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हुये ज्ञानी और अज्ञानी के कर्म में क्या अन्तर है। (इसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे)
- 3-मूढ़ और तत्त्वज्ञ में क्या अन्तर है। (इससे परिचित होंगे)।
- 4-सभी कर्म त्रिगुणात्मक होते हैं जो प्रकृति के गुणों द्वारा सम्पन्न होते हैं। (इस विषय पर समीक्षा करने में समर्थ होंगे)
- 5-स्वधर्म में मरना श्रेयस्कर है तथा काम मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है और इसके नाश का उपाय जान सकेंगे। इस प्रकार इस इकाई को पढ़ने के बाद आप में भी जिज्ञासा का अंकुरण होगा और गीता के बताये हुये मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित होंगे।
- 6-गीता प्रस्थानत्रयी का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस प्रस्थानत्रयी में ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् और गीता आते हैं। गीता वेदों से भी श्रेष्ठ मानी गयी है क्योंकि इसमें ब्रह्मसूत्र और गीता दोनों का ही तात्पर्य आ जाता है। ऐसा जानकर आप गौरवबोध से युक्त होंगे।

6.3 श्लोक 21 से 31 तक

श्री भगवानुवाच

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ 21 ॥

अन्वय— श्रेष्ठः (श्रेष्ठ) यत् यत् (जैसा—जैसा) आचरति (आचरण करता है) इतरः (अन्य सामान्य) जनः (जन) तत् तत् (वैसा—वैसा) एवं (ही) [करते है] (करता है) लोकः (लोग) तत् (उसका) अनुवर्तते (अनुसरण करते है)। ॥ 21 ॥

अर्थ—“श्रेष्ठ व्यक्ति जो कुछ करता है, वही अन्य यानि साधारण जन भी करते हैं। वह जिसे प्रमाणित कर देता है, लोग उसी का अनुसरण करते है।”

व्याख्या— भगवान कहते हैं कि महान जनों के पदचिहों का अनुसरण करना सनातन रीति है। इसी कारण श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा था— तुम भी श्रेष्ठ व्यक्ति हो, अनेकों मनुष्यों के आदर्श हो, यदि तुम स्वधर्म पालन से मुह मोडते हो और युद्ध से भाग जाते है तो क्षत्रिय धर्म का महान पतन होगा अतः युद्ध छोडकर भागना निन्दाजनक है।”

मनुष्यों को अपने जीवन द्वारा आदर्श दिखाकर कुमार्ग से निवृत्त करके सुमार्ग में परिचालित करना ही 'लोक संग्रह' है। जैसे किसी (आफिस) कार्यालय का वरिष्ठ अधिकारी यदि समय से अपने कार्यालय में बैठ जाता है तो उसके अधीनस्थ भी समय से कार्यालय पहुंचने के लिये बाध्य हो जाते है। इस प्रकार भगवान अर्जुन को समझाने का प्रयास करते हैं कि समस्त शास्त्रों को जानने वाला और उसके अनुसार चलने वाला ही पुरुष 'श्रेष्ठ पुरुष' कहा जाता है। वह जो आचरण करता है अज्ञानी लोग भी उसे देखकर वही—वही आचरण करते हैं। इसलिये श्रेष्ठ पुरुष को लोक संग्रह की ओर ध्यान रखते हुये सावधानी के साथ सभी कर्मों को करना चाहिये; अन्यथा उसके देखा—देखी अज्ञानी जन भी उसी को कर्तव्य समझकर उसी के अनुरूप व्यवहार करने लगेंगे। इसलिये श्रेष्ठ पुरुष को चाहिये कि लोक रक्षा के लिये अपने वर्णश्रमानुकूल सब कर्म सदा ही करते रहना चाहिये। श्रेष्ठ महापुरुषों के आचरण को लोग अनुकरण करते हैं क्योंकि श्रेष्ठ महापुरुष जिस—जिस लौकिक या वैदिक प्रथा को प्रामाणिक मानता है लोग उसी के अनुसार चाहते हैं।

श्लोक —

श्री भगवानुवाच—

न में पार्थस्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।

नानवाप्तभवाप्तव्यं वर्त एवं च कर्मणि ॥ 22 ॥

अन्वय— पार्थ (हे पार्थ) त्रिषु (तीनों) लोकेषु (लोको में) मे (मेरा) किंचन (कुछ भी) कर्तव्यं (कर्तव्य) न (नहीं) अस्ति (है), अनवाप्तम् (अप्राप्त) अवाप्तव्यं (प्राप्तव्य) न (नहीं) है च (फिर भी) कर्मणि (कर्म में) एवं ही वर्त (लगा रहता हूँ) ॥ 22 ॥

अर्थ—“हे पार्थ! तीनों लोकों में मेरा कुछ भी कर्तव्य नहीं है, क्योंकि न तो मुझे कुछ अप्राप्त है और न कुछ प्राप्त ही करना है। फिर भी मैं कर्म में ही लगा रहता हूँ।”

व्याख्या— आप ने यह पिछली इकाई—05 (श्लोक—21) में देख कि भगवान राजा जनक का उदाहरण देते हैं, किन्तु फिर भगवान कृष्ण सोचते हैं कि कहीं अर्जुन को यह न लगे कि कवियों ने बढ़ा—चढ़ाकर वर्णन किया है और विश्वास न उत्पन्न हो पाये, इसलिये भगवान इस श्लोक में स्वयं अपना उदाहरण रख देते हैं। भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन तीनों लोकों में मेरे लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं है जो मेरे द्वारा सम्पन्न होना है

किन्तु फिर भी मैं सतत् कर्म में रत रहता हूँ। भगवान श्री कृष्ण के वचन को दो प्रकार से देख सकते हैं—

(1) अर्जुन के सारथि के रूप में (मनुष्य दृष्टि से)।

(2) साक्षात् ईश्वर रूप में।

मनुष्य रूप में देखे तो कहेंगे कि आप्तकाम है। क्योंकि कर्तव्यता का अभाव यह सूचित करता है कि व्यक्ति की कोई कामना शेष नहीं है। कारण है कि कामना ही तो मनुष्य को कर्म में प्रेरित करने का साधन है। परन्तु जो अकाम है,।”

उसके लिये भला क्या कर्म ? किन्तु फिर भी भगवान कर्म किस प्रकार सतत करते रहते हैं उनके जीवनदर्शन से स्पष्ट है। यदि स्वयं भगवान कर्म करना छोड़ें देंगे तो दूसरे अन्य भी देखा—देखी क्रियाशीलता से विमुख हो जायेंगे।

2—यदि श्री कृष्ण को ईश्वर रूप में देखे तो ये कहना पड़ेगा कि जो स्वयं ईश्वर है और जिसके लिये कुछ भी अप्राप्त नहीं है फिर भी पूरे संसार की भलाई के लिये निरन्तर कर्म में प्रवृत्त रहते हैं। उन्ही की प्रेरणा से पूरा विश्व सक्रिय रहता है दिन—रात होते हैं, सूर्य—चन्द्र उदय—अस्त होते हैं। अर्थात् ईश्वर यदि कर्म से विमुख हो जाय तो सवे कुछ नष्ट हो जायेगा। अर्थात् भगवान अर्जुन को यह समझाने का प्रयास कर रहे हैं कि हे अर्जुन यदि मैं कर्म करना बन्दकर दूँ तो लोग (मनुष्य) यह नहीं समझ पायेंगे कि मैं आप्तकाम हूँ और मुझे कर्म नहीं करना चाहिये। लोग मेरा अन्धानुकरण करेंगे जिससे आलसी और प्रमादी होकर नष्ट हो जायेंगे। इसलिये मुझे 'लोकसंग्रहार्थ' कर्म करना पड़ता है।

श्लोक —

यदि ह्यहं न वर्तयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ 23 ॥

अन्वय—पार्थ (हे पार्थ) यदि हि अहं (यदि मैं) जातु (कदाचित) अतन्द्रितः (निद्रा या आलस्य छोड़कर) कर्मणि (कर्म में) न (नहीं) वर्तयं (लगा रहूँ), [तो] मनुष्याः (सारे मनुष्य) मम वर्त्म (मेरे मार्ग का) सर्वशः (सब प्रकार से) अनुवर्तन्ते (अनुसरण करेंगे) ॥23 ॥

अर्थ—हे पार्थ! यदि मैं कदाचित निद्रा आलस्य छोड़कर कर्म में न लगा रहूँ तो मनुष्य निश्चय ही सब प्रकार से मेरे मार्ग का अनुसरण करेंगे।

व्याख्या — भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्म करने के लिये प्रेरित करते हुये अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। हे अर्जुन तुम अन्यत्र उदाहरण न ढूँढों, केवल मुझे ही देख लो कि मैं कर्म क्यों कर रहा हूँ ? इसका उत्तर है लोकसंग्रह के लिये। जब कि इस जगत में मेरे लिये कर्म करने की कोई आवश्यकता नहीं है तो भी निरन्तर मैं कर्म करने में लगा रहता हूँ, जिससे 'लोकसंग्रह' हो सके। समाज के लोग मुझे देखाकर मुझसे प्रेरणा लें, मुझको विश्व के समक्ष उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करके समाज को एक नवीन दिशा प्रदान कर सकें। यदि मैं कर्म करने में कदाचित आलस्य कर जाऊँ तो निश्चय ही विश्व की प्रजा मेरे ही मार्ग का अनुसरण करने लगेगी, यही मम वर्त्मानुवर्तन्ते का अर्थ है। प्रकृति सतत् हमें कर्म करना सिखाती है क्योंकि यदि प्रकृति आलस्य और अकर्मण्य युक्त हो जायेगी तब 'लोकनाश' हो जायेगा। ईश्वर के पीछे प्रकृति चलती है और प्रकृति के पीछे मनुष्य।

इसलिये भगवान अर्जुन को समझाते हुये कहते हैं कि भले ही तुम्हें, तब भी लोकसंग्रह के लिये कर्म करना चाहिये जिससे समाज में जब भी धर्म की बात आये तो लोग उदाहरण मानकर आप से प्रेरणा ले कि धर्म की रक्षा के लिये युद्ध कैसे किया जाता है। भले ही युद्ध भूमि में शत्रु पक्ष का सहयोग आपके बन्धु, बान्धव कर रहे हो

फिर भी दुनिया को यह दिखा दो कि जो अधर्म का साथ देगा वह भी अधर्म के समान ही दण्डनीय है। श्रीकृष्ण भगवान स्वयं बाल्यावस्था से लेकर देहत्याग तक अतृप्त कर्म प्रवाह में से जुड़े रहें, उनका जीवन दूसरों के लिये आदर्श रहा है। वे कहते हैं कि मेरा कोई स्वार्थ नहीं है फिर भी मैं कर्म अर्थात् सत्त कर्म करता रहता हूँ। यदि मैं कर्म करना बन्द कर दूँ तो लोग यह तो नहीं समझ पायेंगे कि मैं कृतकृत्य और आप्तकाम हूँ इसलिये मुझे कर्म करने की आवश्यकता नहीं, तो लोग मेरा अन्धानुकरण करेंगे और आलस्य एवं प्रमादी होकर अपने को नष्ट कर डालेंगे।

श्लोक –

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्या कर्म चेदहम् ।

संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यमिमाः प्रजाः ॥ 24 ॥

अन्वय— चेत (यदि) अहं (मैं) कर्म (कर्मानुष्ठान) न (नहीं) कुर्याम् (करूँ) इमे (ये) लोकाः (लोक) उत्सीदेयः (नष्ट-भ्रष्ट हो जायेंगे), [तब मैं] संकरस्य (वर्णसंकर का) कर्तास्याम (कर्ता बन जाऊँगा), इमाः प्रजा च (और इन सारी प्रजा का) अहन्याम् (नाश कर दूँगा) ॥24॥

अर्थ—“यदि मैं कर्म न करूँ, तो ये सारे लोक नष्ट-भ्रष्ट हो जायेंगे, मैं वर्णसंकर का कर्ता बन जाऊँगा, और इन सारी प्रजा का नाश कर दूँगा।”

व्याख्या— भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! ईश्वर आलस्य या प्रमाद से रहित होकर कर्म करते हैं तभी तो ग्रह-नक्षत्र सभी अपने-अपने निर्धारित कर्मों को करते हैं। मनुष्य को प्रकृति से सत्त कर्म का पाठ सीखना चाहिये अपने पीछे की पीढ़ी के मार्गदर्शन के लिये ही महापुरुषों को कर्म करना पड़ता है। इसलिये हे अर्जुन ! मैं भी शास्त्र विहित कर्म लोकसंग्रह के लिये करता हूँ जिससे समाज लोकसंग्रह के लिये करता हूँ जिससे समाज मेरा अनुकरण करें। यहाँ पर श्रीकृष्ण भगवान के रूप में उपस्थित न होकर महापुरुष के रूप में अनुकरणीय है।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि यदि मैं कर्म न करूँ तो लोगों का पतन हो जायेगा और सभी कर्म छोड़ बैठेंगे और मैं वर्णसंकर का कर्ता बन जाऊँगा। अर्थात् धर्मनाशक संकरता ही 'वर्णसंकरता' है। अपने शाश्वत, स्वरूप के पथ से भटक जाना ही 'वर्णसंकरता' है। इस प्रकार शास्त्र विधि का त्याग करके नियमपूर्वक अपने-अपने धर्म का पालन न करने से सारी व्यवस्था बिगड़ जाती है और सबके धर्मों में संकरता आ जाती है। अर्थात् उनका मिश्रण हो जाता है। इस कारण सब अपने-अपने कर्तव्य से भ्रष्ट होकर बुरी स्थिति में पहुँच जाते हैं जिससे उनके धर्म, कर्म और जाति का नाश हो जायेगा तथा मनुष्यत्व ही नष्ट हो जायेगा। अतएव भगवान यह स्पष्ट करना चाहते कि यदि मैं स्वयं शास्त्रविहित कर्मों का त्याग कर दूँ तो फलतः अपने आदर्श के द्वारा इन लोगों से शास्त्र विहित वैदिक एवं लौकिक कर्मों का त्याग करवा कर धर्मनाशक संकरता उत्पन्न करने में मुझको कारण बनना पड़ेगा। जिससे समसम प्रजा के नाश में निमित्त बनजाऊँगा। भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन ! जब कि तुम पहले ही कह चुके हो— 'संकरो नरकायेव— (गीता 1/42) वर्णसंकर निश्चय करके नरक के लिये होता है। इस प्रकार तू भी श्रेष्ठ पुरुषों में अग्रणी, धर्मात्मा और सदाचारी कर कर्म करो। जिससे तुम्हारे पीछे चलने वाले अल्पज्ञ तथा उत्तम पुरुष भी कर्मनिष्ठा को स्वीकार कर स्व-स्वकर्म करेंगे।

श्लोक – सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।

कुर्याद्विद्वांस्तथासक्ताश्चिकीर्षुलोकसंग्रहम् ॥ 25 ॥

अन्वय— भारत ! (हे अर्जुन!) कर्मणि (कर्म में) सक्ताः (आसक्त होकर) अविद्वांस (अज्ञानी लोग) यथा (जिस तरह) कुर्वन्ति (कर्म करते हैं), विद्वान (ज्ञानी को) तथा (उसी

तरह) असक्तः (अनासक्त होकर) लोकसंग्रह (लोकसंग्रह) चिकीर्षुः (करने की इच्छा से) कुर्यात् (करना चाहिये)।

अर्थ—“हे अर्जुन ! कर्म में आसक्त हो अज्ञानी, जन जिस तीव्रता से (कर्म) करत हैं, ज्ञानी को अनासक्त रहकर लोकसंग्रह अर्थात् लोगों का हित करने की इच्छा से उसी तीव्रता के साथ (कर्म) करना चाहिये।”

व्याख्या— भगवान कहते हैं कि कर्म तो ज्ञानी भी करते हैं और अज्ञानी भी करते हैं किन्तु दोनों के कर्म में एक महत्वपूर्ण अन्तर यह होता है कि अज्ञानी आसक्त होकर कर्म करता है जब कि ज्ञानी अनासक्त होकर अज्ञानी का कर्म विषय—बासना की पूर्ति हेतु होता है जब कि ज्ञानी का “लोकसंग्रहार्थ” कर्म होता है। जो कर्म लोकसंग्रह हेतु किया जाता है उससे ममत्व, आसक्ति नहीं होती है इसमें केवल परार्थ चिन्तन कारक होता है ऐसे कर्म लोगों के लिये आदर्श स्वरूप होते हैं। यहां भगवान समझाते हुये अर्जुन को कहते हैं कि यदि तुम ज्ञान की उच्चतम् अवस्था को प्राप्त भी कर लो तब भी लोककल्याण के लिये अनवरत कर्म करना चाहिये। इस लिये अनासक्ति पूर्वक लोकयात्रा निर्वाह के लिये फलांकांक्षा रहित होकर कर्म करना चाहिये। परार्थ चिन्तन—परक—कर्म जो है वह कर्म बन्धन कारक नहीं रह जाता है। और ऐसे ही कर्म को समाज अपना आदर्श रूप मानता है। इसलिये ज्ञानी लोगों से तीव्र कर्म करने की गीता में अपेक्षा की गयी है। “योग—वासिष्ठ” में महर्षि वसिष्ठ ने राम को कर्म करने का, इस प्रकार उपदेश दिये है—

बहिःक्रत्रिम संरम्भोऽभ्यन्तः संरम्भवर्जितः।

कर्ताबिहिरकर्तान्तलोके बिहर राघव।।

अर्थात् हे राघव ! इस प्रकार कर्म करो कि बाहर से तो लोग ऐसा समझे कि इनका कर्म में बड़ा आवेश है; किन्तु भीतर मन में बिल्कुल आवेश न हो। इस प्रकार वाह्य लोगों की दृष्टि में तुम कर्ता समझे जाओ, पर भीतर मन बुद्धि से अकर्ता ही बने रहो। इस प्रकार लोक में रहते हुये बिहार, करो, अर्थात् सब प्रकार के कर्माचरण करो। कहने का तात्पर्य है कि साधु पुरुष बाहरी रूप में काम तो करता है परन्तु अन्दर अलिप्त रहता है, वह प्रत्येक कार्य निःस्वार्थभाव से करता है और सफलता तथा असफलता, सुख तथा दुःख, आनन्द तथा अनुताप आदि में समरूप रहता है।

श्लोक —

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्।

जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरेन् ॥ 26 ॥

अन्वय—कर्मसंगिनाम् (कर्म में आसक्त) अज्ञानां (अज्ञानियों का) बुद्धिभेदं (बुद्धिभेद) न

(नहीं) जनयेत् (पैदा करें) विद्वान् (ज्ञानी व्यक्ति) युक्तः (योग युक्त होकर) सर्वकर्माणि (सारे कर्मों को) समाचरेन् (अनुष्ठान करते हुये) योजयते (अज्ञानियों को कर्म में नियुक्त रखे) ॥ 26 ॥

अर्थ —ज्ञानी को चाहिये कि वह कर्म में आसक्त अज्ञानियों में बुद्धिभेद पैदा न करे, अपितु स्वयं योग युक्त होकर समस्त कर्मों को अच्छी तरह करता हुआ उन सबको भी कर्म लगाये रखें।

व्याख्या— भगवान कहते हैं कि ज्ञानी व्यक्ति कर्म में आसक्त अज्ञानियों में बुद्धिभेद उत्पन्न न करें। अर्थात् ज्ञानियों को निष्क्रिय देखने से अज्ञानी लोग समझेंगे कि ज्ञानी तो कर्म नहीं करते, फिर हम कर्म क्यों करें ? ऐसा सोचने का अवसर ज्ञानी लोग न दें।

अधिकांशतः ऐसा देखने में आता है कि अज्ञानी ज्ञानी के उपदेशों से प्रभावित होकर कर्म को छोड़ बैठता है पर ज्ञान को धारण नहीं कर पाता है तब “ इतो नष्टः उतो भष्टः वाली कहावत चरितार्थ हो जाती है। ज्ञानी के लिये कहा गया है “ सर्वकर्माणि जोषयते अर्थात् अज्ञानी को सब प्रकार के अच्छे कर्म में लगायें। अज्ञानी के लिये कर्म सकाम हो सकता है जब कि ज्ञानी के लिये कर्मनिष्काम एवं शास्त्रविहित होगा। जो क्रियावान पुरुष होते हैं उन्हें विद्वान कहते हैं तथा ‘युक्त’ के विषय में गीता (6/8) में कहा गया है—

“युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टापूमकाञ्चनः ॥

अर्थात् जो मिट्टी, पत्थर तथा सुवर्ण को समान समझने वाला है वह योगी “युक्त” कहा जाता है। जो क्रियावान और युक्त पुरुष है वह आत्मा को जानने वाला होने के कारण पूर्ण रूप से उसको चाहिये कि जो अल्पज्ञ, अनादिकर्म वासना में लगे रहते अज्ञानी मुमुक्षुओं को यह कहकर बुद्धिभेद न उत्पन्न करे कि आत्म साक्षात्कार कर्मयोग के सिवा अन्य प्रकार से भी हो सकता है। क्योंकि जो अत्यन्त आसक्त है बिना फल के कर्म करेंगे नहीं और यदि करेंगे भी तो सकाम भावना से करेंगे, यह भी छोड़ देंगे। जिससे अधः पतन हो जायेगा, जिसका पाप विद्वान युक्त पुरुष को भी लगेगा। इसलिये ज्ञानी पुरुष को चाहिये कि वह आसक्त अज्ञानियों की बुद्धि को चंचल न करे स्वयं शास्त्रविहित आचरण करे और अल्पज्ञ, आसक्त अज्ञानियों को बतायें कि ज्ञानयोग की अपेक्षा कर्मयोग ही आत्मसाक्षात्कार का साधन है और कर्मों में प्रीति उत्पन्न करें।

अग्रिम तीन श्लोक में ज्ञानी और अज्ञानी में क्या अन्तर है इसको भगवान बताते हैं—

श्लोक—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैःकर्माणि सर्वशः।

अहंकारविमूढात्माकर्ताहमिति मन्यते ॥ 27 ॥

अन्वय— प्रकृतेः (प्रकृति के) गुणैः (गुणों के द्वारा) सर्वशः (सब प्रकार से) कर्माणि (कर्म) क्रियमाणानि (सम्पन्न होते हैं) अहंकार—विमूढात्मा (अहंकार से अन्धा हुआ जीव) अहं (मैं) कर्ता (कर्ता हूँ) इति (ऐसा) मन्यते (समझता है) ॥ 27 ॥

अर्थ—“ प्रकृति के गुणों के द्वारा समस्त कर्म सम्पन्न होते हैं। अहंकार से विमूढ हुआ व्यक्ति ऐसा मानता है कि मैं कर्ता हूँ।”

व्याख्या—इस श्लोक के माध्यम से भगवान बताते हैं कि ज्ञानी और अज्ञानी दोनों ही कर्म करते हैं। ज्ञानी यह मानता है कि सारी क्रियाएं प्रकृति के गुणों के द्वारा हो रही हैं जब कि मूढ़ व्यक्ति समझता है कि मैं ही कर्ता हूँ। प्रकृति से सत—रज—तम—बुद्धि, अहंकार, मन, आकाशादि पंच सूक्ष्म महाभूत मिलकर कुल 23 तत्त्वों की मूलपरिणिति प्रकृति है। सम्पूर्ण क्रियाएं प्रकृति के गुणों के द्वारा ही सम्पन्न की जाती हैं स्वरूप के द्वारा नहीं। प्रकृति के विषय में कहा गया है—

“मायां तु प्रकृतिं विद्यात् (श्वे0उ0 4/10)। माया तो प्रकृति को समझना चाहिये। प्रकृति के गुणों को बताते हुये भगवान ने आगे कहा है— ‘सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः’ (गीता 14/5) अर्थात् ये सत, रज, तम, तीन गुण प्रकृति के हैं। ये प्रकृति के त्रिगुण एक ओर इन्द्रियों का रूप धारण करते हैं और दूसरी ओर विषयों का। इन्द्रियों का विषयों के साथ सन्निकर्ष सतत् चलता रहता है। जैसे— चक्षु से रूप श्रवण से शब्द आदि का। तत्त्वज्ञ जानता है कि गुण ही गुणों में बरत रहें हैं—” (गुणाः गुणेषु वर्तन्ते) ऐसा जानकर आसक्त नहीं होता है किन्तु अहंकार—विमूढात्मा अपने को ही अविधावंश कर्ता मान बैठता है और कर्मों में लिप्त हो जाता है। इसी बात को भगवान पांचवे अध्याय में

आंठवें श्लोक में— “ नैव किञ्चित् करोमीति युक्तो मन्यते तत्त्ववित्” अर्थात् “मैं कर्ता हूँ इस अवास्तविक मान्यता को मिटाने के लिये मैं कुछ भी नहीं करता ऐसी वास्तविक धारणा रखनी चाहिये। ज्ञानी के विषय में कहा गया है—

श्लोक—

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।

गुणा—गुणेषु वर्तन्ते इति मत्वा न सज्जते ॥ 28 ॥

अन्वय—तु (परन्तु) महाबाहो (हे अर्जुन) गुण कर्म विभागयोः (गुण और कर्म के विभाग) तत्त्ववित् (तत्त्व को जानने वाले पुरुष) गुणाः (गुण यानि इन्द्रियादि) गुणेषु (विषयों में) वर्तन्ते (प्रवृत्त रहती है) इति मत्वा (ऐसा मानकर) न सज्जते (नहीं आसक्त होते) ॥ 28

अर्थ—“परन्तु हे महाबाहो, गुण और कर्म के विषय में जानने वाला तत्त्ववेत्ता ऐसा मानता है कि गुणों के ही परिणाम स्वरूप रूप—रसादि विषयों में बरत रही है और ऐसा समझकर वह आसक्त नहीं होता।”

व्याख्या— भगवान् कहते हैं कि मूढ़ और तत्त्वज्ञ में मुख्य भेद यह है कि मूढ़ व्यक्ति इन्द्रिय—विषयों के व्यापारों को अपना मान बैठता है ऐसा अविधा के वशीभूत होकर करता है। जबकि तत्त्ववेत्ता इन्द्रिय—विषयों के व्यापार को प्रकृति का व्यापार मानता है। तत्त्वज्ञ विषयों का ग्रहण मात्र अपने जीवन—निर्वाह के लिये करता है। इस प्रकार गुणविभाग उसकी और कर्म विभाग सब प्रकृति का ही विस्तार है। क्योंकि सभी जड़, क्षणिक, नाशवान और विकारशील, मायामय तथा स्वप्नवत है। इस सबसे सर्वथा आत्मा अलग है जो निर्गुण, निराकार निर्विकार, नित्य शुद्ध मुक्त और ज्ञान स्वरूप है। गुण और कर्म अर्थात् पदार्थ और क्रियाएं ये सब निरन्तर परिवर्तनशील है। पदार्थ उत्पन्न होते हैं तथा नष्ट होते हैं तथा क्रियाएं भी आरम्भ और समाप्त होनेवाली हैं। ऐसा जो गुण और कर्म के विषय में ठीक—ठीक से जान जाते हैं वह इसके तत्त्व को जान जाते हैं। चेतन में कभी कोई क्रिया नहीं होती। वह सदा निर्लिप्त, निर्विकार रहता है अर्थात् उसका किसी भी प्राकृत पदार्थ और क्रिया से सम्बन्ध नहीं होता है। ऐसा जो अनुभव करता है वह चेतन तत्त्व को अच्छी तरह से जानता है। अज्ञानी व्यक्ति जब इन गुणविभाग और कर्म विभाग से अपना सम्बन्ध मान लेता है तब वह कर्मबन्धन में बंध जाता है इस कर्मबन्धन का कारण अज्ञान है। इसी को राग, अविवेक भी कहते हैं। विवेक के उदय होने पर रागस्वयमेव नष्ट हो जाता है। तत्त्व को जानने की इच्छा रखने वाला साधक भी अगर गुण (पदार्थ) और कर्म (क्रिया) से कोई सम्बन्ध नहीं रखता तो वह तत्त्व को जैसे कि जान लिया। इस प्रकार साधक चाहे गुण विभाग और कर्म विभाग को तत्त्व से जाने चाहे स्वयं को तत्त्व से जाने दोनों का परिणाम एक ही होगा।

श्लोक—

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।

तान्कृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन् विचालयेत् ॥ 29 ॥

अन्वय—प्रकृतेः (प्रकृति के) गुणसंमूढा (गुणों से मोहित हुये जन) गुणकर्मसु (गुणों और उनके कर्मों में) सज्जन्ते (आसक्त होते हैं) कृत्स्नवित् (सर्वज्ञ पुरुष) तान् (उन) अकृत्स्नविदः (अल्पज्ञ) मन्दान् (मूढ़ों को) कृत्स्नवित् (सम्पूर्ण तत्त्व को जानने वाला) न (नहीं) विचालयेत् (विचलित करे) ॥ 29 ॥

अर्थ—“प्रकृति के गुणों से मोहित हुये लोग गुणों की क्रियाओं में अर्थात् देह और इन्द्रियों

के व्यापारों में आसक्त होते हैं। ऐसे उन अल्पज्ञ मूढ़ों को सम्पूर्ण तत्व का जानने वाला ज्ञानी विचलित न करें।”

व्याख्या – “**गुणानां साम्यावस्था प्रकृतिः**” अर्थात् गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है। यह प्रकृतिजन्य त्रिगुण मनुष्य को बांधने वाले होते हैं। अज्ञानी मनुष्य शुभ कर्म तो करते हैं लेकिन भोग विषय तथा भौतिक पदार्थों (क्षणिक पदार्थ) की प्राप्ति के लिये ही करते हैं। इस प्रकार देहाभिमानी ‘अज्ञ’ व्यक्ति शास्त्रविहित कर्म को जानता है किन्तु गुणों और कर्मों के तत्वों को भलिभांति नहीं जान पाता है इसलिये ऐसे लोगों को भगवान ने “अकृत्स्नविदं” (पूर्ण रूप न जानने वाला) कहा है और सांसारिक विषय-भोगों में रूचि होने के कारण “मन्दान” कहा है। इस प्रकार भगवान यह समझाने का प्रयास कर रहे हैं कि जो अहंकार से मोहित प्रकृति के गुणों से बंधे, गुण और कर्मों में आसक्त, मन्दबुद्धि अल्पज्ञ जन हैं, उनको सम्पूर्ण तत्ववेत्ता ज्ञानी जनकदापि विचलित न करें। अर्थात् विद्वान बुद्धिभेद उत्पन्न न करें। आगे के श्लोक में अर्जुन का स्वधर्म – युद्ध – वर्णित है—

श्लोक—

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा।

निराशीर्निममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥ 30॥

अन्वय— सर्वाणि (सभी) कर्माणि (कर्मों को) मयि (मुझमें) सन्न्यस्य (समर्पित कर) अध्यात्मचेतसा (अध्यात्मचित्त द्वारा) निराशीः (आशा रहित होकर) निममः (ममतारहित) विगतज्वरः (सन्तापरहित) भूत्वा (होकर) युध्यस्व (युद्ध कर) ॥30॥

अर्थ—“सभी कर्मों को मुझमें समर्पित करते हुये, चित्त को आत्मा में केन्द्रित कर, आशारहित, ममतारहित और सन्तापरहित हो युद्ध कर।”

व्याख्या— भगवान कहते हैं कि फलाकांक्षा और कर्तृत्वाभिमान छोड़कर जो व्यक्ति समस्त कर्म ईश्वर-समर्पित बुद्धि से करता है वही यथार्थ कर्मयोगी है। अतः कर्मयोगी होने के लिये आत्माभिमान का भी त्याग करना होता है। इस प्रकार त्याग के आदर्श में स्थित होकर जो निष्काम भाव से नित्य, नैमित्तिक और लौकिक कर्म आत्मसंस्थ होकर करता है, वही “कर्मयोगी” है। इस श्लोक में अर्जुन को यह उपदेश दे रहे हैं कि क्या करना चाहिये। आप 20 वे श्लोक में जान चुके हैं कि भगवान कहते हैं कि— “लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि” – “लोकसंग्रह को देखते हुये भी तेरे लिये कर्म करना योग्य है। अब स्पष्ट रूप से बता रहे हैं कि लोकसंग्रह का कर्म किस प्रकार होता है। लोकसंग्रह कर्म के पांच लक्षण यहां इस श्लोक में बताये गये हैं—

1— प्रथम लक्षण है— “ मयि सर्वाणि कर्माणिसन्न्यस्यं— अर्थात् सब कर्मों का परमेश्वर में करना”।

2— दूसरा लक्षण है— “ अध्यात्मचेतसा”— अर्थात् चित्त को आत्मा में केन्द्रित करना। क्योंकि हमारा चित्त देह में केन्द्रित होता है अथवा मन में और ऐसा होने पर हम अपने कर्मों का भली-भांति सन्यास नहीं कर पाते हैं। क्योंकि जब चित्त मन पर केन्द्रित होगा तब वह सांसारिक विषयों में संलिप्त हो जाता है। इसलिये जब तक हम चित्त को मन से हटाकर आत्मा में केन्द्रित करने की चेष्टा नहीं करेंगे तब तक ईश्वर के प्रति हमारा कर्म समर्पण अच्छी प्रकार से नहीं होगा।

3— निराशीः— यह लोकसंग्रह कर्म का तीसरा लक्षण है आशारहित होना। अर्थात्

चित्त आशा के कारण ही मन से संयुक्त होता है इसलिये मन से आसक्ति को दूर करना चाहिये। व्यक्ति को आशा और निराशा दोनों से बचना चाहिये।

4- निर्ममः— लोकसंग्रह का चतुर्थ लक्षण है निर्ममः— ममतारहित होना। यह भाव चित्त को देह से चिपकने से बचाता है। सम्पूर्ण ममत्व की जड़ है देह। देहसम्बन्धों के प्रति ममत्व के कारण अपने कर्तव्य कर्म ठीक से नहीं कर पाते हैं और आत्मतत्त्व से दूर हो जाते हैं। इस प्रकार निर्ममः से तात्पर्य "ममत्वशून्यता" से है।

5- विगतज्वरः— यह पांचवा लक्षण है— " सन्ताप से रहित होना"— क्षोभ और आवेश की स्थिति से रहित बुद्धि के द्वारा ही उचित कर्म करना चाहिये। इस प्रकार "निर्ममः" और " निराशी" कहकर भगवान चित्त को अतीत और भविष्य के भटकाव से बचाकर युध्यस्व, कहकर वर्तमान में उसे केन्द्रित करते हैं।

श्लोक—

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।

श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥ 31 ॥

अन्वय— ये मानवाः (जो लोग) श्रद्धावन्तः (श्रद्धावान) अनुसूयन्तः (दोषदर्शन की प्रवृत्ति से शून्य होकर) में (मेरे) इदं मतं (इस व्यवस्था या अनुशासन का) नित्यं (सर्वदा) अनुतिष्ठन्ति (अनुसरण करते हैं) ते अपि (वे भी) कर्मभिः (कर्मों से) मुच्यन्ते (मुक्त हो जाते हैं) ॥ 31 ॥

व्याख्या— भगवान कहते हैं कि जो मनुष्य कर्मबन्धन से मुक्ति पाना चाहता है तो वह किसी भी वर्ण, आश्रम, धर्म, सम्प्रदाय का हो यदि वह यह तथ्य वास्तविक रूप में समझ लेता है कि देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार आदि कुछ भी अपना नहीं है तो ऐसा मनुष्य कर्म बन्धन से छूट जाता है। 'असूया' अन्तःकरण की वह वृत्ति है जो गुण में भी दोष ढूँढती है। परगुणेषु दोषाविष्करणम् असूया की वृत्ति वाले व्यक्ति कभी शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते हैं और जब शान्ति नहीं तो सुख कहाँ "अशान्तस्य कुतः सुखम्"।

'परगुणेषु दोषाविष्करणम् असूया' अर्थात्— दूसरों के गुणों में दोष ढूँढना ही असूया है। जिसका चित्त मलिन है वही दूसरों के दोष देखता है इससे वह शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता और जब शान्ति नहीं तब सुख कहाँ— "अशान्तस्य कुतः सुखम्"। एक महिला भक्त के प्रति माँ शारदा देवी का उपदेश अत्यन्त प्रसिद्ध है— " यदि शान्ति चाहती हो बेटी तो किसी का दोष न देखो केवल अपने में दोष देखो।" इस प्रकार असूया वृत्ति व्यक्ति की सारी इच्छाओं पर पानी फेर देती है। जो दूसरों में दोष दृष्टि का दर्शन करना चाहते हैं वह मानो अमृत में विष को खोज रहा हो।

भौतिक पदार्थ (जड़) शरीर आदि को अपने लिये नहीं मानना चाहिये क्योंकि शरीर तो विनाशशील है, क्षणिक है। ऐसा मान लेने पर मनुष्य मोह माया के बन्धन से छूट जाता है। मनुष्य देह परमात्मा के लिये ही मिला है अतः परामात्मतत्त्व की प्राप्ति के लिए ही प्रयत्न करना चाहिये।

भगवान कहते हैं कि जो मैंने तुमसे फल विषयक, कर्मविषयक, और कर्तव्यविषयक त्याग के साथ वर्णासमुचित कर्म करने को कह रहा हूँ यह साक्षात् उपनिदेशों का सार है। यह किसी जाति—व्यक्ति विशेष के लिए न बताकर सम्पूर्ण मानव मात्र के लिए है। श्रद्+धा, से श्रद्धा शब्द हुआ, अर्थात् जिस क्रिया से सत्यवस्त्र धारण की जाय उसे 'श्रद्धा' कहते हैं। वेदान्त दर्शन में गुरु वाक्यों में विश्वास, करने व श्रद्धा कहा गया है। 'तेऽपिकर्मभिः' 'अपि' शब्द से इन श्रद्धालु और निन्दा न करने वालों को पृथक किया गया है। अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि जो इस शास्त्र के निचोड़

रूप में मेरे मत में श्रद्धा रखने वाले, और इसकी निन्दा नहीं करने वाले हैं, वे यद्यपि इस समय इसके अनुसार अनुष्ठान नहीं करते हैं तथापि 'श्रद्धा' और 'असूया' से विविध प्रकार के पापों का क्षय हो जाने पर वे शीघ्र ही इसी शास्त्र सिद्धान्त के अनुसार अनुष्ठान करके मुक्त हो जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न – A बहुविकल्पीय प्रश्न

सही विकल्प पर चिन्ह लगायें—

प्रश्न 1— अविद्वान लोग किस प्रकार के कर्म करते हैं—

- (अ) आसक्त कर्म (ब) अनासक्त कर्म
(स) लोकसंग्रहार्थ (द) यज्ञार्थ कर्म

प्रश्न 2— 'बुद्धि भेद' से क्या तात्पर्य है—

- (अ) स्थिर बुद्धि (ब) समत्व बुद्धि
(स) बुद्धि का विचलन (द) आदर्श बुद्धि

प्रश्न 3— गीता में किस प्रकार के कर्म करने पर बल दिया गया है—

- (अ) फलांकाक्षा युक्त (ब) समत्व बुद्धि
(स) बुद्धि का विचलन (द) आदर्श बुद्धि

प्रश्न 4— यज्ञार्थ कर्म की तरह ही कौन सा कर्म दूसरा है—

- (अ) लोकसंग्रहार्थ कर्म (ब) फलासक्ति पूर्वक
(स) सांससरिक कर्म (द) वासना परक कर्म

प्रश्न 5— 'न में पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन' यह कथन किसके द्वारा कहा गया है—

- (अ) अर्जुन उवाच (ब) श्री कृष्ण उवाच
(स) संजय उवाच (द) धृतराष्ट्र उवाच

प्रश्न 6— किस प्रकार का व्यक्ति जो कुछ भी करता है अन्य साधारण जन भी वैसा ही करते हैं—

- (अ) साधारण मनुष्य (ब) देहाभिमानी
(स) श्रेष्ठ जन (द) भोक्ता

प्रश्न 7— भगवद् गीता के तृतीय अध्याय का नाम क्या है—

- (अ) ज्ञानयोग (ब) कर्मयोग
(स) भक्तियोग (द) सांख्य योग

प्रश्न 8— उचित शब्द रखकर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये—
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्या कर्म चेदहम्।

..... स्यामुपहन्यामिमाः ॥

- (अ) न मे पार्थास्ति
(ब) संकरस्य च कर्ता
(स) ममवर्तमानुवर्तन्ते
(द) पार्थ सर्वशः

प्रश्न 9— यदि अज्ञानी आसक्त कर्म करता है तो ज्ञानी किस प्रकार का कर्म करता है—

- (अ) अनासक्तकर्म (ब) वासना पूर्ति कर्म
(स) फलासक्ति कर्म (द) आसक्त कर्म

प्रश्न 10— समस्त कर्म किसके गुणों के द्वारा सम्पन्न होता है—

- (अ) अहंकार (ब) प्रकृति
(स) मन (द) बुद्धि

प्रश्न 11— गुण और कर्म के विषय में जानने वाले को क्या कहा जाता है—

- (अ) तत्त्ववेत्ता (ब) मूढ़
(स) अविद्वान (द) अल्पज्ञ

प्रश्न 12— गीता में 'अकृत्स्नवित्' का क्या अर्थ किया गया है—

- (अ) जो पूरा न जानता हो (ब) जो पूरा जानता हो
(स) ज्ञानी व्यक्ति (द) इन्द्रिय विषयों को जानने वाला

प्रश्न 13— अनासक्त कर्म करने से किस तत्त्व की उपलब्धि होती है—

- (अ) परम तत्त्व (ब) प्रकृति तत्त्व
(स) कर्म तत्त्व (द) अनात्मतत्त्व

प्रश्न 14— ज्ञानी व्यक्ति इन्द्रिय-विषयों के व्यापार को प्रकृति का व्यापार मानता है जब कि मूढ़ व्यक्ति—

- (अ) पराया (ब) अपना
(स) प्रकृति (द) बुद्धि

प्रश्न 15— 'त्रिगुणात्मिका' किसको कहा गया है—

- (अ) भगवान (ब) अर्जुन
(स) प्रकृति (द) अहंकार

प्रश्न 16— त्रिगुण के अन्तर्गत कौन सा गुण नहीं आता है—

- (अ) सत (ब) रज
(स) तम (द) कृष्ण

प्रश्न 17— सभी व्यक्ति किसके अधीन रहकर काम करते हैं—

- (अ) स्व प्रकृति के (ब) बुद्धि के
(स) गुणों के (द) अहंकार

प्रश्न 18— "संकरस्य च कर्ता स्याम्" किसके द्वारा यह कथन कहा गया है—

- (अ) अर्जुन (ब) श्रीकृष्ण
(स) धृतराष्ट्र (द) संजय

प्रश्न 19— 'अहंकार विमूढात्मा जन' किसको कर्ता मान बैठता है—

- (अ) अहम् (ब) प्रकृति
(स) भगवान को (द) तत्त्ववेत्ता को

प्रश्न 20— 'गुणाः गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा' कौन कर्म में आसक्त नहीं होता है—

- (अ) तत्त्ववित् (ब) मूढ़

6.3.1 श्लोक

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।

सर्वज्ञानविभूदांस्तान्विद्धि नष्टान् चेतसः ॥ 32 ॥

अन्वय—तु (परन्तु) ये (जो) एतत् (इस) में (मेरे) मतम् (मत के प्रति) अनुतिष्ठन्ति (अनुसरण करते) तान् (उन्हें) सर्वज्ञानविभूदान् (सब प्रकार के ज्ञान में मोहित) अचेतसः (अविवेकी) नष्टान् (विनष्ट) विद्धि (जान) ॥ 32 ॥

अनुवाद— “ परन्तु जो मेरे इस मत में दोष निकालते हुये उसके अनुसार नहीं बर्तते, उन लोगों को तू सब प्रकार के ज्ञान में मोहित अविवेकी और कल्याण के पथ से भ्रष्ट हुआ ही जान । ”

व्याख्या— भगवान् कहते हैं कि जो लोग मेरे मत में दोष देखते हैं और उसके अनुसार अनुष्ठान नहीं करते हैं वे कर्म— बन्धन से मुक्त नहीं हो पाते हैं और इसका पतन अवश्य हो जायेगा । श्री कृष्ण भगवान् अर्जुन के माध्यम से दृढधारणा करा देने चाहते हैं कि वे ही जगत् के नियामक ईश्वर हैं तथा उन्होंने यह जो मत प्रस्तुत किया है वह ईश्वरीय नियम है । और जो ईश्वरीय नियम में भी दोष देखता है और नियमों के अनुसार वर्तन नहीं करता है वह सभी ज्ञानों में विमूढ़ है, अविवेकी है । क्योंकि ऐसा ही सर्व ज्ञान— विमूढ़ व्यक्ति ईश्वरीय नियमों की अवहेलना कर सकता है । ऐसे लोग भगवान् को साधारण मनुष्य की कोटि में मानते हैं । और कुछ भगवान् के जन्मादि पर ही अविश्वास करते हैं ऐसे लोग अनादि पाप वासना से दूषित बुद्धि वाले होते हैं । ऐसे लोगों को हे अर्जुन ! तुम सब प्रकार से ज्ञानों में विशेष रूप से 'मूढ़' अर्थात् मूर्ख तथा किसी कारण नष्ट एवं चेतना—रहित समझ । वस्तु को यथार्थ रूप में समझना अर्थात् जैसी है वैसी समझना चेतना का कार्य है । जिसमें इस बात का अभाव है, विपरीत ज्ञान वाले हैं वह सभी विषयों में 'मूढ़' है । ऐसी लोगों की अधोगति होती है ।

भगवान् गीता में कहते हैं— आसुरीयोनिमापन्ना मूढा जन्मनि— जन्मनि (गीता 16/20) अर्थात् ऐसे मूढ़ लोग जन्म—जन्म में नीच गति को भी प्राप्त होते हैं । 'असूया' वालों की तथा श्रद्धा रहित लोगों कि 'तू' शब्द से निन्दा करते हैं । भगवान् कहते हैं कि जो हमारे मत में श्रद्धा भी नहीं रखते ऐसे लोग नष्ट बुद्धि वाले हैं । गीता (04/39) में कहा गया है— श्रद्धावाँल्लभतः ज्ञानम्— अर्थात् श्रद्धावान् व्यक्ति के ज्ञान को प्राप्त करते हैं । भले ही व्यक्ति के पास धन सम्पत्ति— वैभव आदि न हो किन्तु मन में श्रद्धा अवश्य होनी चाहिये यह श्रद्धा शास्त्रविहित कर्मों में तथा ईश्वर में होनी चाहियें । आप लोग आगे के श्लोक में जानेगें कि भगवान् कह रहें हैं— कि कर्म न करने से मनुष्य का पतन हो जाता है ।

श्लोक—

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।

प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥ 33 ॥

अन्वय— ज्ञानवान् अपि (ज्ञानी पुरुष भी) स्वस्याः (अपनी) प्रकृतेः (प्रकृति के) सदृशं (अनुरूप) चेष्टते (चेष्टा करता है) भूतानि (सभी प्राणी) प्रकृतिं (स्वभाव को) यान्ति (प्राप्त

होते हैं) निग्रहः (निग्रह) किं (क्या) करिष्यति (करेगा) ।।33।।

अर्थ—“ज्ञानी भी अपने निज के स्वभाव के अनुरूप चेष्टा करता है। सभी प्राणी स्वभाव का अनुवर्तन करते हैं। इसमें निग्रह भला क्या करेगा।”

व्याख्या— भगवान ने ‘ज्ञानी’ शब्द आत्मज्ञान में प्रतिष्ठित व्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया है आत्मज्ञान में प्रतिष्ठित वही होगा जिसको तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हो गयी होगी। अपरोक्षानुभूति के पूर्व तत्व सभी व्यक्ति अपने प्रारब्ध-कर्म-के अधीन रहते हैं। और ज्ञानी भी अपने पूर्व जन्म में अर्जित कर्म-फल के अनुसार ही चलते हैं। इस कर्म संस्कार को ही ‘प्रकृति’ कहा गया है। पूर्वजन्म जनित प्रारब्ध कर्म के धर्मा-धर्म रूप कर्मों के फल के परिणाम स्वरूप विशेष-विशेष गुणों के विकास को प्राचीन संस्कार या ‘अभ्यास’ कहते हैं इसी का नाम स्वभावजात कर्म है। प्रत्येक मनुष्य अपने स्वभाव के वशीभूत होकर ही कर्म करता है। अधिकांशतः देखने में या सूनने को मिलता है कि लोग दुहाही देते हैं, कि मेरा स्वभाव ही यही है, इसमें परिवर्तन सम्भव नहीं है। भले ही व्यक्ति ज्ञानी हो और अपने स्वभावगति दोष को भी जानता हो फिर भी स्वभाव को बदलने की बात आती है तो अपने को असमर्थ पाता है। रावण को यह बात मालूम थी राम समान्य पुरुष नहीं है। वह भगवान के अवतार हैं, वह कहता भी है— खर दूषन मोहि सम् बलवन्ता। तिन्हहिं को मारइ बिनु भगवन्ता।। (3/22/2)

अर्थात् खर और दूषन तो मेरे ही समान बलशाली थें। उनको तो भगवान के अतिरिक्त कोई भी मार नहीं सकता है, उसको ज्ञान तो है कि भगवान कि उपासना करें। युद्ध न करें, किन्तु उसका स्वभाव उसको नहीं करने देता और बुद्धितर्क देती है कि— ‘होइहि भजनु न तामस देहा’— मेरी देह तो तामसी है, इससे भजन नहीं होगा। ऐसा तर्क सोचकर व ईश्वर को नहीं मानता है। यह ज्ञानी की परवशता का उदाहरण दिया गया है। अर्थात् व्यक्ति अपने स्वभाव द्वारा परिचालित होता है और उसके लिए निद्रा या संयम अर्थहीन हो जाता है किन्तु भगवान फिर आगे श्लोक में विरोधाभाषी बात कह रहे हैं कि राग और द्वेष के वश में नहीं आना चाहिये। अर्जुन ने भगवान से पूछा था कि मनुष्य ईश्वर के बताये मार्ग पर क्यों नहीं चलता जबकि उसको पता है कि न चलने से अधोगति को प्राप्त हो जायेगा तब भगवान उत्तर देते हैं कि मनुष्य अपने स्वभाव से ही परिचालित होता है, भले ही कितना बड़ा ज्ञानी हो वह भी अपने स्वभाव का उल्लंघन नहीं कर पाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि जब व्यक्ति स्वभाव के आगे अपने को इतना परतन्त्र मानता है तब उसके लिये निग्रह का क्या महत्व है ? भगवान कहते हैं कि जिन व्यक्ति का स्वभाव शुद्ध एवं श्रेष्ठ है उनकी क्रियाएँ भी उनकी प्रकृति के अनुरूप ही क्रियान्वित होगी। और जिनकी इसके विपरीत है उनकी भी अपनी प्रकृति द्वारा ही होगी। इस विषय निग्रह या हठ से काम नहीं चलेगा जिसका जैसा स्वभाव है, उसे उसी के अनुसार कर्म करने पड़ेंगे। अर्जुन जब हठ पूर्वक अपने युद्ध रूप कर्तव्य कर्म का त्याग करते हैं तब भगवान कहते हैं कि— ‘ तेरा स्वभाव तुझे बल पूर्वक युद्ध में लगा देगा’— ‘ प्रकृतिस्त्वांनियोक्ष्यतिः’ (गीता 18/59) क्योंकि तुम्हारे स्वभाव में क्षत्रिय कर्म करने का प्रवाह है। इसलिये तुम स्वभाविक कर्मों से बंधे होने पर भी परवश होकर भी युद्ध करेगा अर्थात् इसमें तेरा हठ काम नहीं आयेगा— ‘ करिष्यस्यवशोऽपि तत्’ (गीता 18/60) प्रकृति के वश में न होने के लिए साधक को चाहिये कि वह

किसी आदर्श को उदाहरण मानकर अपना कर्तव्य कर्म करें। आदर्श दो हो सकते हैं—

1- भगवान का मत

2- श्रेष्ठ महापुरुषों का आचरण

आदर्श के अनुरूप कर्म करने से प्रकृति शुद्ध हो जाती है और परमात्मात्व का अनुभव हो जाता है। और जो इसके विपरीत आचरण करता है। उसके राग-द्वेष पुष्ट हो जाते हैं और उसका पतन हो जाता है— 'नष्टान्विद्धि' (गीता 03/32)। अग्रिम श्लोक में भगवान अर्जुन को राग और द्वेष पर विजय पाने के लिये प्रवृत्त करते हैं—

श्लोक —

इन्द्रियस्योन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।

तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥ 34 ॥

अन्वय—इन्द्रियस्य (इन्द्रिय का) इन्द्रियस्य अर्थे (इन्द्रिय के विषयों में) राग द्वेषों (राग और द्वेष) व्यवस्थितौ (प्रकृति द्वारा रखे गये हैं) तयोः (उनके) वशं न आगच्छेत् (वश में नहीं आना चाहिये) तौ (वे दोनों) हि (सचमुच) अस्य (इसके) परिपन्थिनौ (परम विरोधी हैं) ॥ 34 ॥

अर्थ—'इन्द्रियों का अपने-अपने विषयों के प्रति राग और द्वेष स्वाभाविक हैं, किसी को इस राग और द्वेष के वश में नहीं आना चाहिये, क्योंकि ये दोनों (मुमुक्षुजीव) परस्पर शत्रु हैं।

व्याख्या— इन्द्रियां अपने-अपने विषय की ओर स्वभावतः आकर्षित होते हैं इस आकर्षण से राग और द्वेष उत्पन्न होता है क्योंकि समस्त इन्द्रियों के जितने भी भिन्न-भिन्न विषय हैं, जिनके साथ इन्द्रियों का संयोग-वियोग होता रहता है उन सभी विषयों में राग और द्वेष दोनों ही अलग-अलग छिपे रहते हैं। जिस इन्द्रिय के विषय से मनुष्य को सुख की प्रतीति होती है तब उससे आसक्ति हो जाती है इसी को 'राग' कहते हैं, जब प्रतिकूल होता है तब उसमें उसका 'द्वेष' हो जाता है। इसी लिये एक ही वस्तु किसी को सुख प्रदान करती है तो किसी को दुःख। जैसे संगीत निरोगी व्यक्ति को सुख प्रदान करती है लेकिन बिमार व्यक्ति को दुःख प्रदान करती है। अज्ञानतावश मनुष्य राग और द्वेष के चक्कर में फंसकर विनाशशील भोगों को हेतु मानते हुये कल्याण मार्ग से च्युत हो करके विवेकशक्ति में भ्रम उत्पन्न कर देते हैं और मनुष्य परमलक्ष्य से वंचित होकर नरकगामी हो जाता है। मनुष्य की क्रियाएं उसके स्वयं के स्वभाव पर आधारित होती हैं। स्वभाव दो प्रकार का होता है—

(1)— राग द्वेष रहित (शुद्ध)

(2)— राग द्वेष युक्त (अशुद्ध)

किसी के स्वभाव को एक क्षम से समाप्त नहीं कर सकते हैं बल्कि उसमें बदलाव या परिवर्तन हो सकता है जिससे वे राग-द्वेष रहित शुद्ध हो सकें — यह गीता का मार्मिक सिद्धान्त है। राग-द्वेष को लेकर जो क्रियायें होती हैं उनमें प्रवृत्ति और निवृत्ति उतनी बाधक नहीं है जितने कि राग-द्वेष बाधक है। इसलिये भगवान ने राग-द्वेष का त्याग करने वाले को ही सच्चा त्यागी कहा है— 'त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ' (गीता 98/10) अर्थात् कर्मों में आसक्ति और उनका फल छोड़कर नित्यकर्मों का अनुष्ठान करने वाला है— ऐस त्यागी। जो काम्यकर्मों से किसी अवस्था में द्वेष नहीं

करता है और नित्य कर्मों में आसक्त नहीं होता है वह सात्विक भाव से युक्त होता है। अर्थात् उसको आत्म-अनात्मविषयक विवेक-ज्ञान भली भाँति रहता है।

श्लोक—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ 35 ॥

अन्वय— स्वनुष्ठितात् (सम्यक् रूप से अनुष्ठित), परधर्मात् (परधर्म से), विगुणः (गुण रहित), स्वधर्मः (निजधर्म), श्रेयान् (श्रेष्ठतर है), स्वधर्मे (स्वधर्म में रहकर), निधनं (मरना भी), श्रेयः (कल्याणकारी है), परधर्मः (दूसरों का धर्म), भयावहः (भययुक्त होता है) ॥ 35 ॥

अर्थ—“सुन्दर रूप से अनुष्ठित परधर्म की अपेक्षा गुणरहित होने पर भी निजधर्म श्रेष्ठतर है, अपने [वर्णाश्रमके] धर्म में मृत्यु भी कल्याणकारी है, दूसरों का धर्म भययुक्त या हानिकारक है।”

व्याख्या— जब अर्जुन युद्ध करने की अपेक्षा भिक्षा का अन्न खाकर जीवन निर्वाह करने को श्रेष्ठ समझते हैं। परन्तु भगवान् अर्जुन को यह उपदेश देते हैं कि भिक्षावन से जीवन निर्वाह करना भिक्षुक के लिये भले ही स्वधर्म हो परन्तु तुम्हारे लिये तो परधर्म है क्योंकि तू गृहस्थ क्षत्रिय है, भिक्षुक नहीं। युद्ध न करने से तुम्हारी ही हानि होगी— ‘तत् स्वधर्म कीर्ति च हित्वा पापमवाप्स्यसि’ वर्ण, आश्रम आदि के अनुसार अपने-अपने कर्तव्य का (धर्म का) पालन करने ही ‘स्वधर्म’ है। इसलिये भगवान् अर्जुन को मानो यह समझाते हैं कि क्षत्रिय धर्म के नाते युद्ध करना तुम्हारा कर्तव्य है। प्रत्येक वर्ण के लोग अपने वर्ण और आश्रम के अनुरूप विहित कर्म का अनुष्ठान करें तो समाज सुनियन्त्रित एवं व्यवस्थित रहेगा तथा समाजिक की विश्रृंखला उत्पन्न नहीं होगी। गीता का मूल उपदेश है ‘स्वधर्म पालन’ स्वधर्म का पालन करने में ही कल्याण है, पर धर्म का सेवन करने में हानि है।

अग्रिम श्लोक में अर्जुन पूछते हैं कि पाप में कौन प्रवृत्त करता है—

श्लोक —

अर्जुन उवाच

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।

अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ 36 ॥

अन्वय—अर्जुनः (अर्जुन), उवाच (बोला), वार्ष्णेय (हे वृष्णिवशोत्पन्न!), अथ (अब), केन (किसके द्वारा), प्रयुक्तः (परिचालित होकर), अयं (यह) पूरुषः (पुरुष) अनिच्छन् अपि (इच्छा न करते हुये भी) बलात् (बल पूर्वक), नियोजितः दूव (नियोजित हुआ सा), पापं चरति (पापाचरण करता है ?) ॥ 36 ॥

अनुवाद —“अर्जुन बोले— हे कृष्ण! अब किसके द्वारा परिचालित होकर यह मनुष्य न चाहते हुये भी बलपूर्वक लगाया गया सा पाप करता है ?”

व्याख्या— पूर्व श्लोक की व्याख्या में आप जान गये होंगे कि जो कर्म हमारी रूचि और प्रवृत्ति के अनुरूप होता है वही सहज कर्म ‘स्वधर्म’ है यदि एक ब्रम्हाण कुलोत्पन्न बालक शूद्र का कार्य करता है तो व उसके लिये सहज कर्म है किन्तु एक निम्न

कुलोत्पन्न बालक अध्ययन, मनन— चिन्तन करता है तब उसके लिये ब्राम्हण कर्म ही स्वधर्म है। सामान्यता स्वधर्म त्याग और परधर्म ग्रहण करने के पीछे भय की वृत्ति कार्य करती है अर्जुन के मन में संदेह उत्पन्न हो रहा है कि अब मनुष्य जानता है कि अमुक पाप है अमुक पुण्य है तब भी इच्छा न होते हुये भी बल पूर्वक कौन पाप कर्म के योग ढकेलता है— अर्जुन के इसी प्रश्न का उत्तर भगवान अगले श्लोक में देते हैं—काम और क्रोध सबसे बड़ा शत्रु—

श्लोक—

श्रीभगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।

सहाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ 37 ॥

अन्वय— श्री भगवान् उवाच (श्री भगवान् बोले), एषः कामः (यह काम), एषः क्रोधः (यह क्रोध), रजोगुण समुद्भवः (रजोगुण से उत्पन्न है), महाशनः (अपरिमित क्षुधावाला या बहुत अधिक खाने वाला), महापाप्मा (महा पापी है), इह (इस मोक्षमार्ग रूपी विषय में), एनं (इसको), वैरिणम् (शत्रु) विद्धि (जानो) ॥ 37 ॥

अनुवाद— “ श्री कृष्ण भगवान् बोले— जो रजोगुण से है, यह क्रोध है, यह बहुत खाने वाला अर्थात् भोगों से कभी तृप्त न होने वाला और बड़ा पापी है, इसको इस संसार में अपना शत्रु जान।”

व्याख्या— भगवान् अर्जुन के प्रश्न का उत्तर देते हैं कि हमें पाप कर्म में ढकेलने वाला काम और क्रोध है काम, क्रोध की चित्तवृत्ति एक ही काम का अर्थ है ‘तृष्णा’ कभी भी मिटती नहीं है कहा गया है— ‘तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा’ जहां काम बाधित होता है वहां क्रोध उत्पन्न होता है जहां काम है वहीं क्रोध है यह काम और क्रोध रजोगुण से उत्पन्न है। जिसका स्वभाव चंचल और क्रोधयुक्त है काम और क्रोध को महा पेटू इसलिये कहा गया है कि इसको उपभोग के द्वारा शांत ही नहीं किया जा सकता है जितना उपभोग करेंगे उतना ही बढ़ता ही जायेगा। यथाघृताहुति के द्वारा अग्नि निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होती है महाभारत के आदि पर्व में राजा ययाति की कथा आती है जो काम का मारा हुआ है और तृष्णा नहीं होती है वह अपने पुत्र पुरु का यौवन लेकर उसको बदले में अपना बुढ़ापा दे देता है किन्तु भोग की तृष्णा शान्त होने का नाम नहीं ले रही थी तब राजा ययाति की आँखें खुलती है और वह कहते हैं—“न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।

हविषा कृष्णवर्त्मव भूय एवाभिवर्धते ॥

यत् प्रथिव्यां ब्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।

एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात् तृष्णांपरित्यजेत्” ॥ (श्रीमद्भः 9/19/14)

अर्थात् काम्य वस्तु के उपभोग से कभी कामनों की शान्ति नहीं होती बल्कि वह घी के संयोज से अग्नि की तरह और बढ़ जाती है उसी प्रकार वाशनार्ये भी बढ़ती है पृथ्वी में जीतना भी अन्न है, सुवर्ण, पशुधान, यव, स्त्रियां वे सारे एक व्यक्ति के लिए भी पर्याप्त नहीं है अतएव तृष्णा का प्रतित्याग कर देना चाहिए राजा ययाति सहस्रों वर्षों तक भोग करने के बाद अतृप्त चित से पुरु को धन— यौवन—राज्य लौटाकर वनवासी हो गये भोग की सीमा नहीं है और न तो उसमें शान्ति मिलती है ‘त्यागात्शान्तिरनन्तरम् त्यागेनैकेअमृतत्वमानशुः’ काम को महा पापी कहा गया है क्योंकि तृष्णा ही पापों की जड़ है यदि तृष्णा न होती तो मनुष्य कोई पाप कर्म नहीं करता। इसलिये काम को

शत्रु कहा गया है। आत्मोन्नति के मार्ग में “षड्रिपु” बाधक होते हैं। ये हैं— काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य। इन षड्रिपुओं का व्यक्ति को त्याग कर देना चाहिये काम और क्रोध मनुष्य को पाप कर्म में जबरदस्ती लगा देते हैं क्योंकि यह सबसे सन्निकट, अन्तःकरण में विद्धमान रहते हैं। धूम्रवत् विवेकाग्नि को आवृत्त कर लेता है—

श्लोक—

धूमेनाव्रियते वहिर्न्यथादर्शो मलेन च ।

यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ 38 ॥

अन्वय— यथा (जिस प्रकार) वहिः (अग्नि) धूमेन (धूम से), आव्रियते (आवृत रहती है) यथा (जिस प्रकार) आदर्शः (दर्पण) मलेन (धूल-मैल के द्वारा) [आवृत्त होता है] यथा [जिस प्रकार] गर्भः (उदरस्थ गर्भ) उल्बेन (जरायु से) आवृतः (आवृत रहता है) तथा (उसी प्रकार) तेन (उसी काम के द्वारा) इदं (यह विवेकरूप ज्ञान ढका रहता है) ॥ 38 ॥

अनुवाद— “ जिस प्रकार अग्नि धूएं से ढकी रहती है जिस प्रकार दर्पण धूल-मैल के द्वारा ढका रहता है, जिस प्रकार उदरस्थ गर्भ जरायु से ढका रहता है उसी प्रकार इस काम के द्वारा यह विवेकरूप ज्ञान ढका रहता है” ।

व्याख्या— भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को बता रहें हैं कि मनुष्य में विवेक तो है किन्तु विवेक उसी प्रकार आच्छादित है जैसे धूल-मैल से ढके रहने दर्पण, धूएं से ढके रहने पर अग्नि, या जेर गर्भ को आच्छादित किये रहता है जिस प्रकार धूएं के हटने से अग्नि प्रकट होती है, धूल-मैल को साफ कर देने पर दर्पण स्वच्छ नजर आने लगता है और प्रसव के अन्त में जरायु को हटा देने पर भ्रूण दिखलाई पड़ता है। उसी प्रकार विषय-वासना के विदूषण होने पर तत्व ज्ञान का उदय होता है यह विषय भावना अहंभाव का आश्रय लेकर रहती है इसी कारण श्री रामकृष्णदेव ने कहा है— “मुक्त होगा कब ? ‘मैं जायेगा जब’ मैं से तात्पर्य अहंभाव है इस अहंभाव के दूर होने पर परमतत्व का साक्षात्कार सम्भव है। ‘तथातेनेदमावृतम्’— इस श्लोक में भगवान ने एक काम द्वारा विवेक को ढकने के विषय में तीन दृष्टांत दिये हैं इससे तात्पर्य यह है कि एक काम के द्वारा विवेक आवृत्त हो जाने से ही काम की तीनों अवस्थायें प्रस्फुटित होती है। भगवान ने कामना की तीन अवस्थाओं का वर्णन उसको विनष्ट करने के उद्देश्य से ही बताया है जिसकी आज्ञा आगे के इकतालीसवें और तैतालिसवें श्लोक में दी है। कामना की वृद्धि की गति बहुत ही तीव्र होती है और इसके बढ़ने पर अनर्थ परम्परा की श्रृंखला आगे बढ़ती जाती है सम्पूर्ण पाप- सन्ताप-दुख कष्ट आदि कामना के ही कारण होते हैं इसलिये विवेकी मनुष्य का परमकर्तव्य हो जाता है कि वह कामना को उत्पन्न न होने दें, और यदि उत्पन्न हो भी गयी तो उसे प्रथम, द्वितीय अवस्था में ही नष्ट कर दें और तृतीय अवस्था कभी आने ही न दें जो मनुष्य कामाना को पहचानकर और उसको सुख का आश्रय न मानकर सर्वथा त्याग कर देता है वही व्यक्ति कामना को नष्ट भी कर सकता है।

श्लोक—

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।

कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥ 39 ॥

अन्वय— कौन्तेय (हे कुन्ती पुत्र अर्जुन), ज्ञानिनः (ज्ञानी व्यक्ति के), नित्यवैरिणा (चिरशत्रु), एतेन (इस) कामरूपेण (कामरूप) दुष्पूरेण (कभी न तृप्त होने वाली) अनलेन (अग्नि के द्वारा) ज्ञानम् (ज्ञान) आवृतम् (ढका रहता है)।। 39।।

अर्थ—“हे कुन्ती पुत्र अर्जुन! ज्ञानी व्यक्ति की चिरशत्रु इस कामरूप और कभी न तृप्त होने वाली अग्नि के द्वारा ढका रहता है”।

व्याख्या— काम को मनुष्य का चिरशत्रु कहा गया है मनुष्य काम के ही वशीभूत होकर इच्छा न रहते हुये भी बलपूर्वक नियुक्त सा होकर पाप-कर्म करता है काम की तीन अवस्थाएँ होती हैं— सूक्ष्म, स्थूल, अतिस्थूल काम की प्रथम अवस्था है जब हम किसी अप्राप्त वस्तु के विषय में जानने की इच्छा रखते हैं दूसरी अवस्था में एक बार किसी वस्तु का उपभोग कर लेने के बाद भी निरन्तर इच्छा बनी रहती है। इसे काम की अतिस्थूल अवस्था कहते हैं काम की ये तीनों अवस्थाएँ अन्तःकरण के विवेक को उत्तरोत्तर ढक लेती हैं। जैसे— धूआं जब आग को ढकता है, तब आग के प्रकाश को ढक लेता है, पर उसके ताप को नहीं ढक पाता उसी प्रकार काम की पहली अवस्था अन्तःकरण को आच्छादित कर विचार शक्ति को मन्द नहीं कर पाती है। दूसरी अवस्था में विचारशक्ति को भी प्रभावित कर देती है जैसे,—धूल-मैल से आच्छादित होने पर दर्पण में कुछ प्रतिबिम्ब नहीं दिखता है और काम की तीसरी अवस्था में अन्तःकरण मानव दिखाई ही नहीं पडता है मोह से आवृत्त वैसे ही रहता है जैसे— जरायु गर्भ को ढक लेता है इस प्रकार काम कभी न तृप्त होने वाली अग्नि के सामान है इस काम को भगवान ज्ञानी का 'नित्यवैरी' उपाधि से सम्बोधित करते हैं। क्योंकि परिणाम में तो कामना सबको दुःख देती है इसलिये इसे साधक की नित्यवैरी कहा गया है भोग में लगे हुये अविवेकी मनुष्यों में उन्हें दुःख, सन्ताप, कैद, नरक आदि प्राप्त होते ही हैं इसलिये यह कामना अज्ञानी की भी "नित्यवैरी" कही गयी है। भगवान कहते हैं कि कामना के कारण ही त्याग में सुख है— यह ज्ञान काम नहीं करता है मनुष्य को ऐसा प्रतीत होता है कि उसके अनुकूल भौतिक भोग विषय मिलने से सुख्या प्राप्त होता है किन्तु वास्तविक सुख उसके त्याग से होता है यह सभी लोग जानते हैं कि जाग्रित और स्वप्न में भोग पदार्थों से सम्बन्ध होने पर सुख और दुख दोनों प्राप्त होते हैं पर सुषुप्ति अर्थात् गाढ़ निद्रा में किसी भी प्रकार के भोग पदार्थों की स्मृति न रहने पर सुख ही होता है, दुख नहीं इसलिये गाढ़ निद्रा से जागने पर वह कहता है कि मैं बड़ सुख से सोया। इसके अतिरिक्त जाग्रत और स्वप्न अवस्था में थकावट आती है। इससे सिद्ध होता है कि भोग पदार्थों के त्याग करने में ही सुख है। मनुष्य जब किसी चीज की कामना करता है तो वह उसके अधीन हो जाता है जैसे— कम्प्यूटर की कामना हुई, मन कम्प्यूटर के अधीन हो गया वैसे ही रूपये की कमी से रूपये के पराधीन हो गया इस प्रकार कामना से विवेक ढका हो जाने के कारण मनुष्य को वस्तु की पराधीनता का अनुभव होने लगता है यह संसार क्षणभंगू है। प्रत्येक भौतिक भोग विलास आदि की वस्तुये विनाशशील है पदार्थों को नित्य और स्थित माने बिना सुख भोग हो ही नहीं सकता है। इस प्रकार अनित्य सुख की कामना करने वाला मनुष्य अपने लोक और परलोक दोनों को महान दुख रूप बना लेता है।

काम का निवास स्थान

श्लोक—

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानं मुच्यते ।

एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ 40 ॥

अन्वय—इन्द्रियाणि (इन्द्रियाँ), मनः (मन), बुद्धिः (बुद्धि), अस्य (इस) [काम के] अधिष्ठानम् (आश्रयस्थल) उच्यते (कहे जाते हैं) [तथा] एषः (यह) एतैः (इनके द्वारा) ज्ञानम् (ज्ञान को) आवृत्य (ढककर) देहिन (देही को), विमाहयति (मोहित किया करता है) ॥ 40 ॥

अर्थ—“इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इस काम के रहने के स्थान कहे जाते हैं। इनके द्वारा यह काम देही के ज्ञान को ढक लेता है और उसे मोहित करता है”।

व्याख्या— जब अर्जुन पिछले श्लोक में यह प्रश्न करते हैं कि हे भगवान। पाप कर्म की ओर बलपूर्वक कौन ढकलेता है तब भगवान उत्तर देते हैं कि यह काम है तब अर्जुन फिर प्रश्न करते हैं कि इस काम को कैसे नष्ट किया जा सकता है ? भगवान कहते हैं कि यदि शत्रु को मारना चाह रहे हैं तो उसका पहले निवास स्थान जानना चाहिए आचार्य शंकर अपने भाष्य में लिखते हैं— ‘ज्ञाते हि शत्रोः अधिष्ठाने सुखेन शत्रुनिवर्हणं कर्तुं शक्यते:। अर्थात् यदि शत्रु के रहने का स्थान जान लिया जाय, तो सहज में ही उसका नाश किया जा सकता है। श्री कृष्ण भगवान कहते हैं कि यह काम इन्द्रियों में, मन में और बुद्धि में रहता है यही काम के आश्रय स्थल हैं काम ही ऐसा है जो इन्द्रिय, मन, बुद्धि का सहारा लेकर देही के ज्ञान को आवृत्त कर देता है। वेदान्तसार में ‘मन’ की परिभाषा— संकल्प विकल्पात्मक वृत्ति के रूप में दी गयी है और अन्तःकरण की निश्चयात्मिका वृत्ति को बुद्धि कहते हैं। अर्थात् बुद्धि का लक्षण है किसी विषय पर निश्चय करना स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है— चित् मानो स्वच्छ हृद है रूपरसादि के अघात से उसमें लहरें उठती हैं एक लहर का नाम है ‘मन’ इसलिये ‘मन’ का स्वरूप संदेहशील है कामना इन्द्रियों तथा मन— बुद्धि की सहायता से जिनको विषय में लिप्त कर उसकी विवेक बुद्धि को मोहाच्छन्न कर डालती है परिणाम स्वरूप मनुष्य को ‘आत्मज्ञान’ की प्राप्ति नहीं हो पाती है इसलिये ‘कामना’ ही जीव को बाधने वाली है महाभारत के शान्ति पर्व में कहा गया है—

कामबन्धनमेवैकं नान्यदस्तहि बन्धनम्

कामबन्धनमुक्तोहि ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ (महा० शा० पर्व—251/7)

सम्पूर्ण जगत में कामना ही एक मात्र बन्धन है, दूसरा कोई बन्धन नहीं है। जो कामना के बन्धन से छूट जाता है। कामना देहाभिमानी पुरुष के चित्त को विमोहित कर देती है क्योंकि कामना के कारण मनुष्य का विवेक काम नहीं करता है कि क्या करन चाहिये और क्या नहीं करना चाहिए। दूसरे अध्याय में भगवान ने कहा है कि— ‘कामना से क्रोध उत्पन्न होता है— ‘कामात् क्रोधोऽभिजायते’ गीता (2/62) अर्थात् काम से क्रोध उत्पन्न होता है— ‘क्रोधाद्भवति सम्मोहः’ (2/63)। इस प्रकार कामना में यदि कोई बाधा आ गयी और वह पूर्ण नहीं हो पा रही है तो क्रोध उत्पन्न होता है और यदि कामना में बाधा नहीं आया तो लोभ उत्पन्न होता है ‘मोह’ तमोगुण का कार्य है और कामना रजोगुण का कार्य है और ये दोनों गुण पास—पास ही रहते हैं। काम इन्द्रियों, मन और

बुद्धि के द्वारा देहाभिमानी पुरुष को मोहित कर देता है इस प्रकार काम रजोगुण का कार्य जबकि मोह तमोगुण का कार्य है जो मनुष्य के अन्दर कामना उत्पन्न होती है तब यह कामना भोग पदार्थ भोगने के लिए इन्द्रियों की सहायता लेते हैं फिर मन में तरह-तरह की कामनायें करते हैं फिर बुद्धि उसे प्राप्त करने के लिए तरह-तरह के उपाय सोचती है उसके बाद इन्द्रियां मन को अपनी ओर खींचती हैं तत्पश्चात् इन्द्रियां और मन मिलकर बुद्धि को भी अपनी ओर खींच लेते हैं और इस तरह काम देहाभिमानी के ज्ञान को ढककर इन्द्रियों, मन और बुद्धि के द्वारा उसे कर देता है तथा नरकगामी बना देता है।

काम के विनाश का साधन

भगवान कृष्ण काम-क्रोध को देही का सबसे बड़ा शत्रु निरूपित करते हैं—
अग्रिम श्लोक में कामरूप शत्रु को मारने का अर्जुन को उपदेश देते हैं—

श्लोक—

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।

पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ 41 ॥

अन्वय—भरत वर्ष (हे भरत वंश श्रेष्ठ), तस्मात् (इसलिये) त्वम् (तुम) आदौ (पहले) इन्द्रियाणि (इन्द्रियों को) नियम्य (संयतकर) ज्ञान विज्ञान नाशनं (ज्ञान और विज्ञान के नाशक) पाप्मानं (पापरूप) हि (निश्चय ही) एनं (इसे) प्रजहि (मार डालो) ॥ 41 ॥

अर्थ—“ हे भरत वंशश्रेष्ठ अर्जुन ! इसलिये तुम पहले इन्द्रियों को संयत कर ज्ञान और विज्ञान का नाश करने वाले इस पापी काम को ही मार डाल।

व्याख्या— भगवान अर्जुन को उपदेश देते हैं कि हे अर्जुन ! तुम इन्द्रियों को अपने वश में करो और जितेन्द्रिय बनो क्योंकि काम का नाश करने के लिये सर्व प्रथम इन्द्रियों का नियमन आवश्यक है किन्तु अब प्रश्न यह उठता है कि इन्द्रियों को किस प्रकार वश में किया जाय ? इसके उत्तर में कहा गया है कि अभ्यास और वैराग्य ये दो उपाय हैं जिनसे इन्द्रियों को वश में किया जा सकता है 6/35 में भगवान कहते हैं कि—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहम चलम्।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

अर्थात् निसन्देह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है परन्तु हे कुन्ती पुत्र अर्जुन ! यह अभ्यास और वैराग्य से वश में होता है परात्मा को प्राप्त करना ही जीवन का परम लक्ष्य होना चाहिये तथा इसको प्राप्त करने के लिये दृढ़ धारणा करके अभ्यास करना चाहिये श्री कृष्ण अर्जुन को स्मरण दिलाते हैं कि तुम तो महावीर हो, तुमने अपने पराक्रम से किरात वेश धारी शंकर को प्रसन्न किया है तुममें मन का संयम अपार है, तुम मन के सामने घुटने टेकने की बात कर रहे हो ? हिम्मत मत हारो अभ्यास और वैराग्य का सहारा लो अभ्यास बड़ी शक्ति होती है आप लोग एक उदाहरण के द्वारा समझ सकते हैं एक आदमी एक बड़े बैल को बाहों में उठाकर दर्शकों चकित कर दिया करता था बैल जब दो दिन का बछड़ा तभी से प्रतिदिन वह उसे उठाया करता था और इसी अभ्यास के फलस्वरूप बैल के बड़े हो जाने पर भी वह उसे आसानी से उठा लेता था निरकुंश हाथी और घोड़ा अभ्यास के द्वारा ही वश में किया जाता है महर्षि पतंजलि भी अपने 'योगसूत्र' में चित की चंचलता को दूर करने का उपाय बताते हैं—

“अभ्यासवैराग्याभ्याम् तन्निरोधः” (1/12)।

अभ्यास क्या है—“तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः” (1/13)— उनचितवृत्तियों को स्थिति में रखने के लिए अर्थात् पूरी तरह अपने वश में रखने के लिए जो सतत् प्रयत्न है उसे ही अभ्यास कहते हैं। ‘वैराग्य’ का अर्थ है ‘विगत राग’ संसार में जब किसी के लिए न पक्ष पात रहा और न जलन। यही वैराग्य है ‘वैराग्य’ वैरागी की परिभाषा आचार्य शंकर अपने भाष्य में दिया है कि— ‘वैराग्यं नाम दृष्टःदृष्टे भोगेषु दोष दर्शनाभ्यासाद् वै तृष्णम्— देखे गये तथा नहीं देखे गये प्रिय भोगों में बारम्बार दोष दर्शन का अभ्यास करने से जो उनके प्रति अरुचि या वितृष्ण जन्म लेती है उसे ‘वैराग्य’ कहते हैं। ‘पाप्मानंहिप्रजहि’ अर्थात् कामना सम्पूर्ण पापों की उत्पत्ति स्थल हैं। यदि मन में कामना उत्पन्न हुई तो समझो की पान होने की सम्भावना रहेगी। कामना व्यक्ति के विवेक पर ऐसा पर्दा डालती है कि उसको पाप पुण्य का ज्ञान ही नहीं रह जाता है और पाप कर्म में प्रवृत्त होता चला जाता है इसलिये भगवान इस महान पापी काम का अच्छी तरह नाश करने की आज्ञा देते हैं। आगे के श्लोक में आप देखेंगे कि—देह इन्द्रिय— मन बुद्धि आत्मा के उत्तरोत्तर श्रेष्ठता प्रदर्शित की गयी है।

श्लोक —

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।

मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥ 42॥

अन्वय—इन्द्रियाणि (इन्द्रियों को) पराणि (श्रेष्ठ) आहुः (कहते हैं) इन्द्रियेभ्यः (इन्द्रियों से) मनः (मन) परं (श्रेष्ठ है) यः (जो) तु (किन्तु) बुद्धिः (बुद्धि से) परतः (परे है) सः (वह) [आत्मा है] ॥ 42॥

अर्थ—“इन्द्रियों को (शरीर से) श्रेष्ठ कहते हैं, मन इन्द्रियों से श्रेष्ठ है, और बुद्धि मन से श्रेष्ठ है परन्तु जो बुद्धि से भी परे है, वह आत्मा है।

व्याख्या— अर्जुन जब प्रश्न करते हैं कि हे भगवान ! जब काम ऐसा दुर्जय है तब इसे मारना क्या संभव हो सकता है। भगवान उत्तर देते हैं कि हाँ अवश्य संभव है। उसको मारने की विधि जाने बिना कदापि संभव नहीं है, पहले विधि जान लेना चाहिये। हम शरीर, मन, इन्द्रिय, बुद्धि में रहकर काम को नहीं मार सकते हैं क्योंकि इन सब स्थानों पर काम का अधिकार क्षेत्र है। हमें अर्थात् जीवात्मा को इससे भी ऊपर आत्मतत्त्व तक उठना होगा और वही स्थित होकर कामतत्त्व पर प्रहार करना होगा। इस प्रस्तुत श्लोक में शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि और आत्मा की उत्तरोत्तर श्रेष्ठता प्रदर्शित की गयी है। स्थूल शरीर विषय है इन्द्रियों के कारण ही शरीर में मति होती है। इन्द्रियों की अपेक्षा शरीर स्थूल जड़ सिद्ध होती है उसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का अनुभव इन्द्रियों के माध्यम से होता है। अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा विषयों का ज्ञान तो होता है पर विषयों के द्वारा इन्द्रियों का ज्ञान नहीं हो सकता है इन्द्रियां विषयों के बिना भी रह सकती हैं किन्तु विषयों की सत्ता इन्द्रियों के बिना सिद्ध नहीं होती है इन्द्रियां वहीं रहती हैं पर विषय बदलते रहते हैं अर्थात् कह सकते हैं कि इन्द्रियां व्यापक हैं तो विषय व्याप्य हैं विषय इन्द्रियों के अन्तर्गत ही आते हैं पर इन्द्रियां की विषयों के

अन्तर्गत नहीं आती है इसलिये विषयों की अपेक्षा इन्द्रियों को श्रेष्ठ, सूक्ष्म, सबल, प्रकाशक और व्यापक कहा गया है।

इन्द्रियों से मन को श्रेष्ठ कहा गया है क्योंकि इन्द्रियां मन को नहीं जान पाती हैं किन्तु मन सभी इन्द्रियों को जानता है। क्योंकि मन यदि इन्द्रियों के साथ सम्बन्धित न रहे तो इन्द्रियों को विषयों का ज्ञान नहीं हो पायेगा। प्रत्येक इन्द्रिय केवल अपने निर्धारित विषय को ही जान पाती है सबको नहीं। यथा— कान केवल शब्द को, नेत्र केवल रूप को, त्वचा केवल स्पर्श को, नासिका केवल गन्ध को, रसना केवल रस को जान पाते हैं। और अन्य को नहीं किन्तु मन पांचों ज्ञानेन्द्रियों के और उनके विषयों को भी जान पाता है। इसलिये मन इन्द्रियों की अपेक्षा श्रेष्ठ है।

अब मन से श्रेष्ठ बुद्धि को कहा गया है— क्योंकि बुद्धि का लक्षण “निश्चयात्मिका बुद्धिः” अर्थात् निश्चय करने वाला तन-मन नहीं बुद्धि है, मन तो संकल्प-विकल्प दोनों उपस्थित करने वाला है मन की स्थिति शान्त या व्याकुल, अच्छा या खराब हैं इस सब बातों को बुद्धि तय कर पाती है तात्पर्य है कि बुद्धि मन को भी जानती है, इन्द्रियों को भी जानती है तथा इन्द्रियों के विषयों को भी जानती है अतएव बुद्धि मन, इन्द्रिय आदि से भी श्रेष्ठ है।

श्लोक—

एवं बुद्धे परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।

जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ।।43।।

अन्वय—महाबाहो (हे वीरश्रेष्ठ) एवं (इस प्रकार) बुद्धे: (बुद्धि से) परं (परे) बुद्ध्वा (जानकर) आत्मानम् (अपने को) आत्मना (अपने द्वारा) संस्तभ्य (नियन्त्रित करके) कामरूपं (कामरूप) दुरासदं (दुर्जय) शत्रुं (शत्रु को) जहि (मार) ।। 43 ।।

अर्थ—“ हे महाबाहु अर्जुन ! इस प्रकार (आत्मा को) बुद्धि से परे जानकर अपने आप को अपने द्वारा नियन्त्रित करके इस दुर्जय कामरूप शत्रु को मार डाल ।”

व्याख्या— इस श्लोक में भगवान अर्जुन को आज्ञा देते हैं कि बुद्धि से भी आत्मा ही सर्वश्रेष्ठ है इसलिये इस आत्मा के दुश्मन कामरूप बैरी को मार डालो। आत्मतत्त्व बहुत ही गूढ़ है सभी लोगों को आसानी से बोधगम्य नहीं होता है इस आत्मतत्त्व की दुरुहता का वर्णन ‘कठोपनिषद्’ में भी कहा गया है— कठोपनिषद् में कहा गया है कि ‘सब भूतों के अन्दर छिपा हुआ यह आत्मा सबके द्वारा दृष्ट नहीं है केवल सूक्ष्मदर्शी पुरुष ही अत्यन्त तीक्ष्ण और सूक्ष्म बुद्धि द्वारा इसे प्रत्यक्ष कर सकते हैं शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, जीव सभी का वाचक आत्मा है बुद्धि, मन को अभ्यास और वैराग्य के द्वारा भी वश में करती है पहले शरीर से पर इन्द्रियां हैं, इन्द्रियों से पर मन है, मन से पर बुद्धि है और बुद्धि से पर काम है बताया गया है इसलिये बुद्धि से परे रहने वाले इस ‘काम’ को जानकर उसका नाश कर देना चाहिये।

अब प्रश्न है कि इस ‘बुद्धि’ का स्वामी कौन है ? अर्थात् बुद्धि से श्रेष्ठ कौन है ? तब भगवान उत्तर देते हैं कि बुद्धि से श्रेष्ठ “अहम्” कर्ता है बुद्धिकरण है, अहमकर्ता है, वही भोगो की इच्छा कर्ता है और सुख-दुख का ‘भोक्ता’ बनता है बुद्धि में अपना

चैतन्य नहीं है व तो जड़ है पर उसमें जो चैतन्याभास है, वह आत्मा के कारण है आत्मा ही बुद्धि को प्रकाशित करती है इसलिये आत्मा ही बुद्धि से परे (श्रेष्ठ) है, तब ऐसा आत्मनिश्चय हो जाने के बाद अपने को अपने द्वारा नियन्त्रित करके दुर्जय कामरूप शत्रु को मार डालना चाहिये। बुद्धि से ऊपर उठने के बात इसलिये कही गयी है कि बुद्धि से यदि ऊपर नहीं उठेगा तो काम प्रभावित करता रहेगा इसलिये बुद्धि से ऊपर 'आत्मा' तक जाकर उसमें स्थित हो जाओ और आत्मचैतन्य में स्थित होकर बुद्धि और मन की चंचलता को शान्त करो। क्योंकि बुद्धि और मन की चंचलता के कारण आत्मा भी चंचल प्रतीत होती है जैसे— सरोवर के जल हिलने—डुलने के कारण उसमें प्रति बिम्बित सूर्य या चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब भी हिलता—डुलता दिखाई देता इसी प्रकार आत्म चैतन्य भी बुद्धि— मन के सम्पर्क से परिणामी और चंचल प्रतीत होता है जैसे— सूर्य चन्द्रमा के वास्तविक स्वरूप जानने के लिए जल के ऊपर उठकर देखना होगा, उसी प्रकार 'बुद्धि' के ऊपर उठने पर ही आत्मा के स्वरूप का बोध होगा तब यह पता चल जायेगा कि काम का प्रभाव क्षेत्र 'बुद्धि' तक ही सीमित है। ऐसा यदि 'बोध' हो गया तो समझो कि काम को पहले सीढ़ी पर ध्वस्त कर दिये दूसरी सीढ़ी "अपने को अपने द्वारा नियन्त्रित करना" आचार्य शंकर अपने भाष्य में संस्तभ्यात्मानमात्मना का अर्थ स्पष्ट करते हैं— " जब हम आध्यात्मिक साधना के द्वारा बुद्धि— मन की चंचलता को दूर करते हैं और अन्तः करण को स्थिर—शान्त बनाने में समर्थ होते हैं तब आत्मचैतन्य पूरी तरह उसमें प्रतिबिम्बित होता है और हम अन्तः करण से बुद्धि से ऊपर उठकर बिम्ब आत्मा में स्थित हो जाते हैं। यही ' संस्तभ्यात्मानमात्मना' का अर्थ है इसी अवस्था में ही हम 'काम' को मारने में समर्थ हो पाते हैं आत्मा में स्थित होकर बुद्धि, मन, इन्द्रियों और शरीर को देखने से उनमें स्थित 'काम' जलकर नष्ट हो जाता है। कठोपनिषद् में (1/3/10-11) भी इसी 42 वें श्लोक के अनुरूप श्लोक प्राप्त होता है।

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्थार्थेभ्यश्च परं मनः मनसस्तु पराबुद्धिबुद्धेरात्मा महान्परः।

महतः परमव्यक्त ————— सा परा गतिः ॥

अर्थात् इन्द्रियों की अपेक्षा उनके विषय श्रेष्ठ है, विषयों से मन उत्कृष्ट है, मन से बुद्धि पर है और बुद्धि से भी महान आत्मा है। महत् तत्व से अव्यक्त पर है और अव्यक्त से भी पुरुष पर है। पुरुष से पराकाष्ठता है और वही परम गति है।

अभ्यास प्रश्न— A

बहुविकल्पीय प्रश्न—

सही विकल्प पर चिन्ह लगायें—

प्रश्न 1— 'लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि' यह उक्ति किसके द्वारा कही गयी है—

(अ) श्री कृष्ण (ब) अर्जुन

(स) संजय (द) धृतराष्ट्र

प्रश्न 2— किसके तत्व से मोहित होने के कारण 'अज्ञ' व्यक्ति अपने को कर्ता मान बैठता है—

(अ) गुण (ब) बुद्धि
(स) इन्द्रिय (द) अहंकार

प्रश्न 3— लोकसंग्रह कर्म का लक्षण क्या नहीं है—

- (अ) निराशीः (ब) निर्मम
(स) विगत ज्वरः (द) अल्पज्ञ
- प्रश्न 4— अनसूया—वृत्ति से क्या तात्पर्य है—
(अ) दूसरों में दोषदृष्टि देखना (ब) दोषदृष्टि से रहित
(स) श्रद्धावन्तः (द) अशान्तः
- प्रश्न 5— ज्ञानी भी किसके अनुरूप चेष्टा करता है—
(अ) ज्ञानस्य (ब) स्वस्याः प्रकृतेः
(स) सदृशं (द) निग्रहः
- प्रश्न 6— 'अज्ञानां कर्मसंगिनाम्' विशेषण किसके लिये प्रयुक्त हुआ है—
(अ) कर्म में आसक्त (ब) अनासक्त
(स) निष्काम (द) निरर्थक
- प्रश्न 7— ईश्वरीय नियमों के प्रति श्रद्धा न रखने पर साधक को क्या प्राप्त होती है—
(अ) अधोगति (ब) उच्चगति
(स) स्वर्ग (द) मोक्ष
- प्रश्न 8— किसी व्यक्ति को किसके वश में नहीं आना चाहिये—
(अ) राग और द्वेष (ब) इन्द्रिय
(स) प्रकृति (द) विषय
- प्रश्न 9— स्वधर्म में स्थित रहकर किसका वरण श्रेयस्कर है—
(अ) मरण का (ब) जन्म का
(स) धर्म का (द) कर्म का
- प्रश्न 10— पाप में कौन डेलता है—
(अ) राग (ब) काम
(स) अहंकार (द) मोह
- प्रश्न 11— काम और क्रोध किस गुण से उत्पन्न हुये है—
(अ) रजोगुण (ब) तमोगुण
(स) सत्वगुण (द) तृष्णागुण
- प्रश्न 12— भगवान ने किसको कहा कि इसे अपना शत्रु समझो—
(अ) काम क्रोध (ब) राग द्वेष
(स) तृष्णा (द) मोह
- प्रश्न 13— तृष्णा कभी क्या नहीं होती है
(अ) जीर्ण (ब) शीर्ण
(स) उपभोग (द) मित्र
- प्रश्न 14— विवेकरूप ज्ञान किसके द्वारा आवृत्त रहता है—
(अ) काम (ब) राग

(स) मोह

(द) लोभ

प्रश्न 15— काम के रहने को स्थान क्या नहीं है ?

(अ) इन्द्रियां

(ब) मन

(स) बुद्धि

(द) आत्मा

प्रश्न 16— काम को नष्ट करने के लिये किसका नियमन जरूरी है—

(अ) इन्द्रियों का नियमन

(ब) प्रकृति का

(स) गुणों का

(द) अहंकार का

प्रश्न 17— इन्द्रियों को किससे श्रेष्ठ कहा गया है—

(अ) शरीर से

(ब) आत्मा से

(स) मन से

(द) बुद्धि से

प्रश्न 18— इस प्रकार बुद्धि से श्रेष्ठ कौन है—

(अ) आत्मा

(ब) मन

(स) काम

(द) इन्द्रिय

प्रश्न 19— इन्द्रिय, मन, बुद्धि से ऊपर उठकर किस तत्व में स्थित होने की बात कही गयी है—

(अ) आत्मचैतन्य

(ब) काम तत्व

(स) राग द्वेष

(द) जीवात्मा

प्रश्न 20— ज्ञान और विज्ञान का नाश करने वाला कौन है—

(अ) काम

(ब) क्रोध

(स) राग

(द) द्वेष

6.4 सारांश

भगवद्गीता भगवान कृष्ण द्वारा कुरुक्षेत्र युद्ध में विषादग्रस्त अर्जुन को दिया गया उपदेश है। कुरुक्षेत्र के युद्ध में एक ओर पाण्डव सेना और दूसरी कौरव सेना खड़ी है, उसके बीच में कृष्ण अपना रथा खड़ा करते हैं। और अर्जुन के युद्ध से विमुख होने पर स्वधर्म और स्वभाव का पालन करने की सीख देते हैं। इस इकाई में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को लोकसंग्रहार्थ कर्म करने का उपदेश देते हैं और जनक आदि का उदाहरण देते हैं। कहते हैं कि जैसा श्रेष्ठ जन आचरण करते हैं वैसा ही अनुवर्तन करने वाले भी आचरण करते हैं। अनासक्त होकर कर्म करने से कर्म बन्धन नहीं लगता है और परमतत्व की प्राप्ति होती है। जैसे— यज्ञार्थ कर्म करना चाहिये, वैसे लोकसंग्रह के लिये भी कर्म करना चाहिये भले ही व्यक्ति ज्ञान प्राप्त कर लिया हो और उसे कोई कर्म करने की आवश्यकता न हो तब भी उसे लोक संग्रह के लिये कर्म अवश्य करना चाहिये। क्योंकि और लोग इसका अनुकरण करेंगे। इसी क्रम में भगवान अपना उदाहरण देते हैं कि मुझे ही देखो— मेरे लिये तीनों लोकों में कुछ भी कर्तव्य करने को शेष नहीं है न तो कुछ अप्राप्त है और न ही प्राप्त करना है फिर भी मैं कर्म में लगा रहता हूँ यदि मैं यह मान लूँ कि मेरे लिये कुछ भी प्राप्त— अप्राप्त नहीं है तो ये सारे लोग नष्ट हो जायेंगे और मैं वर्णशंकर का निमित्त बन जाऊँगा और सारी प्रजाओं के ध्वंस का कारण बन जाऊँगा—संक्षेप में कहा जा सकता है 'ज्ञानयोग' की तरह गीता में

प्रतिपादित 'कर्मयोग' का आश्रय लेकर व्यक्ति सांसारिक बन्धनों से मुक्ति पा सकता है और इस प्रकार मुक्ति के बाद मोक्ष की प्राप्ति होती है।

6.5 पारिभाषिक शब्दावली

1— **लोकसंग्रह**— "लोक शब्द स्वर्ग, मृत्यु और पाताल इन तीनों लोकों का वाचक है। इन तीनों लोकों की मर्यादा को स्थायी रखने के लिए कर्म करना 'लोकसंग्रह' है।"

2— **अहंकारविमूढात्मा**— 'अहंकार' अन्तःकरण की एक वृत्त है 'स्वयं' (स्वरूप) उस वृत्तिका ज्ञाता हैं। परन्तु भूल से स्वयं को उस वृत्ति से मिलाने अर्थात् उस वृत्ति को ही अपना स्वरूप मान लेने से यह मनुष्य विमूढात्मा कहा जाता है।"

3. **अकृत्स्नवित्**— "कृत्स्न' का अर्थ है पूर्ण, अतः 'कृत्स्नवित्' का तात्पर्य हुआ 'पूर्ण का जानने वाला', सम्पूर्ण तत्व को जानने वाला है और इसके विपरीत 'अकृत्स्नवित्' का अर्थ होता है 'जो पूरा न जानता हो'।"

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न (A) की उत्तरमाला

प्रश्न 1— (अ)	प्रश्न 2— (स)	प्रश्न 3— (ब)	प्रश्न 4— (अ)	प्रश्न 5— (ब)
प्रश्न 6— (स)	प्रश्न 7— (ब)	प्रश्न 8— (ब)	प्रश्न 9— (अ)	प्रश्न 10— (ब)
प्रश्न 11— (अ)	प्रश्न 12— (अ)	प्रश्न 13— (अ)	प्रश्न 14— (ब)	प्रश्न 15— (स)
प्रश्न 16— (द)	प्रश्न 17— (अ)	प्रश्न 18— (ब)	प्रश्न 19— (अ)	प्रश्न 20— (अ)

अभ्यास प्रश्न (B) की उत्तरमाला

प्रश्न 1— (अ)	प्रश्न 2— (द)	प्रश्न 3— (द)	प्रश्न 4— (ब)	प्रश्न 5— (ब)
प्रश्न 6— (अ)	प्रश्न 7— (अ)	प्रश्न 8— (अ)	प्रश्न 9— (अ)	प्रश्न 10— (ब)
प्रश्न 11— (अ)	प्रश्न 12— (अ)	प्रश्न 13— (अ)	प्रश्न 14— (अ)	प्रश्न 15— (द)
प्रश्न 16— (अ)	प्रश्न 17— (अ)	प्रश्न 18— (अ)	प्रश्न 19— (अ)	प्रश्न 20— (अ)

6.7— सन्दर्भ ग्रन्थ सूची—

1—गीतातत्व चिन्तन – स्वामी आत्मानन्द

प्रकाशन—अद्वैत आश्रम, 5 डिही एण्टाली रोड—कलकत्ता

2—भगवद्गीता – चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

3—श्री मदभगवद् गीता – योगीराज श्री श्यामाचरण

लोहिड़ी महाशय एवं भूपेन्द्र नाथ सान्याल।

4—श्री मदभगवद् गीता – साधक संजीवनी – स्वामी राम सुख दास।

5—'गीता – स्वामी अङ्गणानन्द।

- 6—श्री मदभगवद् गीता ' यथारूप — श्री श्रीमद् ए0सी0 भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुवाद ।
 7—श्री मदभगवद् गीता त्रयी — भगवान श्री कृष्णचन्द्र वासुदेव ।
 8—श्री मदभगवद् गीता — तत्त्विवेचनी हिन्दीटीका — जयदयाल गोयन्दका गीता प्रेस गोरखपुर ।
 9—श्री मदभगवद् गीता — स्वामी अपूर्वानन्द — रामकृष्ण मठ— नागपुर ।
 10—युगगीता — डॉ प्रणव पाण्डया
 11—गीता रहस्य — लोक0 बाल गंगाधर तिलक नारायण प्रेस पूना ।

6.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. श्रीमद् भगवद्गीता — तत्त्विवेचनी (हिन्दी टीका) जयदयाल गोयन्दका, गीताप्रेस, गोरखपुर ।
2. श्रीमद् भगवद्गीता — स्वामी अपूर्वानन्द— रामकृष्ण मठ नागपुर ।
3. गीता तत्त्वचिन्तन — स्वामी आत्मानन्द प्रकाशन — अद्वैतआश्रम— कल ।
4. श्रीमद्भगवद्गीता — चक्रवर्ती राजगोपलचारी
5. श्रीमद्भगवद्गीता — योगिराज श्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय एवं भूपेन्द्रनाथ सान्याल ।
6. यथार्थ गीता — स्वामी अड.गडानन्द ।
7. गीता रहस्य — लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक नारायण प्रेस, पूना ।

6.9— निबन्धात्मक प्रश्न—

- प्रश्न—1 लोकसंग्रह हेतु कर्म किसे कहते हैं ? इसके पांच लक्षण स्पष्ट कीजिये ?
 प्रश्न—2 मूढ़ और तत्त्वज्ञ में मुख्य भेद क्या है ?
 प्रश्न—3 गीता में मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु किसे बताया गया है, और इसके नाश का क्या उपाय है ?

खण्ड तीन – व्याकरण – हल् एवं विसर्ग सन्धि

इकाई . 1 व्याकरण स्तोःश्चुनाश्चुः से शश्छोऽटि तक

इकाई की रूप रेखा

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 व्याकरण – स्तोःश्चुनाश्चुः से शश्छोऽटि तक
- 1.4 सारांश
- 1.5 शब्दावली
- 1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 1.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 1.8 उपयोगी पुस्तके
- 1.9. निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र से सम्बन्धित यह पहली इकाई है इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि हल् सन्धि कहाँ पर होती है? अतः इस इकाई में मुख्य रूप से हल् सन्धि के विषय में वर्णन किया गया है। जहाँ पर दो हल् अर्थात् व्यंजन वर्णों को जहाँ पर मेल किया गया हो उसे हल् सन्धि कहते हैं।

व्याकरण शास्त्र में हल् सन्धि का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। शब्द का ज्ञान व्याकरण शास्त्र के बिना सम्भव नहीं है। शब्दों के अर्थों के ज्ञान के लिए व्याकरण शास्त्र का ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक है।

इस इकाई के अध्ययन से हल् सन्धि को ज्ञान करते हुए, उसकी महत्ता को आप भली-भाँति समझ सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप हल् सन्धि में अनेक महत्त्वपूर्ण सन्धियों का अध्ययन करेंगे।

- श्चुत्व सन्धि के विषय में आप भली-भाँति परिचित होंगे।
- ष्टुत्व सन्धि के विषय में आप भली-भाँति परिचित होंगे।
- जश्त्व सन्धि के विषय में आप भली-भाँति परिचित होंगे।
- हल् सन्धि में परसवर्ण सन्धि के विषय में भली-भाँति परिचित होंगे।
- चर्त्त्व सन्धि के विषय में आप भली भाँति परिचित होंगे।
- छत्व सन्धि के विषय में आप भली-भाँति परिचित होंगे।

1.3 अनुनासिक सन्धि

अनुनासिक आदेश विधायक विधि सूत्र

यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ४।४४।। यरःपदान्तस्यानुनासिके परेऽनुनासिको वा स्यात् । एतन्मुरारिः एतद् मुरारिः ।

अर्थ :— अनुनासिक वर्ण यदि पर में हो तो पदान्त यर् प्रत्याहार के वर्ण के स्थान पर अनुनासिक आदेश होता है विकल्प से।

जो वर्ण मुख और नासिका दोनों से बोला जाता है। उसे अनुनासिक कहते हैं। मुखनासिका वचनोऽनुनासिकः यह सूत्र ही प्रमाण है। अनुनासिक अच् और हल् दोनों प्रकार के वर्ण होते हैं। किन्तु पदान्त यर् से परे अनुनासिक वर्ण कहीं नहीं देखा जाता है। अतः यहाँ पर हल् वर्ण अनुनासिक का ही ग्रहण किया जाता है। अनुनासिक हल् वर्ण पांच हैं। 1—य्, 2—म, 3—ङ्, 4—ण, 5— न । इन पांच वर्णों में से किसी वर्ण के परे होने पर पदान्त यर् को विकल्प करके अनुनासिक होगा। यर् प्रत्याहार में केवल हकार को छोड़कर सभी हल् वर्ण आते हैं। स्थानेऽन्तरतमः सूत्र से वहीं वर्ण आदेश होगा जिसका यर् के साथ स्थान तुल्यता हो। यथा कवर्ग के वर्ण को ङ, चवर्ग के वर्ण को ञ, ट वर्ग के वर्ण को ण, टवर्ग के वर्ण को न, तथा पवर्ग के वर्ण स्थान पर म आदेश होता है।

उदाहरण :—एतन्मुरारिः एतत् + मुरारिः यहाँ पर पहले झलां जशोऽन्ते सूत्र से पदान्त झल् प्रत्याहार का वर्ण है एतत् का तकार, इसको जश्त्व तकार को दकार आदेश होकर एतद् + मुरारिः प्रयोग बना। यहाँ पर सूत्र लगा — यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा। यह सूत्र कहता है कि अनुनासिक वर्ण यदि पर में हो तो पदान्त पर, प्रत्याहार के वर्ण को

विकल्प से अनुनासिक हो जाता है। इसलिए एतद् + मुरारि में अनुनासिक वर्ण पर में है मुरारिः का मकार और पूर्व में पदान्त यर् प्रत्याहार का वर्ण है एतद् का दकार। अब एतद् के दकार के स्थान पर अनुनासिक वर्ण भ, म, ङ, ण, न ये पांचों वर्ण एक साथ प्राप्त होते हैं। एक वर्ण के स्थान पर पांच अनुनासिक वर्णों का प्राप्ति होना अनियम् हुआ। उस अनियम को रोकने के लिए **स्थानेऽन्तरतम्** सूत्र से स्थान मिलाने से दन्त स्थान वाला वर्ण द् के स्थान पर दन्त स्थान वाला वर्ण अनुनासिक नकार आदेश होकर एतन् + मुरारिः प्रयोग बना। वर्ण सम्मेलन होकर **एतन्मुरारिः** प्रयोग सिद्ध होता है। अनुनासिक विकल्प से होता है। जिस पक्ष में अनुनासिक वर्ण नकार नहीं होगा उस पक्ष में **एतद् मुरारिः** ही प्रयोग सिद्ध होता है। **इसके बाद अनुनासिक नित्य होता है।**

वार्तिक :-

प्रत्यये भाषायां नित्यम् । तन्मात्रम् । चिन्मयम् ।

अर्थ :- अनुनासिक वर्ण आदि में हो, ऐसे प्रत्यय के परे होने पर लौकिक प्रयोगों में पदान्त यर् के स्थान पर नित्य ही अनुनासिक वर्ण आदेश होता है।

उदाहरण :- तन्मात्रम् - तत् + मात्रम् यहां सूत्र लगा **झलां जशोऽन्ते**। इस सूत्र के द्वारा पदान्त झल् प्रत्याहार का वर्ण है तत् का तकार। इस तकार के स्थान पर जश्त्व दकार होकर तद् + मात्रम् बना। इसके बाद वार्तिक लगा-**प्रत्यये भाषायां नित्यम्** यह वार्तिक कहता है कि अनुनासिक वर्ण आदि में हो तो ऐसे प्रत्यय के परे होने पर लौकिक प्रयोगों में पदान्त यर् के स्थान पर नित्य अनुनासिक वर्ण आदेश होता है। तद् + मात्रम् यहां पर प्रत्यय है मात्रम् उसके आदि में अनुनासिक वर्ण है मकार, ऐसे मकार के परे होने पर पदान्त यर् प्रत्याहार का जो वर्ण है तद् का दकार। उस दकार के स्थान पर नित्य अनुनासिक पांचों वर्ण प्राप्त होते हैं। इसलिए एक वर्ण के स्थान पर पांच वर्णों की होना अनियम है उस अनियम को रोकने के लिए **स्थानेऽन्तरतम्** सूत्र के द्वारा पदान्त यर् प्रत्याहार का वर्ण तद् के दकार के स्थान पर दन्त स्थानिक वर्ण नकार होता है अर्थात् द के स्थान पर नित्य अनुनासिक नकार होकर **तन्+मात्रम्** बना। वर्ण सम्मेलन होकर **तन्मात्रम्** प्रयोग सिद्ध होता है।

चिन्मयम्-उसी प्रकार चित् + मयम् यहां पर झलां जशोऽन्ते सूत्र से चित् के तकार के स्थान पर जश्त्व दकार होकर चिद् + मयम् बना। उसके बाद इस वार्तिक के द्वारा नित्य अनुनासिक नकार होकर चिन् + मयम् बना। तथा वर्ण सम्मेलन होकर **चिन्मयम्** प्रयोग सिद्ध होता है।

अनुनासिक सन्धि का उदाहरण

विग्रह

आदेश

	सन्धि	
एतद् + मुरारिः	एतन् + मुरारिः	एतन्मुरारिः
अग्निचिद् + नयति	अग्निचिन् + नयति	अग्निचिन्मयतिः
तद् + नः	तन् + नः	तन्नः
दिग् + नागः	दिङ् + नागः	दिङ्नागः
वाग् + मयम्	वाङ् + मयम्	वाङ्मयम्
जगद् + नाथः	जगन् + नाथः	जगन्नाथः
मद् + याता	मन् + याता	मन्याता
किञ्चिद् + मात्रम्	किञ्चिन् + मात्रम्	किञ्चिन्मात्रम्
वाग् + यलम्	वाङ् + यलम्	वाङ्गयलम्
सद् + मार्गः	सन् + मार्गः	सन्मार्गः
इङ् + निषेधः	इण् + निषेधः	इण्निषेधः

षड् + मासा	षण् + मासाः	षण्मासाः
चिद् + मात्रम्	चिन् + मात्रम्	चिन्मात्रम्
चिद् + मयम्	चिन् + मयम्	चिन्मयम्

हल् सन्धि में परसवर्ग सन्धि का उदाहरण

परसवर्ण विधायक विधि सूत्र :- 69 तोर्लि 8 । 4 । 60 ।। तवर्गस्य लकारे परे परसवर्गः स्यात् । तल्लयः । विद्वॉल्लिखति । नस्यानुनासिको लः ।

अर्थ :- लकार के परे होने पर तवर्ग के स्थान पर परसवर्ण आदेश होता है ।

भाव यह कि तवर्ग से जब लकार परे हो तो तवर्ग के स्थान पर लकार का परसवर्ण आदेश किया जायेगा । लकार का लकार के सिवाय अन्य कोई सवर्ण नहीं होगा । अतः तवर्ग के स्थान पर सवर्ण लकार ही आदेश होगा । लकार दो प्रकार के होते हैं । 1- अनुनासि (लं), अननुनासिक (ल) । **स्थानेऽन्तरमः** सूत्र की सहायता से तवर्गस्थ अनुनासिक वर्ण के स्थान पर अनुनासिक लकार तथा दूसरा अननुनासिक वर्ण के स्थान पर अननुनासिक लकार होगा । तवर्ग में नकार के सिवाय दूसरा कोई वर्ण अनुनासिक नहीं है । अतः अनुनासिक लकार हुआ । उदाहरण -

तल्लयः- तद् + लयः यहाँ पर सूत्र लगा-**तोर्लि** यह कहता है कि तवर्ग से लकार पर में हो तो, तवर्ग के स्थान में परसवर्ग होता है । यहाँ पर तवर्ग का वर्ण है तद् का दकार तथा पर में लयः का लकार होने के कारण दकार के स्थान में परसवर्ण लकार होकर तल् + लयः प्रयोग बना । वर्ण सम्मेलन होकर तल्लयः प्रयोग सिद्ध होता है ।

विद्वॉल्लिखति :- विद्वान् + लिखति इस दशा में **तोर्लि** सूत्र लगा । यह सूत्र कहता है कि लकार के परे होने पर तवर्ग के स्थान पर परसवर्ण आदेश होता है । यहाँ पर विद्वान् + लिखति में तवर्ग का वर्ण है अनुनासिक न् तथा पर में वर्ण है लिखति का लकार इसलिए अनुनासिक नकार के स्थान पर परसवर्ण लकार होकर विद्वाल्लं लिखति बना । तथा वर्ण सम्मेलन विद्वॉल्लिखति प्रयोग सिद्ध होता है ।

परसवर्ण सन्धि का उदाहरण :-

विग्रह	आदेश	सन्धि
तत् + लयः	तल् + लयः	तल्लयः
कश्चिद् + लभते	कश्चिल् + लभते	कश्चिल्लभते
तद् + लीनः	तल् + लीनः	तल्लीनः
उद् + लेखः	उल् + लेखः	उल्लेखः
यद् + लक्षणम्	यल् + लक्षणम्	यल्लक्षणम्
जगद् + लीयते	जगल् + लीयते	जगल्लीयते
चिद् + लयः	चिल् + लयः	चिल्लयः
विपद् + लीनः	विपल् + लीनः	विपल्लीनः
कुशान् + लुनाति	कुशल्लं + लुनाति	कुशल्लुनाति
महान् + लाभः	महाल्लं + लाभः	महाल्लोभः
हनुमान् + लंकादहति	हनुमाल्लं + लंकादहति	हनुमाल्लंकादहति
धनवान् + लुनीते	धनवाल्लं + लुनीते	धनवाल्लुनीते
विद्युत् + लेखा	विद्युल्लं + लेखा	विद्युल्लेखा

इस प्रकार लकार परसवर्ण सन्धि का अन्य उदाहरण भी देखें ।

पूर्व सवर्ण सन्धि :-

अब हल् सन्धि में पूर्व सवर्ण सन्धि का उदाहरण दिया जा रहा है –

पूर्व सवर्ण विधायक विधि सूत्र –

70 – उदः स्था-स्तम्भोः पूर्वस्य 8 | 4 | 61 ||

उदः परयोः स्था-स्तम्भोः पूर्वसवर्णः ||

अर्थ :- उद् उपसर्ग से परे स्था और स्तम्भ को पूर्व सवर्ण हो।

उदः यहां पर दिग्योग पंचमी है। अर्थात् 'उद्' से किसी दिशा में स्थित में स्था और स्तम्भ को पूर्व सवर्ण होगा। वर्णों में दो ही दिशा सम्भव हो सकती है एक पर और दूसरा पूर्व। अब यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या उद् से पूर्वस्थित स्था और स्तम्भ को पूर्व सवर्ण हो या पर स्थित स्था और स्तम्भ को पूर्व सवर्ण हो? इन समस्याओं के निवृत्ति के लिए अग्रिम परिभाषा सूत्र लिखते हैं।

नियम कारक परिभाषा सूत्र

71 तस्मादित्युत्तरस्य 1 | 1 | 61 ||

पंचमी निर्देशेन क्रियमाणं कार्यं वर्णान्तरेणाऽव्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम्।

अर्थ – पंचम्यन्त पद के निर्देश से किया जाने वाला कार्य अन्य वर्णों के व्यवधान से रहित पर के स्थान पर जानना चाहिए।

उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य आदि सूत्रों में उदः ऐसा पंचम्यन्त पद उससे निर्दिष्ट

कार्य किसी वर्ण के व्यवधान के बिना उत् आदि से परे में स्था, स्तम्भ के स्थान पर पूर्व सवर्ण होता है।

उद्+स्थानम्, उद्+स्तम्भनम् इन दोनों स्थानों पर 'उद्' से परे अव्यवहित स्था और स्तम्भ विद्यमान है। अतः इनके स्थान पर पूर्वसवर्ण करना है। अब स्था और स्तम्भोः के षष्ठ्यन्त होने से अलोऽन्त्यस्य सूत्र से इनके अन्त्य अल् के स्थान पर पूर्व सवर्ण प्राप्त होता है। इस पर अलोऽन्त्यस्य की अपवाद परिभाषा सूत्र लिखते हैं-

नियम कारक परिभाषा सूत्र –

72 आदेः परस्य 1 | 1 | 53 ||

परस्य यद विहितं तत् तस्यादेर्वोध्यम्। इति सस्य थः।

अर्थ – पर के स्थान पर जो कार्य का विधान किया जाता है वह कार्य उस (पर) के आदि वर्ण के स्थान पर समझना चाहिए।

उद् + स्थानम्, उद् + स्तम्भनम् यहां तस्मादित्युत्तरस्य परिभाषा सूत्र की सहायता से 'उदः स्था स्तम्भोः पूर्वस्य' इस सूत्र के द्वारा पहले स्था स्तम्भ को पूर्व सवर्ण होना था। अब इस परिभाषा सूत्र के द्वारा पर के आदि वर्ण अर्थात् स्था और स्तम्भ के आदि वर्ण स् के स्थान पर पूर्वसवर्ण होगा।

अब यहां पर यह विचार प्रस्तुत करते हैं कि उद् + स्था और उद् + स्तम्भनम् यहां पर सकार के स्थान पर दकार का सवर्णों का वर्ण कौन सा होगा? क्योंकि पूर्व में जो वर्ण द् है उसका सवर्णों वर्ण पांच है त, थ, द, ध, न। एक वर्ण के स्थान पर एक ही सवर्ण वर्ण होगा पांच सम्भव नहीं है। इस शंका के निवारण के लिए स्थानेऽन्तरतमः सूत्र आया। यह कहता है कि प्राप्त हुए आदेशों में अत्यन्त सदृश वर्ण आदेश होगा। अब हमें यहां पर त, थ, द, ध, न इन पांच वर्णों में से सकार का अत्यन्त सदृश वर्ण ढूँढना है। यदि स्थान कृत तुल्यता देखते हैं तो स का स्थान दन्त है तथा त, थ, द, ध, न इन सबका स्थान दन्त है। अतः इस सादृश्यता से काम नहीं चलेगा। अब इसके बाद यत्नकृत सादृश्य देखते हैं। यत्न दो प्रकार के है यह पहले संज्ञा प्रकरण में बताया गया

है। 1 – आभ्यन्तर प्रयत्न 2– वाहय प्रत्यय । अब आभ्यन्तर प्रयत्न में स का सबसे सन्निकट वर्ण कौन सा है? स का आभ्यन्तर प्रयत्न में इषद्विवृत प्रत्यय है तथा त ध द ध न इन पांच वर्णों का स्पृष्ट प्रत्यय है। इसलिए सकार के स्थान में इन पांचों वर्णों में से कोई नहीं होगा। अब देखते हैं स का वाहय प्रयत्न में कौनसा वर्ण सादृश्य है। सकार का वाहय प्रयत्न में विवार, श्वास, अघोष और महाप्राण वाला कौन सा वर्ण है। उनको निम्न प्रकार से देखें –

त् का वाहय प्रयत्न विवार श्वास अघोष और अल्पप्राण

थ का वाहय प्रयत्न विवार, श्वास, घोष और महाप्राण

द का वाहय प्रयत्न संवाद, नाद, घोष और महाप्राण

ध का वाहय प्रयत्न सवार, नाद, घोष और महाप्राण

न का वाहय प्रयत्न सवार, नाद, घोष और महाप्राण

इससे सिद्ध होता है कि वाहय प्रयत्नों की दृष्टि से थकार ही सकार के समान है। अतः सकार के स्थान में पूर्व सवर्ण थकार ही होता है। इस प्रकार उद् + थ् + थानम्, उद् + थत्तम्भनम् बना। अब इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त होता है।

वैकल्पिक लोप विधायक विधिसूत्र

73 झरो झरि सवर्णे 8 | 4 | 65 ||

हलः परस्य झरो वा लोपः सवर्णे झरि।

अर्थ— हल् से परे झर् का लोप होता है विकल्प से, सवर्ण झर् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो।

हल् प्रत्याहार में पुरे व्यंजन वर्ण आते हैं। इस हल् प्रत्याहार के वर्ण से परे झर् प्रत्याहार (झ, भ, घ, ङ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष स) का वर्ण हो तो लोप हो जाता है। सवर्ण झर् प्रत्याहार का वर्ण हो तो।

उद् + थ् थानम्, उद् + थ् तम्भनम् यहाँ पर हल् प्रत्याहार का वर्ण है, उद् का दकार। उस हल् वर्ण द से परे झर् प्रत्याहार का वर्ण है, थ् थानम् का पूर्व थ् और उस थकार से सवर्ण झर् प्रत्याहार का वर्ण है थानम् का थ् तथा थ् तम्भनम् का थ्। इसलिए विकल्प थकार का लोप होकर उद् + थानम् बना। जिस पक्ष में लोप नहीं होगा, उस पक्ष में उद् + थ् थानम् तथा उद् + थ् तम्भनम् बना। अब इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है—

चर् आदेश विधायक विधि सूत्र

74 खरि च 8 | 4 | 54 ||

खरि झलां चरः स्युः। इत्युदोदस्य तः।

उत्थानम्। उत्तम्भनम्

अर्थ :—खर् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो झल् के स्थान में चर् आदेश होता है।

इत्युदोदस्यः तः इस सूत्र से दकार को तकार हो गया।

लोप होने के बाद उद् + थानम् ! उद् + तम्भनम् अब यहाँ पर सूत्र लगा – खरि च यह सूत्र कहता है कि खर् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो झल् प्रत्याहार के वर्ण के स्थान पर चर् प्रत्याहार का वर्ण होता है। उद् + थानम् उद् तम्भनम् यहाँ पर खर् प्रत्याहार का वर्ण पर में है, उद् + थानम् में थकार तथा उद् तम्भनम् में तकार! उससे पूर्व झल् प्रत्याहार का वर्ण है उद् में द् । इस दकार के स्थान में चर् प्रत्याहार का वर्ण त् होकर उत् + थानम् । उत् तम्भनम् बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर उत्थानम् और उत्तम्भनम् प्रयोग सिद्ध होता है और जिस पक्ष में झरो झरि सवर्णे से लोप नहीं होगा, उस पक्ष में उद् + थ् + थानम्, उद् + थ् + तम्भनम् खरि च से चर्त्वं तथा वर्ण सम्मेलन उत्थानम्, उत्तम्भनम् प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखें –

विग्रह	आदेश	सन्धि
उद् + स्थानम्	उत् + थानम्	उत्थानम्
उद् + स्तम्भनम्	उत् + तम्भनम्	उत्तम्भनम्
उद् + स्थापयति	उत् + थापयति	उत्थापयति
भेद् + तुम्	भेत् + तुम्	भेतुम्
उद् + स्थितः	उत् + थितः	उत्थितः
उद् + स्तम्भते	उत् + तम्भते	उत्तम्भते
लिम् + सा	लिप् + सा	लिप्सा
उद् + स्थातव्यम्	उत् + थातव्यम्	उत्थातव्यम्
युयुध् + सवः	युयुत् + सवः	युयुत्सवः
तद् + त्वम्	तत् + त्वम्	तत्त्वम्
त्वद् + तः	त्वत् + तः	त्वत्तः
तद् + तरति	तत् + तरति	तत्तरति
यद् + तनोति	यत् + तनोति	यत्तनोति

अभी तक आपने हल् सन्धि में नित्य पूर्वसवर्ण सन्धि पढ़ा। अब इसके बाद विकल्प से पूर्व सवर्ण होता है। इसके विषय में अध्ययन करेंगे।

वैकल्पिक पूर्वसवर्ण विधायक विधि सूत्र

75 झयो होऽन्यतरस्याम् 8 | 4 | 62 ||

झयः परस्य हस्य वा पूर्वसवर्णः।

नादस्य घोषस्य संवारस्य महाप्राणस्य तादृशो वर्ग चतुर्थः।
वाग्घरिः वाग्हरिः।

अर्थ :- झय् से परे हकार के स्थान पर विकल्प से पूर्व सवर्ण होता है। नाद्, पोष संवार और महाप्राण यत्न वाले हकार के स्थान पर वैसा वर्गों का चतुर्थ वर्ण होगा। उदाहरण यथा :-

वाग्घरिः वाक् + हरिः यहाँ पर सर्व प्रथम झलां जशोऽन्ते सूत्र के द्वारा पदान्त झल् प्रत्याहार का वर्ण के स्थान पर जश्त्व ग् होकर वाग् + हरिः बना। अब इसके बाद सूत्र लगा झयो होऽन्तरस्याम् यह सूत्र कहता है कि पदान्त झय् प्रत्याहार (झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ ध ठ थ च त त क प) को वर्ण से परे हकार के स्थान पर पूर्व सवर्ण अर्थात् गकार का सवर्ण आदेश करना है। गकार का सवर्ण में से हकार के स्थान

पर कौन सा, गकार का सवर्णों पांच वर्ण (क ख ग घ ङ.) है। इन पांचों वर्णों में से हकार के स्थान पर कौन सा वर्ण हो? ऐसी शंका उत्पन्न होने पर स्थानेऽन्तरमः सूत्र उपस्थित होकर कहता है कि जो हकार के साथ अत्यन्त सदृश हो वही हकार के स्थान पर आदेश किया जाये। अब यदि स्थान कृत आदेश मिलाते हैं तो हकार के स्थान पर क वर्ण का पांचों वर्ण प्राप्त होते हैं। आभ्यन्तर प्रयत्न भी हकार के साथ तुल्य नहीं मिलता है क्योंकि क वर्ण का प्रत्यय है स्पृष्ट तथा हकार का प्रयत्न है इषद्विवृत इसलिए भिन्न होने से ये भी नहीं प्राप्त है। अतः बाह्य प्रयत्न वाला हकार ही है। इसलिए हकार के स्थान पर विकल्प से घकार होकर वाग् + घरिः बना। वर्ण सम्मेलन होकर वाग्घरिः प्रयोग सिद्ध होता है और पूर्व सवर्ण विकल्प पक्ष में वाग्घरिः प्रयोग सिद्ध होता है। इस सूत्र के कुछ अन्य उदाहरण हैं :-

विग्रह	आदेश	सन्धि
वाक् + हरिः	वाग् + घरिः	वाग्घरिः
तद् + हानिः	तद् + घानि	तद्धानिः
अच् + हीनम्	अज् + झीनम्	अज्झीनम्
मधुलिङ् + हसति	मधुलिङ् + ढसति	मधुलिङ्ढसति
अच् + हस्वः	अज् + झस्वः	अज्झस्वः
दिग् + हस्ती	दिग् + घस्ती	दिग्घस्ती
दूरात् + हूते	दूराद् + घूते	दूराद्घूते
समुद्र + हर्ता	समुद् + धर्ता	समुद्घर्ता
मित्वाद् + ह्रस्वं	मित्वाद् + ध्रस्वः	मित्वाद्घ्रस्वः
सम्पद् + ह्रस्वं	सम्पद् + ध्रस्वः	सम्पद्घ्रस्वः
वणिग् + हस्ती	वणिग् 4 धस्ती	वणिग्घस्ती
रत्नुङ् + हरति	रत्नुमुङ् + ढरति	रत्नुमुङ्ढरति

निष्कर्ष :- यह है कि झय् प्रत्याहार क वर्ण से परे हकार घकार च वर्ण से परे हकार को झकार, ट वर्ण से परे हकार को ढकार, त वर्ण से हकार को धकार तथा पवर्ण से परे हकार को भकार विकल्प से होता है। पक्ष में हकार भी रहता है। इस प्रकार पूर्व सवर्ण सन्धि समाप्त होता है।

वैकल्पिक छत्व विधायक विधि सूत्र

76. शश्छोऽटि 8 | 4 | 6 ।। झयः परस्य शस्य छो वा अटि। तद् + शिव इत्यत्र

दस्य श्चुत्वेन जकारे कृते खरि चेति जकारस्य चकारः। तच्छिवः तच्छिवः।

अर्थ :- झय से परे शकार को 1 विकल्प से छकार होता है। अट् परे हो तो। पूर्व में झय् प्रत्याहार (झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प) का वर्ण हो पर में अट् प्रत्याहार का वर्ण हो और मध्य में शकार हो तो शकार के स्थान में छकार विकल्प से होता है और एक पक्ष में शकार ही रहेगा।

उदाहरण :-

तच्छिवः तच्छिवः तत् + शिवः यहां सबसे पहले झलां जशोऽन्ते सूत्र से तत् के तकार के स्थान पर जश्त्व दकार होकर तद् + शिवः बना। यहाँ पर तवर्ग और शकार का योग होने से दकार के स्थान पर स्तोःश्चुना इचुः सूत्र के द्वारा श्चुत्व जकार होकर तज् + शिवः बना। इसके बाद जकार के स्थान पर खरि च सूत्र से चकार होकर तच् + शिवः बना। इसके बाद यह सूत्र लगा शश्छोऽटि। यह सूत्र कहता है कि झय प्रत्याहार

से परे शकार के स्थान पर छकार आदेश विकल्प से होता है। अट् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो यहां पर झय प्रत्याहार का वर्ण है। तच् का चकार इससे परे शकार है, शिव का शकार। उस शकार से परे अट् प्रत्याहार का वर्ण है शि में इकार। अतः इसलिए शकार के स्थान में छकार होकर तच् + छिवः बना। वर्ण सम्मेलन होकर तच्छिवः प्रयोग सिद्ध होता है। शकार के स्थान छकार विकल्प से होता है। जिस पक्ष में शकार स्थान में छकार नहीं होगा, उस पक्ष में तच्छिवः प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार अन्य उदाहरण निम्नानुसार है देखें :-

विग्रह	आदेश	सन्धि
तद् + शिवः	तच् + छिवः	तच्छिवः
मत् + शिरः	मच् + छिरः	मच्छिरः
जगत् + शान्तिः	जगच् + छान्तिः	जगच्छान्तिः
यावत् + शक्यम्	यावच् + छक्यम्	यावच्छक्यम्
जगत् + शिष्यः	जगच् + छिष्यः	जगच्छिष्यः
वाक् + शेते	वाक् + छेते	वाक्छेते
कश्चित् + शेते	कश्चित् + छेते	कश्चित्छेते
प्राक् + शान्तिः	यावच् + छान्तिः	यावच्छान्तिः
मत् + श्वसुरः	मच् + वभुरः	मच्छ्वशुरः

वार्तिक :-

छत्वमिति वाच्यम् । तच्छ्लोके ।

अर्थ :- पदान्त झय से परे शकार को विकल्प से छकार आदेश होता है अम् परे हो तो। तच्छ्लोकेन तद् + श्लोकेन यहाँ **स्तोः श्चुना श्चुः** इस सूत्र से दकार को श्चुत्व जकार होकर तज् + श्लोकेन बना। उसके बाद खरि च सूत्र से चर्त्त चकार होकर तच् + श्लोकेन बना। अब यहाँ वार्तिक लगा— छत्वमितिवाच्यम् यह कहता है कि पदान्त झय प्रत्याहार के वर्ण से परे शकार को छकार होता है विकल्प से अम् प्रत्याहार का वर्ण परे हो तो। यहाँ पदान्त झय प्रत्याहार का वर्ण है तच् में चकार। उससे परे श्लोकेन का शकार है उस शकार से अम् प्रत्याहार का वर्ण लोकेन का ल्। इसलिए शकार के स्थान पर छकार होकर तच् + छ्लोकेन बना। वर्ण सम्मेलन तच्छ्लोकेन प्रयोग सिद्ध होता है।

इस वार्तिक का अन्य उदाहरण :-

विग्रह	आदेश	सन्धि
तद् + श्लोकेन	तच् + छ्लोकेन	तच्छ्लोकेन
तद् + शिलष्टः	तच् + छिलष्टः	तच्छिलष्टः
एतद् + श्मश्रु	एतच् + छ्मश्रु	एतच्छ्मश्रु
तद् + श्लक्षणः	तच् + छ्लक्षणः	तच्छ्लक्षणः
सकृत् + श्लेषा	सकृच् + छ्लेषा	सकृच्छ्लेषा
भूभृत् + श्लाघा	भूभृत् + छलाघा	भू भृच्छलाघा

अभ्यास प्रश्न

अति लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. व्यंजनों का व्यंजनों के साथ मेल को क्या कहते हैं ?
2. रामश्शेते किस सूत्र का उदाहरण है ?
3. स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र का उदाहरण क्या है?

4. सकार तवर्ग के स्थान पर षकार टवर्ग के साथ होने पर क्या आदेश होता है?
5. ष्टुना ष्टुः सूत्र का उदाहरण क्या है?
6. पेष्टा किस सूत्र का उदाहरण है?
7. ष्टुत्व का निषेध करता है?
8. षण्णाम् किस वार्तिक का उदाहरण है?
9. षन्षष्ठः का विग्रह क्या है?
10. लकार के परे होने पर तवर्ग के स्थान पर क्या होता है?
11. तच्छिवः का विग्रह क्या है?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. सकार और तवर्ग के स्थान, शकार और चवर्ग के साथ योग होने पर सन्धि होती है—

(क) प्रकृतिभाव सन्धि (ख) गुण सन्धि
(ग) श्चुत्व सन्धि (घ) दीर्घ सन्धि

2. विश्नः में श्चुत्व का निषेध होता है :-

(क) शात् सूत्र से (ख) आद् गुणः सूत्र से
(ग) इको यणचि सूत्र से (घ) अनचि च सूत्र से

3. शकार से परे तवर्ग के स्थान पर —

(क) गुण नहीं होता (ख) श्चुत्व नहीं होता है
(ग) दीर्घ नहीं होता (घ) यण् नहीं होता है

4. ष्टुत्व का विधान करने वाला सूत्र है :-

(क) ष्टुना ष्टुः (ख) स्तोः श्चुना श्चुः
(ग) अकः सवर्णे दीर्घः (घ) वृद्धिरेचि

5. तोःषि सूत्र से ष्टुत्व का निषेध कहाँ पर होता है :-

(क) सन्षष्ठः (ख) इट्टे
(ग) वागीशः (घ) रामश्शेते

6. सन्षष्ठः में किस सूत्र से ष्टुत्व प्राप्त है :-

(क) तोःषि (ख) ष्टुनाष्टु
(ग) अदेङ् गुणः (घ) आद् गुणः

7. वागीशः में सन्धि हुई है :-

(क) गुण (ख) दीर्घ
(ग) पररूप (घ) जश्त्व

8. खरि च सूत्र का उदाहरण है —

(क) उत्थानम् (ख) तन्मात्रम्
(ग) तल्लयः (घ) वागीशः

9. वाग्घरिः में सन्धि हुई है :-

(क) जश्त्व (ख) पूर्व सवर्ण
(ग) परसवर्ण (घ) दीर्घ

10. शकार को छकार होता है :-

(क) तो: षि

(ख) ष्टुनाष्टुः

(ग) झलां जशोऽन्ते

(घ) शश्छोऽटि

1.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप हल् सन्धि के विषय में भली-भांति परिचित होंगे। हल् सन्धि में भी अनेक सन्धियाँ हैं। उनके सन्धियों में से कुछ सन्धियों का इस इकाई में वर्णन किया है। यथा श्चुत्व सन्धि, श्चुत्व सन्धि का ही निषेध भी किया गया है। ष्टुत्व सन्धि, कही ष्टुत्व सन्धि का निषेध भी किया गया है। पर सवर्ण सन्धि, पूर्व सवर्ण सन्धि, चर्त्व सन्धि, छत्व सन्धि। इन सन्धियों का मुख्य रूप से सूत्र उदाहरण सहित व्याख्या किया गया है। पूर्ण सवर्ण सन्धि, पूर्व सवर्ण सन्धि का व्याख्या अच् सन्धि में की गयी है किन्तु वहाँ पर अचों की पर सवर्ण, परसवर्ण के विषय में बताया गया है यहाँ पर हल् अर्थात् व्यंजन वर्णों पर सवर्ण पूर्व सवर्ण के विषय में सम्यग् रूप से वर्णन किया गया है।

1.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
रामश्शेते	राम सोता है।
रामश्चिनोति	राम चुनता है।
सच्चित	सत् और ज्ञान
शार्ङ्गत्रजय	हे विष्णो ! तुम्हारी जय हो
विश्नः	
प्रश्नः	
रामण्षष्टः	राम छठा है
रामष्टीकते	राम जाता है।
पेष्टा	पीसने वाला, पीसेगा
तट्टीका	उसकी टीका अथवा वह टीका
चक्रिष्ठीकसे	हे चक्रधारी तुम जाते हो
षट् सन्तः	छः सज्जन
षट् ते	वे छः
इट्टे	स्तुती करता है
सर्पिष्टमम्	उत्तम घी
षण्णाम्	छः का
षण्णवतिः	छियानवे
षण्णगर्यः	छः नगरिया
षन्षष्टः	छठा श्रेष्ठ
वागीशः	वृहस्पति
एतन्मुररिः	ये मुरारि है
तन्मात्रम्	उतना ही
चिन्मयम्	चेतन स्वरूप
तल्लयः	उसका नाश
विद्दालं लिखति	विद्धान लिखता है
उत्थानम्	
वाग्धरिः	वाणी का शेर अर्थात् बोलने में चतुर

ताच्छिवः	वह शिव
तच्छलोकेन	उस श्लोक से

1. 6. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अति लघु-उत्तरीय प्रश्न - 1- हल् सन्धि 2- स्तोः श्चुना श्चुः 3- सच्चित
 4- ष्टुत्व 5- राष्षष्ठः 6- ष्टुनाष्टुः 7- नपदान्ताटोरनाम् 8- अनाम्नवति
 नग-रीणामिति वाच्यम् 9- सन् + षष्ठः 10- परसवर्ण 11- तद् + शिव
 बहुविकल्पीय प्रश्न- 1- ग 2- क 3- ख 4- क 5- क 6- ख 7- घ
 8- क 9- ख 10- घ

1. 7 सदर्थ ग्रन्थ सूची

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
लघुसिद्धान्त कौमुदी	सुरेन्द्र शास्त्री	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
2-वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी .	भट्टोजिदीक्षित	शारदा निकेतन वी, कस्तुरवानगर सिगरा वाराणसी
3-ग्रन्थ नाम महाभाष्यम्	लेखक पतंजलि	प्रकाशक चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

1. 8 उपयोगी पुस्तकें

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
लघुसिद्धान्त कौमुदी	सुरेन्द्र शास्त्री	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

1.9. निबन्धात्मक प्रश्न

1. रामश्चिनोति इस प्रयोग का सूत्र सहित व्याख्या कीजिए।

इकाई . 2 : व्याकरण, मोऽनुस्वारः से नश्च तक

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 व्याकरण, मोऽनुस्वारः से नश्च तक

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 उपयोगी पुस्तके

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना :

व्याकरण शास्त्र से सम्बन्धित खण्ड चार की दूसरी इस इकाई की अध्ययन से आप बता सकते हैं कि हल् सन्धि कहां पर होती है ? इस इकाई में मुख्य रूप से हल् सन्धि के विषय में वर्णन किया गया है।

व्याकरण शास्त्र में हल् सन्धि का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है हल् सन्धि में कुछ अनेक महत्त्वपूर्ण सन्धियों का वर्णन किया गया है जो इस इकाई में आप परिचित होंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप हल् सन्धि को ज्ञान करते हुए उसकी महत्ता भी समझा सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

- अनुस्वार सन्धि के विषय में आप परिचित होंगे।
- अनुस्वार को पर सवर्ण होता है इसके विषय में आप परिचित होंगे।
- धुडागम के विषय में आप परिचित होंगे।
- मकारादेश के विषय में आप परिचित होंगे।
- कुक् तुक् आगम के विषय में आप परिचित होंगे।
- नकारादेश के विषय में आप परिचित होंगे।

2.3 अनुस्वार सन्धि

अनुस्वार विधायक विधि सूत्र

77—मोऽनुस्वार : 8 | 5 | 23।

मान्तस्य पदस्यानुस्वारो हलि। हरिं वन्दे।

अर्थ :- हल् परे हो तो मकारान्त पद के स्थान पर अनुस्वाद आदेश होता है।

हरिं वन्दे :- हरिम् + वन्दे (यहाँ पर हरिम् शब्द द्वितीया विभक्ति एक वचन का रूप है। इसलिए मकारान्त पद है।) यहां सूत्र लगा— **मोऽनुस्वारः**। यह सूत्र कहता है कि हल् अर्थात् व्यंजन वर्ण पर में हो तो मकारान्त पद अर्थात् मकार हो जिसके अन्त में उस मकार के स्थान में अनुस्वार हो जाता है यहाँ मान्त पद है हरिम् का मकार उस मकार से परे वन्दे का हल् वर्ण वकार होने के कारण मकार के स्थान में अनुस्वार होकर **हरिं वन्दे** प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण देखें।

विग्रह	आदेश	सन्धि
मातरम् + वन्दे	मातरं + वन्दे	मातरं वन्दे
पितरम् + वन्दे	पितरं + वन्दे	पितरं वन्दे
पुस्तकम् + पठति	पुस्तकं + पठति	पुस्तकं पठति
ग्रामम् + गच्छति	ग्रामं + गच्छति	ग्रामं गच्छति
गुरुम् + नमति	गुरुं + नमति	गुरुं नमति
विद्यालयम् + गच्छति	विद्यालयं + गच्छति	विद्यालयं गच्छति
शत्रुम् + जयति	शत्रुं + जयति	शत्रुं जयति
मधुरम् + हसति	मधुरं + हसति	मधुरं हसति

विशेष बात का ध्यान देना होगा कि पदान्त मकार के बाद यदि हल् वर्ण को छोड़कर स्वर वर्ण होगा तो वहां पर अनुस्वार नहीं होगा मकार ही रहेगा और अञ्जीन्नं परेण संयोज्यम् अर्थात् स्वर से रहित वर्ण अगले वर्ण के साथ मिल जाता है।

यथा – सम् + आचारः

गुरुम् + अनुगच्छति

विद्यालयम् + आगच्छति

ग्रामम् + आगतः

समाचारः

गुरुमनुगच्छति

विद्यालयमागच्छति

ग्राममागतः

इसी प्रकार अन्य उदाहरण देखना चाहिए।

अनुस्वार विधायक विधि सूत्र

78. नश्चापदान्तस्य झलि 8 | 3 | 25 | नस्य मस्य चापदान्तस्य झल्यनुस्वारः। यशांसि । आक्रंस्यते। झलि किम् ? मन्यसे।

अर्थ :- झल् परे होने पर अपदान्त नकार मकार को अनुस्वार हो जाता है।

उदाहरण : यशांसि : यशान् + सि (यशांसि यह पुरा पद है केवल यशान् पद नहीं है।) यह सूत्र लगा-नश्चापदान्तस्य झलि। यह सूत्र कहता है कि झल् प्रत्याहार का वर्ण यदि पर में हो तो अपदान्त नकार मकार को अनुस्वार होता है। यहाँ झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में है सि का सकार तथा पूर्व में अपदान्त नकार है यशान् का नकार। अतः उस नकार को अनुस्वार होकर यशां + सि बना। वर्ण सम्मेलन होकर यशांसि प्रयोग सिद्ध होता है।

आक्रंस्यते – आक्रम् + स्यते यहाँ पर भी अपदान्त मकार है। आक्रम् का मकार तथा पर में झल् प्रत्याहार का वर्ण है, स्यते का सकार। इसलिए नश्चापदान्तस्य झलि इस सूत्र के द्वारा मकार को अनुस्वार होकर आक्रं स्यते बना। तथा वर्ण सम्मेलन होकर आक्रंस्यते प्रयोग सिद्ध होता है।

प्र०. झलि किम् ? मन्यसे इस सूत्र में झलि का ग्रहण क्यों किया ?

उत्तर :- सूत्र में झलि का ग्रहण इसलिए किया गया कि मन् + यसे यहाँ पर अपदान्त नकार तो है पर झल् प्रत्याहार का वर्ण न होने से नकार के स्थान में अनुस्वार नहीं हुआ। यदि सूत्र में झलि नहीं कहे गये होते तो यहाँ पर न को अनुस्वार होकर मंयसे ऐसा अनिष्ट बनने लगता। मन् + यसे नकार को अनुस्वार न होने के कारण मन्यसे ऐसा प्रयोग बना। इसलिए अनिष्ट प्रयोग की निवृत्ति के लिए सूत्र में झलि का ग्रहण किया गया।

इस सूत्र के कुछ अन्य उदाहरण यथा –

विग्रह	आदेश	सन्धि
नम् + स्यति	नं + स्यति	नंस्यति
पयान् + सि	पयां + सि	पयांसि
आयम् + स्यते	आयं + स्यते	आयंस्यते
अनम् + सीत्	अनं + सीत्	अनंसीत्
हन् + सि	हं + सि	हंसि
श्रेयान् + सि	श्रेयां + सि	श्रेयांसि

अनुस्वार पर सवर्ण सन्धि

पर सवर्ण विधायक विधि सूत्र

79 अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण 8 | 4 | 58 |। स्पष्टम्। शान्तः।

अर्थ- यय् प्रत्याहार के परे होने अनुस्वार को पर सवर्ण होता है।

उदाहरण यथा —शान्तः। शाम् + तः यहां पर नश्चापदान्तस्य झलि सूत्र से अपदान्त मकार के स्थान पर अनुस्वार होकर शां + तः बना। अब इसके बाद सूत्र लगा—**अनुस्वारस्य ययि पर सवर्णः।** यह सूत्र कहता है कि यय् प्रत्याहार का वर्ण परे हो तो अनुस्वार को परसवर्ण होता है। यय् प्रत्याहार का वर्ण है पर में तः का तकार और पूर्व में अनुस्वार शां। उस अनुस्वार के स्थान में पर वर्ण के सवर्ण प्राप्त हुए। अनुस्वार से परे है तः का तकार और तकार के सवर्ण है त् थ् द् ध् न् अनुस्वार के स्थान पर पांचों वर्ण प्राप्त हुए। अतः यह अनियम हुआ। इस अनियम को रोकने के लिए स्थानेऽन्तरतमः सूत्र आया और स्थान मिलाने पर स्थानी अनुस्वार का नासिका स्थान है और आदेश त् थ् द् ध् न् में से नासिका स्थान वाला केवल न् है। अतः अनुस्वार के स्थान पर नकार आदेश होकर शान् + तः बना। वर्ण सम्मेलन होकर शान्तः प्रयोग सिद्ध हुआ।

इस सूत्र का कुछ अन्य उदाहरण :-

विग्रह	आदेश	सन्धि
अन् + कितः	अड् + कितः	अड्कितः
अन् + चित्	अम् + चित्	अञ्चित्
गम् + ता	गन् + ता	गन्ता
कुन् + ठितः	कुण् + ठितः	कुण्ठितः
दाम् + तः	दाम् + तः	दान्तः
भुन् + क्ते	भुङ् + क्ते	भुङ्क्तेः
गुम् + फित्	गुम् + फित्	गुम्फितः

इसी प्रकार अन्य प्रयोग भी देखें।

वैकल्पिक परसवर्ण विधायक विधि सूत्र।

80. वा पदान्तस्य 8 | 4 | 59 (पदान्तस्यानुस्वारस्य ययि परे परसवर्णो वा स्यात्)।

त्वङ्करोषि । त्वं करोषि।

अर्थ :- यय् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो पदान्त अनुस्वार को विकल्प से पर सवर्ण होता है।

त्वङ्करोषि, त्वं करोषि। त्वम् + करोषि यहां पर पहले मोऽनुस्वारः सूत्र से त्वम् के मकार के स्थान पर अनुस्वार होकर त्वं + करोषि बना। उसके बाद सूत्र लगा — वा पदान्तस्य। यह सूत्र कहता है कि यय् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो पदान्त अनुस्वार को विकल्प से पर सवर्ण हो जाता है। यहाँ पर यय् प्रत्याहार का वर्ण पर में है। करोषि का ककार पूर्व में पदान्त अनुस्वार है। त्वं में उपर बिन्दु। उसको पर सवर्ण होता है पर में वर्ण है क उसका सवर्ण क् ख् ग् घ् ङ् ये पांचों वर्ण एक साथ प्राप्त हो रहे हैं यह अनियम हुआ। उस अनियम को रोकने के लिए स्थानेऽन्तरतमः सूत्र आया। स्थान की तुल्यता मिलाने पर अनुस्वार का नासिका स्थान है और नासिका स्थान वाला कवर्ग का वर्ण ङकार है। इसलिए अनुस्वार के स्थान में पर सवर्ण ङकार होकर त्वङ् + करोषि बना। वर्ण सम्मेलन होकर त्वङ्करोषि प्रयोग सिद्ध होता है। पर सवर्ण विकल्प से होता है जब पर सवर्ण नहीं होगा उस पक्ष में त्वं करोषि ऐसा ही रहेगा। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखें :-

मकारादेश विधायक नियम सूत्र

81. मो राजि समः क्वौ 8 | 3 | 25।।

क्विवन्ते राज तौ परे समो मस्य म एव स्यात्। सम्राट्।

अर्थ :- क्विप् प्रत्ययान्त राज् धातु के परे होने पर सम् के मकार के स्थान पर मकार ही होता है।

राज् धातु से क्विप् प्रत्यय होकर और उस क्विप् प्रत्यय के सभी वर्णों का लोप हो जाता है। केवल राज् धातु ही बचता है। फिर भी वह क्विप् प्रत्ययान्त कहलाता है। इसका वर्ण हलन्त पुलिङ्ग प्रकरण विशेष रूप से किया गया। क्विबन्त राज् धातु से परे होने पर भी सम् के मकार ही रह गया।

सम्राट् सम् + राट्। यहाँ सूत्र लगा मोऽनुस्वारः। इसलिए इस सूत्र से मकार को अनुस्वार प्राप्त था उसको बाधकर सूत्र लगा— 'मो राजि समः क्वौ।' यह सूत्र कहता है कि क्विप् प्रत्ययान्त राज् धातु के परे होने पर सम् के मकार के स्थान पर मकार ही होता है। यहाँ पर क्विप् प्रत्ययान्त राज् धातु है। राट् (राज् धातु से क्विप् प्रत्यय तथा क्विप् का सर्वापहारी लोप होकर राज् शब्द बना। प्रथमा एक वचन विपक्षा में सु प्रत्यय होकर राज् सु बना। सु में उकार की इत्संज्ञा तथा लोप होकर राज् + स् बना। स् का लोप होकर राज् शब्द बना। जकार जश्त्व तथा चर्त्वं होकर राट् शब्द बना) इसलिए सम् के मकार के स्थान परम ही होकर सम् + राट् बना। वर्ण सम्मेलन होकर सम्राट् शब्द सिद्ध होता है। इस सूत्र का उदाहरण प्रायः कम प्राप्त होता है।

वैकल्पिक मकारादेश विधायक विधि सूत्र

82 हेमपरे वा 8।3।26।।

मपरे हकारे परे मस्य मो वा स्यात् । किम् ह्यलयति, किं ह्यलयति।

अर्थ :- म परक हकार के परे होने पर मकार के स्थान में मकार विकल्प से होता है।

उदाहरण यथा —किम् ह्यलयति, किं ह्यलयति। किम् + ह्यलयति यहाँ पर मोऽनुस्वारः से अनुस्वार प्राप्त था। उसको बाधकर सूत्र लगा हे मपरे वा। यह सूत्र कहता है कि जिस हकार के बाद मकार हो ऐसा हकार परे होने पर किम् के मकार के स्थान पर मकार आदेश होता है विकल्प से। यहाँ म परक हकार पर में है ह्यलयति का हकार। उस हकार के परे होने पर किम् के मकार के स्थान पर विकल्प से मकार आदेश होकर किम् ह्यलयति बना। जिस पक्ष में मकार आदेश नहीं होगा उस पक्ष में अनुस्वार होकर किं ह्यलयति प्रयोग सिद्ध होता है।

वार्तिक — यवल परे यवला वा। कियँ ह्यः किं ह्यः कियँ लयति, किं ह्वलयति। किल्ल ह्लादयतिः किं ह्लादयति।

अर्थ :- यकार, वकार और लकार परक हकार के परे होने पर मकार के स्थान पर यँकार, वँकार और लंकार आदेश विकल्प से होते हैं।

हकार के बाद यकार हो या वकार हो अथवा लकार हो तो पूर्व में विद्यमान मकार के स्थान पर एक पक्ष में क्रमशः अनुनासिक यंकार, वकार लकार ही आदेश होते हैं विकल्प से। और एक पक्ष में अनुस्वार भी हो जायेगा।

कियँ ह्यः, किं ह्यः । किम् + ह्यः यहाँ पर मकार के स्थान पर मोऽनुस्वारः सूत्र से अनुस्वार प्राप्त था। उसको बाधकर वार्तिक लगा— यवल परे यवला वा। यह वार्तिक कहता है कि यकार, वकार और लकार परक हकार पर में होतो पूर्व में मकार के स्थान में विकल्प से यकार, वकार और लकार आदेश होते हैं। यहाँ पर यकार परक हकार पर में है। अतः किम् के मकार के स्थान पर अनुनासिक यकार हुआ। क्योंकि मकार भी अनुनासिक है। कियँ ह्यः प्रयोग सिद्ध हुआ। यकार के अभाव पक्ष में अनुस्वार होकर किं ह्यः प्रयोग सिद्ध होता है।

कियँ ह्वलयति किं ह्वलयति। किम् + ह्लादयति यह मोऽनुस्वारः सूत्र से मकार अनुस्वार प्राप्त था। उसको बाधकर 'यवल परे यवला वा' इस वार्तिक के द्वारा लकार परक हकार परे होने के कारण किं के मकार के स्थान पर अनुनासिक वकार होकर

किं ह्वलयति प्रयोग सिद्ध होता है और अभाव पक्ष में मकार को अनुस्वार होकर किं ह्वलयति प्रयोग सिद्ध होता है इसी प्रकार अन्य प्रयोग भी सिद्ध करें।

किल्लं ह्लादयति किं ह्लादयति किम् + ह्लादयति यहाँ पर मोऽनुस्वारः सूत्र से किम् के मकार के स्थान पर अनुस्वार प्राप्त है। उसको बांधकर वार्तिक लगा— यवलपरे यवला वा इस वार्तिक के द्वारा लकार परक हकार परे होने के कारण किम् के मकार के स्थान में विकल्प से लँकार होकर किल्लं ह्लादयति प्रयोग सिद्ध होता है। यह लकार आदेश विकल्प से होता है। जिस पक्ष में मकार के स्थान में लकार नहीं होगा उस पक्ष में मकार को अनुस्वार होकर किं ह्लादयति प्रयोग सिद्ध होता है।

वैकल्पिक नकारादेश विधायक विधि सूत्र

83 नपरे नः 8 | 3 | 27 ||

नपरे हकारे मस्य नो वा। किन् हुते किं हुते।

अर्थ :- नपरक हकार परे होने पर मकार के स्थान पर नकार आदेश विकल्प से होता है। हकार के बाद में नकार हो ऐसा हकार पर में हो तो मकार के स्थान में नकारादेश होता है, विकल्प से। नकार न होने के पक्ष में मोऽनुस्वादः सूत्र से अनुस्वार हो जाता है। उदाहरण :-

किन् हुते किं हुते । किम् + हुते यहां पर मोऽनुस्वार सूत्र से मकार के स्थान पर अनुस्वार प्राप्त था। उस अनुस्वार को बांधकर सूत्र लगा— नपरे नः। यह सूत्र कहता है कि न परक अर्थात् हकार पर में हो ऐसा हकार के पर में होने के कारण मकार के स्थान में विकल्प से नकारादेश होता है। यहां पर नकार परक हकार है। हुते का हकार इसलिए किम् के मकार के स्थान में नकारादेश होकर किन् हुते प्रयोग सिद्ध होता है। यह नकार आदेश विकल्प से होता है जिस पक्ष में नकार आदेश नहीं होगा, उस पक्ष में मकार को अनुस्वार होकर किं हुते प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार दो रूप सिद्ध हुआ 1. किन् हनुते, 2. किं हनुते।

आगम सन्धि

आद्यन्तावयवविधायक परिभाषा सूत्र

84. आद्यन्तौ टकितौ 1 | 1 | 46 ||

टित्कितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमाद्यन्तावयवौ स्तः।

अर्थ :- टित् और कित् जिसको कहे गये हैं वे क्रमशः उसके आदि और अन्त के अवयव होते हैं।

आगम मित्रवत होता है। जिसको आगम होता है। उसके आदि या अन्त में बैठता है यह सूत्र निर्णय करता है कि जिस आगम में टकार की इत्संज्ञा हुई हो, वह टित् कहलाता है और जिस आगम में ककार की इत्संज्ञा हुई हो वह कित् कहलायेगा अर्थात् उसे कित् कहते हैं। यदि आगम टित् होगा तो जिसको आगम हुआ है उसके आदि में जाकर बैठता है। यदि आगम कित् हो तो उसके अन्त में बैठता है। जिस प्रकार छेच सूत्र से हस्व को तुक् का आगम हुआ और तुक में हलन्त्यम् सूत्र से ककार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर तु बचा। तु में उकार की भी उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर त् मात्र बचता है अब यह प्रश्न होता है कि तकार कहाँ बैठे? क्योंकि छेच सूत्र से जो तुक् का आगम हुआ है वह छकार के परे रहते हस्व को होता है। हस्व के स्थान पर तुक का आगम होगा क्योंकि आगम मित्रवत होता है इसलिए हस्व के आदि में बैठेगा, या अन्त में बैठेगा। तब इस सूत्र को लगाया गया। यह सूत्र कहता है कि टित् होगा तो आदि में बैठेगा और कित् होगा तो अन्त में बैठेगा। इसलिए यहाँ तुक् में कित् होने के कारण अन्त में बैठेगा। इसलिए अगले सूत्र में विशेष प्रकार से इसका वर्णन किया जायेगा।

किसी भी प्रत्यय और आदेश में जिस वर्ण की इत्संज्ञा की जाने वाली है वह अनुबन्ध कहलाता है। इत्संज्ञा योग्यत्वम् अनुबन्धत्वम्। आगम् आदि में लगे हुए वर्णों का हलन्त्यम् आदि सूत्रों से जो इत्संज्ञा करके तस्य लोपः से लोप किया जाता है। उसे अनुबन्ध लोप कहते हैं। इसलिए आगे जहाँ कहीं भी अनुबन्ध लोप की बात आ जाये तो यही समझना चाहिए कि प्रत्यय आगम आदि को टित्-कित् आदि बनाने के लिए अतिरिक्त वर्ण है वे अनुबन्ध है और उनका लोप होना ही अनुबन्ध लोप है। आगम् और आदेश में अन्तर – शत्रुवदादेशा भवन्ति। मित्रवद् आगमा भवन्ति। आदेश शत्रुवत् होते हैं। जो किसी वर्ण को हटाकर बैठते हैं और आगम मित्र के समान होते हैं जो किसी वर्ण के पास आकर बैठते हैं।

कुक् टुक् आगम विधायक विधि सूत्र

85. डणोः कुक् टुक् शरि। 8।3।28।।

वा स्तः !

अर्थ— शर् प्रत्याहार के परे होने पर डकार णकार को क्रमशः कुक् और टुक् का आगम विकल्प से होता है।

कुक् और टुक् में हलन्त्यम् सूत्र से दोनों ककारों का हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर कु + टु बचा। उकार का उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर क् ट् बचा। ककार की इत्संज्ञा होने के कारण ये दोनों कित् है और आगम है अतः ये आगम होने के कारण किसी के स्थान में नहीं होंगे अपितु बगल में जाकर बैठता है यथा संख्य मनुदेशः समानाम के अनुसार यदि डकार है तो कुक् का आगम होगा और णकार है तो टुक् का आगम होगा ये दोनों आगम् कित् है कित् होने के कारण आद्यन्तौ टकितौ सूत्र के नियमानुसार डकार और णकार के अन्त में जाकर बैठेंगे। उदाहरण यथा –

प्राड् + षष्ठः, सुगण् + षष्ठः यहां परे सूत्र लगा – डणोः कुक् टुक् शरि। यह सूत्र कहता है कि शर् प्रत्याहार के परे होने पर डकार को कुक् तथा णकार को टुक् का आगम होता है। यहाँ पर शर् (श ष स) प्रत्याहार का वर्ण है पर में षष्ठः का षकार और पूर्व में डकार, णकार है प्राड् का ड् तथा सुगण् का ण्। अतः डकार को कुक् तथा णकार को टुक् का आगम होकर और अनुबन्ध लोप होने के बाद क् तथा ट् मात्र बचा। अब कित् होने के कारण ड तथा ण के अन्त में बैठता है। प्राड्, क् षष्ठः तथा सुगण् ट् + षष्ठः बना। आगम विकल्प से होता है जिस पक्ष में आगम नहीं होगा। उस पक्ष में प्राड् + षष्ठः, सुगण् + षष्ठः बना।

अब इसके बाद अगला वार्तिक प्रवृत्त हो रहा है :-

वार्तिक :- चयो द्वितीयाः शरि षोष्करसादेरिति वाच्यम् । प्राड्ख् षष्ठः, प्राड्क्षष्ठः, प्राड्

षष्ठः सुगण्ठ्षष्ठः, सुगण्ठ षष्ठः, सुगषष्ठः

अर्थ :- शर् प्रत्याहार के परे होने पर चयु प्रत्याहार के स्थान पर उसी वर्ण का दूसरा वर्ण आदेश होता है। पुष्करसादि आचार्यों के मत में।

आनन्तर्य के कारण वर्ण प्रथम को उसी वर्ण का द्वितीय वर्ण हो जायेगा। भाव यह है कि श् ष् स् के परे होने पर क के स्थान में ख्, च् के स्थान में छ, ट के स्थान में ठ, त् के स्थान में थत् था प के स्थान में फ आदेश विकल्प से होते हैं। प्राडक् + षष्ठः, सुगणट् + षष्ठः जो बना है। अब इन दोनों स्थानों पर शर् प्रत्याहार का वर्ण षकार परे होने के कारण ककार और टकार को क्रमशः खकार और ठकार होकर प्राड्ख् षष्ठः, सुगणट् षष्ठः बना। किन्तु यह वार्तिक वैकल्पिक है। जिस पक्ष में द्वितीय वर्ण नहीं होंगे उस पक्ष में प्राडक् षष्ठः रहा। अतः क + ष = क्ष होकर प्राड्क्षष्ठः बना। और जिस पक्ष में कुक् टुक् नहीं होगा उस पक्ष में प्राड् षष्ठः बना। सुगणट् षष्ठः सुगण

षष्ठः प्रयोग सिद्ध हुआ। अतः इस प्रकार तीन-तीन रूप बने।

इन तीन रूपों को तालिका के माध्यम से देखें—

कुक् पक्ष में (प्राड्ख् षष्ठः। (पौष्करसादि के मत में) (पाड्क्षष्ठः (जब द्वितीय वर्ण नहीं होगा तो क् + ष् = क्ष होता है) कुक् के अभाव पक्ष में – प्राड् षष्ठः बना।
टुक् पक्ष में (सुगण्ट् षष्ठः (पौष्करसादि में मत में) (सुगण्ट् षष्ठः (जहाँ द्वितीय वर्ण नहीं होगा) टुक् के अभाव पक्ष में सगुण् षष्ठः

इस सूत्र का अन्य उदाहरण देखें :-

विग्रह	आदेश	सन्धि
प्राड् + षष्ठः	प्राड्ख् + षष्ठः	प्राड्ख्षष्ठः
सुगण् + षष्ठः	सुगण्ट् + षष्ठः	सुगण्ट्षष्ठः
प्राड् + षु	प्राड्ख् + षु	प्राड्ख्षु
गवाड् + षु	गवाड्ख् + षु	गवाड्ख्षु
तिर्यङ् + स्वपिति	तिर्यङ्ख् + स्वपिति	तिर्यङ्ख्ष्वपिति

इत्यादि समझना चाहिए।

वैकल्पिक धुडागम विधायक विधि सूत्र

86 .डः सि धुट् 8 | 3 | 29 || डात्परस्य सस्य धुड् वा । षट्सन्तः षट् सन्तः ।

अर्थ :- ड से परे सकार को विकल्प से धुट् का आगम होता है। धुट् में टकार की हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा तथा उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् सूत्र से इत्संज्ञा तथा दोनों का तस्य लोपः से लोप होकर ध् मात्र शेष बचता है। इसको प्रकारान्तर से यह भी कह सकते हैं कि अनुबन्ध लोप हुआ। अब टकार की इत्संज्ञा होने के कारण यह टित् है। आद्यन्तौ टकितौ परिभाषा से जिसको भी आगम होगा वह आदि में बैठेगा।

षट्सन्तः, षट् + सन्तः । षट् + सन्तः : यहाँ झलां जशोऽन्ते सूत्र के द्वारा टकार के स्थान पर जश्त्व डकार होकर षड् + सन्तः प्रयोग बना। अब सूत्र लगा—डः सि धुट्। यह सूत्र कहता है कि डकार से परे सकार को विकल्प से धुट् का आगम होता है। यहां पर डकार है षड् में ड् तथा सकार पर में है। सन्तः का स् । अतः धुट् का आगम होता है। अतः यहां टित् होने के कारण आद्यन्तौ टकितौ परिभाषा सूत्र के द्वारा सन्त के स् के आदि में बैठेगा। षड् + धुट् + सन्तः बना। अनुबन्ध लोप होने के बाद षड् + ध् + सन्तः बना। खरि च सूत्र के द्वारा खर् प्रत्याहार का वर्ण सन्तः का सकार परे होने के कारण झल् प्रत्याहार का वर्ण ध के स्थान में चर्त्वं तकार होकर षड् + त् + सन्तः बना। पुनः खरिच सूत्र के द्वारा षड् + त् + सन्तः में डकार के स्थान में चर्त्वं तकार होकर षट् + त् + सन्तः बना। वर्ण सम्मेलन होकर षट्सन्तः प्रयोग सिद्ध होता है और जिस पक्ष में धुट् का आगम नहीं होगा उस पक्ष में षट् सन्तः प्रयोग सिद्ध होता है।

इसके अन्य उदाहरण :-

विग्रह	आदेश	सन्धि
लिट् + सु	लिट् + त् + सु	लिट्सु
षट् + सुखानि	षट् + त् + सुखानि	षट्सुखानि
षट् + सन्निकर्षाः	षट् + त् + सन्निकर्षाः	षट्सन्निकर्षाः
षट् + समस्याः	षट् + त् + समस्याः	षट्समस्याः
षट् + सन्ततयः	षट् + त् + सन्ततयः	षट्सन्ततयः

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझे।

वैकल्पिक धुडागम विधायक विधि सूत्र

87. नश्च 8 | 3 | 30 ||

नान्तात्परस्य सस्य धुड् वा । सन्तसः, सन्सः ।

अर्थ :- पदान्त नकार से परे सकार को विकल्प से धुट् का आगम होता है।

उः सि धुट्, डकार से परे सकार को धुट् का आगम करता है और यह सूत्र नकार से परे सकार को धुट् का आगम करता है। इतना मात्र अन्तर है शेष सभी उः सि धुट् के सामान हुआ है।

सन्त्सः सन्सः । सन् + सः यहाँ पर नश्च सूत्र से सन् के नकार से परे सः के सकार को धुट् का आगम होकर अनुबन्ध लोप होने के बाद ध् मात्र शेष बचता है। अतः उसके बाद टित् होने के कारण आद्यन्तौ टकितौ इस परिभाषा सूत्र के द्वारा सकार के आदि में जाकर बैठा सन् ध् + सः बना। धकार को खरि च सूत्र के द्वारा धकार को चर्त्त होकर टकार होकर सन् + त् + सः बना। वर्ण सम्मेलन होकर सन्त्सः प्रयोग बनता है। धुट् का आगम विकल्प से होता है जिस पक्ष में धुट् का आगम नहीं होगा उस पक्ष में सन् + सः वर्ण सम्मेलन होकर सन्सः प्रयोग ही रह गया।

इस सूत्र का अन्य उदाहरण भी देखे :-

विग्रह	आदेश	सन्धि
आस्मिन् + समये	आस्मिन् + त् + समये	आस्मिन्त्समये
भवान् + सखा	भवान् + त् + सखा	भवान्त्सखा
सन् + सः	सन् + त् + सः	सन्त्सः
पुमान् + स्त्रिया	पुमान् + त् + स्त्रिया	पुमान्त्स्त्रिया
पठन् + सांख्यम्	पठन् + त् + सांख्यम्	पठन्त्सांख्यम्
सन् + साधु	सन् + त् + साधु	सन्त्साधु
धनवान् + सहोदरः	धनवान् + त् + सहोदरः	धनवान्त्सहोदरः
विद्वान् + सहते	विद्वान् + त् + सहते	विद्वान्त्सहते
गच्छन् + स्त्रिया	गच्छन् + त् + स्त्रिया	गच्छन्त्स्त्रिया
हसन् + सहते	हसन् + त् + सहते	हसन्त्सहते

अभ्यास प्रश्न 1.

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अनुस्वार विधायक विधि सूत्र क्या है?
2. अपदान्त मकार नकार को अनुस्वार कौन सूत्र करता है?
3. आक्रंस्यते का विग्रह क्या है?
4. शान्तः किस सूत्र का उदाहरण है?
5. किन्द्हुते किस सूत्र का उदाहरण है?
6. षट्सन्तः किस सूत्र का उदाहरण है?
7. षट्सन्तः का विग्रह क्या है?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. मोऽनुस्वारः इस सूत्र का उदाहरण है :-
(क) हरि वन्द (ख) वाग्धरिः
(ग) तच्छिवः (घ) तच्छ्लोकेन
2. नश्चापदान्तस्य झलि इस सूत्र का उदाहरण है :-
(क) सन्षष्टः (ख) सर्पिष्टमम्
(ग) प्रश्नः (घ) यशांसि
3. ययु प्रत्याहार पर में हो तो अनुस्वार को होता है :-
(क) पूर्वसवर्ण (ख) परसवर्ण (ग) अनुस्वार
(घ) दीर्घ

4. यय् प्रत्याहार पर में हो तो पदान्त अनुस्वार को होता है :-
 (क) परसवर्ण (ख) पूर्वसवर्ण
 (ग) गुण (घ) दीर्घ
5. मोराजिसमः क्वौ इस सूत्र का उदाहरण है :-
 (क) सम्राट (ख) उपेन्द्रः
 (ग) रामश्शेते (घ) रामश्चिनोति
6. डसि धुट् से होता है :-
 (क) धुट् का आगम (ख) कुक् का आगम
 (ग) नृट् का आगम (घ) णुट् का आगम
7. डकार से परे सकार का अवयव को आगम होता है :-
 (क) कुक् (ख) टुक्
 (ग) धुट् (घ) णुट्
8. शर् प्रत्याहार के परे होने पर डकार को आगम होता है:-
 (क) कुक् (ख) नुट्
 (ग) जुट् (घ) धुट्
9. सन्त्सः किस सूत्र का उदाहरण है :-
 (क) डःसि धुट् (ख) आद्गुणः
 (ग) अकः सवर्ण दीर्घः (घ) नश्च

2.4 सारांश

इस इकाई के पढ़ने के बाद आप हल् सन्धि के विषय में भली-भांति परिचित होंगे। हल् सन्धि में अनेक सन्धियाँ हैं। उन सन्धियों में से कुछ सन्धियों का वर्णन इस इकाई में की गयी है। जैसे अनुस्वार सन्धि अनुस्वार पर सवर्ण सन्धि, अनुस्वार को वैकल्पिक परसवर्ण सन्धि, मकारादेश सन्धि, नकारादेश सन्धि, कुक्टुक् आगम सन्धि, धुडागम आदि सन्धियों का वर्णन मुख्यरूप से इस इकाई में किया गया है। इन सन्धियों को ज्ञान करना मुख्यरूप से आवश्यक है।

2.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
हरि वन्दे	हरि को प्रणाम करता हूँ।
यशांसि	बहुत यश
आक्रंस्यते	आक्रमण करेगा उपर चढ़ेगा
मन्यते	मानता है
शान्तः	
त्वण्डरोषि	तुम करते हो
सम्राट	चक्रवर्ती राजा
किम् ह्यलंयति	क्या चलता या हिलता है

कियँ ह्यः	कल क्या है
किवँ ह्लयति	क्या हिलाता है
किलँ ह्लादयति	कौन वस्तु प्रशन्न करती है
किन् हुते	क्या छिपाता है
प्राडख षष्ठः	छठे प्राचीन
सुगण्ठ षष्ठः	छठे गणक (विद्वान)
षट्सन्तः	छः सज्जन
सन्तसः	वह सज्जन

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1—

अति लघु उत्तरीय प्रश्न — 1— मोऽनुस्वारः 2— नश्चाऽपदान्तस्य झलि 3— आक्रम्+
स्यते 4— अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः 5— नपरे नः 6— डःसिधुट् 7— षड्+ सन्तः

बहुविकल्पीय प्रश्न— 1— (क) 2— (घ) 3— (ख) 4— (क) 5— (क) 6— (क)
7— (ग) 8— (क) 9— (घ)

2.7 सदर्थ ग्रन्थ सूची

1—ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
लघुसिद्धान्त कौमुदी	सुरेन्द्र शास्त्री	चौखम्बा संस्कृत भारती वाराणसी
2—वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी .	भट्टोजिदीक्षित	प्रकाशक शारदा निकेतन वी, कस्तुरवानगर सिगरा वाराणसी
3—ग्रन्थ नाम महाभाष्यम्	लेखक पतंजलि	प्रकाशक चौखम्बा संस्कृत भारती वाराणसी

2.8 उपयोगी पुस्तकें

1—ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
लघुसिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	चौखम्बा संस्कृत भारती वाराणसी

2.9. निबन्धात्मक प्रश्न

1. नश्चापदान्तस्य झलि इस सूत्र का उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए ?

इकाई . 3 : व्याकरण, शितुक् से पदान्ताद्वा तक

इकाई की रूप रेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 व्याकरण, शितुक् से पदान्ताद्वा तक उदाहरण सहित व्याख्या

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 उपयोगी पुस्तके

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है। इस इकाई की अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि हल् सन्धि कहाँ पर होती है? अतः इस इकाई में मुख्य रूप से हल् सन्धि के विषय में वर्णन किया गया है।

व्याकरण शास्त्र में हल् सन्धि का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक बताया गया है क्योंकि बिना सन्धि के ज्ञान के बिना शब्दों का ज्ञान सम्भव नहीं है। इसलिए शब्दों के सम्यग् रूप से ज्ञान के लिए सन्धि का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप हल् सन्धि के अनेक महत्वपूर्ण सन्धियों का ज्ञान करेंगे।

- शितुक् सूत्र से तुगागम के विषय में आप परिचित होंगे।
- डमोह्रस्वांदचि, डमुणित्यम् इस सूत्र के विषय में आप परिचित होंगे।
- सुडागम के विषय में आप परिचित होंगे।
- विसर्ग के विषय में आप परिचित होंगे।
- विसर्ग को स् होता है इस विषय में आप परिचित होंगे।
- पदान्ताद्वा इस सूत्र के विषय में आप परिचित होंगे।

3.3 वैकल्पिक तुगागम विधायक विधि सूत्र

88. शितुक् 8 | 3 | 31 || पदान्तस्य नस्य शे परे तुग्वा। सञ्छम्भुः, सञ्चशम्भुः, सञ्शम्भुः।

अर्थ :- शकार के परे होने पर पदान्त नकार को विकल्प से तुक् का आगम होता है।

डः सि धुट् डकार से परे सकार को धुट् का आगम होता है केवल अन्तर इतना ही है। शेष सभी विषय डः सि धुट् की तरह ही होता है। टुक् में ककार की हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा और उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् इत्संज्ञा तथा दोनों का तस्य लोपः से लोप होकर त मात्र शेष बचता है। अतः कित् होने के कारण आद्यन्तौ टकितौ परिभाषा सूत्र से अन्त में बैठता है। यहाँ पर शकार के परे रहते नकार को टुक् का आगम हो रहा है। फलतः नकार के अन्त में बैठता है। उदाहरण यथा सन् + शम्भुः यहाँ सूत्र लगा— शितुक् शकार परे होने पर पदान्त नकार को विकल्प से तुक् का आगम होता है। यहाँ पर शकार परे है शम्भुः का शकार और पूर्व में पदान्त नकार है सन् का नकार। उसको तुक् का आगम होकर तथा अनुबन्ध लोप होकर सन् + त् + शम्भुः बना। स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से तकार को श्चुत्व होकर सन् च् + शम्भुः बना। पुनः स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से नकार को श्चुत्व होकर सञ्च् + शम्भुः बना। अब शश्छोऽटि सूत्र से शकार को छकार होकर शञ्चछम्भुः बना। पुनः झरो झरि सवर्णे सूत्र से चकार को विकल्प से लोप होकर (1) सञ्छम्भुः बना। जहाँ चकार का लोप न हुआ वहाँ पर (2) सञ्छम्भुः बना। जहाँ छत्व नहीं हुआ वहाँ पर (3) सञ्चशम्भुः और जहाँ तुक् ही नहीं हुआ वहाँ पर श्चुत्व होकर (4) सञ्शम्भुः प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार चार प्रकार का रूप सिद्ध किया गया। इस सूत्र के अन्य उदाहरण भी समझे।

डमुडागम विधायक विधि सूत्र

89. डमो ह्रस्वांदचि डमुण नित्यम् 8 | 3 | 32 ||

ह्रस्वात्परो यो डम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याचो डमुट्।

प्रत्यङ्ङात्मा, सुगण्णीशः, सन्नच्युतः।

अर्थ :- ह्रस्वं से परे जो डम् वह अन्त में है जिसके ऐसा जो पद उससे परे अच् को नित्य से डमुट् का आगम होता है। डम् प्रत्याहार है, जिसमें ड ण न ये तीन वर्ण आते हैं। डमुट् में डम् प्रत्याहार है। उकार उच्चारणार्थक है तथा ट् की हलन्त्यम सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होता है। डम् प्रत्याहार का टित् का सम्बन्ध होकर डुट्, णुट्, नुट् ये तीन आगम प्राप्त होंगे। यथासंख्यमनुदेश समानाम् सूत्र के अनुसार डकारान्त पद से परे अच् को डुट्, णकारान्त पद से परे अच् को णुट् तथा नकारान्त पद से परे अच् को नुट् का आगम होता है। उदाहरण यथा –

प्रत्यङ्ङात्मा । प्रत्यङ् + आत्मा यहां पर सूत्र लगा– डमोह्रस्वांदचि डमुण् नित्यम्। यह सूत्र कहता है कि ह्रस्वं से परे जो डम् वह अन्त में है। जिसके ऐसा जो पद उससे परे अच् को नित्य से डमुट् का आगम होता है। यहां पर ह्रस्वं से परे डम् प्रत्याहार का वर्ण है प्रत्यङ् में डकार । उस डकार से परे अच् प्रत्याहार का वर्ण है आत्मा का आकार उसको डमुट् अर्थात् डुट् का आगम होकर प्रत्यङ् + डुट् + आत्मा बना। उसके बाद अनुबन्ध लोप होकर प्रत्यङ्+ङ्+ आत्मा बना। वर्ण सम्मेलन होकर प्रत्यङ्ङात्मा प्रयोग सिद्ध होता है।

सुगणीशः सुगण् + ईशः यहां सूत्र लगा– डमोह्रस्वांदचि डमुण् नित्यम्। यह सूत्र कहता है कि ह्रस्वं से परे जो डम् प्रत्याहार का वर्ण वह अन्त में है। जिससे उससे परे अच् को नित्य डमुट् का आगम होता है। यहाँ पर ह्रस्वं है सुगण् ग में अ उस ह्रस्वं के बाद डम् प्रत्याहार का वर्ण है ण् वह पदान्त भी है और उससे परे अच् प्रत्याहार का वर्ण है ईशः का ई उस ई को णुट् का आगम होकर तथा अनुबन्ध लोप होकर ण् मात्र शेष बचता है। अतः सुगण् ण् + ईशः बना। वर्ण सम्मेलन होकर सुगणीशः प्रयोग सिद्ध होता है।

सन् + अच्युतः यहां पर ह्रस्वं वर्ण है सन् में स में अ, उस अकार से परे डम् प्रत्याहार का वर्ण है न्/वह पदान्त भी है उस पदान्त नकार से परे अच् प्रत्याहार का वर्ण है अच्युतः का अकार। इस अकार को नुट् का आगम होकर तथा अनुबन्ध लोप होकर न् मात्र बचता है। अतः सन् + न् + अच्युतः बना। वर्ण सम्मेलन होकर सन्नच्युतः प्रयोग सिद्ध होता है।

इस सूत्र के कुछ अन्य उदाहरण :-

विग्रह	आदेश	सन्धि
प्रत्यङ् + आत्मा	प्रत्यङ् + ड् + आत्मा	प्रत्यङ्ङात्मा
सुगण् + ईशः	सुगण् + ण् + ईशः	सुगणीशः
सन् + अच्युत	सन् + न् + अच्युत	सन्नच्युतः
कुर्वन् + आस्ते	कुर्वन् + न् + आस्ते	कुर्वन्नास्ते
तिङ् + अतिङः	तिङ् + ड् + अतिङः	तिङ्ङतिङः
तस्मिन् + इति	तस्मिन् + न् + इति	तस्मिन्निति
जानन् + अपि	जानन् + न् + अपि	जानन्नपि
आस्मिन् + उद्याने	अस्मिन् + न् + उद्याने	अस्मिन्नुद्याने
गच्छन् + अवदत्	गच्छन् + न् + अवदत्	गच्छन्नवदत्
पठन् + अगच्छत्	पठन् + न् + अगच्छत्	पठन्नगच्छत्
गच्छन् + अवोचत्	गच्छन् + न् + अवोचत्	गच्छन्नवोचत्
सुगण् + आलयः	सुगण् + ण् + आलयः	सुगण्णालयः
सुगण् + अवदत्	सुगण् + ण् + अवदत्	युगण्णवदत्

रुत्व विधायक विधि सूत्र

90. समः सुटि 8 | 3 | 5 | समोरुः सुटि।

अर्थ :- सुट् पर में होने पर सम् के मकार के स्थान पर रू आदेश होता है।

सम् + स्कर्ता (सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से तृच प्रत्यय होकर सम् + कृ + तृच बना। चकार की हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा तथा लोप होकर तृ बचा। गुण अनङ् आदि होकर कर्ता बना। सम् + कर्ता। सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे इस सूत्र से कृ के सुट् का आगम होकर तथा अनुबन्ध लोप होकर सम् स् + कर्ता बना। वर्ण सम्मेलन होकर सम् स्कर्ता बना) अब यहाँ सूत्र लगा—समः सुटि। यह सूत्र कहता है कि सम् के मकार को रू होता है सुटि पर में हो तो यहाँ पर सुट् प्रत्यय पर में स्कर्ता का स् इसलिए सम के मकार के स्थान में रू होकर सरू + स्कर्ता बना। उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर सर् + स्कर्ता बना। अब इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है —

अनुनासिक आदेश विधायक विधि सूत्र

91 अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा 8 | 3 | 2 ||

अत्र रू प्रकरणे रोः पूर्वस्याऽनुनासिको वा स्यात् ।

अर्थ :- इस रू प्रकरण में रू से पूर्व वर्ण को विकल्प से अनुनासिक होता है।

सर् + स्कर्ता यहाँ सूत्र लगा—अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा। यह सूत्र कहता है कि इस रू प्रकरण में रू से पूर्व वर्ण को विकल्प से अनुनासिक होता है। यहाँ पर रू प्रकरण है सर् में रू उस रू से पूर्व वर्ण है सकार में अकार, उस अकार को विकल्प से अनुनासिक होकर संर् + स्कर्ता बना। अब जिस पक्ष में अनुनासिक नहीं होगा, उस पक्ष में अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है —

अनुस्वारागम विधायक विधि सूत्र

92 अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः 8 | 3 | 4 ||

अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्मात् परोऽनुस्वारागमः स्यात्।

अर्थ :- जहाँ अनुनासिक होता है उस रूप को छोड़कर अन्य पक्ष वाले रूप में रू से पूर्व जो वर्ण उससे परे अनुस्वार का आगम होता है।

सर् + स्कर्ता :- यहाँ सूत्र लगा — अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः। यह सूत्र कहता है कि अनुनासिक को छोड़कर अन्य पक्ष वाले रूप में रू से पूर्ण जो वर्ण उसको अनुस्वार होता है। यहाँ पर सर् + स्कर्ता में अनुनासिक से रहित रूप है सर् में रू उस रू से पूर्व वर्ण स में अ को अनुस्वार का आगम होकर संर् + स्कर्ता बना। (1) अनुनासिक पक्ष में सर् + स्कर्ता बना। तथा अनुस्वार पक्ष में सर् + स्कर्ता बना। अब दोनों पक्षों में अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है :-

विसर्ग विधायक विधि सूत्र

93. खरवसानयोर्विसर्जनीयः 9 | 3 | 15 ||

खरि अवसाने च पदान्तस्य रेफस्य विसर्गः।।

अर्थ :- खर् प्रत्याहार और अवसान परे रहने पर पदान्त रेफ को विसर्ग होता है। संर् + स्कर्ता, संर् + स्कर्ता यहाँ पर सूत्र लगा— खरवसानयोर्विसर्जनीयः। यह सूत्र कहता है कि खरि या अवसान परे हो तो रेफ को विसर्ग होता है यहाँ पर खर् प्रत्याहार वाला वर्ण पर में है स्कर्ता में स् पदान्त रेफ है यहाँ पर सर् में रू उसको विसर्ग होकर संः स्कर्ता, संः + स्कर्ता बना। अब यहाँ विसर्ग को सकार करने के लिए अगला वार्तिक प्रवृत्त होता है—

वार्तिक = 95 सम्पूङ्कानां सो वक्तव्यः।। संस्कर्ता, संस्कर्ता

अर्थ :- सम्, पुम्, कान् शब्दों के विसर्ग को सकार आदेश होता है। सँस् + स्कृता, सर् + स्कृता यहाँ पर वार्तिक लगा— सम्पुङ्कानां सो वक्तव्यः। यह वार्तिक कहता है कि सम्, पुम् तथा कान् शब्दों के विसर्ग के स्थान पर सकार होता है। यहाँ पर सम् के स्थान पर विसर्ग हुआ है उस विसर्ग के स्थान पर स् होकर सँस् + स्कृता, संस् + स्कृता बना। वर्ण सम्मेलन होकर संस्स्कृता बना। अनुनासिक अभाव पक्ष में अनुस्वार होकर संस्स्कृता प्रयोग सिद्ध होता है। अतः 1— सँस्स्कृता 2—संस्स्कृता ये दो रूप सिद्ध हुए।

रुत्व विधायक विधि सूत्र

94 पुमः खय्यम्परे 8 | 3 | 6 ||

अम्परे खयि पुमो रूँः स्यात् । पुँस्कोकिलः पुँस्कोकिलः ।

अर्थ :- अम् प्रत्याहार परक खय् प्रत्याहार पर में हो तो पुम् के मकार को रू आदेश होता है। अम् और खय् दोनों प्रत्याहार हैं। अम् प्रत्याहार में अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ज भ ङ ण न ये उन्नीस वर्ण आते हैं और खय् प्रत्याहार में वर्ग के द्वितीय और प्रथम अक्षर आते हैं। अर्थात् ख फ छ ठ थ च ट त क प ये दश वर्ण खय् प्रत्याहार में आते हैं। खय् प्रत्याहार के बाद अम् प्रत्याहार परे हो तो और खय् प्रत्याहार से पूर्व पुम् का मकार हो तो उस मकार को रू आदेश होता है।

पुम् + कोकिल : यहाँ सूत्र लगा— पुमः खय्यम्परे। यह सूत्र कहता है कि अम् परक खय् प्रत्याहार पर में हो तो पुम् के मकार के स्थान में रू आदेश ही होता है। यहाँ पर अम् प्रत्याहार है कोकिलः में क में ओ तथा खय् प्रत्याहार का वर्ण है कोकिलः में को में क । उससे पूर्व वर्ण है पुम् का मकार इस मकार के स्थान में रू आदेश होकर पुरू + कोकिलः बना। रू में उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से उकार की इत्संज्ञा तथा तस्यः लोपः से लोप होकर पुर + कोकिलः बना। इसके बाद अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा इस सूत्र से रू से पूर्व में जो अकार है उस अकार के बाद अनुनासिक का आगम होकर पुँर् + कोकिलः बना। यह अनुनासिक विकल्प से होता है जिस पक्ष में अनुनासिक नहीं होगा उस पक्ष में अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः इस सूत्र अनुस्वार का आगम होकर पुँर् + कोकिलः बना। उसके बाद खरवसानयोर्विसर्जनीयः सूत्र से रकार को विसर्ग होकर पुँः + कोकिलः, पुं : + कोकिलः ये दो रूप बने। उसके बाद में सम्पुङ्काना सो वक्तव्यः इस वार्तिक के द्वारा विसर्ग को सकार होकर पुँस्कोकिलः, पुँस्कोकिलः ये रूप सिद्ध हुए। इस प्रयोग को ज्ञान करने के लिए संस्कृता प्रयोग को अच्छी तरह से अध्ययन करें।

रुत्व विधायक विधि सूत्र

95 नश्छव्य प्रशान् 8 | 3 | 7 ||

अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रूः, न तु प्रशान् — शब्दस्य।

अर्थ:-अम् परक छव् प्रत्याहार के परे होने पर नकारान्त पद को रू आदेश होता है। किन्तु प्रशान् शब्द के नकार को छोड़कर। अर्थात् प्रशान् शब्द के नकार को रू नहीं होगा। छव् प्रत्याहार में छ् ढ् थ् च् ट् त् ये छः वर्ण आते हैं। सम्पूर्ण नकारान्त शब्द को रू आदेश प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में अलोऽन्त्यस्य सूत्र के द्वारा अन्तिम वर्ण नकार के स्थान में रू होता है। उदाहरण यथा —

चक्रिन् + त्रायस्व (यहाँ पर चक्रिन् यह नान्त पद है) यहाँ सूत्र लगा— नश्छव्य प्रशान्। यह सूत्र कहता है कि छव् प्रत्याहार के बाद अम् प्रत्याहार हो, उस छव् प्रत्याहार से पूर्व नान्त पद हो तो नकार के स्थान में रू आदेश होता है यहाँ पर नान्त पद का वर्ण है

चक्रिन् में नकार। उस नकार से परे छव् प्रत्याहार का वर्ण है त्रायस्व का त्। उस तकार से परे अम् प्रत्याहार का वर्ण है त्रकार में र। इसलिए नकार के स्थान में रु होकर चक्रिरु + त्रायस्वः बना। रु में उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर चक्रिर् + त्रायस्व बना।

अब इसके बाद सूत्र लगा—‘अत्रानुनासिकः पूर्वस्यः तु वा ’ इस सूत्र चक्रिर् में र से पूर्व इ के बाद अनुनासिक का आगम होकर चक्रिर् + त्रायस्व बना। जिस पक्ष में अनुनासिक नहीं होगा उस पक्ष में अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः इस सूत्र के द्वारा आगम होकर चक्रिर् + त्रायस्वः बना। इसके बाद खरवसानयोर्विसर्जनीयः इस सूत्र से चक्रिर् के स्थान में विसर्ग होकर चक्रिः : त्रायस्वः और अनुस्वार पक्ष में चक्रिः त्रायस्वः रूप बने। अब विसर्ग को सकार आदेश करने वाला अगला सूत्र प्रयोग किया जाता है :-

सकारादेश विधायक विधि सूत्र

96. विसर्जनीयस्य सः 8 | 3 | 34 ||

खरि विसर्जनीयस्य सः स्यात् । चक्रिंस्त्रायस्व, चक्रिंस्त्रायस्व अप्रषासन किम् ? प्रषान् तनोति । पदस्येति किम्? हन्ति ।

अर्थ :- खर् प्रत्याहार के परे होने पर विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश होता है।

खर् प्रत्याहार में ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स ये तेरह वर्ण आते हैं ये वर्ण जिसके बाद में हो तो पूर्व में जो विसर्ग है उसके के स्थान में सकार आदेश होता है।

चूक्रिः + त्रायस्व, चुकिः + त्रायस्व यहां पर खर् प्रत्याहार का वर्ण पर में है त्रायस्व का तकार उसमें पूर्व वर्ण विसर्ग के स्थान में विसर्जनीयस्य सः सूत्र से स् आदेश होकर चक्रिंस्त्रायस्व, अनुस्वार पक्ष में चक्रिंस्त्रायस्व ये दो रूप सिद्ध किये गये।

अप्रशान् किम् ? प्रशान् करोति। अब यहां प्रश्न करते हैं कि नश्छव्यप्रशान् सूत्र में अप्रशान् क्यों कहा? उत्तर देते हैं कि प्रशान् तनोति में दोष न आवे, इसलिए। क्योंकि अप्रशान् कहकर प्रशान् शब्द को निषेध नहीं करेंगे तो प्रशान् + तनोति में भी नकार को रूत्व होकर प्रशाँस्तनोति ऐसा अनिष्टरूप बनने लगता है। इस अनिष्ट रूप के निवारण के लिए सूत्र में प्रशान् शब्द के रूत्व को निषेध किया गया है।

पदस्येति किम् ? हन्ति। अब प्रश्न करते हैं कि नश्छव्यःप्रशान् सूत्र में पदस्यं शब्द क्यों पढ़ा गया? उत्तर देते हैं कि हन्ति में दोष न आवे, इसलिए। क्योंकि पदस्य कहने से पदान्त दोनों नकार को ही रूत्व करता है। अपदान्त को नहीं। यदि पदस्य की अनवृत्ति नहीं करेंगे तो यह सूत्र पदान्त या अपदान्त दोनों नकारों में रूत्व होने लगेगा, जिससे हन् + ति यहां पर अपदान्त नकार को भी रूत्व होकर हँस्ति ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगेगा। इस अनिष्ट रूप के निवारण के लिए सूत्र में पदान्तस्य यह पद पढ़ा गया है।

वैकल्पिक रूत्व विधायक विधि सूत्र

97. नृन् पे 8 | 3 | 10 ||

नृनित्यस्य रूर्वा पे।

अर्थ :- पकार के परे होने पर नृन् शब्द के नकार के स्थान पर विकल्प करके रु आदेश होता है। अलोऽन्त्यस्य सूत्र के द्वारा अन्तिम वर्ण नकार के स्थान पर ही रु आदेश होगा। उदाहरण यथा -

नृन् + पाहि । यहां पर सूत्र लगा—नृन् पे। यह सूत्र कहता है कि पकार के परे होने

पर नृन् के नकार के स्थान पर रु आदेश होता है यहां पर पकार पर में है पाहि का पकार पूर्व में नकार है नृन् का नकार इस नकार के स्थान पर रु आदेश होकर नृ रु + पाहि बना। रु में उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोप होकर, नृ र् पाहि बना। अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा इस सूत्र से पूर्व अनुनासिक होकर नृँ रु के र् + पाहि बना। अनुनासिक विकल्प से होता है जिस पक्ष में अनुनासिक नहीं होगा, उस पक्ष में अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः इस सूत्र से अनुस्वार का आगम होकर नृंर + पाहि बना। उसके बाद र् कार को खरवसानयोर्विसर्जनीयः इस सूत्र से विसर्ग होकर नृँः+पाहि, नृंः + पाहि बना। अब यहां विसर्जनीयस्य सः से विसर्ग के स्थान पर सकार प्राप्त था। उसको बांधकर अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है—

जिह्वामूलीयोपध्मानीय विधायक विधि सूत्र

98 कुप्वोः = क = पौ च 8 | 3 | 37 ||
क वर्गे पवर्गे च परे विसर्गस्य = पौ स्तः। चाद् विसर्गः।
नृँ = पाहि, नृँः : पाहि, नृं = पाहि, नृंः : पाहि, नृन्पाहि।

अर्थ :- कवर्ग पवर्ग परे होने पर विसर्ग को क्रमशः जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय आदेश होते हैं। सूत्र में चकार पद ग्रहण से पक्ष विसर्ग भी होता है।

नृँः + पाहि, नृंः : पाहि। इस स्थिति में सूत्र लगा — कुप्वोः = क = पौ च इस सूत्र के द्वारा पकार परे होने से विसर्ग को उपध्मानीय होकर = पाहि, नृं = पाहि। विसर्ग पक्ष में नृँः : पाहि, नृंः पाहि बना। और जिस पक्ष में नृन् पे सूत्र से विसर्ग नहीं होगा, उस पक्ष में नृन्पाहि इस प्रकार कुल मिलाकर पांच रूप सिद्ध किये गये।

आम्नेडित संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र

99 तस्य परमाम्नेडितम् 8 | 1 | 2 || द्विरुक्तस्य परमाम्नेडितं स्यात् ।

अर्थ :- एक ही शब्द जो दो बार कहा गया है उसमें पर अर्थात् दूसरा शब्द आम्नेडित संज्ञक होता है। जैसे उच्चारण से हो या द्वित्व करके हो, एक ही शब्द का यदि दो बार उच्चारण या लेखन किया गया हो तो, दूसरा जो शब्द है उसकी इस सूत्र से आम्नेडित संज्ञा करता है। उदाहरण यथा —

किम् शब्द के द्वितीया विभक्ति बहुवचन विवक्षा में कान् शब्द बनता है। उसका कान् पद को नित्यविप्सयोः सूत्र से द्वित्व होकर कान् कान् बना। अब यहां एक ही शब्द दो बार कहा गया है। उसमें पर अर्थात् दूसरा जो कान् शब्द है उसकी आम्नेडित संज्ञा नाम पड़ गया। आम्नेडित संज्ञा होने का फल क्या है उसका वर्णन सूत्र में करेंगे।

रुत्व विधायक विधि सूत्र

100 कानाम्नेडिते 8 | 3 | 12 ||
कान्नकारस्य रुः स्यादाम्नेडिते । काँस्कान्, कांस्कान् ।

अर्थ :- आम्नेडित परे होने पर कान् शब्द के नकार को रु होता है।

कान् + कान् यहां पर सूत्र लगा — कानाम्नेडिते। यह सूत्र कहता है कि आम्नेडित के परे होने पर कान् शब्द के नकार को रु आदेश होता है। यहाँ पर आम्नेडित शब्द पर में है दूसरा कान्। उसके पूर्व में पहला कान् जो शब्द है उस कान् शब्द के नकार के स्थान पर रु आदेश होकर कारु + कान् ऐसा बना। उसके उपदेशेऽनुनासिक इत् इस

सूत्र से रु में उकार इत की संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप हाकर कार् + कान् बना। उसके बाद र् से पूर्व और आकार से परे अनुनासिक होकर काँर् + कान् बना। उसके बाद अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः इस सूत्र से अनुनासिक को छोड़कर अनुस्वारः का आगम होकर कांर् + कान् बना। उसके बाद खरवसानयोर्विसर्जनीयः इस सूत्र से रकार के स्थान पर विसर्ग होकर काँः + कान्, कांः + कान् बना। उसके बाद जिह्वामूलीय प्राप्त था उसको बांधकर सम्पुकारानां सो वक्तव्यः इस वार्तिक के द्वारा विसर्ग के स्थान पर सकार होकर काँस् + कान्, कांस् + कान् बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर काँस्कान्, कांस्कान् ये दो रूप सिद्ध होते हैं :-

तुगागम विधायक विधि सूत्र

101 छे च 8 | 3 | 12 ||

ह्रस्वस्य छे परे तुक्। शिवच्छाया।

अर्थ :- छकार परे हो तो ह्रस्व को तुक् का आगम होता है। शिव + छाया। शिवस्य छाया इति विग्रह, ऐसा षष्ठी तत्पुरुष समास हुआ है। यहां सूत्र लगा - छेच। यह सूत्र कहता है कि छकार परे होने पर ह्रस्व को तुक् का आगम होता है। यहाँ पर ह्रस्व है शिव में वकार में अकार इस अकार से छ पर में है। छाया का छकार। इसलिए अकार के स्थान तुक् का आगम होता है अब यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि तुक् का आगम कहाँ पर होगा? तुक् में ककार की हलन्त्यम् से इत्संज्ञा उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् से इत्संज्ञा तथा दोनों का तस्य लोपः से लोप होकर 'त्' मात्र बचता है। आद्यन्तौ टकितौ परिभाषा सूत्र के अनुसार कित् होने के कारण ह्रस्व अकार के बाद ही बैठेगा। ह्रस्व अकार है शिव में वकार में अकार के बाद अ के बैठकर शिव + त् + छाया बना। (आगम कहाँ होता इसका विशेष वर्णन आद्यन्तौ टकितौ सूत्र में किया गया है) उसके बाद 'स्तोः श्चुना श्चुः' सूत्र से तकार के स्थान पर श्चुत्व होकर शिव + च् + छाया बना। वर्ण सम्मेलन होकर शिवच्छाया प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण देखे।

वैकल्पिक तुगागम विधि विधायक सूत्र

102 पदान्ता द्वा | 6 | 1 | 56 ||

दीर्घात् पदान्ताच्छे परे तुग् वा। लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मी छाया।

अर्थ :- पदान्त दीर्घ से छकार परे होने पर दीर्घ को तुक् का आगम होता है विकल्प से।

लक्ष्मी + छाया। यहाँ पर (लक्ष्म्याः छाया इति विग्रहः, षष्ठी तत्पुरुष समासः) सूत्र लगा-पदान्ताद्वा। यह सूत्र कहता है कि पदान्त दीर्घ से छकार का वर्ण बाद में हो तो दीर्घ को तुक् का आगम होता है। यहाँ पर पदान्त दीर्घ है। लक्ष्मी में मी में ईकार है। उसे ई को तुक् का आगम होता है। क्योंकि छकार पर में है छाया का छ। तुक् में क् का हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा तथा उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् से सूत्र से इत्संज्ञा तथा दोनों का तस्य लोपः से लोप होकर 'त्' मात्र बचता है। अब इस त् को कहाँ पर रखा जाय? इस शंका को निवारण करने के लिए आद्यन्तौ टकितौ परिभाषा सूत्र के द्वारा कित् होने के कारण। पदान्त दीर्घ लक्ष्मी में मकार में ईकार के बाद रखा जायेगा। यह तुक् अन्त में बैठकर लक्ष्मीतुक् + छाया बना। उसके बाद स्तोः श्चुना श्चुः इस सूत्र के द्वारा तकार के स्थान पर श्चुत्व चकार होकर लक्ष्मी च् + छाया बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर लक्ष्मीच्छाया प्रयोग सिद्ध होता है। तुक् का आगम इस सूत्र के द्वारा विकल्प से होता है। जिस पक्ष में तुक् का आगम नहीं होगा। उस पक्ष में लक्ष्मीच्छाया ज्यौ का त्यौ रहा। इस प्रकार दो रूप सिद्ध किये गये। (1) लक्ष्मीच्छाया,

तुक् पक्ष में (2) तुक् अभाव पक्ष में लक्ष्मीछाया ही रहेगा। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखे :-

विग्रह	आदेश	सन्धि
लक्ष्मी + छाया	लक्ष्मी + च् + छाया	लक्ष्मीच्छाया
शोध + छात्रः	शोध + च् + छात्रः	शोधच्छात्रः
इ + छति	इ + च् + छति	इच्छति
द्यूत + छलेन	द्यूत + च् + छलेन	द्यूतच्छलेन
दन्त + छदः	दन्त + च् + छदः	दन्तच्छदः
वेद + छन्दः	वेद + च् + छन्दः	वेदच्छन्दः
पद + छेदः	पद + च् + छेदः	पदच्छेदः
ग + छति	ग + च् + छति	गच्छति
मंगल + छाया	मंगल + च् + छाया	मंगलच्छाया
नूतन + छात्रः	नूतन + च् + छात्रः	नूतनच्छात्रः
चि + छेद	चि + च् + छेद	चिच्छेद
चित्र + छाया	चित्र + च् + छाया	चित्रच्छाया
यज्ञ + छागः	यज्ञ + च् + छागः	यज्ञच्छायाः
स्व + छन्दः	स्व + च् + छन्दः	स्वच्छन्दः
असि + छिन्नः	असि + च् + छिन्नः	असिच्छिन्नः
नव + छिद्राणि	नव + च् + छिद्राणि	नवच्छिद्राणि
प + छति	प + च् + छति	पच्छति
वि + छेदः	वि + च् + छेदः	विच्छेदः
मम + छात्र	मम च् + छात्रः	ममच्छात्रः
तव + छात्र	तव + च् + छात्रः	तवच्छात्रः
गुच्छ + छेदः	गुच्छ + च् + छेदः	गुच्छच्छेदः
वैदिक + छन्दाति	वैदिक + च् + छन्दाति	वैदिकच्छन्दाति
भूपति + छाया	भूपति + च् + छाया	भूपतिच्छाया
मधु + छन्दस्	मधु + च् + छन्दस्	मधुच्छन्दस्
मूषक + छेद	मूषक + च् + छेद	मूषकच्छेद
आ + छिद्यते	आ + च् + छिद्यते	आच्छिद्यते
कुमारी + छेत्स्यति	कुमारी च् + छेत्स्यति	कुमारीच्छेत्स्यति
शीतला + छाया	शीतला + च् + छाया	शीतलाच्छाया
नो + छेदः	नो + च् + छेदः	नोच्छेदः
मा + छित्वा	मा + च् + छित्वा	माच्छित्वा
काले + छिद्यते	काले + च् + छिद्यते	कालेच्छिद्यते
मा + छिदः	मा + च् + छिदः	माच्छिदः
कुटी + छन्ना	कुटी + च् + छन्ना	कुटीच्छन्ना
गुढा + छेकोक्तिः	गुढा + च् + छेकोक्तिः	गुढाच्छेकोक्तिः

इसी प्रकार अन्य उदाहरण समझना चाहिए।

इति हल सन्धि प्रकरणम्

यहां हलो की सन्धि प्रकरण समाप्त होता है। सन्धि एक प्रकार का वर्ण विकार है। यदि वह विकार अच् के स्थान पर हो तो अच् सन्धि कहते हैं। इसी प्रकार विसर्ग के स्थान पर सन्धि हो तो विसर्ग सन्धि कहते हैं। इस प्रकार अब हल् सन्धि समाप्त हुआ। अब

इसके बाद विसर्ग सन्धि का अध्ययन करेंगे। किन्तु एक बात का विशेष ध्यान देना होगा कि जब तक हल् सन्धि का ज्ञान अच्छी प्रकार से नहीं होगा तो विसर्ग सन्धि समझ नहीं आयेगा। इसलिए हल् सन्धि का ज्ञान आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न 1

अतिलघु-उत्तरीय

1. शञ्छम्भूः किस सूत्र का उदाहरण है ?
2. शितुक सूत्र क्या करता है?
3. प्रत्यङ्ङात्मा किस सूत्र का उदाहरण है?
4. सुगण्णीशः का विग्रह क्या होगा?
5. सुन्नच्युतः का विग्रह क्या है?
6. अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः सूत्र क्या करता है?
7. सम्पुङ्कानां सो वक्तव्यः क्या करता है?
8. पुँस्कोकिल किस सूत्र का उदाहरण है?
9. चक्रिँस्त्रायस्व किस सूत्र का उदाहरण है?
11. शिवच्छाया किस सूत्र का उदाहरण है?
12. लक्ष्मीच्छाया किस सूत्र का उदाहरण है?

अभ्यास प्रश्न 2

बहुविकल्पात्मक

1. शकार परे होने पर पदान्त नकार को आगम होता है :-
(क) तुक् (ख) टुक् (ग) धुट् (घ) सुट्
2. डःमोह्रस्वांदचि डमुणनित्यम् से होता है :-
(क) सुट् (ख) डमुट् (ग) धुट् (घ) नुट्
3. ह्रस्वं से परे जो डम् उससे परे अच् को नित्य आगम होता है :-
(क) डमुट् (ख) नुक् (ग) जुट्(घ) धुट्
4. सुट् परे होने पर सम् के मकार को होता है :-
(क) न् को रू (ख) सम् के म को रू (ग) स् को रू (घ) पुम के मकार को रू
5. रू प्रकरण में रू से पूर्व वर्ण को विकल्प से होता है :-
(क) अनुनासिक (ख) सुडागम (ग) धुडागम (घ) नुडागम
6. खर् और अवसान पर में हो तो पदान्त रेफ के स्थान पर होता है -
(क) अनुनासिक (ख) अनुस्वार (ग) विसर्ग (घ) सुडागम
7. अम् प्रत्याहार जिससे परे है ऐसा यदि खय परे हो तो पुम शब्द के मकार को होता है -
(क) रू (ख) अनुनासिक (ग) अनुस्वार (घ) नुडागम
8. खर् प्रत्याहार के परे होने पर विसर्ग के स्थान पर होता है :-
(क) र् (ख) न् (ग) स् (घ) ह्
9. एक ही शब्द को दो बार कहे गये पहल को कहते है :-
(क) सार्वधातुक (ख) सर्वनामस्थान (ग) आप्नेडित (घ) अपृक्त

10. छकार के परे होने पर ह्रस्व अवयव का आगम होता है :-
(क) तुक् (ख) नुक् (ग) धुट (घ) णुट

3.4 सारांश

इस इकाई के पढ़ने के पश्चात् आप हल् सन्धि के विषय में भली-भांति परिचित होंगे। हल् सन्धि में अनेक सन्धियाँ हैं। उन सन्धियों में से कुछ सन्धियों का वर्णन इस इकाई में की गयी है। जैसे शितुक् सूत्र से तुक् का आगम कहाँ होता है। इसका वर्णन भाली भांति की गयी है। इसी प्रकार डमुडागम्, सुडागम्, मकार को रू आदेश, रू को अनुनासिक, अनुस्वार, र को विसर्ग सम्, पुम् तथा कान् के स्थान में विसर्ग को स् आदेश नकार को रू, विसर्ग को स् आग्रेडित संज्ञा कान् के नकार को रू आदेश तुगाम् ये आगम तथा आदेश अनेक प्रकार के शब्द इस इकाई में पढ़े गये हैं।

3.5 शब्दावली

अर्थ	
जीवात्मा	
अच्छा गणितज्ञ	
सन्नच्युतः	अच्युत भगवान् सत्स्वरूप हैं।
संस्कृता	
पुंस्कोकिलः	नर कोयल
चक्रिंस्त्रायस्व	हे चक्रधारी ? तुम रक्षा करो
हन्ति	मारता है
तूँ = पाहि	हे राजन् लोगों को वचाओं
काँस्कान	किसको किसको
शिवच्छाया	शिव की छाया
लक्ष्मीच्छाया	लक्ष्मी की छाया

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1— 1— शि तुक् 2— तुक् का आगम करता है 3— डमोह्रस्वांदचि डमुणनित्यम् 4— सुगण् + ईशः 5— सन् + अच्युटः 6— रू से पूर्व अनुस्वार 7— सम्पुम् कान् शब्दों के विसर्ग को सकार 8— पुमः खय्यम्परे 9— विसर्जनीयस्य सः 10— कानाग्रेडिते 11— छे च 12— पदान्ताद्वा

अभ्यास प्रश्न 2 — 1— (क) 2— (ख) 3— (क) 4— (ग) 5— (क)
6— (ग) 7— (क) 8— (ग) 9— (ग) 10— (क)

3.7 सदर्थ ग्रन्थ सूची

1—ग्रन्थ नाम लघुसिद्धान्त कौमुदी	लेखक वरदराजाचार्य	प्रकाशक चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
2—वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी .	भट्टोजिदीक्षित	प्रकाशक शारदा निकेतन वी, कस्तूरवानगर

3-ग्रन्थ नाम महाभाष्यम्	लेखक पतंजलि	सिगरा वाराणसी प्रकाशक चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
----------------------------	----------------	--

3. 8 उपयोगी पुस्तकें

1-ग्रन्थ नाम लघुसिद्धान्त कौमुदी	लेखक वरदराजाचार्य	प्रकाशक चौखम्भा संस्कृत
-------------------------------------	----------------------	----------------------------

3.9. निबन्धात्मक प्रश्न

1. पदान्ताद्वा सूत्र का उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए ?

इकाई . 4 : विसर्ग सन्धि सम्पूर्ण व्याख्या एवं प्रक्रिया अंश

इकाई की रूप रेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 विसर्ग सन्धि सम्पूर्ण व्याख्या एवं प्रक्रिया अंश

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 अभ्यास प्रश्न—उत्तर

4.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 उपयोगी पुस्तके

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि विसर्ग सन्धि कहाँ पर होती है। विसर्ग का चिन्ह क्या है? इन सबका वर्णन इस इकाई में किया गया है। विसर्ग सन्धि के लिए कुछ सूत्र निश्चित किये गये हैं, जो इस इकाई में हैं।

अभी तक आपने संज्ञाप्रकरण प्रकरण अच् सन्धि हल् सन्धि प्रकरणों को आपने ज्ञान कर लिया। अब आइये विसर्ग सन्धि का ज्ञान प्रारंभ करते हैं। सामान्यतया विसर्ग वह है जो अक्षरों के बाद दो बिन्दू के रूप में (:) लगता है। उसे विसर्ग कहते हैं। विसर्ग की उत्पत्ति र् से होती है। विसर्ग बनने वाला रेफ प्रायः स् से बनता है। इस प्रकार से स् से र् बनता है और र् से विसर्ग (:) बनता है। अब हमें अध्ययन करना है कि किस स्थिति में स् से र् 'र्' से विसर्ग (:) बनता है? इस के विषय में सम्यग् रूप से सूत्रों के माध्यम से अध्ययन करेंगे।

पंच सन्धि के अन्तर्गत विसर्ग सन्धि भी आता है जिसका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। विसर्ग सन्धि के माध्यम से हम शब्दों के अर्थों का ज्ञान करते हैं। इस इकाई के माध्यम से विसर्ग सन्धि के ज्ञान को समझते हुए, उसकी महत्ता को भी बता सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सन्धियों के विषय में अनेक महत्वपूर्ण एवं प्रेरणापद सन्धियों का अध्ययन करेंगे :-

- विसर्ग के स्थान पर सकारादेश होता है, इसके विषय में आप समझ सकेंगे।
- पदान्त सकार के स्थान रू होता है, इसके विषय में आप समझ सकेंगे।
- रू सम्बन्धि र के स्थान में उत्त्व होता है इसके विषय में आप समझ सकेंगे।
- रू सम्बन्धि र का लोप होता है इसके विषय में आप समझ सकेंगे।
- रेफ का लोप होने के बाद पूर्व अण् को दीर्घ होता है, इसके विषय में आप समझ सकेंगे।
- एतद् तथा तद् के सु का लोप होता है, इसके विषय में आप समझ सकेंगे।

4.3 विसर्ग सन्धि सम्पूर्ण व्याख्या एवं प्रक्रिया अंश

सकारादेश विधायक विधि सूत्र

103. विसर्जनीयस्य सः 8 । 3 । 34 ॥ खरि विसर्जनीयस्य सः स्यात् । विष्णुस्त्राता ।

अर्थ :- खर् प्रत्याहार के परे होने पर विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश होता है।

यह सूत्र हल् सन्धि में भी पढ़ा गया है और यहाँ भी पढ़ा गया है। यद्यपि यह सूत्र विसर्ग को सकार करता है अतः इस सूत्र को यही पढ़ा जाना ठीक था, फिर भी प्रसंग वश वहाँ भी पढ़ा गया।

खर् प्रत्याहार में ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट्, त्, क, प, श, ष, स, ये तेरह वर्ण आते हैं। इन वर्णों के परे होने पर विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश हो जाता है। इनमें भी क और ख के परे होने पर वैकल्पिक जिह्वामूलीय तथा प और फ के परे होने पर वैकल्पिक उपध्मानीय होता है। च और छ के परे होने पर इनके द्वारा किये गये सकार को स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से स् के स्थान पर श्चुत्व शकार आदेश हो जाता है। तथा ट् और ठ के परे होने पर ष्टुना ष्टुः सूत्र से ष्टुत्व हो जाता है त् और थ के परे होने पर सकार ही रहता है।

विष्णु + त्राता यहां पर सूत्र लगा— विसर्जनीयस्य सः यह सूत्र कहता है कि खर् प्रत्याहार के परे होने पर विसर्ग के स्थान में सकार आदेश होता है यहां पर खर् प्रत्याहार का वर्ण पर में है त्राता के तकार और विसर्ग पूर्व में है विष्णुः में (ः) विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश होकर विष्णुस् + त्राता बना। वर्ण सम्मेलन करने के बाद विष्णुस्त्राता रूप सिद्ध होता है।

इस सूत्र के कुछ सामान्य उदाहरण :-

विग्रह	आदेश	सन्धि
रामः + त्रायते	रामस् + त्रायते	रामस्त्रायते
विष्णुः + त्राता	विष्णुस् + त्राता	विष्णुस्त्राता
गौः + चरति	गौस् + चरति	गौश्चरति
निः + छलः	निस् + छलः	निश्छलः

वैकल्पिक सकारादेश विधायक विधि सूत्र

104 वा शरि 8 | 3 | 36 । शरि विसर्गस्य विसर्गो वा । हरिः शेते, हरिश्शेते

अर्थ :- शर् प्रत्याहार के परे होने पर विसर्ग के स्थान पर विकल्प से विसर्ग आदेश होता है। शर् प्रत्याहार में श, ष, स ये तीन वर्ण आते हैं। और शर् प्रत्याहार खर् प्रत्याहार के अन्तर्गत आता है। अतः विसर्जनीयस्य सः के नित्य प्राप्त होने पर यह सूत्र उसका अपवाद (बाधक) सूत्र है। इस सूत्र का आरम्भ किया जाता है। तात्पर्य यह हुआ कि खर् प्रत्याहार में से श, ष, स के परे होने पर एक पक्ष में विसर्ग तथा एक पक्ष में सकार तथा शेष खर् के परे होने पर नित्य से विसर्ग के स्थान पर सकार ही होता है।

हरिः + शेते यहां पर सूत्र लगा — विसर्जनीयस्य सः सूत्र से नित्य विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश प्राप्त था। उसको बांधकर सूत्र लगा— वाशरि । यह सूत्र कहता है कि शर् प्रत्याहार का वर्ण परे होने पर विसर्ग के स्थान पर विकल्प से विसर्ग आदेश करता है। यहां पर पर में शर् प्रत्याहार का वर्ण है शेते का शकार उससे पूर्व में विसर्ग है हरिः में विसर्ग (ः) है। इसलिए विसर्ग के स्थान में सकार आदेश विकल्प से होता है हरिस् + शेते बना। अब यहां शकार तथा सकार की योग होने पर स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से सकार के स्थान पर शकार आदेश होकर हरिश् + शेते बना। वर्ण सम्मेलन होकर हरिश्शेते प्रयोग सिद्ध होता है। जब विसर्ग के स्थान में सकार नहीं होगा, उस पक्ष में हरिः शेते प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार हरिश्शेते, हरि शेते दो रूप बना।

रुत्वविधायक विधि सूत्र

105 ससजुषोरुः 8 | 2 | 66 ।।

पदान्तस्य सस्य सजुषश्च रुः स्यात् ।

अर्थ :- पदान्त सकार तथा सजुष् शब्द के षकार के स्थान पर रु आदेश होता है।

यह सूत्र विसर्ग की उत्पत्ति में कारण है। पदान्त सकार को जब यह रु आदेश कर देता है तो इकार की इत्संज्ञा होकर र् शेष बचता है। इस रेफ के स्थान में अवसान में तथा खर् प्रत्याहार परे खरवसानयोर्विसर्जनीयः से विसर्ग आदेश हो जाता है। तदनन्तर विसर्ग के स्थान पर यथा योग्य जिह्वमूनीय आदि आदेश होते हैं।

यदि खर् प्रत्याहार से भिन्न अक्षर र् से परे हो तो रेफ के स्थान पर क्या-क्या आदेश होते हैं? इसे बतलाने के लिए यह प्रकरण प्रारंभ किया जा रहा है।

रु में उकार अनुनासिक होने से उपदेशेऽनुनासिक इत् इस सूत्र के द्वारा उकार की इत्संज्ञा होती है। उसकी इत्संज्ञा करने का फल आगे कहा जायेगा।

शिवस् + अर्च्य : यहां सुवन्त होने से शिवस् पद है। अतः इस सूत्र से पदान्त सकार को रु पुनः रु के उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर शिवर् + अर्च्यः बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है।

उत्त्वविधायक विधि सूत्र

106 अतो रोरप्लुतादप्लुते 6 । 1 । 113 ।।अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्यादप्लुतेऽति। शिवोऽर्च्यः ।

अर्थ :- प्लुतभिन्न द्वस्व अकार से परे रु सम्बन्धी रेफ को उकार आदेश होता है। प्लुत भिन्न द्वस्व अकार के परे रहते। इस सूत्र का कार्य यह है कि रु में से शेष वचे रेफ के स्थान पर 'उ' आदेश करना है। किन्तु उस रेफ से पहले भी अप्लुत द्वस्व अकार हो और बाद में अप्लुत द्वस्व अकार हो तो। दोनों तरफ अप्लुत द्वस्व अकार और बीच में रु का रेफ हो तो उसके स्थान पर उकार अर्थात् उ हो जायेगा।

शिवर् + अर्च्य : यहां पर सूत्र लगा - अतोरोरप्लुतादप्लुते। यह सूत्र कहता है कि प्लुत भिन्न द्वस्व अकार से परे रु के र को उत्त्व अर्थात् उ हो जाता है। उसे प्लुत भिन्न द्वस्व अकार पर में हो तो । यहां पर प्लुत भिन्न द्वस्व अकार है शिव में वकार में अकार। उस अकार से पर में रु सम्बन्धी र विद्यमान है तथा रु सम्बन्धी र के बाद अप्लुत अकार है अर्च्य का अकार। इसलिए रु सम्बन्धी र् के स्थान में उकार अर्थात् उ होकर शिव + उ + अर्च्यः बना। उसके बाद पुनः शिव में अकार तथा पर में उकार इन दोनों वर्णों के स्थान पर आद्गुण से गुण ओ होकर शिवो + अर्च्यः बना। अब यहाँ पर एचोऽयवायावः सूत्र से अवादेश प्राप्त था, उसको बांधकर एडः पदान्तादति सूत्र से पूर्वरूप हुआ तो ओकार तथा अकार दोनों मिलकर पूर्वरूप ओकार ही होगा, शिवो + र्च्यः बना। अकार के स्थान पर संकेताक्षर ऽ (खण्डाकार) चिन्ह यह अकार के बैठ जाने से शिवोऽर्च्यः ऐसा प्रयोग सिद्ध होता है।

ध्यान रहे कि यहाँ पर रु के स्थान पर उ नहीं होगा। किन्तु उकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाने पर शेष वचे र के स्थान पर ही उत् होगा अर्थात् उकार होगा। सूत्र में रु के कथन का तात्पर्य यह है कि रु कर के ही उत्त्व हो अन्य र को उत्त्व नहीं होगा। यथा प्रातर + अत्र = पातरत्र, धातर् + अत्र = धातरत्र इत्यादि प्रयोगों में रु सम्बन्धी र न होने से उत्त्व नहीं होगा अर्थात् उकार नहीं होगा। नहीं तो अनिष्ट प्रयोग बनने लगता।

अब यहाँ विशेष ध्यान यह देना है कि प्लुत अप्लुत क्या है ? इसका संज्ञा प्रकरण ऊकालोऽञ्जस्वदीर्घप्लुतः सूत्र में विशेष वर्णन किया है। प्लुत = त्रिमात्रिक होता है उससे रहित अप्लुत अर्थात् एकमात्रिक ह्रस्व उकार से परे रू सम्बन्धी र के स्थान में उ होता है ऐसा सूत्र में कहा गया है। अब विसर्ग सन्धि में इस सूत्र का अन्य उदाहरण यथा –

विग्रह	आदेश	सन्धि
शिवास् + अर्च्यः	शिव + उ + अर्च्य	शिवोऽर्च्यः
बालस् + अत्र	बाल + उ + अत्र	बालोऽत्र
सस् + अपि	स + उ + अपि	सोऽपि
वचनस् + अनुनासिकः	वचन + उ + अनुनासिकः	वचनोऽनुनासिकः
रामस् + अस्ति	राम् + उ + अस्ति	रामोऽस्ति
ततस् + अन्यथा	तत + उ + अन्यथा	ततोऽन्यथा
शान्तस् + अनलः	शान्त + उ + अनलः	शान्तोऽनलः
म् + अनुस्वारः	मनः + उ + अनुस्वारः	मोऽनुस्वारः
शुद्धस् + अहम्	शुद्ध + उ + अहम्	शुद्धोऽहम्
मनषस् + अद्य	मनष + उ + अद्य	मनषोऽद्य
हस्तस् + अस्य	हस्त + उ + अस्य	हस्तोऽस्य
सस् + उपवादः	स + उ + उपवादः	सोऽपवादः
समाचारस् + अन्तिमः	समाचार + उ + अन्तिमः	समाचारोऽन्तिमः
ग्रामस् + अस्य	ग्राम + उ + अस्य	ग्रामोऽस्य
न्यूनस् + अस्ति	न्यून + उ + अस्ति	न्यूनोऽस्ति
ग्रामस् + अस्ति	ग्राम + उ + अस्ति	ग्रामोऽस्ति
सुवुधस् + असि	सुवुध + उ + असि	सुवुधोऽसि
श्यामस् + अस्ति	श्याम + उ + अस्ति	श्यामोऽस्ति
कृष्णस् + अस्य	कृष्ण + उ + अस्य	कृष्णोऽस्य
राज्ञस् + अभिषेकः	राज्ञ + उ + अभिषेकः	राज्ञोऽभिषेकः
उमेशस् + अहम्	उमेश + उ + अहम्	उमेशोऽहम्
सुरेशस् + अहम्	सुरेश + उ + अहम्	सुरेशोऽहम्
अवधेशस् + अहम्	अवधेश + उ + अहम्	अवधेशोऽहम्

अभि तक आपने अप्लुत अकार पर में रहे तो रू सम्बन्धी र को उ किया। अब इसके बाद आप हश् प्रत्याहार पर में हो वहाँ भी रू सम्बन्धी र के स्थान में उकार होगा। इसके लिए अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है।

उत्त्व विधायक विधि सूत्र

107. हशि च 6 । 1 । 114 ॥ तथा । शिवो वन्द्यः ॥

अर्थ :- अप्लुत अर्थात् ह्रस्व अकार से परे रू सम्बन्धी र के स्थान पर उ होता है। पर में हश् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो।

इस सूत्र का काम भी उ करना है किन्तु अतोरोरप्लुतादप्लुते ये सूत्र ह्रस्व अकार पर में हो तो लगता है और हशि च ह्रस्व अकार पर में हो तो लगता है। इन दोनों सूत्रों में अन्तर इतना ही है। बाँकी सब में समानता है। अतः ये दोनों सूत्र समानान्तर ही है।

शिवस् + वन्द्यः यहाँ सबसे पहले सूत्र लगा ससजुषोरूः इस सूत्र के द्वारा पदान्त सकार को रूत्व अर्थात् रू होकर शिव + रू + वन्द्यः बना। उपदेशोऽजनुनासिक इत् इस सूत्र

से रू में उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर र् मात्र बचता है। शिव + र् + वन्द्यः बना। अब इसके बाद सूत्र लगा—हशि च। यह सूत्र कहता है कि अप्लुत अर्थात् ह्रस्वं अकार से परे जो रू सम्बन्धी र् उसको उकार होता है हश् प्रत्याहार (ह, य, व, र, ल, भ, म, ङ्, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द) का वर्ण पढ में हो तो। यहां पर अप्लुत अर्थात् ह्रस्वं अकार है शिव में व में अकार उसके पर में रू सम्बन्धी र् के स्थान में उ होता है। उस रू के बाद में हश् प्रत्याहार का वर्ण है वन्द्यः का वकार। इसलिए र् के स्थान में उकार होकर शिव + उ + वन्द्यः बना। उसके बाद शिव में व में अकार तथा पर में उकार का उ इन दोनों वर्णों के स्थान में आद्गुण से गुण ओकार होकर शिव् + ओ + वन्द्यः बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर शिवो वन्द्यः प्रयोग सिद्ध होता है। इस सूत्र के अन्य उदाहरण :-

विग्रह

आदेश

सन्धि

रामस् + हसति	राम् + ओ + हसति	रामोहसति
बालस् + याति	बाल् + ओ + याति	बालोयाति
शिवस् + वन्द्यः	शिव + ओ + वन्द्यः	शिवोवन्द्यः
बालस् + रौति	बाल् + ओ + रौति	बालोरौति
वुधस् + लिखति	वुध् + ओ + लिखति	वुधोलिखति
मुखस् + मुह्यति	मुख् + ओ + मुह्यति	मुखोह्यति
कस् + णोपदेशः	क् + ओ + णोपदेश	कोपदेशः
भक्तस् + नमति	भक्त् + ओ + नमति	भक्तो नमति
पर्वतस् + धौतः	पर्वत् + ओ + धौतः	पर्वतो धौतः
अगदस् + ज्वरध्नः	अगद् + ओ + ज्वरध्नः	अगदो ज्वरध्नः
सूर्यस् + भाति	सूर्य् + ओ + भाति	सूर्यो भाति
कस् + बालः	क् + ओ + बालः	को बालः
नरस् + गच्छति	नर् + ओ + गच्छति	नरो गच्छति
काकस् + डिडये	काक् + ओ + डिडये	काको डिडये
नृपस् + दास्यति	नृप् + ओ + दास्यति	नृपोदास्यति

अभी तक आप ने रू सम्बन्धी र् के स्थान में उकार किया। अब आप रू सम्बन्धी र् के स्थान में यकार करेंगे। यह अगले सूत्र में बताया जायेगा।

य आदेश विधायक विधि सूत्र

108. भोभगो अघो अपूर्वस्य योऽशि 8 । 3 । 17 ॥ एतत्पूर्वस्य रोर्द्यदेशोऽशि । देवा इह, देवायिह । भोस् भगोस् अघोस् इति सान्ताः निपाताः । तेषां रोर्द्यत्वे कृते

अर्थ :- अश् प्रत्याहार के परे होने पर भो भगो अघो तथा अवर्ण पूर्व वाले रू के स्थान पर यकार आदेश होता है। देवास् + इह यहां पर ससजुषो रूः सूत्र द्वारा पदान्त सकार के स्थान में रू आदेश होकर देवारू + इह बना। उसके बाद उपदेशोऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर देवार् + इह बना। अब यहाँ सूत्र लगा — भो-भगोऽघोऽपूर्वस्य योऽशि। यह सूत्र कहता है कि अश् प्रत्याहार (अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, ज, म, ड, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द) का वर्ण पर में हो तो, भो-भगो अघो तथा अवर्ण पूर्व वाले रू के स्थान पर यकार आदेश होता है। यहाँ पर अश् प्रत्याहार का वर्ण पर में है देवार् + इह में इकार तथा पूर्व में अवर्ण है देवार् में वा में आकार उससे परे र है, उस र् के स्थान

में यकार आदेश होकर देवा+य्+ इह बना। उसके बाद लोपः शाकल्यस्य सूत्र से यकार को विकल्प से लोप होकर देवा इह बना और जिस पक्ष में यकार का लोप नहीं होगा उस पक्ष में देवाय् इह में वर्ण सम्मेलन होकर देवायिह प्रयोग सिद्ध हुआ। इस प्रकार देवा इह देवायिह दो रूप सिद्ध हुए। ध्यान रहे कि लोप पक्ष में अर्थात् देवा इह, जिस पक्ष में लोपः शाकल्यस्य से लोप होगा उस पक्ष में आद् गुणः सूत्र द्वारा गुण नहीं होता है। यह अवर्ण पूर्व का उदाहरण इस सूत्र में दिया गया है।

भो भगोऽघोऽपूर्वस्य योऽशि इस सूत्र से भो भोस् भगोस् अघो— अपूर्वस्य इन जगहों पर सकार को रूत्व होकर इसी सूत्र से यकारादेश होने पर उसका हलि सर्वेषाम् सूत्र से लोप होकर भो भगो, भगो + अघो, अघो अपूर्वस्य बना। उनमें प्रथम दो रूपों को छोड़कर शेष दो प्रयोगों में एचोऽयवायावः सूत्र से अच् आदेश प्राप्त होता है। किन्तु पूर्वत्रासिद्धम् से त्रिपादी हलि सर्वेषाम् को असिद्ध कर दिये जाने के कारण यकार का लोप एचोऽयवायावः की दृष्टि में असिद्ध हुआ। अर्थात् उसके बीच में यकार ही दिखा। फलतः अच् आदेश नहीं हुआ। भो भगोऽघोऽपूर्वस्य ही रह गया।

भोस् भगोस् तथा अघोस् ये सान्त निपात है। ये सब सम्बोधन (सर्व साधारण के सम्बोधन में भोस् भगवान् के सम्बोधन में भगोस् तथा पापी के सम्बोधन में अघोष का प्रायः प्रयोग देखा जाता है।) में प्रयोग होते हैं। भो पूर्वक उदाहरण भोस् + देवा यहाँ पर सबसे पहले सूत्र लगा — ससजुषो रूः इस सूत्र के द्वारा सकार के स्थान में रू आदेश होकर भोरू : देवा बना। उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से रू में उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर भोर् + देवा बना। उसके बाद सूत्र लगा— भो—भगो—अघो—अपूर्वस्य। यह सूत्र कहता है कि अश् प्रत्याहार के परे होने पर भो, भगो, अघो तथा अपूर्वक रू के स्थान में यकार आदेश होता है। भोर् + देवा यहाँ पर अश् प्रत्याहार का वर्ण परे है देवा में द् उससे पूर्व भोर् है उस र से पूर्व भो शब्द है इसलिए रू सम्बन्धी र् के स्थान में य होकर भोय् + देवा बना। अब इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हुआ —

वल्लोप विधायक विधि सूत्र

109 हलि सर्वेषाम् 8 । 3 । 22 ॥ भोभगोअघो। अपूर्वस्य यस्य लोपः स्याद्धलि।
भो देवाः । भगो नमस्ते । अघो याहि ।

अर्थ :- हल् परे होने पर भो, भगो, अघो तथा अवर्ण पूर्वक यकार का लोप होता है।

भोय् + देवा यहाँ पर सूत्र लगा— हलि सर्वेषाम् यह सूत्र कहता है कि हल् परे रहने पर भो, भगो, अघो तथा अवर्ण पूर्वक यकार का लोप होता है यह उदाहरण भो पूर्वक अर्थात् भो पूर्व में हो ऐसे रू सम्बन्धी र् के स्थान में यकार हुआ है। उस यकार का लोप होता है। उस यकार के बाद हल् प्रत्याहार का वर्ण है देवा में द्। इसलिए यकार का लोप होकर भो देवा ऐसा प्रयोग सिद्ध होता है।

भगोपूर्वक उदाहरण :-

भगोस् + नमस्ते । यहाँ पर ससजुषोरूः इस सूत्र से सकार के स्थान में रू होकर अघोरू + याहि बना। उसके बाद रू में उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् — सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर अघोर् + याहि बना। उसके बाद भो भगो—अघोअपूर्वस्य योऽशि सूत्र से रू सम्बन्धी र् के स्थान में यकार होकर भगोय् + नमस्ते बना। उसके बाद हलि सर्वेषाम् सूत्र से यकार का लोप होकर भगो नमस्ते प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार अघो याहि बनेगा।

विग्रह	आदेश	लोप	सन्धि
देवास् + इह	देवाय + इह	देवा + इह	देवा इह
भोस् + देवा	भोय् + देवा	भो + देवा	भो देवा
भगोस् + नमस्ते	भगोय् + नमस्ते	भगो + नमस्ते	भगो नमस्ते
अधोस् + याहि	अधोय् + याहि	अधो + याहि	अधो याहि
मृगस् + एति	मृगय् + एति	मृग + एति	मृग एति
बालास् + इच्छन्ति	बालाय् + इच्छन्ति	बाला + इच्छन्ति	बाला इच्छन्ति
भोस् + देवस्त	भोय् + देवस्त	भो + देवस्त	भो देवस्त
रामस् + अत्रवीत	रामय् + अत्रवीत	राम + अत्रवीत	राम अत्रवीत
रविस् + उदेति	रविय् + उदेति	रवि + उदेति	रवि उदेति
भोस् + परमात्मन	भोय् + परमात्मन	भो + परमात्मन	भो परमात्मन
तन्नस् + आसुव	तन्नय् + आसुव	तन्न + आसुव	तन्न आसुव

अभी तक आपने विसर्ग सन्धि में यलोप सन्धि का उदाहरण पढ़ा। अब इसके बाद रेफादेश सन्धि के विषय में अध्ययन करेंगे।

रेफादेश विधायक विधि सूत्र

110 रोऽसुपि 8 | 2 | 69 ।। अहनो रेफादेशो न तु सुपि । अहरहः अहर्गणः ।

अर्थ :- अहन् शब्द के अन्त्य नकार के स्थान पर र् आदेश होता है। परन्तु सुप् परे होने पर नहीं होता है।

अलोऽन्त्यस्य – परिभाषा के बल पर अहन् के अन्त्य वर्ण के स्थान पर रेफ अर्थात् र आदेश होगा किन्तु उस रेफ से परे सुप् विभक्ति नहीं होनी चाहिए। यह सूत्र अहन् के नकार के स्थान पर र आदेश करने वाले अहन् इस सूत्र का बाधक है। अहन् + अहन् में नित्य वीप्सयोः सूत्र से अहन् को द्वित्व हुआ है। और सु का स्वमोर्नपुंसकात् सूत्र से लुक भी हुआ है। अब इसके बाद रोऽसुपि से दोनों नकारों के स्थान पर र् आदेश होकर अहर + अहर बना। प्रथम र् के स्थान द्वितीय अहर का अकार मिलकर अहरहर बना। अब द्वितीय रेफ अर्थात् र् को अवसान संज्ञा होने के कारण खरवसानयोर्विसर्जनीयः सूत्र से र् के स्थान पर विसर्ग होकर अहरहः प्रयोग सिद्ध होता है।

अहर्गणः अहन् + गणः में रोऽसुपि इस सूत्र से नकार के स्थान पर र होकर अहर् + गणः बना। रेफ का उर्ध्वगमन होकर अहर्गणः प्रयोग सिद्ध होता है। यहां पर अवसान भी नहीं है। और खर् प्रत्याहार भी पर में नहीं है इसलिए रेफ को विसर्ग नहीं हुआ। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझें।

रेफलोप विधायक सूत्र

111. रो रि 8 | 2 | 14 ।। रेफस्य रेफे परे लोपः ।

अर्थ :- रेफ के परे होने पर रकार का लोप होता है। अर्थात् दो रेफ एक साथ ही नहीं मिलेंगे क्योंकि व दूसरे रेफ के परे होने पर प्रथम रेफ का इस सूत्र से लोप होता है। इस सूत्र का उपयोग आगे सूत्र में दिया जा रहा है।

दीर्घ विधायक विधि सूत्र

112. ढ्रलोपेपूर्वस्य दीर्घोऽणः 6 | 3 | 111 । ढरेफयोर्लोपनिमित्तयोः पूर्वस्याणो दीर्घः । पुनारमते ।

हरी रम्यः । शम्भू राजते । अणः किम् ? तृढः । वृढः ॥

अर्थ :- ढकार और रेफ अर्थात् र के लोप होने में निमित्त भूत वर्ण रेफ और ढकार के परे होने पर पूर्व अण् को दीर्घ होता है।

व्याकरण शास्त्र में दूसरे ढकार के परे होने पर पूर्व ढकार का ढोढे लोपः सूत्र लोप हो जाता है और दूसरे रकार के परे होने पर पूर्व वाले रेफ का रोरि सूत्र के द्वारा लोप हो जाता है। इस तरह ढकार और रेफ के लोप होने में निमित्त बने रेफ और ढकार ही है। उनके परे होने पर पूर्व में विद्यमान अण् अर्थात् अ, इ, उ, को दीर्घ होता है। उदाहरण यथा पुनर + रमते यहां पर रोरि सूत्र के द्वारा रमते का र रेफ परे होने के कारण पूर्व रेफ अर्थात् पुनर के रकार का लोप होकर पुन + रमते बना। अब सूत्र लगा – ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः। यह सूत्र कहता है कि ढकार और रेफ के लोप होने के निमित्त भूत वर्ण र और ढ के परे होने पर पूर्व अण् को दीर्घ होता है। यहां पर एक रेफ के लोप में दूसरा रेफ निमित्त बना। यदि दूसरा रेफ न होता तो प्रथम रेफ के लोप की प्राप्ति ही नहीं होती। अतः दूसरा रेफ लोप का निमित्त है लोप होने पर रमते बना। द्वितीय रेफ के परे होने पर पूर्व में विद्यमान अण् पुनः के नकार में अकार को दीर्घ पुना रमते प्रयोग सिद्ध होता है।

हरी रम्यः हरिस् + रम्यः यहां पर ससजुषोरुः सूत्र से स् के स्थान पर रूत्व होकर हरिरू + रम्यः बना। उसके बाद उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से रू में उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर हरिर् + रम्यः बना। उसके बाद रोरि सूत्र से रकार परे होने के कारण प्रथम रेफ का लोप होकर हरि + रम्यः बना। उसके बाद सूत्र लगा – ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः यह सूत्र कहता है कि ढकार और रेफ के लोप होने में निमित्त भूत वर्ण रेफ और ढकार के परे होने पर पूर्व अण् को दीर्घ होता है। द्वितीय रेफ पर में है रमते का रकार, उससे पूर्व रेफ का लोप होकर हरि रम्यः बना। उस र् से पूर्व अण् प्रत्याहार का वर्ण है हरि में रि में इ। उस इ को दीर्घ होकर हरी रम्यः प्रयोग सिद्ध होता है।

शम्भू राजते : शम्भुस् + राजते सकार के स्थान पर ससजुषोरुः सूत्र से रूत्व होकर शम्भुरू + राजते बना। उसके बाद उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर शम्भुर् + राजते बना। उसके बाद रोरि सूत्र से रेफ के परे होने पर प्रथम र् का लोप होकर शम्भु + राजते बना। उसके बाद द्वितीय रेफ के परे होने पर पूर्व में विद्यमान अण् शम्भु के उकार को ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः सूत्र से दीर्घ होने पर शम्भू + राजते प्रयोग सिद्ध होता है। अण् प्रत्याहार अ इ उ ये तीन वर्ण आते हैं इन तीनों वर्णों का उदाहरण आपने पढ़ लिया।

अण्ः किम् ? तृढः । वृढः । अब प्रश्न करते हैं कि ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः इस सूत्र में अणः पढ़ने की क्या आवश्यकता थी? ढकार और रेफ के लोप में निमित्त भूत ढकार और रेफ के परे होने पर पूर्व अण् को दीर्घ हो, इतने मात्र कहने से पुनारमते, हरी रम्यः तथा शम्भू राजते आदि प्रयोग सिद्ध हो जाते।

उत्तर दिया कि यदि अणः न कहते हो तो तृढः वृढः इन प्रयोगों में दोषा अर्थात् दीर्घ होने लगता। क्योंकि जब अण् नहीं पढ़ा जायेगा तो सूत्र अण् हो या अण् से भिन्न कोई भी अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो उसको दीर्घ होने लगेगा। फलतः तृह् वृह उद्यमने धातु से क्त प्रत्यय होकर तृह + क्त, वृहः क्त बना। उसके बाद लशक्वतद्धिते सूत्र से क्त में पूर्व क् की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर त मात्र बचता है। अतः तृह

+ त्, वृह् + त बना। उसके बाद तकार के स्थान पर धकार होकर तृह + ध, वृह + ध बना। उसके बाद होढः सूत्र से हकार के स्थान पर ढकार होकर तृढ् + ध, वृढ् + ध बना। उसके बाद धकार को ष्टुना ष्टुः सूत्र से ष्टुत्व होकर तृढ् + ढ, वृढ् + ढ बना। उसके बाद ढो ढेलोपः सूत्र से पूर्व ढकार का लोप होकर तृ + ढ, वृ + ढ बना। यहां पर ढकार के लोप होने में निमित्तक ढकार परे है। अतः पूर्व में ऋकार को दीर्घ होने लगता जिसके कारण तृद्ध, वृद्ध ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता। उस अनिष्ट दोष के निवारणार्थ यहां पर अणः पर पढ़ा गया है। अतः यहां पर तृढ्, वृढ् शब्द बना। उसके बाद प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा विभक्ति एक वचन विवक्षा में सु प्रत्यय तथा अनुबन्ध लोपः सकार रूत्व विसर्ग होकर तृढः वृढः ऐसा प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार इस सूत्र का अन्य उदाहरण यथा –

विग्रह	आदेश	सन्धि
पुनर् + रम्यः	पुना + रम्यः	पुनारम्यः
पुनर् + रमते	पुना + रमते	पुनारमते
हरिर् + रम्यः	हरी + रम्यः	हरीरम्यः
शम्भूर् + राजते	शम्भू + राजते	शम्भूराजते
नर् + रम्यः	ना + रम्यः	नारम्यः
अन्तर् + राष्ट्रियः	अन्ता + राष्ट्रिय	अन्ताराष्ट्रियः
सवितुर् + रश्मयः	सवितू + रश्मयः	सवितूरश्मयः
भूपतिर् + रक्षति	भूपती + रक्षति	भूपती रक्षति
निर + रस	नी + रस	नीरस
निर् + रोग	नी + रोग	नी रोग
लिढ् + ढः	ली + ढः	लीढः
गुरूर् + रम्यः	गुरू रम्यः	गुरू रम्यः
लिढ् + ढाम्	ली + ढाम्	लीढाम्
लिढ् + ढे	ली + ढे	लीढे

विशेष :- पुना + रमते में यहाँ पर पुनस् + रमते यह विग्रह अशुद्ध है, क्योंकि पुनर् – यह अव्यय पद है और रकारान्त है, सकारान्त नहीं। सकारान्त होने पर हशि च से उत्त्व होकर पुनोरमते ऐसा अनिष्ट प्रयोग बनने लगता। हरिस् + रम्यः, शम्भूस् + राजते ये दोनों पद सकारान्त है। अवर्ण पूर्व में न होने से हशि च सूत्र से उत्त्व नहीं होता है। अतः इसी प्रकार अन्य उदाहरण समझे। अब इसके बाद उत्त्वसन्धि का कुछ अन्य उदाहरण दिया जा रहा –

मनस् + रथ इत्यत्र रूत्वे कृते हशि च (106)

इत्युत्वे 'रोरि' (111) इति लोपे च प्राप्ते –

अर्थ :- मनस् + रथ यहां पर ससजुषो रूः सूत्र से सकार के स्थान में रु होकर मनरू रथ बना। उसके बाद उपदेशेऽजनुनासिक इत् सूत्र से रु में उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर मनर + रथ बना।

शंका :- अब यहाँ पर मनर् + रथ में हशि च सूत्र से उत्त्व प्राप्त है, तथा रोरि सूत्र से पूर्व रकार को लोप प्राप्त है अतः ये दोनों सूत्र एक साथ प्राप्त होते हैं। इन दोनों में से पहले कौन सा सूत्र हो? इस शंका के निवृत्ति अर्थात् निवारण के लिए अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है –

परिभाषा सूत्र

113 विप्रतिषेधे परं कार्यम् 1 | 4 | 2 ||

तुल्य बलविरोधे परं कार्यं स्यात् ।

इति लोपे प्राप्ते 'पूर्वत्रासिद्धम्' इति 'रोरि' इत्यस्यासिद्धत्वादुत्त्वमेव । मनोरथः ।

अर्थ :- तुल्य बल वालों का विरोध होने पर, पर कार्य होता है पाणिनि ने सबसे पहले अष्टाध्यायी का निर्माण किया। उसमें आठ अध्याय है। उन आठ अध्यायों के प्रति अध्यायों में चार पाद का निर्माण किया, तथा उन प्रति पादों में सूत्र संख्या का निर्माण किया गया। कहने का तात्पर्य यह है कि प्राचीन व्याकरण में अध्याय पाद संख्या के क्रम से अध्ययन करते हैं और उन सूत्रों के अनुसार प्रयोग का निर्माण किया है— जैसे प्राचीन व्याकरण का ग्रन्थ है काशिकावृत्ति। किन्तु लघुसिद्धान्त कौमुदी जो ग्रन्थ है वह नव्य व्याकरण का है जिसमें वरदराजाचार्य ने प्रयोगों के अनुसार सूत्रों का निर्माण किया। किन्तु जब हम किसी प्रयोग को सिद्ध करते हैं यदि वहां पर एक ही साथ दो सूत्र जब प्राप्त होते हैं, तो, अध्याय पाद सूत्र संख्या के अनुसार पूर्वा पर का ज्ञान करते हैं और उसी से निर्णय भी करते हैं। इसका उदाहरण आगे दे रहे हैं —

तुल्य बल वाले दो कार्यो के विरोध को विप्रतिषेध कहते हैं। पृथक् – पृथक् स्थानों पर चरितार्थ होने वाले सूत्र तुल्यबल वाले कहलाते हैं। इन तुल्य बल वालों का यदि विरोध हो जाये तो इनमें जो अष्टाध्यायी में पर अर्थात् बाद वाला कहा गया है वही प्रवृत्त होता है यथा हशि च सूत्र 'शिवो वन्द्यः आदि स्थानों पर चरितार्थ हो चुका है इन स्थानों पर रोरि सूत्र प्रवृत्त नहीं हो सकता और रोरि सूत्र हरीरम्यः आदि स्थानों पर चरितार्थ हो चुका है। इन स्थानों पर हशि च सूत्र की प्राप्ति नहीं हो सकती। तो इस प्रकार हशिच और रोरि तुल्य बल वाले हैं। अब इन तुल्यबल वालों का मनर् + रथ में विरोध उत्पन्न हो गया है। तो वही कार्य होंगे जो अष्टाध्यायी में पढ़ा गया है।

अष्टाध्यायी में हशिच सूत्र । 6 । 1 । 110 । अर्थात् छठे अध्याय का प्रथम पाद का एक सौ दशवा सूत्र है और रोरि (8. 3. 14) अर्थात् आठवे अध्याय का तीसरे पाद का चौदहवाँ सूत्र है। इस प्रकार पूर्व सूत्र है हशि च तथा पर सूत्र है रोरि। अतः रोरि सूत्र से रेफ अर्थात् र् का लोप प्राप्त होता है किन्तु पूर्व सूत्र और पर सूत्र में दोनों में कौन बलवान है उसको निर्णय करने के लिए पूर्वत्रासिद्धम् (31) सूत्र उपस्थित होता है और कहता है कि सपादसप्ताध्यायी की दृष्टि में त्रिपादी सूत्र असिद्ध हो तो अर्थात् सिद्ध नहीं होते हैं। परन्तु रोरि सूत्र त्रिपादीस्थ होने के कारण हशि च की दृष्टि में असिद्ध है। सूत्र संख्या 31 पूर्वत्रासिद्धम् को देखे) अतः हशि च की दृष्टि में रोरि सूत्र का अस्तित्व ही नहीं है। इसलिए हशि च सूत्र से र के स्थान में उ होकर मन + उ + रथः बना। उसके बाद आदगुणः सूत्र से अ + उ = ओ गुण् होकर मन् + ओ +रथः बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर मनोरथः प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखे —

विग्रह

मनर् + रथः
बालार् + रोदति
रामर् + राज
देवर् + राक्षसः
राधवर् + रामः
काकर् + रौति
भूयर् + रमते

आदेश

मन् + उ + रथ
बाल् + उ + रोदति
राम + उ + राज
देव + उ + राक्षसः
राधव + उ + राम
काक + उ + रौति
भूय + उ + रमते

सन्धि

मनोरथः
बालोरोदति
रामोराज
देवोराक्षसः
राधवो रामः
काकोरौति
भूयोरमते

ईश्वर् + रमते	ईश्वर + उ + रमते	ईश्वरोरमते
कृष्णर् + रक्षति	कृष्ण + उ + रक्षति	कृष्णो रक्षति
धर्मर् + रक्षति	धर्म + उ + रक्षति	धर्मो रक्षति
देवर् + राजते	देव + उ + राजते	देवो राजते

अभी तक आपने स् को रूत्व किया। अब उसका लोप करने का विधान किया जा रहा है। इसके लिए अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है –

सुलोप विधायक विधि सूत्र

114 एतत्तदोः सुलोपोऽकोरञ्जसमासे हलि 6 । 1 । 132 ।।
 अककारयो रेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपो हलि न तु नञ्
 समासे। एष विष्णुः । स शम्भुः । अकोः किम् ?
 एषको रूद्रः अनञ् समासे किम् ? असः शिवः ।
 हलि किम् ? एषोऽत्र ।

अर्थ :- हल् वर्ण के परे रहने पर एतद् और तद् शब्द के बाद आने वाले सु प्रत्यय का लोप हो जाता है किन्तु उन शब्दों में अकच् प्रत्यय न हुआ हो तो।
 अकच् प्रत्यय करने वाला सूत्र है – अव्यय सर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः । इस सूत्र से एतद् और तद् शब्दों में अकच् प्रत्यय होता है। एतद् और तद् शब्दों के बिना अकच् का रूप एष कृष्णः, स श्यामः है और एतद् और तद् शब्दों के अकच् प्रत्यय वाला रूप एषकः कृष्णः सकः श्यामः है। सु का लोप हल् प्रत्याहार के परे रहने पर ही होता है। जैसे कृष्ण का ककार हल् वर्ण परे है, और स श्याम में श्याम शकार हल् वर्ण परे है। यदि एतद् और तद् शब्दों में नञ् समास हुआ हो तो स का लोप नहीं होगा। जैसे – न सः = असः, इसी प्रकार एतद् और तद् शब्दों अकच् प्रत्यय न हुआ हो और नञ् समास न हुआ और हल् वर्ण परे हो तो एतद् और तद् के सु का लोप हो जाता है। एष + सु + विष्णुः इसमें सु यह प्रथमा विभक्ति के एक वचन वाला प्रत्यय है। सु में उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर एषस् + विष्णुः बना। यहाँ पर एष जो शब्द है वह एतद् शब्द का यहाँ नञ् समास भी नहीं है न अकच् प्रत्यय भी है और स् के बाद हल् वर्ण परे है विष्णुः का वकार इसलिए इस सूत्र से स का लोप होकर एष विष्णुः प्रयोग सिद्ध होता है।

स शम्भुः सस् + शम्भूः यहाँ पर न अकच प्रत्यय है न नञ् समास है और सु के सकार के बाद शम्भू का शकार हल् वर्ण परे है। इसीलिए स का लोप होकर स शम्भुः प्रयोग सिद्ध होता है। अकोः किम् ? एषको रूद्रः । सूत्र में यदि अकोः अर्थात् अकच् प्रत्यय के ककार से रहित एतद् और तद् शब्द ऐसा अर्थ न करते तो एषको रूद्र में एषकस् सु का लोप हो जाता और एषक रूद्रः ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता। इसलिए इस सूत्र से स् का लोप न होकर ससजुषोरुः सूत्र से स् को रू होकर एषकरु + रूद्र बना। उकार की इत्संज्ञा तथा लोप होने के बाद एषक र् + रूद्रः बना। उसके बाद हशि च सूत्र से र को उत्त्व होकर एषक् + उ + रूद्रः बना। आद् गुण से गुण होकर एषको रूद्रः प्रयोग सिद्ध होता है।

अनञ् समासे किम् ? असः शिवः । सूत्र में यदि अनञ् समास न कहते तो अस् + स् + शिवः में दोष आ जाता क्योंकि तब सूत्र नञ् समास में भी लगता और अनञ् समास में भी लगता है। असः यहाँ पर नञ् समास है यहाँ पर भी सु का लोप होकर अस शिवः ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता है। इसलिए यहाँ पर नञ् समास होने के कारण सु को लोप न होकर सकार को रूत्व विसर्ग होकर असः शिवः ऐसा प्रयोग सिद्ध होता है।

हलि किम् ? एषोऽत्र । सूत्र में यदि हल् न कहते तो अच् परे होने पर भी स् का लोप हो जाता और एष अत्र तथा सवर्ण दीर्घ होकर एषात्र ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता। इसलिए हल् वर्ण परे न होने के कारण एष + स् + अत्र यहाँ पर एतत्तदोः सुलोपोऽ को रनञ् समासे हलि इस सूत्र से स का लोप न होकर एषस् + अत्र यही रहा। उसके बाद ससजुषोरुः सूत्र से सकार को रूत्व होकर एष रू + अत्र बना। उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर एष् + र् + अत्र बना। यहाँ पर अतोरोरप्लुतादप्लुते सूत्र से र को उकार होकर एष + उ + अत्र बना। उसके बाद आद् गुणः सूत्र से अ + उ = ओ गुण होकर एष् + ओ + अत्र बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर एषो + अत्र बना। उसके बाद एङः पदान्तादति सूत्र से पूर्व रूप होकर एषोऽत्र प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार इस सूत्र का अन्य उदाहरण देखे -

विग्रह	लोप आदेश	सन्धि
एषस् + विष्णुः	एष + विः	एष विष्णुः
सस् + शिवः	स + शिवः	स शिवः
सस् + हशति	स + हशति	स हशति
एषस् + हसति	एष हसति	एष हसति
सस् + रमते	स + रमते	स रमते
एषस् + रमते	एष + रमते	एष रमते
सस् + नमति	स + नमति	स नमति
एषस् + नमति	एष + नमति	उष नमति
सस् + घोषः	स + घोषः	स घोषः
एषस् + छादयति	एष + छादयति	एष छादयति
सस् + पठति	स + पठति	स पठति
एषस् + पठति	एष + पठति	एष पठति
सस् + लुनाति	स + लुनाति	स लुनाहि
सस् + ददाति	स + ददाति	स ददाति
एषस् + लुनाति	एष + लुनाति	एष लुनाहि
एषस् + ददाति	एष + ददाति	एष ददाति
सस् + चलति	स + चलति	स चलति
एषस् + करोति	एष + करोति	एष करोति
सस् + शेते	स + शेते	स + शेते
एषस् + शेते	एष + शेते	एष शेते
सस् + सर्पति	स + सर्पति	स सर्पति
एषस् + सर्पति	एष + सर्पति	एष सर्पति
सस् + धावति	स + धावति	स धावति
एषस् + धावति	एष + धावति	एष धावति
सस् + गच्छति	स + गच्छति	स गच्छति
एषस् + गच्छति	एष + गच्छति	एष गच्छति

सुलोप विधायक विधि सूत्र

115. सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् 3 | 1 | 134 ||
 स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्येत ।
 सेमामविड्ढि प्रभूतिम् । सैष दाशरथी रामः ।

अर्थ :- यदि केवल लोप होने से ही पाद पुरा होता हो तो अच् प्रत्याहार के परे होने पर तद् शब्द के सु का लोप होता है। श्लोक आदि के एक विशेष भाग के छन्दः शास्त्र में पाद कहते हैं। उसी का यहाँ ग्रहण समझना चाहिए। उदाहरण यथा –

सेमाविड्ढि प्रभूतिम् (ऋग्वेद 2. 249) यह ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के चौबीसवें सूक्त का प्रथम मन्त्र है। यहाँ वैदिक जगती छन्द है। वैदिक छन्द के प्रत्येक पाद में बारह अक्षर होते हैं। सेमामविड्ढि प्रभूति य ईशिषे यह जगती छन्द का एक पाद है। इस में सस् + इमाम् में सु वाले सकार का लोप होकर स इमाम् अर्थात् बारह अक्षर वाला बनता है। यदि लोप नहीं हुआ होता तो स् को रूत्व अर्थात् उ 'डकोय,य को लोप करने पर स इमामविड्ढि बनता है त्रिपादी होने के कारण यकार का लोप असिद्ध होगा तो स इमामविड्ढि प्रभूति य इशिषे ऐसा बनेगा। अब पाद में बारह अक्षर होने चाहिए थे, तेरह अक्षर हो गये। इस तरह से छन्दों भंग हुआ। यदि सोऽचि लोपेचेत्पादपूरणम् से सकार का लोप करते हैं तो स + इमा में गुण हो जायेगा, क्योंकि यह सूत्र सपादसप्ताध्यायी का है। इसके द्वारा सु का लोप होकर पर आद्गुणः की दृष्टि में असिद्ध नहीं होगा। स + इ में दो अक्षरों से एक ही अक्षर (आद्गुणः से गुण होकर) 'से' बनेगा। जिससे पाद में बाहर अक्षर ही रह जायेंगे। इसी तरह पाद की पूर्ति होकर छन्दः ठीक से बैठेगा। अतः सु का लोप इस सूत्र में से हो जाता है, फलतः सेमामविड्ढि प्रभूति य इशिषे सिद्ध हो जाता है। यह वैदिक मन्त्र का उदाहरण है। लौकिक मन्त्र का उदाहरण आगे देखिये –

सैष दाशरथी रामः यह अनुष्टुप-छन्द का एक चरण अर्थात् पाद है। इस छन्द के प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते हैं। सस् + एष दशरथी रामः में सु वाले स् का लोप होने पर आठ अक्षर बनते हैं और यदि लोप नहीं हुआ तो सकार को रूत्व यत्व करके यकार का लोप करके स + एष दशरथी रामः बनता है। त्रिपादी होने के कारण यकार का लोप असिद्ध होगा तो सः एष में वृद्धि रेचि च सूत्र से वृद्धि भी नहीं हो सकेगी। अतः स एष दाशरथी रामः ऐसा बनेगा। अब पाद में आठ अक्षर होने चाहिए थे, किन्तु नव अक्षर हो गये। यह छन्दोभंग हो गया। यदि इस सूत्र से सकार का लोप करते हैं तो एष में वृद्धि हो जायेगी, क्योंकि यह सूत्र सपादसप्ताध्यायी का है। सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् सूत्र के द्वारा सू का लोप होने पर वृद्धिरेचि के दृष्टि में असिद्ध नहीं होगा। स + एष यहां पर स में अ + एष में ए अर्थात् अ + ए इन दोनों वर्णों के स्थान पर वृद्धि ऐ होकर स् ऐ + ष = सैष बनेगा। जिससे पाद में आठ ही अक्षर रह जायेंगे। पाद की पूर्ति होगी अर्थात् छन्दोभंग नहीं होगा। अतः सु का लोप इस सूत्र से हो जाता है। फलतः सैष दाशरथी रामः प्रयोग सिद्ध हो जाता है। सैष दशरथी रामः, यह लौकिक श्लोक का उदाहरण है। इससे सम्बन्धित एक श्लोक प्रसिद्ध है। जिसमें चारों पादों में इस सूत्र के उदाहरण मिलते हैं –

सैष दाशरथी रामः, सैष राजा युधिष्ठिरः ।

सैष कर्णा महादानी, सैष भीमो महाबलः ॥

अर्थ — ये वे भगवान दशरथ पुत्र श्रीराम हैं, ये वे राजा युधिष्ठिर हैं, ये वे महादानी कर्ण हैं और ये वे महाबली भीम हैं।

जहाँ लोप करके नहीं अपितु अन्य किसी कारण से पाद पूर्ति हो जाती है वहां पर सोऽचि लोपेचेत्पादपूरणम् सूत्र से सु का लोप नहीं होता है। जैसे – सोऽहमाजन्मशुद्धानाम् भी अनुष्टुप-छन्द का चरण है। यहाँ पर सु का लोप करते हैं तो

स अह् का अ तथा स का अ अर्थात् अ + अ = आ, सोहमाजन्मशुद्धानाम वन जाता है। ऐसा बनने पर छन्दोभंग तो नहीं हो रहा है किन्तु सोऽचि लोपे चेत्यादपुरणम् से सु का लोप न करने पर भी स को रूत्व करके अतोरोरप्लुताप्लुते सूत्र से उत्त्व होकर स + उ बना। तथा अ + उ मिलकर ओ गुण हो जाता है। स् + ओ बना। स् में ओ मिलकर सो अहम बना। उसके बाद एङः पदान्तादति से पूर्वरूप एकादेश होकर पादपूर्ति होती है, सोऽहमाजन्मशुद्धानाम बनता है, एक चरण में आठ अक्षर होने चाहिए, आठ ही अक्षर बनते हैं और छन्दोभंग भी नहीं होता है। अतः अन्य कारणों से पदापूर्ति हो रही है इसलिए सोऽचिलोपे चेत्यादपुरणम् से सु का लोप नहीं होता।

अभ्यास प्रश्न 1

अतिलघु –उत्तरीय प्रश्न

1. सकार आदेश विधायक सूत्र कौन है ?
2. रूत्व विधायक सूत्र कौन है?
3. रू सम्बन्धि र् के स्थान पर उत्त्व करता है?
4. उत्त्व विधायक विधि सूत्र कौन सा है?
5. यादेश विधायक सूत्र कौन है?
6. अहन् के नकार के स्थान किस सूत्र से रेफ आदेश होता है?
7. पुनारमते किस सूत्र का उदाहरण है?
8. हल् वर्ण के परे होने पर एतद् और तद् शब्द के सु को क्या होता है?

अभ्यास प्रश्न 2

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. खर प्रत्याहार पर में हो तो विसर्ग के स्थान पर होता है :-
(क) क् (ख) ह् (ग) स् (घ) न्
2. प्लुत भिन्न ह्रस्व अकार से परे रू सम्बन्धी रेफ होता है :-
(क) अकार (ख) उकार (ग) इकार (घ) लृकार
3. ह्रस्व अकार से परे रू सम्बन्धि र् के स्थान पर होता है :-
(क) अकार (ख) उकार (ग) एकार (घ) औकार
4. हलिसर्वेषाम् सूत्र का उदाहरण है :-
(क) भो देवा (ख) रामःशेते (ग) देवा इह (घ) देवायिह
5. रेफ के परे होने पर रेफ का लोप होता है :-
(क) रोऽसुपि (ख) हलिसर्वेषाम् (ग) रोरि (घ) आद्गुण
6. यदि लोप होने पर पाद की पूर्ति हो जाये तो सु का होता है :-
(क) लोप (ख) विसर्ग (ग) रूत्व (घ) यत्व

4.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि विसर्ग सन्धि किसे कहते हैं विसर्ग सन्धि का चिन्ह क्या होता है। इन सबका वर्णन मुख्य रूप से इस इकाई में की गयी है। विसर्ग सन्धि में प्रायः विसर्गों की ही सन्धियाँ की गयी हैं। जिस प्रकार विष्णुः + त्राता है यहाँ पर विसर्ग के स्थान पर विसर्जनीयस्य सः इस सूत्र से सकार होकर विष्णुस् + त्राता बना। वर्ण सम्मेलन होकर विष्णुस्त्राता प्रयोग सिद्ध होता है। ऐसे ही प्रायः इस सन्धि में प्रयोग देखे जाते हैं

4.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
विष्णुस्त्राता	विष्णु का रक्षक है
हरिः शेते	भगवान हरि शयन करते हैं
शिवोऽर्च्यः	शिव पूजनीय है
शिवो वन्द्यः	शिव वन्दनीय है
देवा इह	हे देवो यहां (आइये)
भो देवा	हे देवताओं
भगो नमस्ते	भगवान आप को नमस्कार है
अद्यो याहि	हे पापी चले जाओ
अहरः	प्रतिदिन
अहर्गणः	दिनों का समूह
पुना रमते	पुनः रमण करता है
हरी रम्यः	हरि सुन्दर है।
शम्भुराजते	शिव जी शोभित होते हैं
मनोरथः	मन की इच्छा अभिलाषा
एष विष्णुः	ये विष्णु है।
स शम्भूः	वे शम्भू है।
सैषदाशरथी रामः	ये वे भगवान दशरथ पुत्र श्री राम है।

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1— 1— विसर्जनीयस्य सः 2— स—सजुषोरुः 3— अतोत्र रोप्लुतादप्लुते 4— हशि च 5— भोभगो अद्योअपूर्वस्य योऽशि 6— रोऽसुपि 7— द्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽङ्गः 8— लोप

अभ्यास प्रश्न 2— 1— (ग) 2— (ख) 3— (ख) 4— (क) 5— (ग) 6— (क)

4.7 सदर्थ ग्रन्थ सूची

1—ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
लघुसिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
2—वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी .	भट्टोजिदीक्षित	शारदा निकेतन वी, कस्तुरवानगर सिगरा वाराणसी
3— महाभाष्यम्	पतंजलि	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

4.8 उपयोगी पुस्तकें

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
लघुसिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	चौखम्भा संस्कृत

4.9. निबन्धात्मक प्रश्न

1. सोऽचि लोपे चेत्यादपूरणम् सूत्र का उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए?

इकाई . 5 धातु रूप—लट् , लोट् , लिङ् , लृट् , लङ् , लकारों में

इकाई की रूप रेखा

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उद्देश्य
- 5.3 धातु रूप—लट् , लोट् , लिङ् , लृट् , लङ् , लकारों में ।
- 5.4 सारांश
- 5.5 शब्दावली
- 5.6 अभ्यास प्रश्न—उत्तर
- 5.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 5.8 उपयोगी पुस्तकें
- 5.9. निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र से सम्बन्धित खण्ड तीन की यह पाचवी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि व्याकरण शास्त्र में भू धातु का अर्थ क्या है ? इसमें भू आदि धातु के अर्थ के विषय में सम्यग् रूप से वर्णन किया गया है

व्याकरण शास्त्र के महत्व को जानते हुए इस इकाई में जानेंगे कि भू धातु की रूप किस प्रकार चलता है शब्द का ज्ञान व्याकरण शास्त्र के बिना सम्भव नहीं है। शब्दों के अर्थों के ज्ञान के लिए व्याकरण शास्त्र का ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक है।

इस इकाई के अध्ययन से धातु रूपों को ज्ञान करते हुए, उसकी महत्ता को आप भली-भाँति समझ सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप धातु रूपों को जानते हुए उनको संस्कृत वाक्यों में प्रयोग करेंगे

- पुरुष कितने होते हैं इसके विषय में आप परिचित होंगे ।
- पा धातु का प्रयोग कहा होता है इसके विषय में परिचित होंगे ।
- दृश् का प्रयोग कहा होता है इसके विषय में परिचित होंगे ।
- पच् धातु का प्रयोग कहा होता है इसके विषय में परिचित होंगे ।
- नम् धातु का प्रयोग कहाँ पर होगा इसके विषय में आप परिचित होंगे ।
- जी धातु का प्रयोग कहाँ पर होगा इसके विषय में आप परिचित होंगे ।

5.3 धातु रूप—लट् , लोट् , लिङ् , लृट् , लङ् , लकारों में

वर्तमान काल लट् लकार का नियम

कार्य प्रारम्भ होने के बाद जब तक समाप्ति न हो जाय उस काल को वर्तमान काल कहते हैं। यथा रामः गच्छति (राम जाता है।) राम गमन (जाना) रूपी कार्य प्रारम्भ कर दिया । किन्तु कब तक जायेगा यह निश्चित नहीं हुआ। अतः इस काल को वर्तमान काल कहते हैं।

वर्तमान काल लट् लकार भू धातु का रूप

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स भवति (वह होता है)	तौ भवतः वे दोनों होते हैं	ते भवन्ति वे लोग होते हैं
मध्यम पुरुष	त्वं भवसि (तुम होता है)	युवां भवथः (तुम दोनों होते हो)	यूयं भवथ तुम लोग होते हो
उत्तम पुरुष	अहं भवामि मैं होता हूँ	आवां भवावः हम दोनों होते हैं	वयं भवामः हम लोग होते हैं

॥ भविष्य काल लृट् लकार भू धातु का रूप ॥

काल तीन प्रकार का होता है। वर्तमान , भविष्य और भूत।

वर्तमान काल का रूप आप ने अध्ययन कर लिया है अब भविष्य काल के रूप के विषय में अध्ययन करेंगे।

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स भविष्यति (वह होगा)	तौ भविष्यतः (वे दोनों होंगे)	ते भविष्यन्ति (वे लोग होंगे)
मध्यम पुरुष	त्वं भविष्यसि (तुम होगा)	युवां भविष्यथः (तुम दोनों होंगे)	यूयं भविष्यथ (तुम लोग होंगे)
उत्तम पुरुष	अहं भविष्यामि (मैं होऊँगा)	आवां भविष्यावः (हम दोनों होंगे)	वयं भविष्यामः (हम लोग होंगे)

॥ आज्ञार्थक लोट् लकार भू धातु का रूप ॥

विधि आदि अर्थों में लोट् लकार का प्रयोग किया जाता है । विधि— उस प्रेरणा को कहते हैं जिसे आज्ञा देना कहा जाता है। जैसे नौकरों और मजदूरों आदि अपने से छोटी को कहा जाता है भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम् । ओदनं पच चावल पकाओं । अतः यहा आज्ञा दी जा रही है।

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स : भवतु वह हो	तौ भवताम् वे दोनो हो	ते भवन्तु वे लोग हो
मध्यम पुरुष	त्वं भव तुम होवो	युवां भवतम् तुम दोनों होवो	यूयं भवत तुम लोग होवो
उत्तम पुरुष	अहम् भवानि मैं होऊ	आवां भवाव हम दोनो हो	वयं भवाम हम लोग हो

॥ भूत काल लङ् लकार भू धातु का रूप ॥

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स : अभवत् वह हुआ	तौ अभवताम् वे दोनो हुए	ते अभवन् वे लोग हुए
मध्यम पुरुष	त्वम् अभवः तुम हुए	युवाम् अभवतम् तुम दोनों हुए	यूयम् अभवत तुम लोग हुए
उत्तम पुरुष	अहम् अभवम् हम हुए	आवाम् अभवाव हम दोनो	वयम् अभवाम हम लोग हुए

॥ विधिलिङ् लकार लकार भू धातु का रूप ॥

इस लकार का प्रयोग चाहिए अर्थ में होता है।

पुरुषः	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तं भवेत् उसे होना चाहिए	तौ भवेताम् उन दोनो को होना चाहिए	तान् भवेयुः उन लोगो को होना चाहिए
मध्यम पुरुष	— त्वां भवेः तुम को होना चाहिए	युवां भवेतम् तुम दोनों को होना चाहिए	यूष्मान् भवेत तुम लोगों को होना चाहिए
उत्तम पुरुष	मां भवेयम् हम को होना चाहिए	आवां भवेव हम दोनो को होना चाहिए	अस्मान् भवेम हम लोगों को होना चाहिए

इस प्रकार भू धातु का पाँचों लकारों का रूप सम्पूर्ण हुआ

वर्तमान काल लट् लकार पठ् धातु का रूप

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सः पठति (वह पढ़ता है)	तौ पठतः वे दोनों पढ़ते हैं	ते पठन्ति वे लोग पढ़ते हैं
मध्यम पुरुष	त्वं पठसि (तुम पढ़ते हो)	युवां पठथः (तुम दोनों पढ़ते हो)	यूयं पठथ तुम लोग पढ़ते हो
उत्तम पुरुष	अहं पठामि मैं पढ़ता हूँ	आवां पठावः हम दोनों पढ़ते हैं	वयं पठामः हम लोग पढ़ते हैं।

॥ भविष्य काल लृट् लकार पठ् धातु का रूप ॥

काल तीन प्रकार का होता है। वर्तमान, भविष्य और भूत।
वर्तमान काल का रूप आप ने अध्ययन कर लिया है अब भविष्य काल के रूप के विषय में अध्ययन करेंगे।

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स पठिष्यति (वह पढ़ेगा)	तौ पठिष्यतः (वे दोनों पढ़ेंगे)	ते पठिष्यन्ति (वे लोग पढ़ेंगे)
मध्यम पुरुष	त्वं पठिष्यसि (तुम पढ़ेगा)	युवां पठिष्यथः (तुम दोनों पढ़ेंगे)	यूयं पठिष्यथ (तुम लोग पढ़ेंगे)
उत्तम पुरुष	अहं पठिष्यामि (मैं पढ़ूँगा)	आवां पठिष्यावः (हम दोनों पढ़ेंगे)	वयं पठिष्यामः (हम लोग पढ़ेंगे)

॥ आज्ञार्थक लोट् लकार पठ् धातु का रूप ॥

विधि आदि अर्थों में लोट् लकार का प्रयोग किया जाता है। विधि— उस प्रेरणा को कहते हैं जिसे आज्ञा देना कहा जाता है। जैसे नौकरों और मजदूरों आदि अपने से छोटे को कहा जाता है भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम्। ओदनं पच चावल पकाओं। अतः यहा आज्ञा दी जा रही है।

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सः पठतु वह पढ़े	तौ पठताम् वे दोनों पढ़ें	ते पठन्तु वे लोग पढ़ें
मध्यम पुरुष	त्वं पठ तुम पढ़ो	युवां पठतम् तुम दोनों पढ़ो	यूयं पठत तुम लोग पढ़ो
उत्तम पुरुष	अहं पठानि मैं पढ़ूँ	आवां पठाव हम दोनों पढ़ें	वयं पठाम हम लोग पढ़ें

॥ भूत काल लङ् लकार पठ् धातु का रूप ॥

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष वह पढ़ा	सः अपठत् वे दोनों पढ़ें	तौ अपठताम् वे लोग पढ़ें	ते अपठन् वे लोग पढ़ें
मध्यम पुरुष	त्वम् अपठः तुम पढ़ा	युवाम् अपठतम् तुम दोनों पढ़ें	यूयम् अपठत तुम लोग पढ़ें
उत्तम पुरुष	अहम् अपठम् हम पढ़े	आवाम् अपठाव हम दोनों पढ़ें	वयम् अपठाम हम लोग पढ़ें

॥ विधिलिङ् लकार लकार पठ् धातु का रूप ॥

इस लकार का प्रयोग चाहिए अर्थ में होता है।

पुरुषः	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तं पठेत्	तौ पठेताम्	तान् पठेयुः
	उसको पढ़ना चाहिए	उन दोनों को पढ़ना चाहिए	उन लोगों को पढ़ना चाहिए
मध्यम पुरुष –	त्वां पठेः	युवां पठेतम्	यूष्मान् पठेत
	तुम को पढ़ना चाहिए	तुम दोनों को पढ़ना चाहिए	तुम लोगों को पढ़ना चाहिए
उत्तम पुरुष	मां पठेयम्	आवां पठेव	अस्मान् पठेम
	हम को पढ़ना चाहिए	हम दोनों को पढ़ना चाहिए	हम लोगों को पढ़ना चाहिए

इस प्रकार पठ् धातु का पाँचों लकारों का रूप सम्पूर्ण हुआ
वर्तमान काल लट् लकार पा धातु का रूप

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सः पिबति (वह पीता है)	तौ पिबतः वे दोनों पीते हैं	ते पिबन्ति वे लोग पीते हैं
मध्यम पुरुष	त्वं पिबसि (तुम पीते हो)	युवां पिबथः (तुम दोनों पीते हो)	यूयं पिबथ तुम लोग पीते हो
उत्तम पुरुष	अहं पिबामि मैं पीता हूँ	आवां पिबावः हम दोनों पीते हैं	वयं पिबामः हम लोग पीते हैं

॥ भविष्य काल लृट् लकार पा धातु का रूप ॥

काल तीन प्रकार का होता है। वर्तमान, भविष्य और भूत।

वर्तमान काल का रूप आप ने अध्ययन कर लिया है अब भविष्य काल के रूप के विषय में अध्ययन करेंगे।

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स पास्यति (वह पीयेगा)	तौ पास्यतः (वे दोनों पीयेंगे)	ते पास्यन्ति (वे लोग पीयेंगे)
मध्यम पुरुष	त्वं पास्यसि (तुम पीयेगा)	युवां पास्यथः (तुम दोनों पीओगे)	यूयं पास्यथ (तुम लोग पीओगे)
उत्तम पुरुष	अहं पास्यामि (मैं पीऊँगा)	आवां पास्यावः (हम दोनों पीयेंगे)	वयं पास्यामः (हम लोग पीयेंगे)

॥ आज्ञार्थक लोट् लकार पा धातु का रूप ॥

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सः पिबतु वह पीये	तौ पिबताम् वे दोनों पीये	ते पिबन्तु वे लोग पीयें
मध्यम पुरुष	त्वं पिब तुम पीओ	युवां पिबतम् तुम दोनों पीओ	यूयं पिबत तुम लोग पीओ
उत्तम पुरुष	अहं पिबानि मैं पीऊँ	आवां पिबाव हम दोनों पीये	वयं पिबाम हम लोग पीयें

॥ भूत काल लङ् लकार पा धातु का रूप ॥

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स : अपिबत् वह पीया	तौ अपिबताम् वे दोनो पीये	ते अपिबन् वे लोग पीये
मध्यम पुरुष	त्वम् अपिबः तुम पीया	युवाम् अपिबतम् तुम दोनों पीये	यूयम् अपिबत तुम लोग पीये
उत्तम पुरुष हम पीये	अहम् अपिबम्	आवाम् अपिबाव हम दोनो पीये	वयम् अपिबाम हम लोग पीये

॥ विधिलिङ् लकार लकार पा धातु का रूप ॥

इस लकार का प्रयोग चाहिए अर्थ में होता है।

पुरुषः	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तं पिबेत् उसको पीना चाहिए	तौ पिबेताम् उन दोनो को पीना चाहिए	तान् पिबेयुः उन लोगो को पीना चाहिए
मध्यम पुरुष – को पीना चाहिए	त्वां पिबेः तुम को पीना चाहिए	युवां पिबेतम् तुम दोनों को पीना चाहिए	यूष्मान् पिबेत तुम लोगों को पीना चाहिए
उत्तम पुरुष पिबेम	मां पिबेयम् हम को पीना चाहिए	आवां पिबेव हम दोनो को पीना चाहिए	अस्मान् हम लोगों को पीना चाहिए

इस प्रकार पठ् धातु का पौंचों लकारों का रूप सम्पूर्ण हुआ

वर्तमान काल लट् लकार अद् भक्षणे धातु का रूप

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सः अत्ति (वह खाता है)	तौ अत्ताः वे दोनो खाते हैं	ते अदन्ति वे लोग खाते हैं
मध्यम पुरुष हो	त्वम् अत्सि (तुम खाते हो)	युवाम् अत्थः (तुम दोनों खाते हो)	यूयम् अत्थ तुम लोग खाते
उत्तम पुरुष	अहम् अदमि मैं खाता हूँ	आवाम् अद्वः हम दोनों खाते हैं	वयम् अदमः हम लोग खाते है

॥ भविष्य काल लृट् लकार अद् धातु का रूप ॥

काल तीन प्रकार का होता है। वर्तमान , भविष्य और भूत।

वर्तमान काल का रूप आप ने अध्ययन कर लिया है अब भविष्य काल के रूप के विषय में अध्ययन करेंगे।

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष खायेंगे)	स अत्स्यति (वह खायेगा)	तौ अत्स्यतः (वे दोनों खायेंगे)	ते अत्स्यन्ति (वे लोग
मध्यम पुरुष खाओगे)	त्वम् अत्स्यसि (तुम खायेगा)	युवाम् अत्स्यथः (तुम दोनों खाओगे)	यूयम् अत्स्यथ (तुम लोग
उत्तम पुरुष	अहम् अत्स्यामि	आवाम् अत्स्यावः	वयम् अत्स्यामः

(मैं खाऊँगा) (हम दोनों खायेंगे) (हम लोग खायेंगे)

॥ आज्ञार्थक लोट् लकार अद् धातु का रूप ॥

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स : अत्तु वह खाये	तौ अत्ताम् वे दोनों खाये	ते अदन्तु वे लोग खायें
मध्यम पुरुष	त्वम् अद्धि तुम खाओ	युवाम् अत्तम् तुम दोनों खाओ	यूयम् अत्त तुम लोग खाओं
उत्तम पुरुष	अहम् अदानि मैं खाऊँ	आवाम् अदाव हम दोनों खाये	वयम् अदाम हम लोग खायें

॥ भूत काल लङ् लकार अद् धातु का रूप ॥

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स : आदत् वह खाया	तौ आत्ताम् वे दोनो खाये	ते आदन् वे लोग खाये
मध्यम पुरुष	त्वम् आदः तुम खाया	युवाम् आत्तम् तुम दोनों खाये	यूयम् आत्त तुम लोग खाये
उत्तम पुरुष	अहम् आदम् हम खाये	आवाम् आद्व हम दोनो खाये	वयम् आदम् हम लोग खाये

॥ विधिलिङ् लकार अद् धातु का रूप ॥

इस लकार का प्रयोग चाहिए अर्थ में होता है।

पुरुषः	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तम् अद्यात् उसको खाना चाहिए	तौ अद्याताम् उन दोनो को खाना चाहिए	तान् अद्युः उन लोगों को खाना चाहिए
मध्यम पुरुष	त्वाम् अद्याः तुम को खाना चाहिए	युवाम् अद्यातम् तुम दोनों को खाना चाहिए	यूष्मान् अद्यात तुम लोगों को खाना चाहिए
उत्तम पुरुष	माम् अद्याम् हम को खाना चाहिए	आवाम् अद्याव हम दोनों को खाना चाहिए	अस्मान् अद्याम हम लोगों को खाना चाहिए

इस प्रकार पठ् धातु का पौंचों लकारों का रूप सम्पूर्ण हुआ

वर्तमान काल लट् लकार दृश् (देखना) धातु का रूप

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सः पश्यति (वह देखता है)	तौ पश्यतः वे दोनो देखते हैं	ते पश्यन्ति वे लोग देखते हैं
मध्यम पुरुष	त्वं पश्यसि (तुम देखते हो)	युवां पश्यथः (तुम दोनों देखते हो)	यूयं पश्यथ तुम लोग देखते हो
उत्तम पुरुष	अहं पश्यामि मैं देखता हूँ	आवां पश्यावः हम दोनों देखते हैं	वयं पश्यामः हम लोग देखते हैं।

॥ भविष्य काल लृट् लकार पठ् धातु का रूप ॥

काल तीन प्रकार का होता है। वर्तमान , भविष्य और भूत।

वर्तमान काल का रूप आप ने अध्ययन कर लिया है अब भविष्य काल के रूप के विषय में अध्ययन करेंगे।

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स द्रक्ष्यति (वह देखेगा)	तौ द्रक्ष्यतः (वे दोनों देखेंगे)	ते द्रक्ष्यन्ति (वे लोग देखेंगे)
मध्यम पुरुष	त्वं द्रक्ष्यसि (तुम देखोगे)	युवां द्रक्ष्यथः (तुम दोनों देखोगे)	यूयं द्रक्ष्यथ (तुम लोग देखोगें)
उत्तम पुरुष	अहं द्रक्ष्यामि (मैं देखूँगा)	आवां द्रक्ष्यावः (हम दोनों देखेंगे)	वयं द्रक्ष्यामः (हम लोग देखेंगे)

॥ आज्ञार्थक लोट् लकार दृश् धातु का रूप ॥

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स : पश्यतु वह देखे	तौ पश्यताम् वे दोनों देखे	ते पश्यन्तु वे लोग देंखे
मध्यम पुरुष	त्वं पश्य तुम देखो	युवां पश्यतम् तुम दोनों देखों	यूयं पश्यत तुम लोग देखों
उत्तम पुरुष	अहं पश्यानि मैं देखूँ	आवां पश्याव हम दोनो देंखे	वयं पश्याम हम लोग देंखे

॥ भूत काल लङ् लकार दृश् धातु का रूप ॥

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स : अपश्यत् वह देखे	तौ अपश्यताम् वे दोनो देंखे	ते अपश्यन् वे लोग देंखे
मध्यम पुरुष	त्वम् अपश्यः तुम देखो	युवाम् अपश्यतम् तुम दोनों देखो	यूयम् अपश्यत तुम लोग देखों
उत्तम पुरुष	अहम् अपश्यम् हम देखे	आवाम् अपश्याव हम दोनो देंखे	वयम् अपश्याम हम लोग देंखे

॥ विधिलिङ् लकार दृश् धातु का रूप ॥

इस लकार का प्रयोग चाहिए अर्थ में होता है।

पुरुषः	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पश्येत् उसको देखना चाहिए	तौ पश्येताम् उन दोनों को चाहिए	तान् पश्येयुः उन लोगों को देखना चाहिए
मध्यम पुरुष –	त्वां पश्येः तुम को देखना चाहिए	युवां पश्येतम् तुम दोनों को देखना चाहिए	यूष्मान् पश्येत तुम लोगों को देखना चाहिए
उत्तम पुरुष	मां पश्येयम् हम को देखना चाहिए	आवां पश्येव हम दोनो को देखना चाहिए	अस्मान् पश्येम हम लोगों को देखना चाहिए

इस प्रकार दृश् धातु का पौंचों लकारों का रूप सम्पूर्ण हुआ

वर्तमान काल लट् लकार गम् (जाना) धातु का रूप

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सः गच्छति (वह जाता है)	तौ गच्छतः वे दोनो जाते हैं	ते गच्छन्ति वे लोग जाते हैं
मध्यम पुरुष	त्वं गच्छसि (तुम जाते हो)	युवां गच्छथः (तुम दोनों जाते हो)	यूयं गच्छथ तुम लोग जाते हो
उत्तम पुरुष	अहं गच्छामि मैं जाता हूँ	आवां गच्छावः हम दोनों जाते हैं	वयं गच्छामः हम लोग जाते हैं।

॥ भविष्य काल लृट् लकार गम् धातु का रूप ॥

काल तीन प्रकार का होता है। वर्तमान, भविष्य और भूत।

वर्तमान काल का रूप आप ने अध्ययन कर लिया है अब भविष्य काल के रूप के विषय में अध्ययन करेंगे।

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स गमिष्यति (वह जायेगा)	तौ गमिष्यतः (वे दोनों जायेंगे)	ते गमिष्यन्ति (वे लोग जायेंगे)
मध्यम पुरुष	त्वं गमिष्यसि (तुम जाओगे)	युवां गमिष्यथः (तुम दोनों जाओगे)	यूयं गमिष्यथ (तुम लोग जाओगे)
उत्तम पुरुष	अहं गमिष्यामि (मैं जाऊँगा)	आवां गमिष्यावः (हम दोनों जायेंगे)	वयं गमिष्यामः (हम लोग जायेंगे)

॥ आज्ञार्थक लोट् लकार गम् धातु का रूप ॥

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स : गच्छतु वह जावे	तौ गच्छताम् वे दोनों जावे	ते गच्छन्तु वे लोग जावे
मध्यम पुरुष	त्वं गच्छ तुम जाओ	युवां गच्छतम् तुम दोनों जाओ	यूयं गच्छत तुम लोग जाओ
उत्तम पुरुष	अहं गच्छानि मैं जाऊँ	आवां गच्छाव हम दोनो जावें	वयं गच्छाम हम लोग जावें

॥ भूत काल लङ् लकार गम् धातु का रूप ॥

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स : अगच्छत् वह गया	तौ अगच्छताम् वे दोनो गये	ते अगच्छन् वे लोग गये
मध्यम पुरुष	त्वम् अगच्छः तुम गये	युवाम् अगच्छतम् तुम दोनों गये	यूयम् अगच्छत तुम लोग गये
उत्तम पुरुष	अहम् अगच्छम् हम गये	आवाम् अगच्छाव हम दोनो गये	वयम् अगच्छाम हम लोग गये

॥ विधिलिङ् लकार गम् धातु का रूप ॥

इस लकार का प्रयोग चाहिए अर्थ में होता है।

पुरुषः	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तं गच्छेत् उसको जाना चाहिए	तौ गच्छेताम् उन दोनों को जाना चाहिए	तान् गच्छेयुः उन लोगों को जाना चाहिए
मध्यम पुरुष	— त्वां गच्छे : तुम को जाना चाहिए	युवां गच्छेतम् तुम दोनों को जाना चाहिए	यूष्मान् गच्छेत तुम लोगों

को जाना चाहिए

उत्तम पुरुष

मां गच्छेयम्

हम को जाना चाहिए

आवां गच्छेव

हम दोनो को जाना चाहिए

अस्मान् गच्छेम

हम लोगों को जाना

चाहिए

इस प्रकार गम् धातु का पाँचों लकारों का रूप सम्पूर्ण हुआ

वर्तमान काल लट् लकार पच् (पकाना) धातु का रूप

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सः पचति (वह पकाता है)	तौ पचतः वे दोनो पकाते हैं	ते पचन्ति वे लोग पकाते हैं
मध्यम पुरुष	त्वं पचसि (तुम पकाते हो)	युवां पचथः (तुम दोनों पकाते हो)	यूयं पचथ तुम लोग पकाते हो
उत्तम पुरुष	अहं पचामि मैं पकाता हूँ	आवां पचावः हम दोनों पकाते हैं	वयं पचामः हम लोग पकाते हैं।

॥ भविष्य काल लृट् लकार पच् धातु का रूप ॥

काल तीन प्रकार का होता है। वर्तमान, भविष्य और भूत।

वर्तमान काल का रूप आप ने अध्ययन कर लिया है अब भविष्य काल के रूप के विषय में अध्ययन करेंगे।

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स पक्ष्यति (वह पकायेगा)	तौ पक्ष्यतः (वे दोनों पकायेंगे)	ते पक्ष्यन्ति (वे लोग पकायेंगे)
मध्यम पुरुष	त्वं पक्ष्यसि (तुम पकाओगे)	युवां पक्ष्यथः (तुम दोनों पकाओगे)	यूयं पक्ष्यथ (तुम लोग पकाओगे)
उत्तम पुरुष	अहं पक्ष्यामि (मैं पकाऊँगा)	आवां पक्ष्यावः (हम दोनों पकायेंगे)	वयं पक्ष्यामः (हम लोग पकायेंगे)

॥ आज्ञार्थक लोट् लकार पच् धातु का रूप ॥

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स : पचतु वह पकावे	तौ पचताम् वे दोनों पकावे	ते पचन्तु वे लोग पकावे
मध्यम पुरुष	त्वं पच तुम पकाओ	युवां पचतम् तुम दोनों पकाओ	यूयं पचत तुम लोग पकाओ
उत्तम पुरुष	अहं पचानि मैं पकाऊँ	आवां पचाव हम दोनो पकावें	वयं पचाम हम लोग

पकावें

॥ भूत काल लङ् लकार पच् धातु का रूप ॥

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स : अपचत् वह पकाया	तौ अपचताम् वे दोनो पकाये	ते अपचन् वे लोग पकायें
मध्यम पुरुष	त्वम् अपचः तुम पकाये	युवाम् अपचतम् तुम दोनों पकाये	यूयम् अपचत तुम लोग पकाये

उत्तम पुरुष	अहम् अपचम् हम पकाये	आवाम् अपचाव हम दोनो पकाये	वयम् अपचाम हम लोग पकायें
मध्यम पुरुष	त्वं नंस्यसि (तुम नमस्कार करोगे)	युवां नंस्यथः (तुम दोनों नमस्कार करोगे)	यूयं नंस्यथ

॥ विधिलिङ् लकार पच् धातु का रूप ॥

इस लकार का प्रयोग चाहिए अर्थ में होता है।

पुरुषः	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तं पचेत् उसको पकाना चाहिए चाहिए	तौ पचेताम् उन दोनों को पकाना चाहिए	तान् पचेयुः उन लोगों को पकाना चाहिए
मध्यम पुरुष –	त्वां पचे : तुम को पकाना चाहिए चाहिए	युवां पचेतम् तुम दोनों को पकाना चाहिए	यूष्मान् पचेत तुम लोगों को पकाना चाहिए
उत्तम पुरुष	मां पचेयम् हम को पकाना चाहिए चाहिए	आवां पचेव हम दोनो को पकाना चाहिए	अस्मान् पचेम हम लोगों को पकाना चाहिए

इस प्रकार पच् धातु का पाँचों लकारों का रूप सम्पूर्ण हुआ

वर्तमान काल लट् लकार नम् (नमस्कार करना) धातु का रूप

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सः नमति (वह नमस्कार करता है)	तौ नमतः वे दोनो नमस्कार करते हैं	ते नमन्ति वे लोग नमस्कार करते हैं
मध्यम पुरुष	त्वं नमसि (तुम नमस्कार करते हो)	युवां नमथः (तुम दोनों नमस्कार करते हो)	यूयं नमथ तुम लोग नमस्कार करते हो
उत्तम पुरुष	अहं नमामि मैं नमस्कार करता हूँ	आवां नमावः हम दोनों नमस्कार करते हैं	वयं नमामः हम लोग नमस्कार करते हैं।

॥ भविष्य काल लृट् लकार नम् धातु का रूप ॥

काल तीन प्रकार का होता है। वर्तमान, भविष्य और भूत।

वर्तमान काल का रूप आप ने अध्ययन कर लिया है अब भविष्य काल के रूप के विषय में अध्ययन करेंगे।

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स नंस्यति (वह नमस्कार करेगा) (तुम लोग नमस्कार करोगें)	तौ नंस्यतः (वे दोनों नमस्कार करेंगे)	ते नंस्यन्ति (वे लोग नमस्कार करेंगे)
उत्तम पुरुष	अहं नंस्यामि (मैं नमस्कार करूँगा)	आवां नंस्यावः (हम दोनों नमस्कार करेंगे)	वयं नंस्यामः (हम लोग नमस्कार करेंगे)

॥ आज्ञार्थक लोट् लकार नम् धातु का रूप ॥

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स : नमतु वह नमस्कार करे	तौ नमताम् वे दोनों नमस्कार करें	ते नमन्तु वे लोग नमस्कार करें
मध्यम पुरुष	त्वं नम तुम नमस्कार करो	युवां नमतम् तुम दोनों नमस्कार करो	यूयं नमत तुम लोगनमस्कार करो
उत्तम पुरुष	अहं नमानि मै नमस्कार करूँ	आवां नमाव हम दोनो नमस्कार करें	वयं नमाम हम लोग नमस्कार करें

॥ भूत काल लङ् लकार नम् धातु का रूप ॥

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स : अनमत् वह नमस्कार किये	तौ अनमताम् वे दोनो नमस्कार किये	ते अनमन् वे लोग नमस्कार किये
मध्यम पुरुष	त्वम् अनमः तुम नमस्कार किये	युवाम् अनमतम् तुम दोनों नमस्कार किये	यूयम् अनमत तुम लोग नमस्कार किये
उत्तम पुरुष	अहम् अनमम् हम नमस्कार किये	आवाम् अनमाव हम दोनो नमस्कार किये	वयम् अनमाम हम लोग नमस्कार किये

॥ विधिलिङ् लकार नम् धातु का रूप ॥

इस लकार का प्रयोग चाहिए अर्थ में होता है।

पुरुषः	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तं नमेत्	तौ नमेताम्	तान् नमेयुः
मध्यम पुरुष	त्वां नमेः तुम को नमस्कार करना चाहिए,	युवां नमेतम् तुमदोनों को नमस्कार करना चाहिए,	यूष्मान् नमेत तुम लोगों को नमस्कार करना चाहिए
उत्तम पुरुष	मां नमेयम् हम को नमस्कार करना चाहिए,	आवां नमेव हम दोनो को नमस्कार करना चाहिए,	अस्मान् हम लोगों को नमस्कार करना चाहिए

इस प्रकार नम् धातु का पौंचों लकारों का रूप सम्पूर्ण हुआ

वर्तमान काल लट् लकार जि (जीतना) धातु का रूप

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सः जयति (वह जीतता है)	तौ जयतः वे दोनो जीतते हैं	ते जयन्ति वे लोग जीतते हैं

मध्यम पुरुष	त्वं जयसि (तुम जीतते हो)	युवां जयथः (तुम दोनों जीतते हो)	यूयं जयथ तुम लोग जीतते हो
उत्तम पुरुष	अहं जयामि मैं जीतता हूँ	आवां जयावः हम दोनो जीतते हैं	वयं जयामः हम लोग जीतते हैं।

॥ भविष्य काल लृट् लकार जी धातु का रूप ॥

काल तीन प्रकार का होता है। वर्तमान, भविष्य और भूत।
वर्तमान काल का रूप आप ने अध्ययन कर लिया है अब भविष्य काल के रूप के विषय में अध्ययन करेंगे।

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स जेष्यति (वह जीतेगा)	तौ जेष्यतः (वे दोनों जीतेंगे)	ते जेष्यन्ति (वे लोग जीतेंगे)
मध्यम पुरुष	त्वं जेष्यसि (तुम जीतोगे)	युवां जेष्यथः (तुम दोनो जीतोगे)	यूयं जेष्यथ (तुम लोग जीतोगे)
उत्तम पुरुष	अहं जेष्यामि (मैं जीतूँगा)	आवां जेष्यावः (हम दोनों जीतेंगे)	वयं जेष्यामः (हम लोग जीतेंगे)

॥ आज्ञार्थक लोट् लकार जी धातु का रूप ॥

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स : जयतु वह जीते	तौ जयताम् वे दोनों जीते	ते जयन्तु वे लोग जीते
मध्यम पुरुष	त्वं जय तुम जीतो	युवां जयमतम् तुम दोनों जीतो	यूयं जयत तुम लोग जीतो
उत्तम पुरुष	अहं जयानि मैं जीतूँ	आवां जयाव हम दोनो जीते	वयं जयाम हम लोग जीते

॥ भूत काल लङ् लकार जी धातु का रूप ॥

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स : अजयत् वह जीता	तौ अजयताम् वे दोनो जीते	ते अजयन् वे लोग जीते
मध्यम पुरुष	त्वम् अजयः तुम जीते	युवाम् अजयतम् तुम दोनों जीते	यूयम् अनम जयत तुम लोग जीते
उत्तम पुरुष	अहम् अजयम् हम जीते	आवाम् अजयाव हम दोनो जीते	वयम् अजयाम हम लोग जीते

॥ विधिलिङ् लकार जी धातु का रूप ॥

इस लकार का प्रयोग चाहिए अर्थ में होता है।

पुरुषः	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तं जयेत् उसको जीतना चाहिए,	तौ जयेताम् उन दोनों को जीतना चाहिए,	तान् जयेयुः उन लोगों को जीतना चाहिए
मध्यम पुरुष	— त्वां जयेः तुम को जीतना चाहिए,	युवां जयेतम् तुम दोनों को जीतना चाहिए,	यूष्मान् जयेत तुम लोगों को जीतना चाहिए

उत्तम पुरुष मां जयेयम् आवां जयेव अस्मान् जयेम
हम को जीतना चाहिए, हम दोनो को जीतना चाहिए, हम
लोगों को जीतना चाहिए

इस प्रकार जी धातु का पाँचों लकारों का रूप सम्पूर्ण हुआ

5.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
भवति	होता है।	भवत	होवे
भवसि	होते हो	भव	होओ
भवामि	होता हूँ।	भवानि	होउ
भविष्यात्	होगा	अभवत्	हुआ

शब्द	अर्थ
भविष्यसि	होगे
भविष्यामि	मैं होउगा
पचेत्	उसे पकाना चाहिए
पचेयुः	उन लोगों को पकाना चाहिए
यूष्मान् पचेत	तुम लोगों को पकाना चाहिए
आवां पचेव	हम दोनो को पकाना चाहिए
अस्मान् पचेम	हम लोगों को पकाना चाहिए
मां पचेयम्	हम को पकाना चाहिए
त्वां पचे :	तुम को पकाना चाहिए
युवाम् अजयतम्	तुम दोनों जीते
वयम् अजयाम	हम लोग जीते
युवाम् अजयतम्	तुम लोग जीते
युवां पचेतम्	तुम दोनों को पकाना चाहिए
भवेत्	होना चाहिए

अभ्यास प्रश्न 1

- 1 पुरुष कितने होते हैं?
- 2 – भू धातु प्रथम पुरुष एकवचन में कौन सा रूप होगा?
- 3– पा धातु प्रथम पुरुष द्विवचन में कौन सा रूप होगा?
- 4– पा धातु लृट् लकार प्रथम पुरुष द्विवचन में कौन सा रूप होगा?
- 5– भू धातु अर्थ क्या है ?
- 6– वर्तमान काल में किस लकार का प्रयोग होता है ?
- 7– भविष्यकाल में किस लकार का प्रयोग होता है ?
- 8– चाहिये अर्थ में किस लकार का प्रयोग होता है ?
- 9– आज्ञा अर्थ में किस लकार का प्रयोग होता है ?

अभ्यास प्रश्न 2

बहुविकल्पीय प्रश्न

- 1– लट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में रूप होता है—

- (क) – भवति (ख) – भवतः
 (ग) – भवन्ति (घ) – भवसि
2. लृट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन में रूप होता है—
 (क)– भविष्यति (ख) – भविष्यामि
 (ख)– भविष्यावः (घ) – भवसि
- 3– भूत काल में लकार का प्रयोग होता है—
 (क) लृट् (ख) लोट्
 (ग) लङ् (घ) लिङ्
- 4– लिङ् लकार मध्यम पुरुष एकवचन का रूप है—
 (क) भवेत् (ख) भवेताम्
 (ग) भवेः (घ) भवेतम्
- 5– अस्मद् उपपद रहने पर प्रयोग होता है—
 (क) मध्यम पुरुष (ख) प्रथम पुरुष
 (ग) उत्तम पुरुष (घ) कुछ भी नहीं

5.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप जान चुके हैं कि धातु रूप किस प्रकार चलता है इसकी आवश्यकता संस्कृत में अनुवाद बनाने के लिए किया गया है। इस इकाई में पांच लकारों में भू धातु की रूप चलाया गया है 1–लट् लकार 2–लृट् 3–लोट् , 4–लङ्, 5–विधि लिङ् । लकार तो दश होते हैं। लेकिन सामान्य ज्ञान के लिए इन्हीं पांच लकारों का ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक बताया गया है। आत्मने पदी , परस्मैपदी तथा उभय पदी धातु तीन प्रकार के होते हैं। किन्तु इसमें परस्मैपदी धातुओं का वर्णन किया गया है पुरुष भी तीन प्रकार के होते हैं प्रथम पुरुष , मध्यम पुरुष तथा उत्तम पुरुष । इन तीनों पुरुषों का सम्यग् रूप से वर्णन किया गया है।

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1–

- 1– पुरुष तीन होते हैं ।
- 2– भू धातु प्रथम पुरुष एकवचन में भवति रूप होगा ।
- 3– पा धातु प्रथम पुरुष द्विवचन में पिबतः रूप होगा ।
- 4– पा धातु लृट् लकार प्रथम पुरुष द्विवचन में पास्यतः रूप होगा ।
- 5– भू धातु अर्थ होना है ।
- 6– वर्तमान काल में लट् लकार का प्रयोग होता है ।
- 7– भविष्यकाल में लृट् लकार का प्रयोग होता है ।
- 8– चाहिये अर्थ में विधिलिङ् लकार का प्रयोग होता है ।
- 9– भविष्यकाल में लोट् लकार का प्रयोग होता है ।

अभ्यास प्रश्न 2–

बहुविकल्पीय प्रश्न— 1– (घ) 2– (ख) 3– (ग) 4– (ग) 5– (ग)

5.7 सदर्थ ग्रन्थ सूची

1–ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
लघुसिद्धान्त कौमुदी	सुरेन्द्र शास्त्री	चौखम्भा संस्कृत

		भारती वाराणसी
2-वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी .	भट्टोजिदीक्षित	शारदा निकेतन वी, कस्तुरवानगर सिगरा वाराणसी
3- महाभाष्यम्	पतंजलि	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

5. 8 उपयोगी पुस्तकें

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
लघुसिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

5.9. निबन्धात्मक प्रश्न

1. पा धातु के लृट् लकार के तीनों पुरुषों सभी वचनों का उदाहरण सहित रूप लिखिये

खण्ड चार-तर्क संग्रह

इकाई 1. न्यायदर्शन का संक्षिप्त परिचय, अन्नभट्ट एवं कर्तृत्व

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 न्यायदर्शन का संक्षिप्त परिचय अन्नभट्ट एवं कर्तृत्व

1.4 सारांश

1.5 अभ्यास प्रश्न—उत्तर

1.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.7 उपयोगी पुस्तके

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में न्याय का संक्षिप्त परिचय, तर्कसंग्रहकार अन्नम्भट्ट का जीवन वृत्त तथा तर्कसंग्रह का विशेष परिचय वर्णनीय है। न्याय के संक्षिप्त परिचय में न्याय का, अर्थ, साहित्य, प्राचीन एवं न्याय न्यायवैशेषिक की साहित्य परम्परा, दोनों का माहेश्वर सम्प्रदाय होना बतलाकर न्याय के 16 पदार्थों का संक्षिप्त परिचय मात्र रखा गया है। आचार्य अन्नम्भट्ट का जीवन वृत्त, कृतियाँ और तर्कसंग्रह का परिचय भी यथाक्रम विवेचक है।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप निम्न तथ्यों से परिचित हो सकेंगे—

1. न्याय का अर्थ, एवं साहित्य परम्परा क्या है?
2. इसकी आचार्य परम्परा और साहित्य कौन-कौन से है?
3. न्याय में 16 पदार्थ का स्वरूप क्या है?
4. अन्नम्भट्ट का जीवन वृत्त एवं तर्क संग्रह क्या है?
5. इसके अध्ययन से आप अच्छे तर्क शास्त्री हो सकते हैं ?

1.3 न्यायदर्शन का संक्षिप्त परिचय अन्नम्भट्ट एवं कर्तृत्व

न्याय का अर्थ एवं साहित्य – महर्षि गौतम ने न्याय दर्शन का प्रवर्तन न्यायसूत्र लिखकर किया है। न्याय का अर्थ है—प्रमाणों के द्वारा अर्थ का परीक्षण/प्रमाणों के द्वारा अर्थ परीक्षण न्याय है ऐसा न्याय भाष्यकार वात्स्यायन का मत है। उन्होंने ही यह भी कहा है कि न्याय विद्या विशेष रूप से अनुमान का विवेचन करती है। अनुमान प्रत्यक्ष और आगम के आश्रित होता है वही अन्वीक्षा है, क्योंकि वही प्रत्यक्ष और आगम के द्वारा ईक्षित का अन्वीक्षण होता है। उस अन्वीक्षा से जो प्रवृत्ति होती है वह आन्वीक्षिकी, न्यायविद्या और न्यायशास्त्र है। वात्स्यायन ने पंचावयव अनुमान को परमन्याय भी कहा है। न्याय का लक्ष्य निःश्रेयस प्राप्ति है।

न्याय दर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम को अक्षपाद भी कहा जाता है इनका न्यायसूत्र 5 अध्याय में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय में दो-दो आह्निक है। इसका प्रथमसूत्र है – प्रमाण-प्रमेय.....। जिसमें षोडश पदार्थों का सकीर्तन है। न्यायसूत्र के बाद इस पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये, जैसे—वात्स्यायन का न्यायभाष्य, उद्योकर का न्यायवार्तिक वाचस्पति की न्याय वार्तिक-तात्पर्य टीका, उदयन् की न्याय-वार्तिक-तात्पर्य-परिशुद्धि तथा कुसुमांजलि, जयन्त की न्याय मज्जरी। इन ग्रन्थों में न्यायसूत्र के विरुद्ध आक्षेपों का परिहार किया गया है। प्राचीन समय का न्याय प्राचीनन्याय कहा गया गया है वारहवी शताब्दी में उत्पन्न हुए गंगेश उपाध्याय ने महर्षि गौतम के केवल प्रत्यक्षानुमानोपमान शब्दाः प्रमाणानि इय सूत्र पर चार खण्डों में तत्त्वचिन्तामणि नामक ग्रन्थ लिखकर नव्यन्याय का प्रवर्तन किया। इनकी शैली को छिन्नावच्छिन्न शैली कहा जाता है। तत्त्वचिन्तामणि पर वर्धमान की प्रकाश तथा पक्षधर मिश्र की आलोक नामक टीकाएँ विशेष प्रसिद्ध हैं। गंगेश वर्धमान एवं पक्षधर मिश्र के ग्रन्थों पर अनेको भूमिकाये लिखा गया जिनसे नव्यन्याय का मिथिला शाखा उत्पन्न हुई। पक्षधर मिश्र के शिष्य वासुदेव सार्वभौम ने वंगाल के नवद्वीप में लगभग 1600 ई० में नव्यन्याय की नवद्वीपशाखा का सूत्रपात किया। इस शास्त्र में वैय्यायिक शिरोमणि विभूतिया है। रघुनाथ शिरोमणि, जगदीश तथा गदाधरभट्टाचार्य। तत्त्वचिन्ता मणि पर रघुनाथ

शिरोमणि की दीधिति टीका लिखा है। गदाधर भट्टाचार्य ने दीधिति पर गदाधर लिखा/जगदीश दीधिति पर लिखी टीका जगदीशी है। नव्यन्याय में न्यायदर्शन के तर्कविज्ञान सम्बन्धी विषयों का विशद विवेचन हुआ है। नव्यन्याय के उत्थान से प्राचीन न्याय की लोक प्रियता घटी। नव्यन्याय के उत्थान तथा प्रचार न्याय दर्शन तथा वैशेषिक मिलकर समानतन्त्र हो गये। वैशेषिक की तत्वभीमासा को भाष्यकार तात्स्यायन ने न्याय से विरुद्ध बताकर दोनों के समानतन्त्र होने के विचार का सूत्रपात किया उनका कथन भी उद्घृत करना उचित होगा—अस्त्यन्यदपिद्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायप्रमेयम्, तद् भेदेनचाऽपरिसंख्येयम्। न्याय –न्यायसू 1.1.9 परभाष्य न्यायवैशेषिक मात्र के प्रसिद्ध ग्रन्थों में उल्लेखनीय है—विश्वनाथ पंचानन की न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, अन्नम्भट्ट का तर्कसंग्रह। आचार्य केशव मिश्र की तर्कभाषा, लौगाक्षि भास्कर की तर्ककौमुदी। प्रकरण ग्रन्थों के विशेष ज्ञान के लिए श्री निवास शास्त्री की तर्कभाषा की टीका का विषय प्रवेश देखना चाहिए। न्याय और वैशेषिक के प्रवर्तक आचार्य गौतम और कनाद दोनों सोमशर्मा नामक गुरु के शिष्य थे। ये सोमशर्मा शिव के अवतार भूत थे। शिव के अवतार से प्रवर्तित ये दोनों महेश्वर सम्प्रदाय भी माने जाते हैं। (भण्डारकर, तर्कभाषा—इन्द्रोडक्शन पृष्ठ 10)

1.3.2 षोडश पदार्थ

महर्षि गौतम ने न्याय सूत्र में 16 पदार्थों का नाम संकीर्तन प्रथम सूच में ही किया है।— 16 पदार्थ हैं प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, जाति और निग्रहस्थान।

1. प्रमाण— यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के साधन को प्रमाण कहते हैं। न्यायदर्शन में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द, ये चार प्रमाण गये हैं। इस पर तर्कसंग्रह में बताया जायेगा।

2. प्रमेय – प्रमाण के विषय को प्रमेय कहते हैं। न्याय दर्शन 12 प्रमेयों को स्वीकार करता है। आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष प्रेत्यभाव (पुर्नजन्म), फल (सुख और दुःख का साक्षात्कार) एवं अपवर्ग।

3. संशय—एक ही वस्तु के नाना विरोधी धर्मों की उत्पत्ति के कारण मन में जो विमर्श उत्पन्न होता है उसे संशय कहते हैं। जैसे मन्द अन्धकार में दूरस्थ वस्तु के विषय में यह विमर्श होना कि वह स्थाणु है या पुरुष, तब मन की वह अवस्था संशय की कोटि में आती है।

4. प्रयोजन – जिससे प्रयुक्त हुआ व्यक्ति प्रवृत्त होता है, वह प्रयोजन है और वह सुख की प्राप्ति तथा दुःख की हानि ही है।

5. दृष्टान्त— वादो प्रतिवादों की सहमति का विषय जो अर्थ है वह दृष्टान्त है। वह दो प्रकार का होता है एक तो साधर्म्य दृष्टान्त तथा दूसरा वैहार्म्यदृष्टान्त।

6. सिद्धान्त – प्रामाणिक रूप से माना गया अर्थ सिद्धान्त है। वह सर्वतन्त्र सिद्धान्त, प्रतितन्त्र सिद्धान्त, अधिकरण सिद्धान्त तथा अभ्युपगम सिद्धान्त के भेद से चार प्रकार होता है।

7. अवयव – अनुमान वाक्य के अंश अवयव है वे 5 हैं प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। साध्यधर्म से विशिष्ट पक्ष का कथन करने वाला प्रतिज्ञा है। तृतीया विभक्ति वाला या पंचमी विभक्ति वाला लिङ्म् का प्रतिपादक बचन हेतु है। व्याप्ति के साथ दृष्टान्त का कथन उदाहरण है। पक्ष में लिङ्म् का उपसंहार करने वाला बचन उपनय है और पक्ष साध्य का उपसंहार करने वाला वचन निगमन है।

8. तर्क – प्रतिपाद्य विषय को सिद्ध करने के लिए उसकी विपरीत कल्पना में जो दोष दिखाया जाता है उसे तर्क कहते हैं। तत्वज्ञान का प्राप्ति में वह तत्वों का सहयोगी है।
9. निर्णय – निश्चित ज्ञान ही निर्णय है और वह प्रमाणों का फल है।
10. वाद – तत्व को जानने के इच्छुक लोगों की कथा बाद है वह बाद आठ निग्रह स्थानों का अधिकरण (विषय क्षेत्र) होता है।
11. जल्प – जिसमें (पक्ष तथा प्रतिपक्ष) दोनों को सिद्ध किया जाता है वह विजय के इच्छुक जनों की कथा जल्प है और वह यथा सम्भव सभी निग्रह स्थानों का अधिकरण होता है। दूसरे का पक्ष खण्डित हो जाने पर अपने पक्ष की सिद्धि करने में इसकी समाप्ति होती है।
12. वितण्डा – जल्प ही जिसमें अपने पक्ष की स्थापना नहीं की जाती है अपितु परपक्ष का खण्डन मात्र में पर्यवसान हो वितण्डा कहा जाता है।
13. हेत्वाभास – उस हेतु को कहा जाता है जो वस्तुतः हेतु नहीं है लेकिन हेतु, जैसे प्रतीत होता है। इन्हे अनुमान के दोष के रूप में भी माना जाता है। ये पाच है सव्यभिचार, सतप्रतिपक्ष, विरुद्ध, असिद्ध और वाधित।
14. छल – अन्य अभिप्राय से प्रयुक्त शब्द का अन्य अर्थ मानकर दोष दिखलाना छल है। जैसे यह विधार्थी नव कम्बल वाला है इस वाक्य में नवीन के अर्थ में प्रयुक्त नव शब्द का सस्यापरक अर्थ करके दोष दिखलाना कि इसके नौ कम्बल नहीं है। यह छल है।
15. जाति – प्रतिवादी कोई दोष रहितयुक्ति का भी साधर्म्य एवं वैधर्म्य के आधार पर किसी दुष्ट अनुमान के द्वारा खण्डन करना ही जाति है। तर्कशाषा में इसे असद् उत्तर कहा गया है। इसके भेदों के ज्ञान के लिए तर्कभाषा का अध्ययन करना चाहिए।
16. निग्रह स्थान – वाद – विवाद में जहाँ पराजय का स्थान पहुँच जाता है, उसे निग्रह कहते हैं। इसके दो कारण हैं। गलत ज्ञान या अज्ञानता। इसके न्यून अधिक अपसिद्ध आदि भेद तर्कभाषा में देखें।
- 1.3.3 अन्नम्भट्ट का जीवन वृत्त – अन्नम्भट्ट वस्तुतः किस समय और किस देश में उत्पन्न हुए इसके विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों के अनुसार अन्नम्भट्ट तैलंग ब्राह्मण थे उनका जन्मभूमि गरिक पाद नामक गाँव था जो उस समय यवन राज निजाम आली के अधिकार क्षेत्र में था वह अन्नम्भट्ट चालुक्य नरेश के समय 15 शताब्दी ई0 में उत्पन्न हुए और अत्यन्त परिश्रम पूर्वक 12 वर्षों में कौडिन्यपुर नामक स्थान पर न्याय शास्त्र का अध्ययन करने के उपरान्त न्यायायिकों में प्रसिद्धि पाये। उन्होंने अपने जन्मभूमि पर कोई पाठशाला भी बनाया था, जहाँ पर वह विद्यार्थियों को तर्कसंग्रह, तर्कदीपिका, सिद्धान्त मुक्तावली और गादाधरी पढ़ाया करते थे एक बार उन्होंने मल्लिकार्जुन तीर्थ का दर्शन भी किया था। महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष में उल्लिखित इस विचार से श्री हरिहर शास्त्री अपनी असहमति प्रकट किये हैं।
- वेवर महोदय संस्कृत भाषा के पाश्चात्य विद्वान रहे हैं। उन्होंने तर्क संग्रह के लेखन का समय 1425 ई0 पूर्व बताया है (वेवर्स वरलिंग केटलाग नं0 683 पृष्ठ 203) इसके आलोक में उन्होंने एक श्लोक वहा पर सन्निवेशित किया है “तपोमास्यसिते कृष्णे चन्द्रनागाब्धिचन्द्रकैः। वाराणस्यां मिते वर्षे स्वार्थमिन्दुर्लिलेख वै।। वेवर ने 1481 ई0 के स्थान पर 1425 ई0 तर्क संग्रह के लेखन का समय लिख दिया किन्तु वह उचित नहीं है। कुछ विद्वान अब्धिशब्द से 7 संख्या का बोध स्वीकार करते हैं न कि चार का। किन्तु संस्कृत वाङ्मय में अब्धि चार का वाचक है न कि 7 का। हरिहर शास्त्री ने तर्कसंग्रह की भूमिका के बारहवें पृष्ठ पर अन्नम्भट्ट विषय में कुछ

अन्य उपयोगी जानकारियाँ उपलब्ध कराया हैं उसे वही से साभार दिखाया जा रहा है।

अन्नम्भट्टः खलु सूनुरासीदद्वैतविद्याचार्यराघवसोमयाजिकुलावतंसतिरुमलस्येति तत्कृत 'दीपिका' ऽन्तिलेखेनाऽवगम्येते। शर्मण्यदेशीयविद्वत्प्रवरेण ज्याकविना समुपलब्धायां 'तर्कसंग्रहदीपिकायां' 1634 शाकाब्दे (1712 खृ0)लिखितायाम्—

“इति

श्रीमदद्वैतविद्याचार्य—श्रीमदराघवसोमयाजिकुलावतंस—श्रीमतिरुमलाचार्यवर्यस्य सूनुनाऽन्नम्भट्टेन कृता स्वकृततर्कसंग्रहस्य दीपिका सम्पूर्णा।” इत्येवमक्षराणि सन्ति।

अन्ये तु—“एतादृशस्य चास्य तर्कसंग्रहस्य रचयिता श्रीमान् अन्नम्भट्टः आन्ध्रेषु कृष्णाया नद्याः पावनेन पवनेन परिशीतलं किमपि भूखण्डमात्मना मण्डयामासेत्यवगम्येते। 'अन्नम्भट्ट' इति प्रसिद्धाभिजनविरुदा ऋग्वेदिनो द्विजन्मानः कृष्णातीरोपान्तवर्तिनि केशवपुरामिधे ग्रामे सांप्रतमपि सन्तीति श्रृणुमः। अयं हि पण्डितमणिः श्रीराघवसोमयाजिकुले समुत्पन्नश्रीतिरुमलाचार्यवर्यस्य सूनुरित्यवगच्छामः, यतोऽनेनैव महापण्डितेन विरचिते कैयटव्याख्याने इति श्रीमहामहोपाध्यायाद्वैतविद्याचार्यराघवसोमयाजिकुलावतंसश्रीतिरुमलाचार्यवर्यस्य सूनोरन्नम्भट्टस्य कृतिषु भाष्यप्रदीपोद्घोतने' इत्येवं तत्तदाहिनकावसाने वर्णावलिरवलोक्यते। अस्य च अग्रजो महापण्डितो रामकृष्णभट्टः, येन सिद्धान्तकौमुद्याः सिद्धान्तरत्नाकरं नाम व्याख्यानमाविष्कुरुता नागेशभट्टादीनामपि मार्गदर्शना बभूवे इति कतिचन कथयन्ति। मुल्लिनाथात्परस्तात् पुरस्ताच्च भट्टोजिदीक्षितादयं महाशय आसीदिति तु विश्वसन्ति बहवः।” — इति व्याहरन्ति तच्चिन्त्यम्।

अनेन च पण्डितप्रकाण्डेनाऽन्नम्भट्टेन 'मिताक्षरा' 'भाष्यप्रदीपोद्घोतनम्', इत्यमिधेयं व्याख्यानद्वयमपि प्राणीयत। तत्र 'मिताक्षरा' नाम कतमस्य ग्रन्थस्य व्याख्यानरूपेत्यत्रास्ति विप्रतिपत्तिः। सा च बादरायणकृतब्रह्मासूत्रटीति केचित्। अन्ये तु सा पाणिनीयसूत्रवृत्तिरिति मन्यन्ते।

1.3.4 तर्कसंग्रह का परिचय — तर्कसंग्रह अन्नम्भट्ट की अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है। यह एक प्रकरण ग्रन्थ है। प्रकरण में शास्त्र के समस्त प्रतिपाद्य विषय का प्रतिपादन नहीं किया जाता। केवल कतिपय विषयों का प्रतिपादन किया जाता है जिनका विवेचन शास्त्र से भिन्न प्रकार का होता है। (शास्त्रैकदेशसम्बद्धं शास्त्रकार्यान्तरे स्थितम्/आहुः प्रकरणं नाम ग्रन्थभेदं विपश्चितः।।) तर्कसंग्रह की विषय वस्तु में वैशेषिक दर्शन की तत्त्वमीमांसा है और न्याय दर्शन की ज्ञानमीमांसा। इसमें अत्यन्त ही वैज्ञानिक पद्धति से मंगलाचरण के अनन्तर सात पदार्थों का नाम संकीर्तन है। सात पदार्थ हैं— द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष समवाय और अभाव। अनन्तर द्रव्यखण्ड में सम्पूर्ण 9 द्रव्यों पृथ्वी, जल, तेज, वायु, अग्नि, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन का लक्षण एवं भेद पर प्रकाश डाला गया है। गुण प्रकरण में चौबीस गुणों — रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग विभाग, परत्व, अपत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार के लक्षण एवं भेदादि का निरूपण है। गुणों में बुद्धि की विशेष महिमा है। ज्ञान से इच्छा और उसी से व्यवहार प्रवृत्ति होती है। बुद्धि गुण के विश्लेषण में न्याय की ज्ञानमीमांसा के अभिनव स्वरूप का दिग्दर्शन हुआ है इसी में अनुभव स्मृति, अयथार्थ और यथार्थ अनुभव, यथार्थ अनुभव के प्रत्यक्ष अनुमिति, उपमिति, शाब्द भेद, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द प्रमाण सभेद वर्णित है। प्रमा का करण बताने के पूर्व ही त्रिविध कारण भी वर्णित है। गुणों के बाद लक्षण सहित कर्म के भेद, सामान्य का लक्षण भेद, विशेष का स्वरूप, समवाय का स्वरूप, तथा अभाव के चार भेदों का लक्षण करके ग्रन्थ का उपसंहार किया गया है। अन्त में आचार्य ने इस ग्रन्थ का प्रयोजन बतलाते हुए कहा है —

काणदन्त्यायमतयोर्बालव्युत्पत्तिसिद्धये।। अन्नम्भट्टेन विदुषा रचितस्तर्कसंग्रहः।। अर्थात् विद्वान् अन्नम्भट्ट द्वारा लिखित तर्क संग्रह बच्चों को न्याय और काणादमत का ज्ञान कराने के लिए है।

तर्क संग्रह पर बहुत सी टीकाये लिखी गयी है उनका संख्या निर्देश आवश्यक है

1.	तर्कदीपिका	अन्नम्भट्ट
2.	न्यायबोधिनी	गोवर्धन मिश्र
3.	सिद्धान्तचन्द्रोदयः	श्रीकृष्णधूर्जटिदीक्षित
4.	पदकृत्यम्	चन्द्रजसिंह
5.	तर्कसंग्रहतत्त्वप्रकाशः	नीकण्ठ
6.	तर्कसंग्रह टिप्पणी	पट्टाभिराम
7.	तर्कसंग्रह चन्दिका	मुकुन्दभट्ट
8.	वाक्यवृत्तिः	मेरुशास्त्री
9.	तर्कसंग्रहटीका	अनन्तनारायण
10.	तर्कफविका	क्षमाकल्याण
11.	न्यायार्थलघुबोधिनी	गोवर्धनरंगाचार्य
12.	तर्कसंग्रहटीका	गौरीकान्त
13.	तर्कसंग्रहतरंगिणी	विन्ध्येश्वरी प्रसाद
14.	तर्कचन्द्रिका	वैद्यनाथ
15.	तर्कशारदा	योगेन्द्र कुमार

इनके अलावा एक टीका तर्कसंग्रह वाक्यार्थ निरुक्ति अज्ञात लेखक की मिलती है।

अभ्यास प्रश्न –

1.	प्रमाणों से अर्थ का परीक्षण है।		
	अ. वैशेषिक	ब. न्याय	
	स. साख्य	द. योग	
2.	न्याय के प्रवर्तक है।		
	अ. गदाधर	ब. अन्नम्भट्ट	
	स. गौतम	द. कपिल	
3.	न्यायसूत्र में कुल अध्याय है।		
	अ. 4	ब. 3	
	स. 2	द. 5	
4.	न्याय भाष्यकार है।		
	अ. उदयन	ब. विश्वनाथ	
	स. वात्स्यायन	द. गदाधर	
5.	सुमेलित है नव्यन्याय के प्रवर्तक हैं।		
	अ. गंगेश उपाध्याय	ब. पक्षधर मिश्र	
	स. वासुदेश सार्वभौम	द. वाचस्पति	
6.	न्याय में पदार्थों की संख्या है।		
	अ. 16	ब. 26	
	स. 7	द. 10	
7.	न्याय में कितने प्रमाण स्वीकृत हैं।		
	अ. 2	ब. 4	
	स. 3	द. 6	
8.	तत्त्वचिन्तामणि रचना है।		

	अ. गंगेश की	ब. वात्स्यायन की
	स. उधोत्कर की	द. लौगमक्षि भास्कर
9.	न्याय में प्रमेय है।	
	अ. 10	ब. 8
	स. 12	द. 6
10.	जिससे प्रयुक्त हुआ व्यक्ति प्रवृत्त होता है वह है।	
	अ. संशय	ब. दृष्टान्त
	स. छल	द. प्रयोजन
11.	पक्ष में लिङ्ग का उपसंहार करने वाला वचन है।	
	अ. उपनय	ब. निगमन
	स. प्रतिज्ञा	द. हेतु
12.	निश्चित ज्ञान है –	
	अ. निर्णय	ब. वितण्डा
	स. जल	द. छल
13.	तर्कसंग्रह ग्रन्थ है।	
	अ. सूत्र	ब. भाष्य
	स. वार्तिक	द. प्रकरण

1.4 सारांश

न्यायदर्शन के प्रवर्तक आचार्य गौतम है उनकी रचना है न्यायसूत्र। न्यायसूत्र पर वात्स्यायन ने भाष्य लिखा इस पर वार्तिक आदि लिखे गये गंगेश उपाध्याय ने नब्य न्याय का सूत्रपात तत्वचिन्तामणि से किया। न्यायदर्शन सोलह पदार्थों को मान्यता देता है जो ज्ञान की प्रक्रिया के अंग है। अन्नम्भट्ट लिखित तर्कसंग्रह एक प्रकरण ग्रंथ है अन्नम्भट्ट, तैलंग ब्राह्मण थे। तर्कसंग्रह वैशेषिक की प्रधानतावाला प्रकरण ग्रंथ है इस पर न्याय वोधिनी आदि बहुत सी टीकाये लिखी गयी। यह अत्यन्त ही सरल एवं न्याय वैशेषिक के सिद्धन्तों में बालकों को प्रवेश कराने में समर्थ ग्रंथ है।

1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.	ब	2.	स	3.	द	4.	स	5.	अ	6
अ	7.	ब	8	अ	9	स	10.	द	11	अ
12	अ	13.	द							

1.6 संदर्भ ग्रन्थसूची

इस इकाई के लेखन में निम्न ग्रन्थों से सहायता ली गयी है।

1. भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण डा० संगम लाल पाण्डेय सेन्द्रल पब्लिसिंग हाउस इलाहाबाद
2. भारतीय दर्शन की रूप रेखा डा० बद्रीनाथ सिंह आशा प्रकाशन वाराणसी
3. भारतीय दर्शन नन्द किशोर देवराज
4. तर्कसंग्रह श्री हरिहर शास्त्री

1.7 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

इस इकाई का अध्ययन करने के लिए आप निम्न ग्रंथों का सहयोग ले सकते हैं।

1. भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण डा० संगम लाल पाण्डेय सेन्द्रल पब्लिसिंग हाउस इलाहाबाद
2. भारतीय दर्शन की रूप रेखा डा० बद्रीनाथ सिंह आशा प्रकाशन वाराणसी
3. तर्कसंग्रह श्री हरिहर शास्त्री

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. न्यायदर्शन का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. अन्नम्भट्ट का व्यक्तित्व कृतित्व का परिचय दीजिए।

इकाई 2 - तर्क संग्रह ,मंगलाचरण से शब्द लक्षण वर्णन तक

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 मंगलाचरण से शब्द लक्षण वर्णन तक

2.3.1 मंगलाचरण व पदार्थोद्देश प्रकरण

2.3.2 गुण प्रकरण

2.4 सांराश

2.5 अभ्यास प्रश्नों की उत्तरमाला

4.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.7 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

आचार्य अन्नम्भट्ट की रचना तर्क संग्रह एक प्रकरण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का उद्देश्य बालकों को न्याय एवं वैशेषिक के सिद्धान्तों का सरलता पूर्वक ज्ञान कराना है। इस इकाई में ग्रन्थ के मंगलाचरण, पदार्थोद्देश प्रकरण द्रव्य का सभेद लक्षण व भेद पर विचार किया गया है। इसके साथ ही गुण प्रकरण में रूप रस गन्ध स्पर्श संख्या, परिमाण, पृथक्त्व संयोग विभाग परत्व अपरत्व गुरुत्व द्रवत्व स्नेह और शब्द के स्वरूप पर विचार किया गया है। पदार्थोद्देश प्रकरण में सात पदार्थों का नाम संकीर्तन किया गया है।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप निम्न तथ्यों से परिचित होंगे –

1. मंगलाचरण का प्रयोजन क्या है ?
2. वैशेषिक दर्शन में मान्य सात पदार्थ कौन-कौन हैं ?
3. द्रव्य की संख्या व स्वरूप क्या है ? और वर्णित गुणों का स्वरूप क्या है ? आदि

2.3 तर्क संग्रह मंगलाचरण से शब्द लक्षण वर्णन तक

इस इकाई में मंगलाचरण, पदार्थोद्देश, द्रव्य प्रकरण और गुण प्रकरण पर प्रकरण निर्धारित है।

2.3.1 मंगलाचरण व पदार्थोद्देश प्रकरण:

निधाय हृदि विश्वेशं विधाय गुरु वन्दनम् ।

बालानां सुखबोधाय क्रियते तर्कसंग्रहः ॥

अर्थ:— जगत के नियंता भगवान शिव को हृदय में स्थापित करके, विद्या गुरु को नमस्कार करके बालको को सुख से पदार्थों का बोध कराने के लिए अन्नम्भट्ट के द्वारा तर्क संग्रह रचा जा रहा है ।

शारदा व्याख्या:— श्री गणपति गुणगन कछु गाऊ। मातु शारदा सतत मनाँऊ। गुरु भगवन्त चरण रज आँजू इनकी कृपा शारदा साजू ॥ विश्वेशं हृदि निधाय— विश्व के ईश अर्थात् जगन्नियन्ता भगवान शिव को हृदय में धारण कर इसे कहने का रहस्य है— आरोग्यं भाष्करादिच्छे च्छियमिच्छेद्धुता शनात् ।

ईश्वराज्ज्ञानभन्विच्छेन्नोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् ॥ (लौगाक्षिस्मृति)

गुरुवन्दनमविधाम — गुरु जी को नमस्कार करके । यस्य देवे परा भवत्तर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्मै कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मनः (श्वेताश्वतथेपनिशद् 623) एवं देवमिवाचार्यमुपासीत (आपस्तम्ब 1.6.13) इन् श्रुति एवं स्मृति का अनुशासन मानकर गुरु को प्रणाम करना अन्नम्भट्ट की गुरु के प्रति श्रद्धा प्रकट करता है।

बालानां सुखबोधाय — बालको को आसानी से बोध कराने के लिए बाल का अर्थ स्तन्ध नहीं है ग्रहणधारणपटुर्बाल — जो सीखने और अन्तःकरण में स्थापित करने में चतुर है वही बाल है ।

बालको को सरलता से न्याय एवं सर्व वैशेषिक शस्त्र में प्रवेश कराने योग्य जो विषय हो उनका सरलता से ज्ञान हो जाये, ऐसा प्रयोजन है इस रचना का ।

तर्कसंग्रह क्रियते — तर्क संग्रह रचा जाता है। तर्कों का संग्रह तर्क संग्रह तर्कयन्ते प्रतिपाद्य इति तर्काः द्रव्यादि सप्तपदार्थोस्तेषां संग्रहः संक्षेपेण स्वरूपकथनम् अर्थात् जो प्रतिपादित किये जाते हैं वही तर्क हैं वे हैं द्रव्यादि सात पदार्थ उनका संक्षिप्त रूप से स्वरूप कहना ही तर्क संग्रह है स्वरूपकथन से आशय है उद्देश लक्षण परिक्षा । नाम मात्र से वस्तु का संकीर्तन उद्देश है । असाधारण लक्षण है लक्ष्य में लक्षण घटित होता है या नहीं इसका विचार ही परीक्षा है परीक्षा में धर्म लक्षण है। व असम्भव दोष

राहित्य दिखाया जाता है ।

टिप्पणी – अन्नमभट्ट ने वेदेवोधित् कर्तव्य का पालन करने के लिए, ग्रन्थकार शिष्यो को शिक्षा देने के लिए और अनिष्ट का वारण करने के लिए मंगलाचरण किया है ।

पदार्थ उद्देश प्रकरण –

पदार्थ के सात भेद – द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावातःसप्तपदार्थाः

अर्थ – द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय और अभाव येही सात पदार्थ है ।

शारदा : – द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष और समवाय ये छः भाव पदार्थ है । यद्यपि इनकी संख्या केवल सात ही है फिर भी सप्त पद को सन्निवेशित करने से और अधिक संख्या में पदार्थों की संभावना वारित हो जाती है । पदार्थ क्या है ऐसी अपेक्षा पर पदस्यार्थः पदार्थः इस व्युत्पत्ती के अनुसार अभिधेयता ही पदार्थ सामान्य का लक्षण है । सप्तपदार्थों में प्रमिति विषयाः पदार्थाः कहा गया है अर्थात् पदार्थ प्रमिति के विषय है । पदार्थों का सामान्य लक्षण करते हुए आचार्य प्रशस्तपाद ने कहा है षण्णामापि पदार्थानामस्तित्वाभिधेमत्वज्ञेयत्वानि अर्थात् पदार्थ के तीन लक्षण है अस्तित्व ज्ञेयता अभिधेयता । कणाद् एवं प्रशस्त वाद ने 6 पदार्थों को माना था बाद में शिवादित्य ने सप्तपदार्थों में 7 पदार्थों का विचार दिया पदार्थों का वास्तविक रूप से अस्तित्व अस्वीकार करने से यह वस्तुवादी दर्शन है ।

द्रव्य के नव भेद – तत्र द्रव्याणि पृथिव्यपतेजावायवाकाशाकालदिगात्मनांसि नवैव ।

अर्थ – उन साथ पदार्थों में – पृथ्वी जल तेज वायु आकाश काल दिक् आत्मा और मन ये नौ ही द्रव्य है ।

शारदा – द्रव्य के भेदों को बतलाया जा रहा है और जिन सात पदार्थों का संकिर्तन किया है उन्ही में प्रथम पदार्थ है द्रव्य उस द्रव्य के मात्र नौ भेद है वे हैं – पृथ्वी जल तेज वायु आकाश काल दिक् आत्मा एवं मन यद्यपि मीमांसक अन्धकार को स्वतन्त्र रूप से द्रव्य मानते हैं किन्तु अन्धकार के तेज अभाव रूप होने से वैशेषिक उसका स्वतन्त्र रूप से सत्ता नहीं मानते हैं । दीपिका ने द्रव्य का लक्षण किया है द्रव्यत्वजातिमत्त्वं गुणवत्त्वं वा द्रव्यसामान्य लक्षणम् । पदकृत्यटीका में द्रव्य का लक्षण है द्रव्यत्वं जातिमत्त्वं गुणवत्त्वं वा द्रव्यसामान्यलक्षणम् अर्थात् द्रव्यवह है जिसमें द्रव्यत्व जाति रहती है अथवा जो कार्यमात्र का समवायी कारण है ।

गुण के चौबीस भेद –

रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-संख्या – परिमाण- पृथक्त्व- संयोग-विभाग- परत्वा-अपरत्व-

गुरुत्व,द्रवत्व-स्नेह-शब्द-बुद्धि-सुख-दुःखेच्छा-द्वेष

प्रयत्न-धर्माधर्म-संस्काराश्चतुर्तिशतिर्गुणाः ।

अर्थ – रूप,रस,गन्ध,स्पर्श संख्या परिमाण पृथक्त्व संयोगविभाग परत्व अपरत्व गुरुत्व द्रवत्व स्नेह शब्द बुद्धि सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न धर्म अधर्म और संस्कार यह चौबीस गुण है ।

शारदा – सात पदार्थों में द्वितीय पदार्थ गुण है उनकी संख्या 24 ही है । गुण का सामान्य लक्षण है द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवत्त्वं गुणसामान्यलक्षणम् अर्थात् द्रव्य और कर्म से भिन्न होकर जिसमें सामान्य रहता है । उसे गुण कहते हैं । तर्कभाषा में गुण के स्वरूप निम्नवत् है । – सामान्यवान् असमवायिकारणम् अस्पन्दात्मागुणः स च द्रव्याश्रित एव – अर्थात् सामान्य से युक्त असमवायि कारण होने वाला कर्म स्वरूप न होने वाला गुण कहलाता है । वह द्रव्य के आश्रित होता है ।

इन्द्रिय और विषय के रूप में त्रिविध है । शरीर का लक्षण है – चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम् (1.1.11न्यायसूत्र) अर्थात् चेष्टा और इन्द्रियार्थ का आश्रय शरीर है । वात्स्यायन के अनुसार शरीर भोगायतन है । शरीर दो प्रकार का होता है योनिज और अयोनिज । शुक्र शोणित के संयोग से उत्पन्न शरीर योनि शरीर है । जो विना रजवीर्य के संयोग के

उत्पन्न होता है वह अयोनिज शरीर है। योनिज शरीर के जरायुज और अण्डज दो भेद हैं। मनुष्य जरायुज शरीर है। सर्प अण्डज शरीर है। अयोनिज शरीर के तीन भेद हैं—स्वेदज शरीर जैसे जू खटमल आदि । उदभिज शरीर जैसे लता वृक्ष आदि और अदृष्टविशेषशरीर — यह शरीर धर्म विशेष से उत्पन्न होता है। जैसे मनु आदि का शरीर इन्द्रिय का लक्षण है शरीर से संयुक्त अतीन्द्रिय(प्रत्यक्ष का विषय न होने वाला) ज्ञान का करन इन्द्रिय है (तर्कभाषा) गन्ध को ग्रहण करने वाली इन्द्रिय घ्राण है। यह पृथ्वी से सम्बन्धित है। उसका आश्रय नासिका का अग्रभाग है । गन्ध का ग्रहण करना उसका प्रयोजन है। विषय शरीर और इन्द्रिय से भिन्न है जैसे मिट्टी पत्थर आदि।

जल(आप) का लक्षण व भेद:-

शीतस्पर्शवत्य आपः। ता द्विविधाः— नित्या अनित्याश्च। नित्याः परमाणुरूपाः। अनित्याः कार्यरूपाः पुनस्त्रिविधाः शरीरेन्द्रियविषयभेदात्। शरीरं वरुणलोके इन्द्रियं रसग्राहं रसनं जिह्वग्रवर्ति। विषयः सरित्समुद्रादिः।

अर्थ :- शीतल स्पर्श वाला जल है वह दो प्रकार का है। नित्य और अनित्य । परमाणु रूप जल नित्य है । और कार्य रूप जल अनित्य है। अनित्य जन शरीर इन्द्रिय और विषय के भेद से तीन प्रकार का होता है वरुण लोक में जल का शरीर होता है। जल का इन्द्रिय रस को ग्रहण करने वाला रसनेन्द्रिय है। जो जिह्वा के अग्र भाग में रहता है। जल का विषय है नदी और समुद्रादि।

शारदा— शीतस्पर्शवत्य आपः लक्षण में शीत पद न रखा जाता तो तेज आदि में लक्षण की अतिव्याप्ति हो जाती । जल एक रसायन है। इस रहस्य को सबसे पहले बाल्मीकि ने बताया है— नव मासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः।

पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम् ।। वाल्मीकि रामायण किस्किन्धा काण्ड 28.3

तेज का लक्षण एवं भेद:-

उष्णस्पर्शवत्तेजः। तच्च द्विविध—नित्यमनित्यं च। नित्यं परमाणुरूपम्, अनित्यं कार्यरूपम्। पुनस्त्रिविधं—शरीरेन्द्रियविषयभेदात्। शरीरमादित्यलोके प्रसिद्धम्। इन्द्रियं रूपग्राहकं चक्षुः कृष्ण ताराऽग्रवर्ति । विषयस्तुर्विधः—भौमदिव्योदयकिरजभेदात् भौमं वह्न्यादिकम् । अबिन्धनम् दिव्यं विधुदादि। भुक्तस्य परिणामहेतु रुदर्यम् । आकरजं सुवर्णादि।

अर्थ:- उष्ण स्पर्श वाला तेज है। उसके दो भेद हैं। नित्य और अनित्य परमाणु रूप तेज नित्य है। और कार्य रूप तेज अनित्य है। अनित्य तेज शरीर इन्द्रिय और विषय के भेद से तीन प्रकार का है। तेज का शरीर आदित्य लोक में प्रसिद्ध है। तेज का इन्द्रिय रूप (रंग) का ग्रहण करने वाला चक्षु है। वह काली तारा (पुतली) के अग्र भाग में रहता है। तेज के विषय चार हैं। भौम दिव्य उदर्य और आकरज— अग्नि आदि भूमि में रहने वाला तेज है। जल रूप इन्धन वाला तेज दिव्य तेज है , जैसे विजली आदि। खाये गये पदार्थ के परिणाम का कारण उदर्य तेज है। खान में उत्पन्न तेज आकरज हैं। जैसे स्वर्ण आदि ।

शारदा— उष्णस्पर्शवत्तेजः में उष्ण पद देने से जल आदि में अतिव्याप्ति नहीं होती ।

वायु का लक्षण एवं भेद:-

रूपरहितस्पर्शवान्वायुः। स द्विविधो—नित्योऽनित्यश्च। नित्यः परमाणुरूपः अनित्यः कार्यरूपः। सः पुनस्त्रिविध —शरीरेन्द्रियविषय भेदात्। शरीरं वायु लोके। इन्द्रियं स्पर्श ग्राहकं त्वक सर्वशरीरवर्ति। विषयो वृक्षादिकम्पनहेतुः शरीराऽन्तःसंचारी वायुः प्राणः स चैकोऽपि उपाधिभेदात् प्राणाऽपानादि संज्ञा लभते।

अर्थ:- रूप रहित स्पर्श वाला वायु है उसके दो भेद हैं। नित्य और अनित्य नित्य वायु परमाणु रूप है और अनित्य वायु कार्य रूप है । अनित्य वायु के शरीर इन्द्रिय और विषय तीन भेद है। वायु लोक में वायु का शरीर होता है। वायु का इन्द्रिय स्पर्श का ग्रहण करने वाला त्वचा है। और वह समस्त शरीर में रहने वाला है। वायु का विषय वृक्ष आदि के कम्पन का कारण है ।

शरीर के अन्दर संचरण करने वाले वायु को प्राण कहते हैं। वह एक ही है। फिर भी उपाधि के भेद से प्राण अपान समान, उदान, और व्यान संज्ञा प्राप्त करता है।

शारदा— वायु के लक्षण में स्पर्शवान पद रखने से आकाशआदि में अतिव्याप्ति नहीं होती है। रूप रहित पद रखने से पृथ्वी आदि में अतिव्याप्ति नहीं होती है। शरीर में प्राणादि का स्थान क्या है। इसे निम्न कारिका में देख सकते हैं। हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले। उदानः कण्ठदेशस्थो व्यानः सर्वशरीरगः॥

आकाश का लक्षण— शब्द गुणकमाकाशम्। तच्चैकं विभु नित्यं।

अर्थ— शब्द गुण वाले द्रव्य को आकाश कहते हैं। वह एक विभु और नित्य है।

शारदा— आकाश के लक्षण में गुण पद रखने का प्रयोजन शब्द को आकाश का विशेष गुण बताना है। न कि अतिव्याप्ति का वारण करना है। आकाश पृथिवी की तरह अनेक नहीं है उसके भेद में साधक प्रमाण का अभाव है। एकत्व से ही उसकी सर्वत्र उपालब्धि होने से वह विभु है। विभु का अर्थ है सभी मूर्त द्रव्य से संयुक्त होना। मूर्त का अर्थ है सीमित परिमाण वाला अथवा क्रिया वाला होना। व्यापक होने से ही आकाश का आत्मा के तुल्य नित्य होना सत्य है अतः आकाश नित्य है।

काल का लक्षण— अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः। स चैको विभुर्नित्यश्च।

अर्थ— अतीत आदि अर्थात् भूत भविष्यत और वर्तमान के व्यवहार के कारण को काल कहते हैं। वह एक व्यापक और नित्य है। सर्वाधार काल सभी कार्य में निमित्त कारण होता है।

दिशा का लक्षण— प्राच्यादिव्यवहार हेतुर्दिक् सा चैका नित्या विभ्वी च। अर्थात् प्राची आदि व्यवहार के कारण को दिशा कहते हैं। वह एक नित्य और व्यापक है।

शारदा— निरुक्त की दुर्गवृत्ति के अनुसार दिशायेँ सूर्य से निर्धारित होती है— आदित्योपलक्षणा एवं दिशो भवन्ति। यह पूर्व दिशा है यह दक्षिण दिशा है। यह पश्चिम दिशा है और यह उत्तर दिशा है। इत्यादि व्यवहार के कारण को दिक् कहते हैं।

आत्मा का लक्षण एवं भेद— ज्ञानाधिकरणमात्मा। स द्विविधो—जीवात्मा परमात्मा च। तत्रेश्वरः सर्वज्ञः परमात्मा एक एव। जीवस्तु प्रतिशरीर भिन्नो विभुर्नित्यश्च।

अर्थ— ज्ञान का आश्रय आत्मा है उसके दो भेद हैं परमात्मा और जीवात्मा। परमात्मा इश्वर सर्वज्ञ और एक ही है जीव प्रत्येक शरीर में भीन्न—भीन्न और व्यापक और नित्य है।

शारदा— समवाय सम्बन्ध से जो ज्ञान का जो आश्रय है वह आत्मा है। ईश्वर सर्वज्ञ है। क्योंकि वह सभी परमाणु आदि सूक्ष्म पदार्थों का द्रष्टा है जीवात्मा के प्रति शरीर नियत होने में सुख आदि की विचित्रता ही कारण है। जीव न तो परमाणु परिमाण है न मध्यम परिमाण है। अतः जीव नित्य और विभु है।

मन का लक्षण— सुखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः। तच्च प्रत्यात्मनियतत्वादनन्तं परमाणुरूपं नित्यं च। **अर्थ**— सुख दुख आदि की प्राप्ति के साधन इन्द्रिय को मन कहते हैं वह प्रत्येक आत्मा में नियत होने से अनन्त है परमाणु परिमाण है। परमाणु रूप और नित्य भी है।

शारदा— मन के लक्षण में इन्द्रियम पद देने से आत्मा और मन के संयोग में अतिव्याप्ति नहीं होती सुख पद देने से चक्षु आदि में अतिव्याप्ति नहीं होती।

2.3.2 गुण प्रकरण

गुणों की संख्या 24 है उनमें से रूप से लेकर शब्द पर्यन्त के लक्षणआदि से परिचित होना आवश्यक है। अतः क्रमशः उनका स्वरूप आदि वर्णित किया जा रहा है।

रूप का लक्षण व भेद— चर्क्षुमात्रिग्राह्यो गुणो रूपम। तच्च—शुल्क नील पीत रक्त हरित कपिश चित्रभेदात्सप्तविधम्। पृथिवीजलतेजोवृत्तिः। तत्र पृथिव्यां सप्तविधम्। अभास्वरशुक्लं जले भास्वरशुक्लं तैजसि।

अर्थ— नेत्र मात्र से ग्रहण किया जाने वाला गुण रूप है उसके सात भेद होते हैं। सफेद, काला, पीला, लाल, हरा, कपिश (कृष्ण पीत) और चित्कबरा। रूप गुण पृथ्वी जल और तेज में होता है। पृथ्वी में सातो रूप पाये जाते हैं। जल में अभास्वर शुक्ल रूप होता है। तेज में भास्वर शुक्ल रंग होता है। **शारदा—**रूप का आशय रंग से है। रूप के लक्षण में मात्र पद रखने से संख्या आदि में अतिव्याप्ति नहीं होती तथा गुण पद रखने से रूपत्व सामान्य में अतिव्याप्ति नहीं होती।

रस का लक्षण एवं भेद— रसनाग्राह्यो गुणो रसः स च मधुरा—ऽम्ल— लवण— कटु— कषाय— तिक्तभेदात् षड्विधः। पृथिवीजलवृत्तिः। तत्र पृथिव्या षड्विधः। जले मधुर एव। **अर्थ** जिह्वा से ग्रहण किये जाने वाले गुण को रस कहते हैं। उसके छः भेद हैं मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय, और तिक्त। रस पृथ्वी और जल में रहता है। पृथ्वी में छः रस होते हैं जल में केवल मधुर रस होता है।

शारदा— रस के लक्षण में गुण पद देने से रसत्व में अतिव्याप्ति नहीं होती।

गन्ध का लक्षण व भेद — घ्राण ग्राह्यो गुणो गन्धः। स द्विविधः सुरभिरसुरभिश्च। पृथिवीमात्रवृत्तिः।

अर्थ— घ्राण से ग्रहण किये जाने वाले गुण को गन्ध कहते हैं उसके दो भेद हैं सुगन्ध और दुर्गन्ध यह केवल पृथ्वी में रहता है।

शारदा—गन्ध के लक्षण में गुण पद रखने से गन्धत्व में अतिव्याप्ति नहीं होती।

स्पर्श का लक्षण व भेद— त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यो गुणो स्पर्शः स च। त्रिविधः शीतोष्णानुष्णाशीतभेदात्। पृथिव्यप्तेजोवायुवृत्तिः। तत्र शीतो जले। उष्णस्तेजसि। अनुष्णाशीतः पृथ्वीवायवो।

अर्थ—त्वचा मात्र से ग्रहण किया जाने वाला गुण स्पर्श है वह त्रिविध है। शीतल गरम, न शीतल न गरम। पृथ्वी जल तेज और वायु में स्पर्श का गुण होता है। शीतल स्पर्श जल में रहता है। अग्नि में गर्म स्पर्श रहता है और न शीतल न गर्म स्पर्श पृथ्वी और वायु दोनों में रहता है।

शारदा— स्पर्श के लक्षण में गुण पद रखने से स्पर्शत्व जाति में अतिव्याप्ति नहीं होती। मात्र पद रखने से संयोगादि में अतिव्याप्ति नहीं होती है।

पाकज एवं अपाकज व्यवस्था —रूपादि चतुष्टयं पृथिव्याम् पाकजमनित्यं च। अन्यत्राऽपाकजं नित्यमनित्यं च। नित्यगतं नित्यम्। अनित्यगतमनित्यम्।

अर्थ— रूप रस गन्ध और स्पर्श पृथिवी में पाकज है। अर्थात् अग्नि के संयोग से उत्पन्न होते हैं। पृथिवी से भिन्न आश्रय में अपाकज हैं। नित्य और अनित्य भी हैं। नित्य परमाणुओं में रूपादि हैं। अनित्य कार्य द्रव्य में विद्यमान ये चारो अनित्य हैं।

संख्या का लक्षण—एकत्वादिव्यवहारहेतुः संख्या। सा नवद्रव्यवृत्तिः एकत्वादिपरार्थं पर्यन्ता। एकत्वं नित्यमनित्यं च। नित्यगतं नित्यम्। अनित्यगतम अनित्यम्। द्वित्वादिकं तु सर्वत्राऽनित्यमेव।

अर्थ — एकत्वादि(यह एक है दो है आदि।) के व्यवहार के हेतु गुण को संख्या कहते हैं। वह पृथ्वी जल तेज अग्नि वायु आकाश काल दिक् आत्मा और मन नवो द्रव्यो में रहती है। एक से लेकर परार्थ तक संख्या होती है। एकत्व संख्या नित्य और अनित्य दोनों होती है। नित्य द्रव्यो में रहने पर यही एकत्व नित्य होता है और अनित्य द्रव्यो का एकत्व अनित्य होता है। दो तीन चार आदि संख्याएँ सर्वत्र दोनों प्रकार के द्रव्यो में अनित्य होती हैं।

शारदा—एक से लेकर परार्थपर्यन्त संख्या निम्न कारिका में उल्लिखित है।

एकं दश शतं चैव सहस्रत्रयुतं तथा।

लक्षं च नियुतं चैव कोटिरर्बुदमेव च।।

वृन्द खर्वो निखर्वश्च शङ्खः पद्मश्च सागरः।

अन्त्यं मध्यं परार्धं च दशवृश यथाक्रमम् ।।

परिमाण का लक्षण व भेद – मानव्यवहारासाधारणकारणं परिमाणम् । नव द्रव्यवृत्तिः । तच्चतुर्विधम्— अणुमहत् दीर्घहृस्वश्चेति ।

अर्थ :- मान के व्यवहार के असाधारण कारण को परिमाण कहते हैं। वह नव द्रव्यों में रहने वाला है उसके चार भेद हैं। अणु महत्, दीर्घ और हृस्व ।

शारदा— मान व्यवहार का अर्थ है यह पतला है यह मोटा है यह लम्बा है यह छोटा है ऐसा कथन करना ।

पृथक्त्व का लक्षण – पृथग्व्यहारासाधारणकारणं पृथक्त्वम् । सर्वद्रव्यवृत्तिः

अर्थ— यह इससे पृथक् है ऐसे व्यवहार के असाधारण कारण को पृथक्त्व कहते हैं यह पृथ्वी आदि नौ द्रव्यों में होता है। **संयोग का लक्षण**— संयुक्तव्यवहारहेतुः संयोगः । सर्वद्रव्यवृत्तिः ।

अर्थ— ये दोनो परस्पर संयुक्त हैं, ऐसे व्यवहार के असाधारण कार्य को संयोग कहते हैं । यह पृथ्वी आदि सभी द्रव्यों में रहता है।

विभाग का लक्षण— संयोगनाशको गुणो विभागः सर्वद्रव्यवृत्तिः ।

अर्थ— संयोग के नाशक गुण को विभाग कहते हैं । वह सभी द्रव्यों में रहता है।

शारदा— विभाग के लक्षण में गुण पद देने से काल आदि में अतिव्याप्ति नहीं होती। रूप आदि में अतिव्याप्ति का वारण संयोग नाशक पद से हो जाता है।

परत्वापरत्व का लक्षण व भेद –

परापरव्यवहारासाधारणकारणे परत्वापरत्वे । पृथिव्यादिचतुष्टय मनोवृत्तिनी । ते द्विविधे—दिककृते कालकृते च । दूरस्थे दिककृतं परत्वम् । समीपस्थे दिककृतमपरत्वम् । ज्येष्ठे कालकृतं परत्वम् । कनिष्ठे कालकृतमपरत्वं ।

अर्थ— पर(दूरस्थ और ज्येष्ठ) के व्यवहार के असाधारण कारणो के परत्व कहते हैं। और अपर (समीपस्थ और कनिष्ठ) के व्यवहार के असाधारण कारण को अपरत्व कहते हैं पृथ्वी जल तेज वायु और मन में परत्व अपरत्व होते हैं। वे दोनो दो प्रकार के हैं। दिककृत और कालकृत । दूरस्थ पदार्थ में दिक कृत परत्व और समीपस्थ पदार्थ में दिककृत अपरत्व रहता है। इसी तरह ज्येष्ठ में काल कृत परत्व रहता है। कनिष्ठ में काल कृत अपरत्व रहता है ।

गुरुत्व लक्षण – आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वम् । पृथिवीजलवृत्तिः ।

अर्थ – प्रथम पतन के असमवायि कारण को गुरुत्व गुण कहते हैं। यह पृथ्वी और जल में रहता है ।

शारदा— गुरुत्व के लक्षण में आद्य शब्द देने से द्वितीय आदि पतन के असमवायि कारण वेग में अतिव्याप्ति नहीं होती है । पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण शक्ति का अन्वेषण सबसे पहले कणाद ने किया था जिसे आज विज्ञान भी मानता है । यहा एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि जल में भी गुरुत्व शक्ति की बात कणाद ने ही सबसे पहले किया था इस पर भी वैज्ञानिको को शोध करना चाहिए ।

द्रवत्व का लक्षण – आद्यस्यन्दनासमवायिकारणं द्रवत्वम् । पृथिव्यप्तेजोवृत्तिः । तद् द्विविधं – सांसिद्धिकं नैमित्तिकं च । सांसिद्धिकं जले । नैमित्तिकं पृथिवीतेजसोः । पृथिव्यां घृतादावग्निसंयोगजं द्रवत्वं तेजसि सुवर्णादौ ।

अर्थ – पहले स्यन्दन (बहाव) में असमवायि कारण को द्रवत्व कहते हैं। द्रवत्व पृथिवी जल और तेज में रहता है। द्रवत्व के दो भेद हैं सांसिद्धिक और नैमित्तिक । जल में स्वाभावित द्रवत्व रहता है। पृथ्वी—घृत आदि में अग्नि के संयोग से उत्पन्न द्रवत्व रहता है। तेज में तेज स्वरूप स्वर्ण में अग्नि के संयोग से उत्पन्न द्रवत्व रहता है।

स्नेह का गुण – चूर्णादिपिण्डीभावहेतुर्गुणःस्नेहः । जलमात्रवृत्तिः ।

अर्थ – चूर्णादि के पिण्डी भाव होने के कारण को स्नेह गुण कहते हैं। यह केवल जल

में रहता है।

शारदा – स्नेह के लक्षण में गुण पद देने से काल आदि में अतिव्याप्ति नहीं होती और पिण्डी भाव पद रखने से रूपादि में अतिव्याप्ति नहीं होती है।

शब्द का लक्षण –

श्रोत्रग्राह्यो गुणः शब्दः। आकाशमात्रवृत्तिः । स द्विविधो—ध्वन्यात्मको वर्णात्मकश्च तत्र ध्वन्यात्मको भेर्यादौ। वर्णात्मकः संस्कृतभाषादि रूपः।

अर्थ – श्रवण इन्द्रिय मात्र से ग्रहण किये जाने वाले गुण को शब्द कहते हैं। यह केवल आकाश में रहता है। शब्द दो प्रकार का होता है। ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक। उन दोनों में ध्वन्यात्मक शब्द भेरी आदि वाद्यों में होता है। वर्णात्मक शब्द संस्कृत भाषा आदि के रूप में मिलता है।

शारदा— शब्द के लक्षण में गुण पद रखने से शब्दत्व में अतिव्याप्ति नहीं होती है। श्रोत्रः पद रखने से रूप आदि में अतिव्याप्ति नहीं होती है।

अभ्यास प्रश्न

1. तर्क संग्रह के रचनाकार हैं –

- अ. उद्योतकर ब. विश्वनाथ
स. गौतम द. अन्नम्भट्ट

2. तर्क संग्रह में पदार्थों की संख्या बतायी गयी है

- अ. 6 ब. 8
स. 7 द. 5

3. प्रथम पदार्थ है

- अ. गुण ब. सामान्य
स. द्रव्य द. विशेष

4. शब्द गुण वाला है

- अ. काल ब. आकाश
स. दिशा द. मन

5. प्राची आदि के व्यवहार का कारण है

- अ. दिशा ब. मन
स. समवाय द. काल

6. सुमेलित नहीं है

- अ. पृथ्वी – घ्राणेन्द्रिय ब. तेज – चक्षुइन्द्रिय
स. आकाश – रसनेन्द्रिय द. वायु – त्वगिन्द्रिय

7. नित्य नहीं है

- अ. कार्य रूप पृथिवी ब. कालस. दिशा द. आकाश

8. काल है

- अ. अतितादि व्यवहार का कारण
ब. प्राचीआदि व्यवहार का कारण
स. शब्द गुण वाला
द. सुखादि उपलब्धि साधन

2.4 सारांश

आचार्य अन्नम्भट्ट ने भगवान शिव का ध्यान करते हुए मंगलाचरण किया है अनंतर द्रव्यगुण कर्म सामान्य विशेष समवायि व अभाव का संकीर्तन किया है। नव द्रव्यों का स्वरूप भेद आदि बताया है नव द्रव्य है पृथिवी जल, तेज, वायु, आकाश काल दिशा और मन। पृथिवी गन्धवती है। जल शीतल स्पर्श वाला है तेज उष्ण स्पर्श वाला है।

वायु रूपरहित स्पर्श गुण वाला है । आकाश एक नित्य व्यापक और शब्दगुण वाला है । दिशा पूर्व आदि के व्यवहार का कारण है । काल भूत भविष्यत और वर्तमान के व्यवहार का कारण एक नित्य और व्यापक है । आत्मा समवाय संबन्ध से ज्ञान का आश्रय है इसके दो भेद हैं परमात्मा और जीवात्मा । दोनों नित्य हैं परमात्मा सर्वज्ञ है । एक है । जीवात्मा अनेक है । जीव को जो सुख और दुःख का अनुभव होता है उसका कारण मन है । चक्षु से ग्रहण किया जाने वाला रूप गुण के सात भेद हैं । जिह्वा से ग्रहण किया जाने वाला गुण छः प्रकार का है । गन्ध के दो भेद हैं नासिका से इसकी ग्राह्यता होती है । संख्या परिमाण पृथक्त्व सभी द्रव्यो में रह संयोग विभाग सभी द्रव्यो में होते हैं । परत्व अपरत्व दोनों पर और अपर के व्यवहार के असाधारण कारण हैं गुरुत्व पृथ्वी और जल में रहता है । द्रवत्व पृथ्वी जल और तेज में रहता है । स्नेह गुण केवल जल में होता है श्रवण से ग्रहण किया जाने वाला गुण दो प्रकार का होता है ।

2.5 उत्तरमाला

- | | | | | |
|------|------|------|------|------|
| 1.द | 2.स | 3.स | 4.ब | 5.अ |
| 6.स | 7.अ | 8.अ | 9.ब | 10.अ |
| 11.अ | 12.द | 13.अ | 14.स | 15.अ |

2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

इस इकाई के लेखन में निम्न ग्रन्थों का सहयोग लिया गया है ।

1. तर्कसंग्रहः व्याख्याकार आचार्य शेषराजशर्मा रेग्मी, चौ०सु० प्रकाशन वाराणसी पुनर्मुद्रित संस्करण 2000
2. तर्क संग्रह टीकाकार श्री हरिहरशास्त्री
3. तर्कसंग्रहः टीकाकार प्रो० आद्याप्रसाद मिश्र
4. तर्कभाषा टीकाकार श्रीनिवासशास्त्री

2.7 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री –

इस इकाई के विशेष अध्ययन के लिए आप निम्न ग्रंथों को उपयोग में ला सकते हैं

1. तर्कसंग्रहः व्याख्याकार आचार्य शेषराजशर्मा रेग्मी, चौ०सु० प्रकाशन वाराणसी पुनर्मुद्रित संस्करण 2000
2. तर्कसंग्रहः टीकाकार श्री हरिहरशास्त्री
3. तर्कसंग्रह टीकाकार प्रो० आद्याप्रसाद मिश्र

2.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. तर्कसंग्रह में वर्णित द्रव्य की अवधारणा पर प्रकाश डालिए ?

इकाई .3 बुद्धि लक्षण से प्रत्यक्ष पर्यन्त

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 बुद्धि लक्षण से प्रत्यक्ष पर्यन्त

3.4 इकाई का सांराश

3.5 अभ्यास प्रश्नों की उत्तरमाला

3.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.7 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में गुणों में संकीर्तित बुद्धिगुण का स्वरूप, भेद, कारण भेद, प्रमा, उसके भेद, प्रमा के चार करण उनमें से प्रत्यक्ष-प्रमाण के भेद, सन्निकर्ष के भेद को बताया गया है। इसके पूर्व की इकाई में आपने तर्क संग्रह में मंगलाचरण से शब्द लक्षण वर्णन तक के विषयों का अध्ययन किया है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई में अध्ययन से आप निम्न तथ्यों को जानने में समर्थ होंगे कि –

- बुद्धि का लक्षण व भेद क्या है ?
- अनुभव कें किस भेद को प्रमा कहते हैं एवं उसके कितने भेद हैं ?
- कारण के कितने भेद हैं और करण क्या है ? आदि।

3.3 बुद्धि सेप्रत्यक्ष पर्यन्त

बुद्धि का लक्षण और उसके भेद –

सर्वव्यवहारहेतुर्गुणो बुद्धिज्ञानम्। सा द्विविधा-स्मृतिरनुभवश्च।

अर्थ – सम्पूर्ण व्यवहारों के कारण रूप गुण को बुद्धि कहते हैं। उसे ही ज्ञान भी कहा जाता है। उस बुद्धि के दो भेद हैं – स्मृति और अनुभव।

शारदा– बुद्धि के लक्षण कालादि में अतिव्याप्ति का वारण करने के लिए 'गुण' पद रखा गया है। रूपादि में अतिव्याप्ति का वारण करने के लिए सर्व व्यवहार पद रखा गया है।

स्मृति का लक्षण –

संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः।

अर्थ– संस्कार मात्र से उत्पन्न ज्ञान को स्मृति कहते हैं।

शारदा– संस्कार (भावना) ध्वंस में अति व्याप्ति का वारण करने के लिए लक्षण में ज्ञान पद रखा गया है। घटादि प्रत्यक्ष में अति व्याप्ति का वारण करने के लिए संस्कार जन्य पद रखा गया है। प्रत्यभिज्ञा में अतिव्याप्ति न हो इसके लिए मात्र पद रखा गया है।

अनुभव का लक्षण –

तद्भिन्नं ज्ञानमनुभवः। स द्विविधः – यथार्थोऽयथार्थश्च।

अर्थ – उससे अर्थात् स्मृति से भिन्न ज्ञान अनुभव है। वह दो प्रकार का होता है। यथार्थ और अयथार्थ।

यथार्थानुभव का लक्षण –

तद्वतितत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थः। यथा-रजते 'इदं रजतम्-इति ज्ञानम्। सैवप्रमा उच्यते।

अर्थ – जिसमें जो है, वहाँ उसका जो अनुभव है उसे यथार्थानुभव कहते हैं। जैसे रजत के विषय में यह रजत है ऐसा ज्ञान। वही प्रमा कही जाती है।

अयथार्थ अनुभव का लक्षण –

तदभाववति तत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थः। यथा शुक्तौ इदं रजतम् इतिज्ञानम्। सैवाऽप्रमेत्युच्यते।

अर्थ – जिसमें जो नहीं है, वहाँ उसका जो अनुभव है, उसे अयथार्थ अनुभव कहते हैं। जैसे सीपी में यह चादी है- ऐसा ज्ञान। वही अप्रमा कही जाती है।

यथार्थानुभव के चार भेद–

यथार्थानुभवश्चतुर्विधः प्रत्यक्षानुमित्युपमितिशाब्दभेदात्।

अर्थ – यथार्थ अनुभव के चार भेद हैं – प्रत्यक्ष, अनुमिति उपमिति और शाब्द

यथार्थानुभव के चार लक्षण—

तत्करणमपि चतुर्विधं प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात् ।

अर्थ — यथार्थानुभव के करण भी चार हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द ।

करण लक्षणम्—

असाधारणं कारणं करणम् —

अर्थ — असाधारण कारण के करण कहते हैं ।

शारदा—साधारण कारण दिक्काल आदि में अतिव्याप्ति वारण के लिए लक्षण में असाधारण पद रखा गया है ।

कारण लक्षण —

कार्यनियतपूर्ववृत्तिः कारणम् ।

अर्थ — कार्य से नियत अर्थात् निश्चित रूप से पूर्ववृत्ति है, उसे कारण कहते हैं ।

शारदा—पूर्ववृत्ति कारणम् ऐसा लक्षण करने पर रासभ आदि में अतिव्याप्ति हो जाती अतः लक्षण में नियत पद रखा गया । कार्यनियत कारणम् कहने से कार्य में अतिव्याप्ति होती अतः लक्षण में पूर्ववृत्ति शब्द रखा गया । कारण का परिष्कृत लक्षण है ।

अनन्यथासिद्धपूर्ववृत्तित्वं कारणत्वम् ।

कार्यलक्षण—

कार्यं प्रागभावप्रतियोगी ।

अर्थ — प्रागभाव के प्रतियोगी को कार्य कहते हैं ।

कारण पूर्ववर्ती होता है और कार्य उत्तरवर्ती होता है । न्याय वैशेषिक का करणता सिद्धान्त असत् कार्यवाद कहलाता है ।

कारणभेदाः

कारणं त्रिविधं—समवाय्यसमवायिनिमित्त भेदात् ।

अर्थ — कारण के तीन भेद हैं— समवायिकारण असमवायिकारण और निमित्तकारण ।

समवायिकारणलक्षण व उदाहरण—

यत् समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम् । यथा तन्तवः पटस्य, पटश्च स्वगतरूपादेः ।

अर्थ — जिसमें समवाय सम्बन्ध से रहकर कार्य उत्पन्न होता है । उसे समवायि कारण कहते हैं, जैसे — तन्तु, पट के समवायिकारण है और पट अपने में विद्यमान रूप का समवायिकारण है ।

असमावायिकारण लक्षण व उदाहरण —

कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतत्वे सति यत् कारणं तद्समवायिकारणम् । यथा तन्तुसंयोगः पटस्य, तन्तुरूपं पटरूपस्य ।

अर्थ — कार्य अथवा कारण के साथ एक पदार्थ में समवाय सम्बन्ध से वर्तमान होता हुआ जो कारण है, वह असमवायिकारण है । जैसे — तन्तुसंयोग पट का और तन्तुरूप पटरूपका असमवायिकारण है ।

निमित्तकारण लक्षण व उदाहरण —

तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणम् । यथा—तुरीवेमादिकं पटस्य ।

अर्थ — समवायिकारण और असमवायिकारण से भिन्न होकर जो कारण है, उसे 'निमित्तकारण' कहते हैं । जैसे — तुरी और वेमा आदि पट के निमित्तकारण है ।

कारणका निष्कृष्ट लक्षण—

तदेतत्त्रिविधकारणमध्ये यदसाधारणं कारणं तदेव कारणम् ।

अर्थ — इन तीन समवायि, असमवायि और निमित्त कारणों में जो असाधारण कारण है वही कारण कहलाता है ।

प्रत्यक्षप्रमाणलक्षण—

तत्र प्रत्यक्षप्रमाणकरणं प्रत्यक्षम्

अर्थ — उन चार प्रमाणों में प्रत्यक्ष ज्ञान के करण को 'प्रत्यक्ष' प्रमाण कहते हैं।
प्रत्यक्ष प्रमाण इन्द्रियों से उत्पन्न होती है।

प्रत्यक्ष ज्ञान के लक्षण, भेद व उदाहरण —

इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्। तद्विधि—निर्विकल्पकं सविकल्पकम् चेति।
तत्र निष्प्रकारकं ज्ञानं निर्विकल्पकम्। यथेदं किञ्चित्। सप्रकारकं ज्ञानं
सविकल्पकम्। यथा —डित्थोऽयम्, ब्राह्मणोऽयम्, श्यामोऽयमिति।

अर्थ — इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष है। उसके दो भेद हैं —
निर्विकल्पक और सविकल्पक। उन दोनों भेदों में निष्प्रकारक अर्थात् नाम, जाति
आदि योजना से रहित ज्ञान निर्विकल्पक होता है। जैसे — यह कुछ है।
सप्रकारक अर्थात् नाम जाति योजना से युक्त ज्ञान सविकल्पक होता है। जैसे
यह डित्थ है यह ब्राह्मण है यह श्याम है।

इन्द्रियार्थसन्निकर्ष भेद —

प्रत्यक्षज्ञानहेतुरिन्द्रियार्थसन्निकर्षः षड्विधः — संयोगः,
संयुक्तसमावायः, संयुक्तसमवेतसमवायः, समवायः, समवेतसमवायः,
विशेषणविशेष्यभावश्चेति।

अर्थ — प्रत्यक्ष के हेतु इन्द्रियार्थसन्निकर्ष 6 प्रकार के हैं — संयोग, संयुक्तसमवाय,
संयुक्त समवेतसमवाय, समवाय, समवेतसमवाय और विशेषणविशेष्यभाव।

संयोग सन्निकर्ष —

चक्षुषा घटप्रत्यक्षजनने संयोगः सन्निकर्षः।

अर्थ — नेत्र से घट के प्रत्यक्ष ज्ञान में संयोग सन्निकर्ष होता है।

संयुक्तसमवायसन्निकर्ष —

घटरूपप्रत्यक्षे संयुक्तसमवायः सन्निकर्षः चक्षुः संयुक्ते घटे रूपस्य समवायात्।

अर्थ — घटरूप के प्रत्यक्ष ज्ञान में संयुक्त समवाय सन्निकर्ष होता है। चक्षु इन्द्रिय से
संयुक्त घटद्रव्य में रूप समवाय सम्बन्ध से रहता है।

संयुक्त-समवेत-समवाय-सन्निकर्ष—

रूपत्वसामान्यप्रत्यक्षे संयुक्तसमवेतसमवायः सन्निकर्षः चक्षुः संयुक्ते घटे रूपं
समवेतं, तत्र रूपत्वस्य समवायात्।

अर्थ — चक्षु में रूपत्व जाति के प्रत्यक्ष ज्ञान में संयुक्तसमवेतसमवायसन्निकर्ष होता है।
चक्षु इन्द्रिय से संयुक्त घट में रूप समवेत है और उसी रूप में रूपत्व जाति
समवाय सम्बन्ध से रहता है।

समवाय सन्निकर्षः —

श्रोत्रेण शब्दसाक्षात्कारे समवायः सन्निकर्षः कर्णविवरवर्त्याकाशस्य श्रोत्रत्वात्,
शब्दस्याकाशगुणत्वात्, गुणगुणिनोश्च समवायात्।

अर्थ — श्रवण से शब्द के प्रत्यक्ष होने में समवाय सन्निकर्ष होता है। कर्ण शष्कुली
अवाच्छन्न आकाश ही श्रोत्र है। आकाश का गुण शब्द है और गुणी में गुण
समवाय सम्बन्ध से रहता है।

समवेतसमवाय सन्निकर्षः —

शब्दत्वसाक्षात्कारे समवेतसमवायः सन्निकर्षः, श्रोत्रसमवेते शब्दे शब्दत्वस्य
समवायात्।

अर्थ — श्रवणेन्द्रिय से शब्दत्व का साक्षात्कार होने में समवेतसमवाय सन्निकर्ष होता है।
श्रोत्र में समवेत शब्द में शब्दत्व सामान्य समवाय सम्बन्ध से रहता है।

विशेषण विशेष्यभाव सन्निकर्षः—

अभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावःसन्निकर्षः घटाभाववद् भूतलम् इत्यत्र चक्षुःसंयुक्ते भूतले घटाऽभावस्य विशेषणत्वात् ।

अर्थ — अभाव के प्रत्यक्ष में विशेषणविशेष्यभावसन्निकर्ष होता है। यह भूतल घटाभाव वाला है। इस ज्ञान में चक्षु से संयुक्त भूतल में (विशेष्य में) घटाभाव विशेषण है।

प्रत्यक्ष प्रमाण का निष्कृष्ट लक्षण —

एवं सन्निकर्षषट्कजन्यम्ज्ञानम् प्रत्यक्षम् तत्करणमिन्द्रियं तस्मादिन्द्रियं प्रत्यक्षप्रमाणमिति सिद्धम् ।

अर्थ — इस प्रकार पूर्व वर्णित छः सन्निकर्षों से उत्पन्न ज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान का करण इन्द्रियाँ है, अतएव इन्द्रियाँ ही प्रत्यक्ष प्रमाण है ऐसा सिद्ध है।

अभ्यास प्रश्न—

- सभी व्यहारों के कारण बुद्धि के भेद है ?
(अ)केवल अनुभव (ब)केवल स्मृति
(स)दोनों (द)इनमें से कोई नहीं
- यथार्थ अनुभव है ?
(अ)प्रमा (ब)अप्रमा
(स)स्मृति (द)इनमें से कोई नहीं
- यथार्थ अनुभव के भेद हैं ?
(अ) 2 (ब) 3
(स) 4 (द) 6
- तर्कसंग्रह के अनुसार वैशेषिक निम्न कारण मानता है ?
(अ)केवल समवायिकारण (ब)केवल असमवायिकारण
(स)केवल निमित्त कारण (द)तीनों
- तन्तु पट का कौन सा कारण है ?
(अ)निमित्त कारण (ब) असमवायी कारण
(स)समवायी कारण (द) अ और ब
- इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष जन्यज्ञान है ?
(अ)अनुमिति (ब)उपमित
(स)प्रत्यक्ष (द) शाब्द
- प्रत्यक्ष ज्ञान के भेद है ?
(अ)सविकल्पक (ब)निर्विकल्पक
(स)दोनो (द)इनमें से कोई नहीं
- इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष के भेद है ?
(अ) 6 (ब) 5
(स) 8 (द) 2
- शब्दत्व समान्य के साक्षात्कार में सन्निकर्ष होता है ?
(अ) संयोग (ब)संयुक्त समवाय
(स) समवेतसमवाय (द)समवाय
- अभाव का प्रत्यक्ष होता है ?
(अ) विशेषणविशेष्यभाव सन्निकर्ष (ब)संयोगसन्निकर्ष
(स)समवाय सन्निकर्ष (द)संयुक्त समवायसन्निकर्ष

3.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई का सारांश निम्नवत है—

बुद्धि और ज्ञान पर्याय है। ज्ञान सभी व्यवहार का कारण है इसके अनुभव और स्मृति दो भेद हैं। संस्कार मात्र से उत्पन्न ज्ञान स्मृति है। अनुभव यथार्थ और अयथार्थ विविध है यथार्थ अनुभव के प्रत्यक्ष अनुमिति उपमिति और शाब्द ये चार भेद हैं यथार्थ अनुभव ही प्रमा है। चारों प्रमावों के करण क्रमशः प्रत्यक्ष अनुमान उपमान और शब्द हैं। इन्द्रिय और विषय के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष है। इन्द्रियाँ प्रत्यक्ष प्रमाण है इन्द्रिय से विषयों का सन्निकर्ष संयोग आदि भेद से 6 प्रकार का है। प्रत्यक्ष ज्ञान के सविकल्प एवं निर्वकल्पक दो तरह के हैं। कारण समवायि असमवायि निमित्त के भेद से तीन प्रकार का होता है।

3.5 अभ्यास प्रश्नों की उत्तरमाला

1 स	2 अ	3 स	4 द	5 स
6 स	7 अ	8 स	9 अ	10 स

3.6 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

इस इकाई के लेखन में निम्न ग्रन्थों का संदर्भ लिया गया है।

1.	तर्कसंग्रहः	व्याख्याकार	शेषराजशर्मरिग्मी
2.	“	टीकाकार	श्री हरिहर शात्री
3.	तर्कसंग्रहः	टीकाकार	डा० अद्याप्रसाद द्विवेदी
4.	तर्कभाषा	टीकार	डा० श्रीनिवास शास्त्री
5.	न्यायदर्शनम्	सम्पादक	श्री नारायण मिश्र
6.	भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण—		संगमलाल पाण्डेय

3.7 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

इस इकाई का अध्ययन करने के लिए आप निम्न ग्रन्थों का सहयोग ले सकते हैं।

1.	तर्कसंग्रहः	व्याख्याकार	शेषराजशर्मरिग्मी
2.	“	टीकाकार	श्री हरिहर शात्री
3.	तर्कसंग्रहः	टीकाकार	डा० अद्याप्रसाद द्विवेदी

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रत्यक्ष प्रमाण पर प्रकाश डालिये

इकाई . 4 अनुमान से बाधित लक्षण पर्यन्त

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 अनुमान लक्षण से बाधित लक्षण पर्यन्त

4.4 सांराश

4.5 अभ्यास प्रश्नों की उत्तरमाला

4.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.7 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय इकाई से सम्बन्धित है इसमें अनुमिति प्रमा के करण अनुमान का स्वरूप उद्घाटित किया गया है। अनुमान के भेद स्वार्थ परार्थ, त्रिविध लिङ्ग, पंचावयव, पांच हेत्वाभास पर विचार किया गया है। अनुमान का सर्वाधिक वृहद् विश्लेषण न्याय दर्शन में किया गया है। अन्नम्भट्ट ने तर्कसंग्रह में अनुमान का नवीन परम्परा में वर्णित स्वरूप से हमें परिचित कराया है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप निम्न तथ्यों से परिचित होंगे कि –

1. अनुमान का लक्षण क्या है ?
2. उसके भेद कितने हैं ?
3. त्रिविध लिङ्ग कौन-कौन हैं ?
4. पंचावयव कौन हैं ?
5. और पांच हेत्वाभास कौन हैं? उनके भेद कौन-कौन हैं? आदि

4.3 अनुमान लक्षण से बाधित लक्षण पर्यन्त

अनुमान का लक्षण अनुमितिकरणमनुमानम् ।

अर्थ – अनुमिति के करण अर्थात् असाधारण कारण को अनुमान कहते हैं। अनु का अर्थ है पश्चात् और मान का अर्थ है ज्ञान जो ज्ञान शब्द और प्रत्यक्ष पर आश्रित होता है उसे अनुमान प्रमाण कहते हैं।

अनुमिति का लक्षण – परामशजन्यं ज्ञानमनुमितिः

अर्थ – परामर्श से उत्पन्न ज्ञान को अनुमिति कहते हैं।

परामर्श का लक्षण –

व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं परामर्शः । यथा

वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वत इति ज्ञानं परामर्शः ।

तज्जन्यं पर्वतो वह्निमानिति ज्ञानमनुमितिः ।

(अर्थ) अग्नि की व्याप्ति से विशिष्ट 'धूम' के पक्षधर्मता ज्ञान को परामर्श कहते हैं। यथा— अग्नि का व्याप्य (व्याप्ति विशिष्ट) धूम वाला यह पर्वत है, ऐस ज्ञान को परामर्श कहते हैं। उस परामर्श से उत्पन्न पर्वत वह्निमान् है यह ज्ञान अनुमिति है।

व्याप्ति लक्षण—

यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निः इति साहचर्यनियमो व्याप्तिः ।

अर्थ – जहाँ जहाँ धूम है वहाँ वहाँ अग्नि है इस साहचर्य नियम को व्याप्ति कहते हैं।

पक्षधर्मता का लक्षण –

व्याप्यस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मता ।

व्याप्य अर्थात् हेतु के पर्वत आदि में रहने को 'पक्षधर्मता' कहते हैं।

अनुमान भेद –

अनुमानं द्विविधं – स्वार्थ परार्थ च ।

अनुमान के दो भेद हैं – स्वार्थानुमान और परार्थानुमान ।

स्वार्थानुमान का स्वरूप व उदाहरण –

तत्र स्वाऽर्थं स्वाऽनुमितिहेतुः । तथाहि स्वयमेव भूयोदर्शनेन 'यत्र यत्र धूम स्तत्र तत्राग्निरिति महानसादौ व्याप्तिं गृहीत्वा पर्वतसमीपं गतस्तद्गते चाऽग्नौ सन्दिहानः पर्वते धूमं पश्यन् व्याप्तिं स्मरति 'यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति । तदनन्तरं 'वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वत इतिज्ञानमुत्पद्यते । अयमेव लिङ्गपरामर्श इत्युच्यते । तस्मात्

पर्वतो वह्निमान् इति ज्ञानमनुमितिरूपद्यते । तदेतत्स्वार्थानुमानम् ।

अर्थ – उन दोनो अनुमानों में स्वयं को होने वाली अनुमिति के हेतु को स्वार्थानुमान कहते हैं। जैसे कि – स्वयं ही बार-बार धूम और अग्नि का साहचर्य देखने से जहाँ-जहाँ धूम है वहाँ-वहाँ अग्नि है इस प्रकार पाकशाला आदि में व्याप्ति को जानकर पर्वत के पास गया हुआ वहाँ पर्वत पर अग्नि की शंका करता हुआ, पर्वत में धूँआँ देखकर व्याप्ति का स्मरण करता है— जहाँ-जहाँ धूँआँ है वहाँ वहाँ अग्नि है, उसके बाद 'अग्नि की व्याप्ति का आश्रय धूम वाला यह पर्वत है, ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है। इसी को लिङ्गपरामर्श' कहते हैं। उस परामर्श से 'पर्वतो वह्निमान्' ऐसी अनुमिति होती है। वही स्वार्थानुमान है।

परार्थानुमान का स्वरूप –

तत्तु स्वयं धूमादग्निमनुमाय परं प्रति बोधयितुं पंचाऽवयववाक्यं प्रयुज्यते । तत् परार्थानुमानम् । यथा—पर्वतो वह्निमान्, धूमवत्वात्, यो यो धूमवान् स स वह्निमान् । यथा महानसम् तथा चायम्, तस्मात्तथा इति । अनने प्रतिपादिताल्लिङ्गात् परोऽप्यग्निं प्रतिपद्यते ।

अर्थ – जो स्वयं धूम से अग्नि का अनुमान करके दूसरों को समझाने के लिए पाँच अवयवों वाले वाक्य का प्रयोग किया जाता है, वह 'परार्थानुमान' है। जैसे पर्वत वह्निमान् है, धूमवाला होने से, जो जो धूमवान् है वह वह वह्निमान् है, जैसे पाकशाला, वैसे ही यह (पर्वत)(धूमवाला) है। इन पाँच अवयवों से युक्त वाक्य से प्रतिपादित लिङ्ग से पर (दूसरा व्यक्ति) भी अग्नि को जानता है। इस कारणों से वैया (यह पर्वत वह्निमान् है।) इन पाँच अवयवों से युक्त वाक्य से प्रतिपादित लिङ्ग से दूसरा भी पर्वत में अग्नि का ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

पंचावयव –

प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि पंचाऽवयवाः । पर्वतो वह्निमानिति प्रतिज्ञा । धूमवत्वात् इति हेतु, यो यो धूमवान् स स वह्निमानित्युदाहरणम् । तथा चाऽयमित्युपनयः तस्मात्तथेति निगमनम् ।

अर्थ— पाँच अवयव हैं – प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। पर्वत वह्निमान् है यह प्रतिज्ञा है। धूमवाला होने से यह हेतु है। जो-जो धूम वाला है वह वह वह्निमान् है जैसे पाकशाला, यह उदाहरण है। वैसे ही यह (पर्वत) (धूमवाला) है यह उपनय है। इस कारण वैया (यह पर्वत वह्निमान् है) यह निगमन है। पंचावयवों अनुमान को परम न्याय कहते हैं।

स्वार्थानुमिति परार्थानुमिति का कारण –

स्वार्थानुमिति परार्थानुमित्यौलिङ्गपरामर्श एवं करणम् । तस्माल्लिङ्गपरामर्शाऽनुमानम् ।

अर्थ – स्वार्थानुमिति एवं परार्थानुमिति दोनों का कारण लिङ्ग परामर्श ही है। उस कारण से लिङ्गपरामर्श अनुमान है। लिङ्ग का तृतीय परामर्श अनुमान कहा जाता है।

लिङ्ग के भेद –

लिङ्गं त्रिविधं अन्वयव्यतिरेकि केवलान्वयि, केवलव्यतिरेकि चेति ।

लिङ्ग के तीन भेद हैं – अन्वयव्यतिरेकी, केवलान्वयि और केवलव्यतिरेकि ।

अन्वयव्यतिरेकि लिङ्ग का लक्षण –

अन्वयेन व्यतिरेकेण च व्याप्तिमदन्वयतिरेकि, बह्नौ साध्ये धूमवत्त्वम् । यत्र धूमस्तत्राग्नि र्यथा –महानसम् इत्यन्वयव्याप्तिः । यत्र वह्निर्नाकस्ति तत्र धूमोऽपि नास्ति, यथा—हृद' इति व्यतिरेकव्याप्तिः ।

जहाँ अन्वय और व्यतिरेके से व्याप्ति होती है उस लिङ्ग को अन्वयव्यतिरेकि कहते हैं, जहाँ धूम है वहाँ अग्नि है जैसे पाकशाला यह अन्वयव्याप्ति है, जहाँ अग्नि

नहीं है वहाँ धूम भी नहीं है— जैसे हृद (सरोवर) यहाँ व्यतिरेक व्याप्ति है।

केवलान्वयि लक्षण —

अन्वयमात्रव्याप्तिकं केवलाऽन्वयि। यथा घतोऽभिधेयः प्रमेयत्वात्। अत्र प्रमेयत्वाऽभिधेयत्वयोर्व्यतिरेकव्याप्तिनाऽस्ति, सर्वस्याऽपि प्रमेयत्वादभिधेयत्वाच्च।

अर्थ — जहाँ पर केवल अन्वयव्याप्ति रहती है, उस लिङ्ग को केवलान्वयि कहते हैं जैसे घटअभिधेय है प्रमेय होने से। यहाँ प्रमेयत्व एवं अभिधेयत्व की व्यतिरेक व्याप्ति नहीं है क्योंकि सभी पदार्थ प्रमेय हैं और अभिधेय हैं।

केवलव्यतिरेकि लक्षणम् —

व्यतिरेक मात्रव्याप्तिकं केवलव्यतिरेकि। यथा पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात् यदितरेभ्यो न भिद्यते न तद् गन्धवत्, यथाजलं न चयं तथा तस्मान्न तथेति।, अत्र गन्धवत् तदितरभिन्नमित्यन्वयदृष्टान्तो नाऽस्ति, पृथिवीमात्रस्य पक्षत्वात्।

अर्थ — व्यतिरेक मात्र व्याप्ति वाले लिङ्ग को केवलव्यतिरेकि कहते हैं। जैसे पृथिवी अन्यो से भिन्न है, गन्धवती होने से, जो अन्यो से भिन्न नहीं है वह गन्ध वाला नहीं है जैसे जल है। यह पृथिवी जल के समान नहीं है। अतः पृथिवी वैसी गन्धहीन नहीं, गन्ध वाली है। यहाँ पर जा गन्धवाली है, वह इतरभिन्न है, ऐसा अन्वय दृष्टान्त नहीं है। पृथिवी मात्र पक्ष है।

पक्ष लक्षण —

सन्दिग्धसाध्ययवान् पक्षः यथा—धूमवत्त्वे हेतौ पर्वतः

अर्थ — जहाँ पर साध्य का सन्देह हो, उसे पक्ष, कहते हैं। जैसे धूमवत्त्व हेतु में पर्वत।

सपक्ष लक्षण —

निश्चितसाध्ययवान् सपक्षः। यथा तत्रैव महानसम्।

अर्थ — जिसमें साध्य का निश्चय हो वह सपक्ष है। जैसे — वहीं पाकशाला

विपक्ष का लक्षण —

निश्चितसाध्याऽभाववान् विपक्षः। यथा तत्रैव महाद्दः।

अर्थ — जिसमें साध्य के अभाव का निश्चय हो वही विपक्ष है जैसे वही —महाद्द हेत्वाभास के भेद —

सव्यभिचार—विरुद्ध—सत्प्रतिपक्षाऽसिद्ध —वाधिताः पंच हेत्वाभासाः

अर्थ — सव्यभिचार, विरुद्ध, सत्प्रतिपक्ष, असिद्ध और वाधित में पंच हेत्वाभास है।

सव्यभिचार लक्षण भेद —

सव्यभिचारोऽनैकान्तिकः स त्रिविधः साधारणाऽसाधारणाऽनुपसंहारिभेदात्। तत्र साध्याऽभाववदवृत्तिः साधारणोऽनैकान्तिकः यथा पर्वतो वह्नमान्प्रमेयत्वादिति। अत्र प्रमेयत्वस्य वह्नयभाववति ह्यदे विद्यमानत्वात्।

अर्थ — सव्यभिचार को अनैकान्तिक कहते हैं। वह त्रिविध है साधारण, असाधारण और अनुपसंहारी। उन तीनों में साधारण अनैकान्तिक वह है जो हेतु साध्य के अभाव वाले पदार्थ में रहता है। जैसे पर्वत में अग्नि है, प्रमेय होने से। यहाँ प्रमेयत्व हेतु साध्य अग्नि के अभाव वाले पदार्थ हृद में रहता है।

असाधारण लक्षण भेद—

सर्वसपक्षविपक्ष व्यावृत्तः पक्षमात्रवृत्तिरसाधारणः यथा शब्दो नित्यः शब्दत्वादिति। शब्दत्वं हि सर्वेभ्यो नित्येभ्योऽनित्येभ्यश्च व्यावृत्तं शब्दमात्रवृत्तिः।

अर्थ — जो हेतु समस्त सपक्ष और विपक्षों में न रहकर केवल पक्ष में रहता है, उसे असाधारण कहते हैं, जैसे शब्द नित्य है, शब्द होने से। शब्दत्व हेतु सभी नित्य और अनित्य में न रहकर केवल शब्द मात्र में ही रहता है।

अनुपसंहारी का लक्षण व भेद—

अन्वयव्यतिरेकिदृष्टान्तरहितोऽनुपसंहारी। यथा – सर्वमनित्यं प्रमेयत्वादिति। अत्र सर्वस्य प्रमेयत्वाद दृष्टान्तो नास्ति

अर्थ –अन्वय और व्यतिरेक दृष्टान्त से रहित हेतु को अनुपसंहारी कहते हैं। जैसे सभी अनित्य हैं, प्रमेय होने से। यहा सभी के प्रमेय होने से दृष्टान्त ही नहीं है।

विरुद्ध हेत्वाभास का लक्षण व उदाहरण –

साध्याभावव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः। यथा – शब्दो नित्यः कृतकत्वादिति। अत्र कृतकत्वं हि नित्यत्वाऽभावेनाऽनित्यत्वेन व्याप्तम्।

अर्थ –साध्य के अभाव में व्याप्त हेतु को विरुद्ध कहते हैं। जैसे शब्द नित्य है, कृतक होने से। यहाँ पर पक्ष शब्द में नित्यत्वरूप साध्य की सिद्धि के लिए कृतकत्व हेतु अनित्यत्व रूप साध्याभाव में व्याप्त है।

सत्प्रतिपक्ष हेत्वाभास का लक्षण व उदाहरण –

यस्य साध्याऽभावसाधकं हेत्वन्तरं विद्यते से सत्प्रतिपक्षः। यथा – शब्दो नित्यः श्रावणत्वात्, शब्दत्ववत्। शब्दोऽनित्यः कार्यत्वाद् घटवत्।

जिसके माध्यम के अभाव का साधक दूसरा हेतु रहता है उसे 'सत्प्रतिपक्ष' कहते हैं। जैसे – शब्द नित्य है, श्रावण होने से, शब्दत्व की तरह। इसके प्रतिपक्ष रूप में शब्द अनित्य है, कार्य होने से घट की तरह।

असिद्ध हेत्वाभास के भेद –

असिद्धस्त्रिविधः – आश्रयाऽसिद्धः, स्वरूपाऽसिद्धः, व्याप्यत्वाऽसिद्धश्चेति।

असिद्ध के तीन भेद है – आश्रयासिद्ध, स्वरूपासिद्ध और व्याप्यत्वाऽसिद्ध।

आश्रयाऽसिद्ध लक्षण व उदाहरण–

उक्तमाश्रयाऽसिद्धो यथा गगनाऽरविन्दं सुरभि, अरविन्दत्वात् सरोजाऽरविन्दवत्। अत्र गगनारविन्दमाश्रयः, स च नाऽस्त्येव।

अर्थ –आश्रयासिद्ध का उदाहरण है –गगनारविन्द सुगन्धित है, अरविन्द होने के कारण, सरोजअरविन्द की तरह। इस उदाहरण में गगनारविन्द आश्रय है वह है ही नहीं।

स्वरूपाऽसिद्ध का लक्षण उदाहरण –

स्वरूपाऽसिद्धो यथा – शब्दो गुणश्चाक्षुषत्वात्। अत्र चाक्षुषत्वं शब्दे नाऽस्ति शब्दस्य श्रावणत्वात्।

स्वरूपासिद्ध का उदाहरण है – शब्द गुण है, चाक्षुष होने से, इस उदाहरण में चाक्षुष होना शब्द में है ही नहीं, शब्द के श्रावण होने से।

व्याप्तत्वाऽसिद्ध का लक्षण –

सोपाधिको हेतुर्व्याप्यत्वासिद्धः। – साध्यव्यापकत्वे साधनाव्यापकत्वमुपाधिः। साध्यसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं साध्यव्यापकत्वं।

साधनवन्निष्ठाऽत्यन्ताभावप्रतियोगित्वं साधनाव्यापकत्वम्। यथा पर्वतो धूमवान् वह्निमत्त्वात्, इत्यत्रार्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः। तथा हि यत्र धूमस्तत्रार्द्रेन्धनसंयोगो नास्ति अयोगोलके आर्द्रेन्धनाभावात् इति साधनाव्यापकत्वम् एवं साध्यव्यापकत्ते सति साधनाव्यापकत्वाद् आर्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः सोपाधिकत्वाद् वह्निमत्त्वं व्याप्यत्वासिद्धम्।

अर्थ – उपाधि से युक्त हेतु का 'व्याप्यत्वासिद्ध' कहते हैं। साध्य का व्यापक होकर जो साधन का अव्यापक है वह उपाधि है। साध्य के अधिकरण में रहने वाले अत्यन्ताभाव का जो प्रतियोगी नहीं है, उसे साध्यव्यापक कहते हैं। जैसे पर्वत धूमवान है, वह्निवाला होने से। इस उदाहरण में आर्द्रेन्धनसंयोग उपाधि है, क्योंकि जहाँ धूम है वहाँ आर्द्र इन्धन संयोग साध्य का व्यापक है। जहाँ वह्नि है वहाँ आर्द्र इन्धन संयोग नहीं है। आयोगोलक (सन्तप्तलौह पिण्ड) में आर्द्रेन्धन संयोग का अभाव होने से साधन व्यापकता है। इस प्रकार साध्य में व्यापक होकर साधन में व्यापक न होने से आर्द्र इन्धन का

संयोग उपाधि हुआ। उपाधि युक्त होने से वह्नित्व व्यपत्त्वाऽसिद्ध हुआ।

बाधित हेत्वाभास का लक्षण –

यस्य साध्याभावः प्रमाणान्तरेण निश्चितः स बाधितः। यथा वह्निरनुष्णो द्रव्यत्वादिति। अत्रानुष्णत्वं साध्यं तदभाव उष्णत्वं स्पर्शनप्रत्यक्षेण गृह्यते इति बाधितत्वम्, अर्थ – जिस हेतु का साध्याभाव अन्य प्रमाण से पक्ष में निश्चित है वह बाधित है। जैसे – वह्निरशीतल है, द्रव्य होने से। यहाँ शीतलता साध्य है और उसका अभाव उष्णता स्पर्शन प्रत्यक्ष से ग्रहण होने से हेतु में बाधितत्व है।

अभ्यास प्रश्न –

1. अनुमिति का कारण है।
(अ) परामर्श (ब) प्रत्यक्ष
(स) उपमान (अ) शाब्द
2. व्याप्ति विशिष्ट पक्ष धर्मताज्ञान है।
(अ) परामर्श (ब) व्याप्ति
(स) प्रतिज्ञा (द) इनमें से कोई नहीं
3. नियत साहचर्य सम्बन्ध है।
(अ) प्रतिज्ञा (ब) उदाहरण
(स) व्याप्ति (द) परामर्श
4. स्वार्थानुमिति हेतु है।
(अ) परार्थानुमान (ब) स्वार्थानुमान
(स) दोनों (द) इनमें से कोई नहीं
5. लिङ्ग परामर्श ही कारण है।
(अ) स्वार्थानुमिति का (अ) परार्थानुमिति का
(स) दोनों का (द) इनमें से कोई नहीं
6. परार्थानुमान में कितने अवयव होते हैं।
(अ) 5 (ब) 3
(स) 6 (द) 2
7. हेत्वाभास है।
(अ) पांच (ब) तीन
(स) चार (द) दो
8. किन हेत्वाभास के तीन भेद हैं।
(अ) सव्यभिचार के (ब) असिद्ध के
(स) विरुद्ध के (द) अ और ब के
9. गगनारविन्द सुगन्धित है।
अरविन्द होने से
सराज के अरविन्द की तरह में कौन सा हेत्वाभास है।
(अ) विरुद्ध (ब) सत्प्रतिपक्ष
(स) आश्रयासिद्ध (द) स्वरूपासिद्ध
10. अन्यव्यतिरेक दृष्टान्तरहित हेतु है।
(अ) अनुपसंहारी (ब) अनैकान्तिक
(स) विरुद्ध (द) सत्प्रतिपक्ष

4.4 सारांश

लिंग परामर्श अनुमान है इसके दो भेद हैं— स्वार्थानुमान, परार्थानुमान ये क्रमशः स्वयं एवं पर के ज्ञान के कारण हैं। परार्थानुमान में पांच अवयव होते हैं। पांच

हेत्वाभास होते हैं अनुमान के प्रयोग में हेत्वाभासों से बचने पर प्रमा सम्भव होती है।

4.5 अभ्यास प्रश्नों की उत्तरमाला

1 अ 2 अ 3 स 4 स 5 स 6 अ 7 अ 8 द 9 स 10 अ

4.6 संदर्भ गंथसूची

इस इकाई के लेखन में निम्न ग्रन्थों का संदर्भ लिया गया है।

1.	तर्कसंग्रहः	व्याख्याकार	शेषराजशर्मरिग्मी
2.	“	टीकाकार	श्री हरिहर शात्री
3.	तर्कसंग्रहः	टीकाकार	डा० अद्याप्रसाद द्विवेदी
4.	तर्कभाषा	टीकाकार	डा० श्रीनिवास शास्त्री
5.	न्यायदर्शनम्	सम्पादक	श्री नारायण मिश्र
6.	भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण—		संगमलाल पाण्डेय

4.7 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

इस इकाई का अध्ययन करने के लिए आप निम्न ग्रन्थों का सहयोग ले सकते हैं।

1.	तर्कसंग्रहः	व्याख्याकार	शेषराजशर्मा रिग्मी
2.	“	टीकाकार	श्री हरिहर शात्री
3.	तर्कसंग्रहः	टीकाकार	डा० आद्याप्रसाद द्विवेदी

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न –1 अनुमान प्रमाण पर प्रकाश डालिये ?

प्रश्न – 2. हेत्वाभास के भेदों को बताइए ?

इकाई 5. उपमान से लेकर उपसंहार पर्यन्त

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 उपमान खण्ड से लेकर उपसंहार पर्यन्त

5.4 सारांश

5.5 अभ्यास प्रश्नों की उत्तरमाला

5.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.7 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में तर्क संग्रह के उपमान व शब्द इन दोनों प्रमाणों के स्वरूप को बतलाया गया है। इसमें बुद्धि के बाद के गुण सुख, दुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार इन गुणों का स्वरूप व भेद वर्णित है। द्वितीय से लेकर पंचम इकाई के अंश तक पदार्थ संकीर्तनपूर्वक द्रव्य एवं कुछ गुणों का वर्णन है। इन दो पदार्थों से शेष कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव को लक्षण भी इसी अंश में वर्णित हैं। अंत में ग्रंथकर्ता अन्नम्भट्ट ने अपने नाम का उल्लेख करते हुए ग्रंथ रचना का प्रयोजन बतलाया है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप निम्न तथ्यों से परिचित हो सकेंगे कि

1. सुख से संस्कार पर्यन्त गुणों का भेद व स्वरूप कौन-कौन से?
2. कर्म से अभाव से पदार्थों का स्वरूप व भेद कौन है?
3. ग्रंथ की रचना का उद्देश्य क्या है?

5.3. उपमान खण्ड से लेकर उपसंहार पर्यन्त

उपमान का लक्षण :- उपमितिकरणमुपमानम्। संज्ञासंज्ञिसम्बन्धत्वज्ञानम् उपमितिः। तत्करणं सादृश्य ज्ञानम्। तथा हि कश्चित् गवयपदार्थमजानन् कुतश्चिदारण्यक पुरुषात् 'गोसदृशो गवय' इति श्रुत्वा वनंगतो 'गोसदृशो गवय इति वाक्यार्थस्मरणगोसदृशं पिण्डं पश्यति। तदनन्तरमसौ 'अयं गवयशब्दवाच्य' इत्युपमितिरुत्पद्यते।

अर्थ :- उपमिति के करण को उपमान कहते हैं। संज्ञा (पद) और संज्ञी (पदार्थ) इनके सम्बन्ध ज्ञान को उपमिति कहते हैं। उपमिति का करण गोसदृश्य ज्ञान है। जैसे- गवय पद के अर्थ को न जानने वाला पुरुष किसी अरण्यवासी (जंगल में रहने वाले) पुरुष से गवय गाय के सदृश होता है - ऐसा सुनकर वन में गया और 'गाय के सदृश गवय होता है' ऐसे वाक्यार्थ को स्मरण करता है और गाय के सदृश पिण्ड को देखता है। उसके बाद उसे यह पशु गवय शब्द का वाच्य है- ऐसी उपमिति उत्पन्न होती है।

शब्द खण्ड-

शब्द प्रमाण का स्वरूप -

आप्तवाक्यं शब्दः आप्तस्तु यथाऽर्थवक्ता। वाक्यं पदसमूहः यथा-गामानयेति। शक्तं पदम्। अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वर सङ्केतः शक्तिः।

अर्थ :- आप्त के वाक्य को शब्द कहते हैं। जो यथार्थ बोलता है उसे आप्त कहा जाता है पदों के समूह को वाक्य कहते हैं यथा-गाम् आनय अर्थात् गाय लाओ। पद का लक्षण है शक्त अर्थात् शक्ति का आश्रय। इस पद यह अर्थ जानना चाहिए, ऐसा ईश्वर संकेत ही शक्ति है।

शारदा-पद का लक्षण है शक्तम् पदम्। अर्थ के स्मरण के अनुकूल पदार्थ सम्बन्ध ही शक्ति है और वह पदार्थ से भिन्न है ऐसा मीमांसक मानते हैं उसका निरास करने के लिए अस्मदादिति कहा गया है। जाति विशिष्ट व्यक्ति में शक्ति की कल्पना उचित है।

वाक्यार्थ ज्ञान के हेतु -

आकांक्षा योग्यता सन्निधिश्च वाक्यार्थज्ञाने हेतुः पदस्य पदान्तरव्यतिरेक प्रयुक्तान्वयाऽननुभावकत्वमाकाङ्क्षा। अर्थाऽबाधो योग्यता। पदानामविल्वे नोच्चारण सन्निधि तथा चाकाङ्क्षारहितं वाक्यमप्रमाणम्। यथा- गौरश्वः पुरुषो हस्तीति न प्रमाणम्, आकांक्षा विरहात्। वह्निना सिञ्चति इति न प्रमाणम्, योग्यताविरहात्। प्रहरे प्रहरे असहोच्चारितानि गाम् आनय इत्यादिपदानि न प्रमाणम्, सान्निध्यभावात्।

अर्थ -आकाङ्क्षा योग्यता और सन्निधि वाक्यार्थ ज्ञान में हेतु है। पद का दूसरे पद के

अभाव से अन्वय का सम्पन्न न होना ही आकांक्षा है। अर्थ का बाध न होना ही योग्यता है। पदों का बिना देरी किये उच्चारण ही सन्निधि है और आकांक्षा रहित वाक्य प्रमाण नहीं होता है यथा गौः, अश्वः, पुरुषः और हस्ती ये पदसमूह आकांक्षा से रहित होने से प्रमाण नहीं है। वहिना सिंचति यह वाक्य योग्यता से रहित होने से प्रमाण नहीं है। प्रहर प्रहर में एक साथ उच्चारण न किये गये 'गाम् आनय् इत्यादि पद भी सान्निध्य के रहित होने से प्रमाण नहीं है।

वाक्यभेद –

वाक्यं द्विविधम् – वैदिकं, लौकिकं च। वैदिकमीश्वरोक्त त्वात् सर्वमेव प्रमाणम्। लौकिकं त्वाप्तोक्त प्रमाणम्। अन्यद प्रमाणम्।

अर्थ:—वाक्य के दो भेद हैं वैदिक लौकिक। वैदिक वाक्य ईश्वर से कहे जाने से सभी ही प्रमाण है। लौकिक वाक्य आप्त पुरुष उक्त होने पर प्रमाण होता है। इससे भिन्न लौकिक वाक्य अप्रमाण है।

शाब्दज्ञानस्वरूप –

वाक्यार्थज्ञानं शाब्दज्ञानम्। तत्करणम् शब्दः। इति शब्दप्रमाणम्।

अर्थ— वाक्य के अर्थ ज्ञान को शाब्द ज्ञान कहते हैं। शाब्द ज्ञान का करण शब्द होता है। यह शब्द प्रमाण समाप्त हुआ।

अयथार्थज्ञान लक्षण भेद व उदाहरण –

अयथार्थस्त्रिविधः संशयविपर्ययतर्कभेदात्। एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्यज्ञानं संशयः। यथा स्थाणुर्वापुरुषो वेति। मिथ्याज्ञानं विपर्ययः। यथा शुक्तौ इदं रजतमिति। व्याप्यारोपेण व्यापकारोपस्तर्कः। यथा यदि वह्निर्न स्यात् तद्दि धूमोपि न स्यादिति।

अर्थ – अयथार्थ अनुभव के तीन भेद होते हैं संशय, विपर्यय और तर्क। एक ही धर्म में विरुद्ध अनेक धर्मों के वैशिष्ट्य का अवगाहन करने वाले ज्ञान को संशय कहते हैं जैसे— किसी वस्तु को दूर से देखने पर यह स्थाणु अर्थात् टूटा पेड़ है अथवा कोई पुरुष है इस प्रकार का ज्ञान का संशय है। मिथ्या ज्ञान को विपर्यय कहते हैं जैसे शुक्ति में (सीपी में) रजत का ज्ञान। व्याप्य के आरोप से व्यापक के आरोप को तर्क कहते हैं – जैसे यदि आग नहीं होगी तो धुंआ भी नहीं होगा। यह तर्क है।

शारदा:—संशय के लक्षण में एक पद रखने से समूह के आलम्बन में अति व्याप्ति का वारण हो जाता है। घट द्रव्य है इत्यादि में अतिव्याप्ति का वारण करने के लिए विरुद्ध पद रखा गया है। पटत्वविरुद्ध घटत्वान् इसमें अतिव्याप्ति का वारण करने के लिए नाना पद रखा गया है।

यद्यपि तर्क विपर्यय के अन्तर्गत ही है फिर भी यह प्रमाणों का अनुग्राहक होने से अलग से कहा गया है।

स्मृति के भेद :-

स्मृतिरपि द्विधा— यथार्थाऽयथार्था चेति। प्रमाजन्या यथार्था अप्रमाजन्या अयथार्था।

अर्थ – स्मृति के दो भेद हैं यथार्थ और अथार्थ। यथार्थ स्मृति वह है जो प्रत्यक्ष अनुमिति उपमिति और शाब्द प्रमा से उत्पन्न होते हैं और अयथार्थ स्मृति वह है जो अप्रमा अर्थात् संसय विपर्यय अप्रमा से उत्पन्न होता है।

अवशिष्ट गुण निरूपण

अर्थ—अवशिष्ट गुणों में सुख आदि हैं इनका लक्षण अग्रलिखित है।

सुख का लक्षण

सर्वेषामनुकूलवेदनीयं सुखम्।

अर्थ—जो सभी के अनुकूल ज्ञान का विषय है उसे सुख कहते हैं। गया है।

दुख का लक्षण

प्रतिकूलवेदनीयं दुखम्।

अर्थ :- जो सभी के प्रतिकूल ज्ञान का विषय है उसे दुख कहते हैं। न्यायसूत्र में बाधना लक्षणम् दुखम् कहा

इच्छा द्वेष प्रयत्न का लक्षण :-

इच्छा कामः। क्रोधो द्वेषः। कृतिः प्रयत्नः।

अर्थ—कामना को इच्छा कहते हैं, क्रोध को द्वेष कहते हैं, कृति को प्रयत्न कहते हैं।

धर्माधर्मलक्षण

विहितकर्मजन्यो धर्मः। निषिद्धकर्मजन्योऽधर्मः।

वेदविहित कर्म से उत्पन्न विशेष गुण को धर्म कहते हैं। वेद से निषिद्ध कर्म से उत्पन्न विशेष गुण को अधर्म कहते हैं।

शारदा—धर्मअधर्म अतीन्द्रिय प्रदार्थ है। मन से उनका प्रत्यक्ष नहीं होता है। उनकी सत्ता में अनुमान और आगम दो ही प्रमाण हैं।

आत्मा मात्र के विशेष गुण :-

बुद्ध्यादयोऽष्टावात्ममात्रविशेषगुणाः।

बुद्धीच्छाप्रयत्ना नित्या अनित्याश्चः।

नित्या ईश्वरस्य अनित्या जीवस्य।

अर्थ :- बुद्धि आदि अर्थात् बुद्धि, सुख, दुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म और अधर्म ये आठ गुण केवल आत्मा में रहने वाले विशेष गुण हैं। उनमें बुद्धि, इच्छा और प्रयत्न ये तीनों नित्य और अनित्य दोनों हैं। ईश्वर की बुद्धि इच्छा और प्रयत्न नित्य होते हैं जबकि जीव के ये तीनों गुण अनित्य हैं।

संस्कार के भेद -

संस्कारस्त्रिविधः वेगो भावना स्थितिस्थापकश्चेति। वेगः पृथिव्यादिचतुष्टयमनोमात्रवृत्तिः। अनुभवजन्या स्मृतिहेतुर्भावना। आत्ममात्रवृत्तिः। अन्यथाकृतस्य पुनस्तदवस्थापादकः स्थितिस्थापकः कटादिपृथिवीवृत्तिः।

अर्थ :- संस्कार के तीन भेद हैं वेग, भावना और स्थिति स्थापक। वेग नाम संस्कार पृथिवी, जल, तेज, वायु और मन में रहता है अनुभव से उत्पन्न जो स्मृति का कारण है उसे भावना संस्कार कहते हैं। यह संस्कार केवल आत्मा में रहता है। अन्यथा अवस्था को पदार्थ का फिर उसी स्थिति में प्राप्त कराने वाले गुण विशेष को स्थिति स्थापक कहते हैं। वह गुण कट (चटाई) पृथ्वी आदि में रहता है।

शारदा—जिसमें संस्कारत्व नामक सामान्य होता है उसे संस्कार कहते हैं जिसमें वेगत्व नामक सामान्य रहता है उसे वेग कहते हैं। भावना के लक्षण में स्मृति पद देने से अनुभवध्वंस में अतिव्याप्ति नहीं होती है तथा अनुभव पद रखने से आत्मा आदि में।

अवशिष्ट द्रव्य निरूपण :-

कर्म आदि शेष द्रव्यो का स्वरूप वर्णित किया जा रहा है -

कर्म का लक्षण व भेद

चलनात्मकं कर्म। ऊर्ध्वशसंयोगहेतुरुत्क्षेपणम्। अधोदेशसंयोगहेतुपक्षेपणम्। शरीरसन्निकृष्टसंयोगहेतुराकुंचनम्। शरीरविप्रकृष्टसंयोगहेतुः प्रसारणम्। अन्यत्सर्वं गमनम्।

अर्थ :- चलन स्वरूप वाली क्रिया को कर्म कहते हैं उसके पांच भेद हैं। उत्क्षेपण आदि। उनमें से उत्क्षेपण वह कर्म है जिसके कारण किसी वस्तु का ऊर्ध्वदेश में संयोग कराया जाता है जैसे गेंद को ऊपर फेंकना। अपक्षेपण व कर्म है जिसमें किसी वस्तु का अधोदेश में संयोग कराया जाता है जैसे गेंद को नीचे फेंकना। शरीर के निकट संयोग के कारण को अकुंचन संयोग कहते हैं। शरीर के दूर संयोग के कारण को प्रसारण कर्म कहते हैं। इनसे भिन्न सभी क्रियायें सामान्य ही हैं।

सामान्य का लक्षण व भेद:-

नित्यमेकमनेकानुगतं सामान्यम्। द्रव्यगुणकर्मवृत्तिः। तद्विधं परापरभेदात्। परं सत्ता।

अपरं द्रव्यत्वादि।

अर्थ :- जो नित्य और एक होते हुए अनेकों में अनुगत है उसे सामान्य कहते हैं यह सामान्य द्रव्य गुण और कर्म में रहता है। इसके दो भेद हैं पर और अपर। द्रव्य गुण और कर्म में रहने वाले सामान्य को परसामान्य कहते हैं। यही परसामान्य सत्ता सामान्य है। अल्प देश में रहने वाला द्रव्यत्व आदि अपर सामान्य है।

शारदा—सामान्य के लक्षण में नित्यम पद रखने से संयोग में अतिव्याप्त नहीं होती। अनेक पद रखने से परिमाण और परिणाम में अतिव्याप्ति नहीं होते।

विशेष का लक्षण :- नित्यद्रव्यवृत्तयो व्यावर्तका विशेषः।

अर्थ—नित्य द्रव्यों में रहने वाले विभेदकों को विशेष कहते हैं।

शारदा—भेद ज्ञान का आधार विशेष है। अतः यह व्यावर्तक है। नित्य है भूतों के अनन्त परमाणु दिग आकाश, काल, आत्मा और मन में विशेष होते हैं। एक परमाणु से दूसरे से पृथक है उसके कारण यह विशेष है यह सबके अंत में रहने वाले परमाणु नित्य निरवयवों द्रव्यों में रहते हैं इनका नाश नहीं होता विशेष सामान्य रहित व एक व्यक्ति वृत्तिक होता है। यह व्यक्ति में समवाय सम्बन्ध से रहता है। इस विशेष के कारण काणादमत को वैशेषिक कहते हैं।

समवाय के लक्षण :- नित्यसम्बन्धः समवायः। अयुतसिद्धवृत्तिः। ययोर्द्वयोर्मध्ये एकमविनश्यदपराश्रितमेवातिष्ठते तावयुतसिद्धौ। अवयवावयविनौ गुणगुणिनौ क्रियाक्रियावन्तौ जातिव्यक्ती विशेषनित्य द्रव्ये चेति।

अर्थ—नित्य सम्बन्ध को समवाय कहते हैं। वह अयुतसिद्ध पदार्थों में रहता है। जिन दोनों के मध्य में एक नष्ट न होने तक दूसरे के आश्रित रहता है जैसे दोनों पदार्थ अयुतसिद्ध कहे जाते हैं जैसे अवयव और अवयवी गुण और गुणी, क्रिया और क्रियावान् जाति और व्यक्ति तथा विशेष और नित्य द्रव्य।

शारदा—समवाय के लक्षण में नित्य पद रखने से संयोग में अतिव्याप्ति नहीं होती। सम्बन्ध पद रखने से आकाशादि में अतिव्यक्ति नहीं होती।

प्रागभावादि लक्षण व उदाहरण :-

अनादिः सान्तः प्रागभावः उत्पत्तेः पूर्व कार्यस्य। सादिरनन्तः प्रध्वंसः उत्पत्त्यनन्तरं कार्यस्य। त्रैकालिकसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽत्यन्ताभावः। यथाभूतले घटो नास्तीति। तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽन्योन्याभावः यथा घटः पटो नेति।

अर्थ—जिसका आदि नहीं है किन्तु अंत है ऐसे अभाव को प्राग भाव कहते हैं यह कार्य की उत्पत्ति के पहले होता है। वह अभाव इसका आदि है अंत नहीं है वह प्रध्वंसाभाव है। वह कार्य की उत्पत्ति के बाद होता है। त्रैकालिक संसर्ग से युक्त प्रतियोगिता है जिसमें वह अत्यन्तता भाव है। जैसे भूतले घटो नास्ति, यहां पर भूतल में घट का अत्यन्ताभाव है। तादात्म्य सम्बन्ध से युक्त प्रतियोगिता वाले अभाव को अन्योन्याभाव कहते हैं। जैसे घट पट नहीं है।

शारदा—प्रागभाव के लक्षण में सान्त पद रखने से आकाश आदि में अतिव्याप्ति का वारण हो जाता है। अनादि पद रखने से घटादि में अतिव्याप्ति नहीं होती है। प्रध्वंस के लक्षण में अनन्त पद रखने से घटादि में अतिव्याप्ति नहीं होती। सादि पद रखने से आकाशादि में अतिव्याप्ति नहीं होती।

पदार्थ उपसंहार :-

सर्वेषामपि पदार्थानां यथायथमुक्तेष्वन्तर्भावात् सप्तैव पदार्था इति सिद्धम्।

सर्व पदार्थों के स्वरूप का अतिक्रमण न कर द्रव्य आदि साद पदार्थों में ही न्याय के 16 पदार्थों का अन्तरभाव करने से पदार्थ साथ ही है यह सिद्ध हुआ।

ग्रंथ रचना का प्रयोजन :-

कणादन्यायमतयोर्बालव्युत्पत्तिसिद्धये।

अन्नम्भट्टेन विदुषा रचितस्तर्कसंग्रहः।

अर्थ :- कणाद मुनिकृत वैशेषिक और गौतममुनि कृत न्यायमत में बालकों की व्युत्पत्ति के सिद्धि के लिए विद्वान् अन्नम्भट्ट ने तर्क संग्रह की रचना की है।

अभ्यास प्रश्न :-

1. संज्ञा एवं संज्ञी के सम्बन्ध का ज्ञान है

(अ) अनुमति	(ब) उपमान
(स) उपमिति	(द) शाब्द
2. गो सदृश गवय होता है यह उदाहरण है

(अ) उपमान	(ब) अनुमान
(स) अर्थापत्ति	(द) शब्द
3. शब्द ज्ञान है

(अ) वाक्यार्थ ज्ञान	(ब) शब्दज्ञान
(स) इनक्तेकाज्ञान	(द) वाक्यज्ञान
4. वाक्यार्थज्ञान के हेतु है

(अ) आंकाक्षा	(ब) योग्यता
(स) सन्निधि	(द) तीनों
5. अयथार्थ अनुभव के भेद है

(अ) संशय	(ब) विपर्यय
(स) तर्क	(द) तीनों
6. सुमेलित है—

(अ) अनुकूल वेदनीय	—	दुख
(ब) प्रतिकूल वेदनीय	—	सुख
(स) विहितकर्मजन्य	—	धर्म
(द) कृति	—	इच्छा
7. स्मृति का कारण है —

(अ) अनुभव जन्म भावना	
(ब) स्थिति स्थापक	
(स) वेग	
(द) इनमें से कोई नहीं	
8. सुमेलित नहीं

(अ) नित्य सम्बन्ध	—	समवाय
(ब) नित्य एक अनेक, अनुगत	—	सामान्य
(स) व्यावर्तक	—	विशेष
(द) चलनात्मक	—	अभाव
9. तर्क संग्रह की रचना का प्रयोजन

(अ) कणाद का ज्ञान कराना	
(ब) न्याय मद का ज्ञान कराना	
(स) दोनों का	
(द) कोई नहीं	
10. सादिः अनन्तःअस्ति

(अ) प्रागभावः	(ब) प्रध्वंसभाव
(स) अत्यन्ताभावः	(द) अन्योन्याभावः

5.4 सारांश

यह इकाई अत्यन्त ही महत्वपूर्ण इकाई है इसमें उपमान, शब्द, प्रमाण का स्वरूप बताया गया है। इसमें सुख आदि शेष गुण का प्रतिपादन हुआ है। समवाय नित्य सम्बन्ध है। चलना कर्म है। व्यावर्तक विशेष है। प्राग भाव आदि चार प्रकार के हैं। इस ग्रंथ का प्रयोजन न्याय और वैशेषिक मत का बच्चों को बोध करना है।

5.5 उत्तर माला

1	स	2	ट	3	अ	4	द
5	द	6	स	7	अ	8	द
9	स	10	अ				

5.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

तर्क संग्रह टीका कार आचार्य शेष राय शर्मा रेगमी
 तर्क संग्रह टीका कार आद्या प्रसाद मिश्र
 तर्क संग्रह टीकाकार श्री हरिहर शास्त्री

5.7 उपयोगी पाठ्य सामग्री

तर्क संग्रह टीकाकार आचार्य शेष राय शर्मा रेगमी
 तर्क संग्रह टीका कार आद्या प्रसाद मिश्र
 तर्क संग्रह टीकाकार श्री हरिहर शास्त्री

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1—इस इकाई का सारांश अपने शब्दों में प्रस्तुत कीजिए ।